देश

और

काल

- स्वामी माधवतीर्थ

अनुक्रमणिका

निवेदन

सत्य यानी अपना सच्चा स्वरुप जैसा है वैसा समझना कठिन नहीं है; किन्तु असत्य को यानी माया प्रपंच से स्वप्नवत् भासमान होनेवाले द्वैत जगत को ऐसा पकड़ा है कि उसको छोड़ना साधक को कठिन लगता है । (*माधव जयंती स्मृति ज्ञानग्रन्थ १९८५ : उपोदघात पृ.२४) दृश्य दृष्टा से भिन्न है ये तुरंत समझ में आता है; लेकिन दृष्टा से दृश्य भिन्न है ही नहीं ऐसा ज्ञान दृढ़ होना कठिन लगता है । (*स्वामी अखंडानंदजी सरस्वती १९८७ : दृग दृश्य विवेक-पृ.२७) 'मायाकल्पित देशकालकलना वैचित्र्य चित्रीकृतम्'*(*श्री दक्षिणामूर्ति स्तोत्रम्, मंत्र : २) -माया से कल्पित देश और कालवाला जगत निर्विशेष होनेपर भी सविशेष भासमान होता हुआ प्रतीत होता है ऐसा समझ में आता है । लेकिन उसको वास्तव में बाधित जानकर, बाधितानुवृत्ति से श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्मा की नाईं संसार में लीला करना कठिन लगता है। कैसा आश्चर्य !!! **(*श्रीमद् भगवद्गीता, अध्याय :२/२९)**

वास्तवमें पू.गुरुजी के दिशानिर्देशानुसार अभ्यास और वैराग्य की कमी के कारण साधक को उपरोक्त कठिनाइयों का अनुभव होता रहता है । ऐसे समय साधक सामान्यतः गुरुजी के सन्मुख जाना संकोचवश टालते होते हैं ! किन्तु गुरुजी की लीला न्यारी होती है। शरण में आये हुए और संकोच का अनुभव करनेवाले वर्तमान शिष्य के लिए और सभी मुमुक्षुओं के लिए ऐसा उत्तम सत्संग-साहित्य की गुरुजी रचना करते हैं कि जिसके सहयोग से भूले भटके साधक को पुनः तत्त्वबोध के राजमार्ग पर आगे बढ़ने को तत्पर कर देते हैं। पू.माधवतीर्थजी की लिखी हुई १३० जितनी पुस्तकें-सत्संग साहित्य इस बात का प्रमाण है।

इन सभी पुस्तकों में स्वामीजी का **'देश और काल'** पुस्तक अमूल्य है। सस्तु साहित्य वर्धक मुद्रणालय ट्रस्ट के उस समय के प्रमुख श्री मनु सूबेदार ने,इस पुस्तक की प्रथम आवृत्ति के निवेदन में लिखा था कि "यह पुस्तक मौलिक होने से...... उनकी यह कृति उनके सभी पुस्तकों के ऊपर कलश की भाँति प्रजा के समक्ष वर्षों तक प्रकाशमान होगी ।" पू. स्वामीजी ने भी इस पुस्तक की प्रस्तावना की शुरुआत इस तरह की है : "यह पुस्तक नहीं है, इसको जो छुएगा वह एक महान तत्त्व को छुएगा ।"

पिछले २००० वर्षों से विज्ञान की गाड़ी उलटे मार्ग पर चल रही थी। देश काल की माया वाले त्रि-परिमाण वाले (Three dimensional) जगत को यानी

प्रातिभासिक सत्ता को ही सत्य मानकर, उसको समझने के प्रयास में वैज्ञानिक उलझन में थे। प्रो. आइंस्टाइन और प्रो. हाइसनबर्ग जैसे वैज्ञानिकों ने -जिनको पू.स्वामीजी वर्तमान ऋषियों के रूप में पहचानते हैं, विज्ञान की गाड़ी सही मार्ग पर चढाई थी। प्रो.आइंस्टाइन ने सन १९०५ में सापेक्षवाद के सिद्धांत की (Theory of relativity) के सहयोग से ऐसा दर्शाया कि दृष्टा की दृष्टि से और दृष्टा के प्रमाण से अनुभव में आनेवाले देश और काल सापेक्ष हैं और उसके द्वारा प्रतीत होनेवाला स्थूल जगत केवल एक काल्पनिक घटना अथवा प्रसंग (event) ही है। उसमें सत्यत्व बुद्धि सच्ची नहीं है। १९२७ में प्रो.हाइसन बर्ग ने तरंगवाद के सिद्धांत (Quantum theory) की मदद से परमाणु के इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रॉन (Electron, proton and neutron) के परस्पर संबंधों का अभ्यास करके वैज्ञानिकों की सूक्ष्म जगत विषयक समझ को भी मिथ्या करके दिखाई। इस प्रकार आधुनिक विज्ञान और वर्तमान ऋषियों जैसे वैज्ञानिकों ने माया को और उसके देश काल को मिथ्या, सिर्फ प्रातिभासिक सत्य सिद्ध किये हैं। किन्तु इन नये वैज्ञानिक संशोधकों की "कमी सिर्फ इतनी है कि वे माया का स्वरुप ठीक से दिखा सकते हैं, किन्तु ब्रह्म का स्वरुप समझा नहीं सकते।" पू. माधवतीर्थ स्वामी ने आधुनिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान को इस पुस्तक में जोड़कर वेदांत विचार दर्शन में आमूल क्रांति लाई हैं। आधुनिक विज्ञान और सनातन वेदांत दर्शन के संकलन के परिपाक के रूप में "देश और काल" पुस्तक का जन्म हुआ है। अतः सिर्फ विज्ञान में ही विश्वास रखनेवाले भी इस पुस्तक के अभ्यास के बाद वेदांत दर्शन को अनन्य श्रद्धा से देखने को बाध्य हो जायेंगे।

कौतूहलवश नवलकथा की नाईं जैसे एक बार पढ़ जाने से समझ में आ जाय ऐसा यह पुस्तक नहीं है। पू.स्वामीजी ने भी इस पुस्तक का सावधानीपूर्वक सघन अभ्यास करने पर जोर दिया है। मायिक भेद का निषेध करने के लिए माया के स्वरुप को जानना अनिवार्य हो जाता है। देश और काल वाली माया के स्वरुप को समझने में कहां गलती होती है और उसको कैसे सुधार सकते हैं उसको जाननेमें यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। पुस्तक के अभ्यास में सरलता रहे और उसके सार तत्त्व को ग्रहण करने में मददरूप हो उस दृष्टिबिंदु से यहाँ पू.स्वामीजी की प्रस्तावना से कुछ अंश प्रस्तुत किये हैं।

१. “इस पुस्तक में मनुष्य को क्या पसंद है उस विषय पर विचार नहीं है; अपितु सच क्या है और उसका प्रमाण क्या है उस विषय पर विचार किया गया है।” (पृ.१८)

२. "मनुष्य में जितना ज्ञान दिखता है उससे कई गुना अधिक ज्ञान है। पर जब तक उसे अपनी गलती का पता नही चलता तब तक वह खुद के ज्ञान को सच्चा मानकर अपना व्यवहार करता है। इसके अलावा स्वप्न में जैसे मिथ्या ज्ञान से व्यवहार चलता है वैसे जाग्रत में भी मिथ्या ज्ञान से व्यवहार चलता है। इसलिये लोग सामान्यतया अपना प्रमाण ठीक करने की मेहनत नहीं करते।" (पृ.१४)

३. "देखनेवाला आता है उसके साथ ही उसका प्रमाण साथ में आता है। संसार के व्यवहार में प्रमाण का विचार नहीं होता, अपितु व्यवहार का विचार होता है, अतः भूल समझमें नहीं आती। स्कूलो में बुद्धि बढ़े वैसा ज्ञान दिया जाता है। उस प्रकार की बुद्धि इन्द्रियों के प्रमाण का पक्षपात करती है इसलिए उस बुद्धि से बंधन कटता नहीं है। सभी प्रकार के अज्ञान का बाध करे वैसा ज्ञान उत्पन्न होना चाहिए।" (पृ ४४)

४. "सामान्य मनुष्य का प्रमाण (मेझर) उसकी अन्तः करण की वृत्ति है। वृत्ति स्वयं जड़ है, किन्तु चेतन सर्वव्यापक होने से प्रत्येक वृत्ति के साथ रहता है इसलिए वृत्ति को चेतनता प्राप्त होती है। इस प्रकार वृत्ति को जीवन मिलनेसे और वह चेतन की तरह कार्य करनेवाली होने से प्रत्येक मनुष्य अपनी वृत्ति को प्रमाण मानता है। उस समय जैसी परिस्थिति होती है उसके अनुकूल वृत्ति उत्पन्न होती है। अतः प्रमाता की अनुकूलता के कारण उस वृत्ति में गलती हो तो मालूम नही पड़ती। यह बात आधुनिक सायन्स से भी सिद्ध होती है।" (पृ.३९)

५. "प्रपंच भी मायिक सामग्री से प्रतीत होता है इसलिए वह प्रमाण नहीं है।" (पृ.४४)

६. "श्रुति पारमार्थिक भेद का निषेध करती है, मायिक भेद का निषेध नहीं करती। भेद में जो मायिकत्व ज्ञान है वह अद्वैत ज्ञान का अंग है। भेद मायिक है इस प्रकार का ज्ञान हुए बिना अद्वैत ब्रह्म को नही जान सकते, क्योंकि विशेषण के ज्ञानपूर्वक ही विशिष्ट बुद्धि होती है, इसलिए माया का स्वरुप भी जानने की आवश्यकता रहती है। उसके लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी हो सकेगा।" (पृ.४३)

७. "जो नाप बदले नहीं ऐसे नाप से सब नापना चाहिए, अतः आत्मा से आत्मा में रहना चाहिए। उसीको स्थितप्रज्ञ दशा कहते हैं।" (पृ.२८)*

(*यहाँ पृष्ठ क्रमांक मूल गुजराती पुस्तक के दिए गए हैं।)

यह पुस्तक पिछले कुछ समय से अप्राप्य था। उसका पुनःमुद्रण करने के लिए मुमुक्षुओं के प्रेमाग्रह को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक की तृतीय आवृत्ति प्रसिद्ध

करने का वेदांत आश्रम, वलाद के ट्रस्टिमंडल द्वारा निर्णय लिया गया था, इस पुस्तक के प्रकाशन कार्य में निमित्त बने हुए सभी के ऋण का हम स्वीकार करते हैं।

आशा है कि मायिक प्रपंच को समझने में एवम् अंतमें उसको बाधित करके अपरोक्षानुभूति करने के अभिलाषी सभी मुमुक्षुओं को यह पुस्तक अवश्य उपकारक बनेगी।

- स्वामी माधवतीर्थ

ज्ञान प्रचार ट्रस्ट
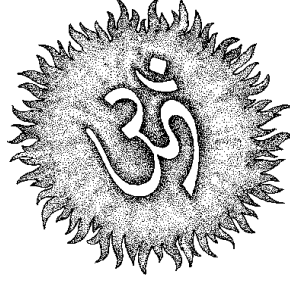
प्रस्तावना

यह पुस्तक नहीं है, इसको जो छुएगा वह एक महान तत्त्व को छुएगा.

एक दिन मुझे स्वप्न आया था। अहमदाबाद में दोपहर के भोजन के पश्चात् मैं सो गया था। उस समय बारह बजे थे। फिर मुझे स्वप्न आया। उसमें क्या हुआ वह मुझे याद नहीं है परंतु ऐसा प्रतीत हो रहा था कि यह स्वप्न अब पूरा हुआ और शायद सुबह हुई होगी, अतः उठकर देखता हूँ। घड़ी के सामने देखा तो साढ़े बारह बजे थे। मुझे आशा थी कि मैं सुबह उठूँगा परंतु मैं साढ़े बारह बजे उठा। इस घटना को आधुनिक सापेक्षवाद के सिद्धान्त 'थियोरी ऑफ़ रिलेटिविटी' का आधार लेकर समझने का प्रयास करें तो ठीक से समझमें आता है। सायन्स वाले कहते हैं की जबतक प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय (अर्थात् को- ऑर्डिनेट्स) जानने में नहीं आते तब तक काल या स्थान निश्चित नहीं हो सकते।

एक अन्य व्यक्ति को दोपहर में सोने की आदत थी। एक दिन उसने खिड़की बंद करके दोपहर दो बजे से नींद शुरू की। एक नींद पूरी करने के बाद जब वह उठा तब किसीने उसको पूछा, "आपकी दृष्टि में अभी कितने बजे होंगे ?" उसने उत्तर दिया "सुबह हुई होगी" वास्तवमें उस समय दोपहर के चार बजे थे। यह अनुभव भी ऊपर के अनुभव जैसा ही है।

इसी प्रकार स्थान के विषय में भी कुछ अनुभव मुझे हुए हैं। वह इस प्रकार है:-

मुझे सत्संग के लिए और परिव्राजक संन्यास धर्म के अनुसार कई गाँव और शहरों में जाना हुआ है। कुछ स्थानपर जब नींद पूरी करके उठता तब अर्ध जाग्रत दशा रहती थी। उस समय ऐसा लगता था कि मैं फलां गाँव में हूँ लेकिन पूरी जाग्रति आनेपर मैं दूसरे गाँव में उठता था। अर्थात् जिस गाँव में सोया था उस गाँव में उठता था। इस प्रकार स्थान की गलती होती थी। इस प्रकार के अनुभव में जीव का जगत और उसके देश और काल सभी झूठे होते हैं; इतना ही नही जीव (यानी मैं) भी झूठा होता है। विमान आकाश में नही उड़ता। आकाश में वजनदार वस्तु हो तो नीचे धरती पर गिर जायेगी अतः विमान चलाने वाले मशीनरी (यंत्रो) के सहयोग से पंखे घूमाकर नया स्थान और नया काल उत्पन्न करते है और उस नई जगह में विमान चल सकता है, आकाश में नही चल सकता। वहाँ स्थान और समय नये बनाने पड़ते हैं। फिर जो भी व्यक्ति विमान में बैठता है उसे वहाँ के स्थान और काल लागू पड़ते हैं। उसी प्रकार

जीव मनुष्य बनता है, तब मनुष्य के स्थान और मनुष्य के काल के प्रभाव में आता है। पशु बनता है तब पशु का स्थान और पशु का काल उत्पन्न होता है और देवता बनता है तब उसके लिए वैसी जगह और वैसा काल उत्पन्न होता है। रेल्वे में अहमदाबाद से मुम्बई जाना हो तो भी उस समय उस व्यक्ति के लिये दोनों शहरों के अंतर में बदलाव आ जाता है और काल लोकल अथवा मेल के अनुसार बदलता है।

कुछ वर्ष पहले 'काल की गति' नामक पुस्तक प्रकाशित की था। उसकी द्वित्तीय आवृत्ति सन-१९४५ में प्रसिद्ध हुई थी। १९४६-४७ में वह पुस्तक गुजरात साहित्य सभा की कमैटी ने पढ़ी। उन्होंने अभिप्राय दिया की उस वर्ष में 'विज्ञान' विषयक गुजराती भाषा में जितने पुस्तक प्रसिद्ध हुए उनमें 'काल की गति' प्रथम नंबर में आ सकता है। उसके बाद इस विषय में मेरी बुद्धि और अनुभव में वृद्धि हुई और संशोधन के लिए दूसरी अच्छी पुस्तकें पाश्चात्य देशो से प्राप्त हुई। उस विषय पर गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ एवम् मुम्बई की कुछ हाईस्कूलों और कालिजों में एवम् आम जनता के लिए इस विषय पर गुजराती एवम् अंग्रेजी में लगभग सौ से अधिक व्याख्यान दिये, फिर कुछ विद्वान् पुरुषों की सलाह से निम्न लिखित दो पुस्तकें लिखी।

१.देश अने काळ-गुजराती में (यह पुस्तक)

२.वंडर्स ऑफ़ धी टाइम स्पेस (अंग्रेजी)

इस पुस्तक की प्रथम आवृत्ति प्रकाशित होने के पश्चात एक व्यक्ति ने हमसे कहा था कि यह पुस्तक उसने पंद्रह बार पढ़ी। सामान्य बुद्धि से देखे तो चैतन्य, सूक्ष्म जगत और स्थूल जगत ऐसे तीन तत्त्वों का अनुभव रहता है। उन में चैतन्य सब में एक है। सूक्ष्म जगत प्रत्येक जीव का भिन्न होता है; क्योंकि किसीके भी विचार मिलते (एक जैसे) नही हैं। स्थूल जगत सभी को एक जैसा दिखता है ऐसा कई लोगों को लगता है परंतु सापेक्षवाद की खोज होने के बाद वह भी सभी का कल्पित है ऐसा निश्चित हुआ है और इसे इस पुस्तक में समझाया गया है। सूक्ष्म जगत किस प्रकार कल्पित है वह निम्न लिखित दृष्टान्त से समझमें आयेगा।

एक कुएँ से कुछ महिलाएं पानी भरती हैं। उसमें सभी जातियों की महिलाएं होती हैं। कुएँ में सभी जातियों के घड़े इकट्ठे होते हैं। और पानी में टकराते हैं तब तक किसीसे झगड़ा नही होता परंतु पानी से भरे हुए घड़े बाहर निकलते यदि प्रथम निम्न जाति की महिला का घड़ा निकले और उसके घड़े से पानी के छींटे नीचे के उच्च जाति की महिला के घड़े पर पड़ते हैं तो छुआछूत के कारण दोनों के बीच झगड़ा होता

है। यहाँ स्थान का प्रश्न है। ऐसे ही काल के प्रश्न के झगड़े की जाँच करें तो जन्म से पहले कोई हिंदु, मुसलमान, पारसी या ईसाई नहीं होता। जन्म के समय खुद जन्मा वैसा ज्ञान भी नहीं होता। उसके बाद जो व्यक्ति जैसा अभिमान धारण करता है उसके अनुसार विरोध उत्पन्न होता है। यह एक प्रकार की माया है। सभी जातियों को मिला दें तो भी उनमें से समाजवाद, साम्यवाद, मूडीवाद आदि अंकुर उत्पन्न होते रहेंगे। अतः माया में विरोध रह जाता है। परंतु माया का स्वरुप ठीक से जान लिया हो और आत्मचैतन्यका स्वरुप ठीक से समझ लिया हो तो विरोध शांत हो जाता है। उसके लिए सच्चा प्रमाण प्राप्त करना चाहिये। सच्चे प्रमाण से युक्त मनुष्य प्रामाणिक कहा जाता है।

प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ ज्ञान होता है वह ज्ञान सच्चा है कि नहीं उसे जानने की रीति को प्रक्रिया अथवा प्रमाण कहते हैं। इस प्रकार का प्रमाण समझने के लिए अपने देश में पुस्तकें बहुत कम हैं। उसमें भी गुजराती भाषा में ऐसी पुस्तकें बहुत कम हैं। गलत प्रमाण गलत विचार से उत्पन्न होता है। सच्चा प्रमाण सच्चे और अच्छे विचार से प्राप्त होता है। इसलिए सत्य बोलने वाला व्यक्ति प्रामाणिक कहलाता है; फिर भी झूठ बोलनेवाले को भी उस समय अपना प्रमाण सच्चा लगता है। उसका कारण इस पुस्तक को पढ़ने के बाद समझ में आ जायेगा।

इस पुस्तक के अंत में चार परिशिष्ट दिए गए हैं उनमें प्रमाण के लिए वेदांत में जिस प्रकार के विचार अपने देश के विद्वान पुरुषों ने किये हैं उनकी पद्धति संक्षेप में दी गयी है, फिर भी देश काल के विषय में जितनी हकीकत आधुनिक विज्ञान वाले दे सकते हैं उतनी हकीकत उनमें से नहीं मिलती।

उन्नीसवीं शताब्दी तक विज्ञान(सायन्स)में केवल जो वस्तु दिखती है उसीका अभ्यास किया जाता था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अर्थात् सन १९०५ में प्रो.आइंस्टाइन ने सापेक्षवाद की जो अद्भुत खोज की उसके आधारपर यह निश्चित हुआ कि जब तक बाहर की वस्तुओं को देखनेवाले का विचार नही किया जाएगा तब तक जगत का सच्चा तत्त्व समझमें नहीं आयेगा। एक कमरे में कुर्सी पड़ी है वह छोटे बच्चे को ऊँची लगती है और बड़े आदमी को छोटी लगती है तो कौन सी कुर्सी सच्ची? आधुनिक विज्ञान कहता है कि देखनेवाले ने कुर्सी को नही देखी अपितु एक घटना (event) को देखी है। घटना में किसने देखी और कब देखी उसका विचार एक साथ करना पड़ता है। घटना (event) का आकार नहीं होता। अतः जगत निराकार

है ऐसा विज्ञान (सायन्स) की दृष्टि से सिद्ध होता है। ऐसे ही सभी विषयों में समझ लेना चाहिए।

इतना ही नहीं पर कुर्सी और हमारे बीच की जो खाली जगह है, जिसे आकाश (space) कहा जाता है, उसका वास्तविक स्वरुप क्या है उसको जानने के लिये देखनेवाले का एवम् कुर्सी के सम्बन्ध पर भी ध्यान देना चाहिए। और काल के विषय में भी कई लोगों को समझने में जो कठिनाई होती थी उसे नये विज्ञान वालों ने स्पष्ट कर दिया है। उनका कहना है कि काल भी एक प्रकार का संबंध है। अतः हम जो देखते हैं वह कोई वस्तु नही पर घटना है, अनुवृत्त है, अथवा प्रसंग है अथवा कर्म है। अब विज्ञान में से वस्तु (matter or object) नहीं रही, परंतु जो दिखता है वह घटना है ऐसा सिद्ध हुआ है। फिर एक ही घटना अलग अलग देखनेवालों को अलग अलग दिखती है, अतः विज्ञान की दृष्टि से सम्पूर्ण जगत प्रातिभासिक हो गया है।

हमारे शास्त्रों में जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं का विचार करके जाग्रत जगत को प्रातिभासिक (appearance) बना दिया है। विशेषतः माण्डूक्य उपनिषद में, योगवासिष्ठ और श्रीमद् भागवत के एकादश स्कंध में तीन अवस्थाओं का विचार अधिक आता है एवम् वेदांत के सभी ग्रंथो में भी यह पद्धति चली आ रही है। परंतु आधुनिक विज्ञान (science) केवल जाग्रत अवस्था के अनुभव का विचार करके और जाग्रत अवस्था के दृष्टान्त लेकर गणित से हिसाब करके हमारे जगत को प्रातिभासिक बना देता है। यह अपने जमाने में बड़े में बड़ी खोज है।

वेदांत को छोड़कर अन्य धर्मों में प्रायः ऐसा माना जाता है कि परमात्मा अथवा आत्मा पारमार्थिक सत्ता में है और जगत व्यावहारिक सत्ता में है। जीव अपनी गलती के कारण पारमार्थिक सत्ता में रहने की बजाय व्यावहारिक सत्ता में है। अतः उसे पारमार्थिक सत्ता में लाने के लिए सांख्य का ज्ञान, भक्ति अथवा शुभकर्म आदि उपाय बतलाये गए हैं। वेदांत में तीन अवस्थाओं के विचार से और अन्य कुछ प्रक्रियाओं की सहायता से प्रथम व्यावहारिक सत्ता को प्रातिभासिक बनाई जाती है और फिर प्रातिभासिक सत्ता की अधिक स्पष्टता इस पुस्तक के ग्यारहवें प्रकरण (पृष्ठ क्रमांक 238) में की गई है। वेदांत में प्रातिभासिक सत्ता का विचार और सायन्स में घटना (event) का विचार इन दोनों में समानता है।

पश्चिम के देशों में भी उन्नीसवीं शताब्दी तक जीव और जगत व्यावहारिक सत्ता में माने जाते थे और भगवान स्वतंत्र कर्ता होने से जीव परतंत्र है ऐसा माना जाता था।

इसलिए उनके देवालय में भगवान के पास नित्य जीव के कल्याण के लिए एवम् जीव को भोजन देने के लिये प्रार्थना की जाती थी और अभी भी उसी प्रकारसे चल रहा है।

सन १९०५ में प्रो.आइंस्टाइन ने सापेक्षवाद की खोज की है उससे और सन १९२७ में हाईसनबर्ग ने जिस क्वांटम थियरी की खोज की है उससे पाश्चात्य देश अब प्रातिभासिक सत्ता का विचार करने लगे है। अतः सही अर्थ में देखा जाये तो बहुत कम वर्ष हुए उन देशो में प्रातिभासिक सत्ता के विचार की शुरुआत हुई है। हमारी आज की शिक्षा पद्धति में अधिकतर पश्चिम के देशों का असर आया है इसलिए यहाँ पर प्रातिभासिक सत्ता का विचार हाईस्कूल और कोलेजों में अभी तक शुरु नही हुआ है, सिर्फ वेदांत का विचार करनेवाले उस सत्ता को ठीक से जानते हैं।

कुछ वर्षो से हमारी कोलेजो में सापेक्षवाद के गणित की शुरुआत हुई है, परंतु उसे तत्त्वज्ञान (philosophy) में किस प्रकार लागू करना उस बात को शिक्षक जानते नहीं है. उनको भी यह पुस्तक उपयोगी हो सकता है।

आजका युग बुद्धि का है। जो बात बुद्धि में नही बैठती उसे कोई मानने को तैयार नहीं है। और पूरी बात प्रयोग करके अनुभव से साबित करके बताई जाय तो ही आज के व्यक्ति माने वैसी स्थिति है। प्रातिभासिक सत्ता के प्रमाण के लिए आधुनिक विज्ञानवालों ने ऐसी सुविधा कर दी है, क्योंकि वे अब गणित से उस विषय को सिद्ध कर सकते हैं।

ऐसी खोज का पूरा रहस्य गुजराती या हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप में बताना यह एक कठिन कार्य है। जिस भाषा में जो साहित्य उत्पन्न हुआ हो उस साहित्य का अभ्यास उस भाषा में करना चाहिये। विज्ञान की नई खोज अंग्रेजी भाषा में समझनी चाहिए, फिर भी उस खोज का रहस्य गुजराती (अथवा हिंदी) में दिया जाय तो ऐसे अभ्यास में अधिक रूचि हो इस हेतु से यह पुस्तक तैयार की गई है। जहाँ गुजराती अथवा हिंदी में सच्चे तात्त्विक अर्थ को ठीक से नहीं बता सके वहाँ विज्ञान में वर्णित अंग्रेजी शब्द दिए गए है। अंग्रेजी जाननेवाले को उससे अधिक सरलता होगी।

और इस पुस्तक में आगे-पीछे के प्रकरणों का परस्पर ऐसा संबंध है कि एक बार सम्पूर्ण पुस्तक पढ़कर पुनः पढ़ने से अधिक स्पष्ट हो सकता है। यह कोई कहानी की पुस्तक नहीं है कि एकबार पढ़ने से समझमें आ जाय। हमारी पृथ्वी पर भी अभी बहुत कम लोग इसे समझ पाये हैं। यह विषय समझना कठिन लगे तो भी उसपर अधिक ध्यान देने से अधिक समझमें आएगा। इसके अतिरिक्त इस विषय का अपने जीवन के

साथ अत्यंत निकट का संबंध है और यदि ठीक से समझमें आये तो अपने जीवन में से कई गलतियाँ दूर हो सकती है।

मनुष्य में जितना ज्ञान दिखता है उससे कई गुना अधिक ज्ञान है। पर जब तक उसे अपनी गलती का पता नही चलता तब तक वह खुद के ज्ञान को सच्चा मानकर अपना व्यवहार करता है। इसके अलावा स्वप्न में जैसे मिथ्या ज्ञान से व्यवहार चलता है वैसे जाग्रत में भी मिथ्या ज्ञान से व्यवहार चलता है। इसलिये लोग सामान्यतया अपना प्रमाण ठीक करने की मेहनत नहीं करते। सिर्फ मृत्यु का भय लगे अथवा जीवन में दुःख आये तभी मनुष्य को अपने प्रमाण में गलती दिखती है और वह सत्य की खोज की तरफ मुड़ता है। हमारे शास्त्रों में कहा है कि "एक के ज्ञान से सर्व का ज्ञान होता है" ऐसी प्रतिज्ञा मुण्डक उपनिषद में और छान्दोग्य उपनिषद में है। ऐसे ज्ञान को ब्रह्मज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान स्वयंप्रकाश है, पर उसके ऊपर जो आवरण है वह किस प्रकार का है और कैसे दूर करना चाहिए यह विषय जब तक समझ में नहीं आता तब तक वह माया सच्ची होकर सामने खड़ी रहती है। और अपने व्यवहार में अपना ज्ञान प्रमाणरूप हो जाता है अतः प्रमाण की गलती को पकड़ना यह कठिन से कठिन काम है।

मानो हम बाजार से कुछ चीजें खरीदकर घर ले आये। उसका वजन ठीक है कि नहीं ये घर की तुला पर तौलने से मालूम पड़ा कि ठीक नहीं है। तो जिस व्यापारी ने चीजें दी थी उसपर बहुत गुस्सा आया। व्यापारी को घरपर बुलाकर फिर से चीजों का वजन किया। व्यापारी ने गलती खोज ली और कहा इसमें किसीका दोष नहीं है पर तुला की ज़ंजीर एक तरफ की दंडी के ऊपर चढ़ गयी है, इसलिए सभी चीजों का वजन कम आता है। उस समय गुस्सा शांत हो गया। उसी प्रकार हम लोगों ने खोटी बुद्धि से जीव, जगत और ईश्वर के विषय में जैसे तैसे निर्णय कर दिए, फिर भी उस विषय को ठीक से नहीं समझ पाये। बाद में पता चला कि अपनी बुद्धि में ही गलती थी। उस समय कोई महात्मा आकर बोले कि पहले जिस तत्त्व को समझने के लिए जैसी बुद्धि की आवश्यकता है वैसी बुद्धि तैयार कर और फिर अगम्य तत्त्व भी गम्य होंगे तो उनके कहने के अनुसार उपाय करने चाहिए। अपने जीवन में होनेवाली गलतियाँ सत्संग और शास्त्रविचार से निकलती हैं। यदि कोई मनुष्य ऐसा मान बैठता है कि मेरी समझमें गलती नहीं है तो उसकी यह मान्यता कभी धोखा देती है। बहुत लोग एक साथ मिलकर भी एक जैसी गलती करते हैं। सायन्स के विद्वान भी कहते हैं

कि हम २००० साल तक गलत दिशा में प्रयोग कर रहे थे। सिर्फ बीसवीं सदी में ही सही रास्ते पर आये हैं। यह बात इस पुस्तक में समझायी गई है।

केवल एक मनुष्य (प्रो.आइंस्टाइन) ने सभी मनुष्यों के ज्ञान में भूल है ऐसा गणित से सिद्ध कर दिया, यह बड़ा आश्चर्यकारक है।

किसी कन्या का विवाह करना हो और वह ऐसी तरह किया जाय कि जिसके साथ विवाह कर रहे है वह वर ही मर जाय तो उसे मनुष्य के जीवन की भारी मूर्खता मानी जायेगी। वैसा काम पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने उन्नीसवीं सदी तक किया और वैसा हमारे व्यवहार में भी कई स्थानपर अभी तक हो रहा है। जगत कैसा है यह जानने में उन्होंने देखनेवाले का विचार किया ही नहीं। जगत स्वयं नहीं कहता कि वह कैसा है। जगत की सिद्धि देखने वाला करता है अर्थात देखनेवाला ही जगत को सिद्ध करता है। जो देखनेवाला जगत को सिद्ध करता है उसे जाने बिना जगत को जानना ये कन्या के विवाह में वर को मार देने के समान है। हमारे सामान्य व्यवहार में भी कई प्रसंगों में सिर्फ माया की बातें और माया का व्यवहार चलता है और आत्मा या भगवान को भुला दिया जाता है। तब भी कोई भगवान को याद नही करता। राजसभा और सामाजिक सभाओं में से भगवान को देश निकाला दे दिया गया है। ऐसे जीवन में भी कन्या के वर का घात हो जाता है। दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जैसे शिवजी को निमंत्रण नही दिया वैसे ही दक्षरुपि बुद्धि के बहुमत के यज्ञमें उत्तम मति वाले परमात्मा को अथवा ज्ञानी पुरुषों को कोई याद नही करता। हिंदुस्तान का प्राचीन इतिहास देखने से मालूम पड़ेगा कि प्रत्येक काम की शुरुआत में भगवान की प्रार्थना करने का रिवाज था अथवा भगवान का नाम लेने की प्रथा थी। परंतु वर्त्तमान व्यापारी युग में जहाँ प्रत्येक मनुष्य समझता है कि 'मैं सयाना (समझदार)' हूँ- वहाँ प्रकृति का विवाह करने में वर का घात होता है।

मनुष्य ब्रह्मरूप से पूरा सयाना है, परंतु उसमें अज्ञान हो तब दूसरे के सामने खुद डेढ़ सयाना (जरूरत से ज्यादा सयानापन दिखानेवाला) बनता है और दूसरे को आधा सयाना मानता है, इस प्रकार दो सयानों का हिसाब करता है, लेकिन यदि सब ऐसा मानें तो सत्य मिलेगा नही। जब सामान्य व्यवहार चलता हो और व्यावहारिक जीवन अच्छा लगता हो तब तो कितनी भी व्यावहारिक बातें करे और दूसरे से गपशप करे तो कोई हानि नहीं होती, परंतु यदि ब्रह्म के साक्षात्कार की जिज्ञासा हो तो निकम्मी बातें और निकम्मे विचारों पर अंकुश रखना चाहिए, अर्थात् विजातीय प्रत्यय छोड़कर सजातीय प्रत्यय विकसित करना चाहिए। जैसे सच्ची शिक्षा पढने की आवश्यकता है

वैसे ही गलत शिक्षा भूलने की भी आवश्यकता है।

अतः इस पुस्तक के प्रथम प्रकरण में सच्चे ज्ञान और झूठे ज्ञान का विचार किया गया है। ज्ञान का सुख के साथ संबंध होने से उसमें सच्चे सुख एवम् नकली सुख का भी विचार किया गया है। वर्तमान समय में अनीति का प्रमाण बढ़ जाने से सभी देशों के सभी मनुष्यों के बीच परस्पर व्यवहार में निति कैसे रहे उस विषय पर बड़े से बड़े लोग विचार करते हैं परंतु उन्हें सच्चा मार्ग नही मिल पाया। गीता के उपदेश के अनुसार और हिन्दु शास्त्र के अनुसार निति सापेक्ष (Relative) है। अर्थात् जो नीति रजोगुणी के लिए अच्छी हो वह सत्त्वगुणी मनुष्य के लिए नहीं चलेगी। उदाहरणार्थ गृहस्थी के लिए अपनी स्त्री के साथ संबंध रखना नीति है और परस्त्री के साथ संबंध रखना अनीति है, परंतु जिनको ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हो उन्हें शरीर के सुख का त्याग करना चाहिए। उनके लिए ब्रह्मचर्य की विशेष आवश्यकता है अतः उसे अपनी स्त्री को भी माता के समान मानना चाहिये। इस प्रकार जैसा पुरुषार्थ जिस मनुष्य के लिए योग्य हो उसे वैसी नीति रखनी चाहिए। सभी नीतिओं का मूल उद्देश्य संयम विकसित करने का है। क्षत्रियों के लिए अहिंसा का सिद्धांत नहीं चल सकता। उनका फर्ज ऐसा है की किसी भी तरह से जहाँ मनमाने ढंग से दूसरों पर जुल्म होता हो उसे रोकना। अतः अहिंसा उनके लिए चलेगी नहीं। इसलिए सत्त्वगुणी नीति, रजोगुणी नीति और तमोगुणी नीति के प्रकार का जैसे गीता में वर्णन है उसके अनुसार समाज की व्यवस्था बनानी हो तो वर्णाश्रम जैसी कोई पद्धति तैयार करनी पड़ेगी। सभी लोगों को मजदूर नहीं बना सकते, सबके सब व्यापारी भी नहीं बन सकते, सभी को काउन्सिल के मेम्बर नही बना सकते ,सभी को लड़ना सिखाने से भी जनता में अच्छे गुण नहीं आ सकते और सभी ब्रह्मज्ञानी भी नहीं हो सकते। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार का होना चाहिए। उसे प्रथम निश्चित करके फिर वह लक्ष्य जिस तरह सिद्ध हो उस तरह क्रमशः अधिकाधिक संयम लोगों में आये उस प्रकार से कोई समाज की रचना हो तो वह वर्णाश्रम की पद्धति है। गीता में मात्र वर्ण का विचार है और आश्रम का विचार नहीं लिया गया इसलिए समाज के लिए गीता अत्यंत उपयोगी मार्ग प्रशस्त करती है। आश्रम के धर्म व्यक्ति के विकास के लिये हैं। गीता में दिये गये बोध से व्यक्ति का विकास भी हो सकता है, परंतु सभी धर्म और देश गीता को मान्य नहीं कर सकते अतः सब देशों में समान नीति के सिद्धांत चलाना अत्यंत कठिन कार्य है।

इसके अतिरिक्त जिस देश में जैसे लोगों को मान मिलता है वहाँ के लोगों को वैसा बनने की इच्छा होती है। जहाँ धनवानों को मान मिलता है वहाँ सभीको धनवान होने की इच्छा होती है। जहाँ राजद्वारी मनुष्यों को मान मिलता है वहाँ सभी को वैसा बनने का मन होता है।

इस पुस्तक में मनुष्य को क्या पसंद है उस विषय पर विचार नहीं है; अपितु सच क्या है और उसका प्रमाण क्या है उस विषय पर विचार किया गया है। गुण दोषयुक्त माया में सापेक्षता रहती है इसलिए उस विषय पर विचार सिर्फ प्रथम प्रकरण में किया गया है। उसके अलावा देश और काल वाली माया समझमें आये तो मनुष्य सापेक्षभाव में से निकलकर निरपेक्षभाव में आ सकता है। अतः दूसरे प्रकरण से लेकर अंत तक देशकाल की माया का विचार किया गया है और उसमें हमारे शास्त्र के सिद्धांत और नये सायन्स की नई खोज का उपयोग बतलाया गया है।

पशु पक्षी के जीवन से मनुष्य का जीवन अधिक अच्छा है परंतु मनुष्य जीवन में कैसा जीवन अच्छा ऐसा प्रश्न करने पर कुछ लोग उत्तर देते हैं कि 'दूसरों की सेवा करना'। ऐसी सेवा कि हम दूसरों को ज्ञान दे सके और दूसरों को सुख पहुँचा सके। फिर उस सेवक को पूछें की सच्चा सुख और सच्चा ज्ञान किसे कहते है तो वे तुरंत निरुत्तर हो जाते हैं, क्योंकि वर्तमान शिक्षा पद्धति में उसपर स्पष्टता नहीं मिलती। अतः प्रथम प्रकरण में इस विषय पर स्पष्टता की गयी है।

समाज में कई बार एक मनुष्य के सिरपर एक समय में दो तीन कर्तव्य एक साथ आ पड़ते हैं और विपरीत कर्तव्य भी आ पड़ते हैं। ऐसे समय में उसे क्या करना चाहिए ? पुरुषार्थ कितने प्रकार के है और स्वयं के लिये कौनसा पुरुषार्थ जरूरी है यह भी जानने की आवश्यकता है। इस विषय को अधिक विस्तारपूर्वक समझना हो तो हमारी गुजराती पुस्तकें 'आर्यो ना संस्कार', ‘धर्म अने राज्य', और 'आखा जीवन नी संस्कारी योजना' पढ़ने की सिफारिश करते है।

पश्चिम के देश मनुष्य की सुख सुविधा के लिये कच्चे माल का वितरण, व्यापार आदि को बढ़ावा देने में प्रयत्नशील हैं और आबादी बढ़ने पर कोई अंकुश नही रह गया, अतः वे मनुष्य जीवन को किसी सही दिशामें मोड़ नहीं सकते। हमारे देश में भी पिछले १५० साल में उनके संग के संस्कार मिले हैं, इसलिए हमें भी उनके जैसी ही कठिनाई महसूस होती है। समाज में अनेक लोगोंका अनेक प्रकार का ज्ञान एकत्र हो जाने से समाज में सुधार शीघ्रता से नहीं लाया जा सकता, परंतु किसी मनुष्य को

अपना जीवन सुधारना हो तो उसके उपाय शीघ्रता से मिल सकते हैं। उसके लिए यह पुस्तक सहायक हो सकती है। जो व्यक्ति अपने आपको ठीक से समझ सकता हो वह समाज को भी उपयोगी होता है।

रागद्वेषवाली माया का मुख्य कारण भेदबुद्धि है और भेदबुद्धि देश काल वाली माया से उत्पन्न होती है। वह माया किस प्रकार की है उसका वर्णन द्वितीय प्रकरण से आरंभ किया गया है। द्वितीय प्रकरण में देश काल की विचित्रता अपने शास्त्रों के दृष्टान्त से समझायी गयी है। एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से रागद्वेष न हो फिर भी वह दूसरे को अपने से भिन्न देखता है उसे देश काल वाली माया कहते हैं। पत्थर, वृक्ष, सूर्य, चंद्र, तारा आदि से हमें रागद्वेष नहीं है फिर भी वे अपने से अलग दिखे वह भी माया है। इस माया को जीतने के उपाय इस पुस्तक में दिए गए हैं।

देश काल की माया जीतने में वर्तमान विज्ञान की नई खोज अत्यंत उपयोगी हो सकती है, इसलिए तृतीय प्रकरण में उस खोज का रहस्य उजागर करने का प्रयास किया गया है। इस खोज के विषयपर पश्चिम के देशो में लगभग बीस हजार से अधिक पुस्तकें प्रसिद्ध हुई हैं फिर भी बहुत कम लोग उसे समझ पाये हैं। उस खोज को संक्षेप में समझाने के लिए सन १९२१ में अमेरिका में रूपये १५,००० का एक इनाम घोषित किया गया था। इस खोज होने के बाद हमारा जीवन चार परिमाणवाला हो गया है। उसे अंग्रेजी में 'फोर-डाइमेन्शनल कन्टिन्युअम' (four dimensional continuum) कहते हैं। हमारा समाज सिर्फ तीन परिमाणवाले जगत को समझ सकता है। चार परिमाणवाले जगत को समझने के लिए अत्यंत सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता है, इसलिए बहुत ही कम लोग इस खोज के रहस्य को समझ पाये हैं। ऐसी कठिनाई के मद्देनजर कुछ व्यावहारिक दृष्टान्त देकर इस नई खोज का रहस्य तृतीय प्रकरण में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। विशेषतः आकाश और काल हमारे जगत में किस प्रकार काम करते हैं उस विषय को वैज्ञानिक ढंग से समझाया गया है। इस गणित में चार परिमाण का विचार होने से अभी तक अपने देशमें भी बहुत कम लोग उसे समझ पाये हैं। भविष्य में जब ऐसा गणित हमारी स्कूलों में चलेगा तब देश काल की माया समझने के लिए विद्यार्थियों को अच्छी सुविधा होगी।

उपरोक्त विज्ञान की खोज गणित से समझमें आ भी जाये तो भी उसे आत्मसाक्षात्कार में कैसे लागू करना यह बहुत मुश्किल है, और उस में यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी हो सकती है। कुछ सायन्स के प्रोफेसर ऐसा मान बैठे हैं कि

सापेक्षवाद की खोज और तरंगवाद (quantum theory) की खोज केवल गणित का विषय है और आत्मज्ञान में उपयोगी नही है, यह बात सत्य नहीं है। आत्मा में देश काल का भेद नहीं है फिर भी हमारे जीवन में देश काल का भेद दिखता है तो वह किस प्रकारका है उसे जानना बहुत आवश्यक है और यह ज्ञान अपने जीवन को ठीक करने में बहुत उपयोगी है। द्वैत का अवलम्बन लेने से मनुष्य की चित्तवृत्ति में दूसरी वस्तु के गुण के अनुसार चेतना प्राप्त होती है और उसके अनुसार नवीन कर्तव्यज्ञान उत्पन्न होने से जो इन्द्रियों की क्रिया होने लगती है उसे परधर्म कहते हैं और वह सभी प्रकार के भय का कारण है। अतः द्वैतभाव का नाश करने के लिए देश काल वाली माया समझना अत्यावश्यक है। श्रीमद्भागवत में लिखा है जिनको द्वैत दिखता है वे मनुष्य अभी स्वप्न में है, वे जगे नहीं है। (११-३३-३०) इस के अलावा ज्ञान की दृष्टि से युग का विचार बदल जाता है। जब मनुष्य के मन और बुद्धि सत्त्वगुणी होते है और ज्ञान और तपस्या में रूचि हो तब सतयुग आया ऐसा जानो। जब धर्म, अर्थ, और काम इन तीनों में रूचि हो तब त्रेता समझना चाहिए। जब लोभ, असंतोष, मान, दम्भ और मत्सर उत्पन्न हो और काम्य कर्म बढे तब द्वापर शुरू होता है। और जब असत्य, तंद्रा, निद्रा, हिंसा, शोक, मोह, भय, दीनता हो तब समझना कलियुग आया। (भागवत १२-३-३०)

युग और काल के विषय में आधुनिक सायन्स ने भी अच्छा प्रकाश डाला है उस बात को तृतीय प्रकरण पढ़ने से कुछ अंशमें समझ सकते है। उन्होंने काल को एक परिमाण (dimension) के रूप में माना है और उसे गणित से सिद्ध किया है। अतः हम जो देखते हैं वे सब घटनाएं (events) है। यदि सभी घटनाएं हो और वस्तु जैसा कुछ न हो तो छोटी उम्र से हमें वस्तुओं का ज्ञान क्यों और कैसे होता है ? उस विषय पर चतुर्थ प्रकरण में विस्तार से समझाया गया है। मनुष्य के जगत में एक बालक का जन्म होता है। उसकी बुआ उसका नाम कांतिलाल रखती है। वह कांतिलाल जन्म लेने के बाद मनुष्य के लोक में आकर किस प्रकार मनुष्य के समाज के अनुसार ज्ञान प्राप्त करता है और मनुष्य के जीवन की भूलें भी सीखता है। यह विषय समझना आवश्यक होने से चतुर्थ प्रकरण में उसका खुलासा किया गया है।

संक्षेप में मनुष्य के जन्म के बाद तुरंत देह का अभिमान आता है और देह का अभिमान आने के बाद खुद कोई वस्तु (object) जैसा हो ऐसा लगता है, अतः अपने बाहर भी वस्तुएं हो वैसा उसको लगता है। ऐसे अज्ञान में रहनेवाली गलतियाँ कई बार

बड़ी उम्र में भी नही निकलती। इस के अतिरिक्त कांतिलाल को जब बाहर की चीजें मिलती हैं तभी सुख होता है, इसलिए सुख-दुःख का कारण बाहर की वस्तुओं में है ऐसा उसके ज्ञान में निश्चय हो जाता है। परंतु यह भूल है। सुख-दुःख का कारण उसका अपना स्वभाव है। इस बात का बड़ी उम्र में अत्यंत मुश्किल से बुद्धि शुद्ध होने के बाद पता चलता है। साधारणतया जैसे दूसरे लोग मानते हैं वैसे नया जन्मा हुआ मनुष्य भी वैसा ही मानने लग जाता है कि पाँच इन्द्रियों से जो मालूम पड़े, दिखाई दे, सुनाई दे, जिह्वा से चख सकें वह सच्चा है और फिर वही उसका प्रमाण बन जाता है। और फिर मनुष्य के समाज में सबके साथ रहकर उस प्रमाण की गलतियाँ पकड़ने का कार्य अत्यंत कठिन हो जाता है। नये जन्मे हुए बालक को रिश्तेदार, मित्र, स्त्री आदि की खबर नहीं होती पर वह धीरे धीरे मनुष्य के साथ रहकर मनुष्य के जैसा बनने लगता है। स्कूलो में जाकर भी विद्यार्थी वैसा ही ज्ञान प्राप्त करता है और उसे सच्चा मानता है। वह जीव यदि बंदर के जगत में जन्मा होता और उस जगत में पाठशाला होती तो बंदर का ज्ञान सच्चा मानकर व्यवहार करता। ऐसा ज्ञान बंदर के बच्चों को बंदरियाँ देती हैं। कांतिलाल के मनमें जन्म मरण विषयक अदभुत प्रश्न उत्पन्न होते हैं और उसका खुलासा जानने के लिए वह प्रयास करता है। स्कूल में इतिहास, भूगोल और व्याकरण आदि में भी उसका खुलासा नहीं मिलता। समाज के सेवक भी जन्म मरण का रहस्य उसे नहीं समझा सकते। समाज की सेवा करने से भी जन्म-मृत्यु के दुख दूर नहीं किये जा सकते। फिर कांतिलाल को लगता है कि जैसे तीन इंद्रियोंवाले और चार इन्द्रियों वाले जीवों का जगत झूठा है वैसे पाँच इन्द्रियों वाले मनुष्यों का जगत भी झूठा है। फिर भी जैसे पशु पक्षी का व्यवहार उनके प्रमाण के अनुसार चलता है वैसे मनुष्यों का व्यवहार चलता है। मनुष्य के जीवन में भी स्वप्न झूठा है फिर भी स्वप्न का व्यवहार ठीक तरह से चलता है, तो फिर जाग्रत का जगत सच्चा है उसका निश्चय कैसे हो सकता है ? बड़ी उम्र के लोगों को भी मालूम नहीं है कि स्वयं कौन है? तो फिर अपने आपको जाने बिना जाना हुआ जगत सच्चा कैसे हो सकता है?

ये सब हकीकत चतुर्थ प्रकरण में दी गयी है उसमें मनुष्य में प्रारम्भिक जीवन से माया कैसे उत्पन्न होती है यह बताया हुआ है और बड़ी उम्र तक वह कैसे बढ़ती है और कैसे उसका पता नहीं चलता उसका खुलासा दिया गया है।

ऐसी माया के विषय में विभिन्न धर्मों में किस प्रकार का विचार हुआ है वह पंचम प्रकरण में समझाया गया है। उसमें ईसाई धर्म, ईस्लाम, जैन, सांख्य और बौद्ध आदि

के मत संक्षेप में देकर फिर वेदांत की अनिर्वचनीय ख्याति विस्तारपूर्वक समझायी गयी है। तत्पश्चात् वेदांत के कुछ अन्य मत जैसे कि रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत और वल्लभाचार्य का पुष्टिमार्ग समझाया हुआ है। बंगाल में श्री चैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय वाले अचिन्त्य भेदाभेद मानते हैं, किन्तु उनका मत विस्तार के साथ नहीं मिल सकता, क्योंकि चैतन्य महाप्रभु स्वयं कोई भाष्य लिखकर नहीं गए। लेकिन लगभग उसके जैसा दूसरा मत श्री अरविन्द के पूर्ण योग में है और उसकी हकीकत पंचम प्रकरण में दी गयी है। रमण महर्षि का मत श्री शंकराचार्य के वेदांत को मिलता है।

प्राचीन युग के शास्त्रों में विशेषतः गीता और भागवत आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। उनमें माया के विषय में जो सिद्धांत मिल पाता है वह भी संक्षेप में पंचम प्रकरण में समझाया गया है।

उपरोक्त विभिन्न सम्प्रदायों में मतभेद देखकर कुछ पाठकों को शायद शंका होगी। यदि सब एक ही प्रकार का मत दे तो जिज्ञासुओं को जीवन का विकास कैसे करना उसका पता चले। अतः यदि माया का तत्त्व गणित से समझा सके तो सभी धर्मों के अनुयायिओं को स्वीकार करना पड़े। दो और दो चार होता है यह बात सभी धर्म के लोगों ने मानी है, इसी प्रकार यदि गणित के द्वारा माया समझायी जाये तो हमारे जमाने में बुद्धिमान लोगों को अधिक संतोष हो, वैसी सुविधा आधुनिक सायन्स ने कर दी है। नया सायन्स गणित से माया का तत्त्व समझाता है लेकिन वह गणित अत्यंत कठिन होने से इस पुस्तक में केवल उसका सार दिया गया है। ऐसे कठिन विषय को समझने के लिए नये प्रकार की बुद्धि तैयार करनी चाहिए। इस बिंदु पर नए सायन्स वाले भी हमारा ध्यान खींचते है।

माया का अर्थ नाप (measure), प्रमाण, नाप आदि किया जा सकता है। आधुनिक सायन्स वाले देश काल के नाप (measure) के लिए जो युक्ति, दृष्टान्त और गणित बताते हैं उसे ठीक से समझ लेने से माया का तत्त्व समझ सकेंगे। भारत के प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने अपनी पुस्तक में लिखा है की "यदि पश्चिम के सायन्स का सापेक्षवाद समझमें आये तो माया का अर्थ शायद सरलता से समझ सकेंगे।"

यदि साधारण बुद्धि से परमात्मा का तत्त्व समझ सके तो बुद्धि भगवान से बड़ी हो गयी, किन्तु बुद्धि की शुद्धि हो जाये तो असत्य क्या है उसे समझ पायेगी और वह ज्ञान सत्य क्या है उसे जानने में उपयोगी होती है।

छठवें प्रकरण में चतुर्थ परिमाण का विचार आरम्भ किया गया है उसे अंग्रेजी में

फॉर डाईमेन्शन कन्टीन्युअम कहते हैं। उस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक घटना को चार आयाम होते हैं :ऊँचाई, लंबाई, चौड़ाई और काल। जैसे ऊँचाई, लम्बाई और चौड़ाई बदल सकते है वैसे काल को भी बदल सकते है यह अपने युग में बड़े से बड़ी खोज हुई है। उन्नीसवीं सदी से पहले न्यूटन का सिद्धांत प्रचलित था। उसने कहा था कि काल के बिना घटना नहीं बन सकती। बीसवीं सदी की शुरुआत में प्रो.आइन्स्टाइन ने सापेक्षवाद की जो खोज की उसमें उसने गणित से सिद्ध कर दिखाया कि घटना के बिना काल नहीं बन सकता, अर्थात प्रत्येक घटना के साथ काल का अविनाभाव (एक के बिना दूसरा हो ना सके ऐसा) सम्बन्ध है। एवं स्थान और काल का अविनाभाव संबंध है अतः स्थान बदले तो काल भी बदल जाता है और काल बदलने पर स्थान भी बदल जाता है। मुम्बई से कलकत्ता लगभग १२०० मील दूर होगा, लेकिन ट्रेन में जाये तो ४४ घंटे का अंतर माना जायेगा और हवाई जहाज से जाओ तो ६ घंटे का अंतर माना जायेगा, और रेडियो में मुम्बई और कलकत्ता इतने पास हैं कि मुम्बई पर से काँटा (सुई) थोड़ी हटाओ कि तुरंत कलकत्ता का संगीत अवश्य सुनाई देगा। स्वप्न में भी मुम्बई और कलकत्ता पास में होते हैं पर दूर लगते हैं। इसी प्रकार यदि हमारी वृत्ति में जो मनुष्यपना है उसे निकालकर गाय के जैसी वृत्ति बनाये तो गाय की बातें समझ सके और देवलोक के योग्य वृत्ति बनाये तो देवलोक को देख सकते हैं।

संक्षेपमें काल कोई सच्ची वस्तु नहीं है। यह विषय अनेक दृष्टान्त देकर षष्टम प्रकरण में समझायी हुई है। हिन्दू सोमवार को पवित्र दिन मानते हैं, क्योंकि वह महादेव शिवजी का दिन है और शिवजी ज्ञान स्वरुप है। मुसलमान शुक्रवार को पवित्र मानते हैं क्योंकि शुक्र का तारा और दूज उनको पसंद है। वह ॐ के ऊपर का तुरीयदशा का चिह्न है इसलिये वह भी ज्ञान का स्वरुप है और ईसाई रविवार को पवित्र मानते हैं, क्योंकि रवि सूर्य का रूप है और सूर्य (शब्द) का कई स्थानों पर ज्ञान के स्वरुप में उपयोग होता है।

एक व्यक्ति और दूसरी व्यक्ति के बीच जो रिक्त स्थान (अवकाश) है वह क्या है? आधुनिक सायन्स कहता है कि वह मनुष्य का बनाया हुआ है वह भगवान का बनाया हुआ नहीं है वह अवकाश छोटा हो सकता है, बड़ा हो सकता है और वक्र बन जाता है। अपने हाथ से हम एक सेकण्ड में रेखा खींचे उस रेखा को सूर्यपर से कोई देखे तो उसे वह १८ मील लंबी दिखेगी। क्योंकि पृथ्वी एक सेकण्ड में सूर्य के आसपास १८

मील दूर जाती है। इसके अलावा पृथ्वीपर बड़ी लंबी रेखा बनाये तो वह गोल बन जाती है क्योंकि पृथ्वी गोल है।

संसारमें भी दो व्यक्तिओं के बीच मित्रता हो तो बीच का स्थान ऐसा बदल जाता है कि एक दूसरे को मिलने आते हैं और एक दूसरे से अनबन हो तो एक दूसरे की गली से भी गुजरते नहीं। कौमी दंगे के समय मुंबई और अहमदाबाद में ऐसा होता है। अतः स्थान एवम् काल का आधार हमारी भावनाओं पर है। किसी मनुष्य में झूठा प्रेम उत्पन्न होता है तो समाज में कहा जाता है कि वह प्रेम में पड़ा। अर्थात आत्मसुख से नीचे गिरा। भगवान इस तरह गिरते नहीं है इसलिए उन्हें अच्युत कहते हैं। मनुष्य जीवन गलतियों से भरा हुआ है, इसलिए अभ्यास और वैराग्य की आवश्यकता है। बुद्धि की गलती अभ्यास से निकलती है और भावनाओं की गलती वैराग्य से निकलती है। किसी भी तरह से रागद्वेष का त्याग करना चाहिए। जिस में रागद्वेष हों वह सांख्य की पद्धति से अथवा वेदांत की पद्धति से आत्मा और अनात्मा का विवेक करे अथवा योगी की तरह चित्त का निरोध करे फिर भी उसे आत्मनिष्ठा नहीं होती। मनुष्य को यदि चलती गाड़ी से उतरना हो तो अपने देश और काल बदलने चाहिये, नहीं तो गिर जायेगा। उसी प्रकार नई दशा में आने के लिए देश काल बदलने पड़ते हैं। एक दिन मृत्यु के समय तो सब के देश काल बदल जाते हैं। लेकिन जीतेजी अच्छे संस्कार से ब्रह्मदशा प्राप्त करना मनुष्य जीवन का मुख्य कर्तव्य है।

काल सापेक्ष हो जाने से डार्विन के मत से सिद्ध हुआ उत्क्रांतिवाद (evolution) खंडित हो गया है। उस मत में सिर्फ एक समान काल की बात आती है, अब ऐसा काल नहीं रहा। सम्पूर्ण जगत चार परिमाणवाला हो गया है। तीन परिमाण को नापने का साधन फुट है और चार परिमाण को नापने का साधन प्रकाश है, यह वर्तमान युग की नई खोज है। यह खोज कैसे हुई उसकी विस्तृत हकीकत सप्तम प्रकरण में समझायी गयी है। प्रकाश की गति एक सेकंड में १,८६,००० मिल की है और कोई गतिशील वस्तु पर से प्रकाश के किरण भेजे जाये तो भी प्रकाश की गति में कोई बदलाव नही होता। अतः काल और गति दोनों सापेक्ष हो जाते हैं। पृथ्वी पर से हम देखते हैं तो सूर्य घूमता हुआ दिखता है और सूर्यपर से देखें तो पृथ्वी घूमती हुई नजर आती है। उनमें सच्चा कौन? दोनों सच्चे या एक अपेक्षा (दृष्टिकोण) से एक देखनेवाला सच्चा और दूसरी अपेक्षा से दूसरा देखनेवाला सच्चा। इस प्रकार वर्त्तमान समय में सापेक्षवाद की शुरुआत हुई है। और यह सिद्धांत आत्मज्ञान में भी सहायक

होता है। एक बार कोई एक जिज्ञासु अपने गाँव से निकलकर ट्रेन से श्री रमण महर्षि के पास सत्संग के लिए गया, और जाकर बोला आपके सत्संग के लिए आया हूँ। श्री रमण महर्षि ने कहा आप अपने घर से घोड़ागाड़ी में बैठे, फिर ट्रेन में बैठे, फिर यहाँ के स्टेशन पर उतरकर फिर घोड़ागाड़ी में बैठे। उसमें केवल वाहन चले हैं आप नही चले। ऐसे ही शरीररूपी वाहन चलता है फिर भी उसमें आत्मा नहीं चलता, किन्तु गलती से मनुष्य शरीर के धर्म को अपना धर्म मान लेता है। गति सापेक्ष कैसे रहती है और उससे काल में किस प्रकारसे परिवर्तन होता है यह बात सप्तम प्रकरण में कुछ दृष्टान्त देकर स्पष्ट की हुई है। इससे समझ में आयेगा कि काल भी एक परिमाण है। इसलिए अपना जगत चार परिमाणवाला हो जाता है। भगवान को चार हाथ क्यों है यह बात भी अब सायन्स से समझा सकते हैं। इतना ही नहीं पर इतिहास और भूगोल विषयक हमें जो ज्ञान है उसमें भी कई परिवर्तन करने पड़ेंगे। उसमें परिवर्तन होगा तब समाज में विश्वभावना उत्पन्न होगी और सब देशों का एक राज्य स्थापित कर सकेंगे। पर जबतक देह का अभिमान रहता है, जाति का अभिमान रहता है, देश का अभिमान रहता है और जब तक समाज में ऐसे अभिमानी लोगों की प्रशंसा होती हैं तब तक मानव समाज आगे नही बढ़ पायेगा। किसी भी प्रकारका अभिमान मनुष्य को झूठे देश काल में लाकर रख देता है। विश्वभावना अथवा जो समष्टि विश्व है वह मैं हूँ- इस प्रकार का अभिमान बाधक नहीं है, परंतु वैसा ज्ञान होने के लिए मिथ्या अभिमान से निकलना चाहिये। उसके लिए अभ्यास और वैराग्य की आवश्यकता है। जो परिमाण बदले नहीं उस परिमाण से सब नाप लेने चाहिये। अतः आत्मा से आत्मा में रहना चाहिए, उसी को स्थितप्रज्ञ दशा कहते हैं। साधारण मनुष्य आत्मा (जीव) के विचार से रहता है। ऐसे मनुष्य की आत्मा को शास्त्रो में प्रमाता कहा है।

ब्रह्म के सुख की बातें संसार के सुख में रहनेवाले मनुष्यों से नहीं सीख सकते। ब्रह्म का ज्ञान ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। ऐसे पुरुष मानव समाज में बहुत कम होते हैं. इसलिए समाज आगे नहीं बढ़ सकता। उससे विपरीत जब पांडव-कौरव का विवाद खत्म करने के लिए श्री कृष्ण कौरवों को समझाने लगे तब दुर्योधन श्रीकृष्ण को मारने के लिए उस सभा में तैयार हुआ था। आधुनिक सायन्स कहता है कि एक प्रकार के देश काल के अभिमानवाले मनुष्य दूसरे प्रकार के देश काल मनुष्यों को नहीं समझ सकते। आधुनिक सायन्सवाले कहते हैं ‘जहाँ किसी भी प्रकार का आकर्षण हो वहाँ प्रकाश मूड जाता है। ऐसा आकर्षण किसी भी प्रकार के अभिमान से

भी उत्पन्न होता है। इस प्रकार अभिमान दूर करना कितना कठिन कार्य है यह सबके अनुभव की बात है।

आठवें प्रकरण में सन १९२७ में हुई खोज, क्वांटम थियरी को समझाया गया है। वह खोज छोटे से छोटे इलेक्ट्रोन का स्वभाव कैसा है उसे जानने में उपयोगी हो सकती है, इतना ही नहीं परंतु उस खोज से नीचे दर्शाये गये प्रसंग भी अधिक स्पष्ट हो सकते हैं।

१. एटम बम कैसे बनता है?

२. मूर्तिपूजा जड़ वस्तु की होती है फिर भी उसमें चेतन क्यों दिखता है?

३. होमियोपैथिक जैसी छोटी सी दवाई से बीमार मनुष्य कैसे ठीक होते है?

४. एक पानी की बूंद से मनुष्य जैसा जीव कैसे बनता है?

५. वटवृक्ष के छोटे से बीज से बड़ा वटवृक्ष कैसे होता है?

६. परमाणु में शक्ति कितनी है उसकी खोज बहुत ही कम समय पहले हुई है और उसका विकास होगा तो मानव समाज में बड़ा परीवर्तन हो सकता है।

ये सब बातें अधिक विस्तार से आठवें प्रकरण में समजायी हुई हैं।

एटम यानी परमाणु और उसमें स्थित एलेक्ट्रोन क्या वस्तु है और उन सब इलेक्ट्रोन को एटम के अंदर घूमने फिरने के लिए खाली अवकाश है वह कहाँ से आया यह विषय नौवें प्रकरण में बताया गया है। यह खोज भी बीसवीं सदी में हुई है और उसमें विशेषकर इस्विसन १९२७ में प्रो.हाईसनबर्ग ने आश्चर्यकारक सिद्धांतो को खोजा है। पहले माना जाता था की एटम के अंदर के इलेक्ट्रोन एक सूर्यमाला के जैसी रचना है अर्थात जिस प्रकार सूर्य के आसपास दूसरे ग्रह घूमते हैं, उसी प्रकार मध्य में एक प्रोटोन है और उसके इर्दगिर्द इलेक्ट्रोन घूमते हैं।उसे हम खोज की प्रथम भूमिका कहेंगे। उसके बाद श्रोडिन्जर नामक वैज्ञानिक ने सिद्ध किया कि प्रकाश के इलेक्ट्रोन तरंगों के रूप में रहते हैं और उसके भीतर एक प्रकार का प्राणमय चेतन है, यह खोज की दूसरी भूमिका है। उसके बाद प्रो.हाईसनबर्ग और सर जेम्स जीन्स इस निर्णय पर पहुंचे की वे प्रकाश की तरंगें मनोमय हैं अर्थात जिस प्रकार के देश काल उन तरंगों को देखनेवाले के होंगे उसी प्रकार के देश काल वाली वे तरंगें बन जाती हैं। यह आखरी खोज वेदांत की माया को मिलती जुलती है। यह खोज होने के बाद सम्पूर्ण जगत प्रातिभासिक हो ऐसा प्रतीत होता है, लेकिन इस खोज को शुरू हुए अभी कुछ ही वर्ष हुए है अतः सायन्स में प्रातिभासिक सत्ता का विचार एकदम नया है, इसलिए कई

लोगों को उस विषय का पता नहीं है और कई उसे समझ भी नहीं सकते।

और फिर प्रकाश की तरंगों में दो प्रकार के गुणधर्म होते हैं। उसके ऊपर कोई आवरण आता है तो वह इलेक्ट्रोन (कण) जैसे बन जाते हैं और जब कोई आवरण नहीं होता तब वे तरंगों के रूप में व्यापक होने लगते हैं। इस सिद्धांत को हम आत्मज्ञान में लगाये तो जब जीव को कुछ आवरण जैसा लगता है तब वह मनुष्य जैसा बन जाता है और जब आवरण नहीं होता और आत्मज्ञान हो तब वह ब्रह्म की नाईं व्यापक रहता है। इसके अलावा तरंग हो जाने के बाद उसमें से फिर इलेक्ट्रोन बनाना कठिन है, क्योंकि प्रकाश की तरंग का गुणधर्म फ़ैल जाने का है। उसी प्रकार ब्रह्मज्ञान हो जाने के बाद जीवभाव आना कठिन है। इसी वजह से ज्ञानीपुरुषों को जगत के व्यावहारिक प्रपंच के भेद में आना बहुत मुश्किल लगता है। छठवीं भूमिकावाले ज्ञानी पुरुषों में भेद बुद्धि नहीं आ सकती। अविद्या अवस्था में भी सच्चा द्वैत नहीं होता। केवल द्वैत के जैसी प्रतीति होती है। इसलिए ब्रह्मदशा कैसी है वह संसार में रहनेवाले मनुष्य नहीं सिखा सकते। भेदभाव में स्थित संसारी मनुष्य के संग से किसी को सच्चा लाभ नहीं हुआ। भेद से भेद बढ़ते हैं अतः ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि जब वृत्ति ब्रह्म में लीन हो तब सत्संग के लिए, शास्त्रअध्ययन अथवा अन्य कोई कार्य के लिए उसे बाहर नहीं निकालना चाहिए।

सायन्स वाले पहले सृष्टि-दृष्टिवाद में मानते थे, यानी सृष्टि सत्य है और हमारे देखने से पूर्व उसका अस्तित्व होता है। अब नये सायन्स वाले दृष्टि- सृष्टीवाद को मानते हैं, अर्थात दृष्टिकाल में सृष्टी की प्रतीति है ऐसा मानते हैं। सीप में गलती से रूपा दिखे वह दिखने से पूर्व और बाद में नहीं है परंतु दृष्टि काल में प्रतीत होता है। वेदांत का भी यही सिद्धांत है। दृष्टिसृष्टिवाद में जाग्रत पदार्थ का अनुभव इन्द्रियजन्य नहीं है। उस समय जो प्रतीत होता है वह (स्वप्न की नाईं) भ्रमरूप है, क्योंकि कल्पित की सत्ता की सम्भावना नहीं है। अतः ज्ञान के अनुरूप जगत दिखता है। जगत के अनुरूप ज्ञान नहीं होता। यह बात क्वॉन्टम थियरी से सिद्ध हो सकती है। इसे नवम और दशम प्रकरण में समजायी गयी है।

उपरोक्त बात के अनुसार सिद्धांत को जाँचने पर जगत प्रातिभासिक हो जाता है। जगत प्रातिभासिक है ऐसा जाननेके बाद प्रातिभासिक सत्ता किसे कहते है यह विषय ग्यारहवें प्रकरण में बताया गया है। सायन्स वाले अभी भी उस विषय को ठीक से नहीं समझ सकते। इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से प्रातिभासिक सत्ता का विचार करते हैं।

जिन्होंने कभी इस विषयपर विचार किया नहीं ऐसे साधारण कोटि के संसारी मनुष्य भी व्यावहारिक दृष्टि से प्रातिभासिक सत्ता को समझने का प्रयास करते हैं और उनको जगत का सच्चा रहस्य समझमें नही आता। कुछ साधु लोग भी व्यावहारिक दृष्टि छोड़े बिना प्रातिभासिक सत्ता को समझने का प्रयास करते हैं इसलिए वे आगे नहीं बढ़ पाते। पूर्व काल में अपने शास्त्रों ने जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं का विचार कर जाग्रत जगत को स्वप्न के जैसा प्रातिभासिक बना दिया है, लेकिन वर्तमान समय में वैज्ञानिकों ने सिर्फ जाग्रत अवस्था के दृष्टान्त लेकर जगत को प्रातिभासिक बना दिया है।

प्रो.आइन्स्टाइन कहते हैं : "मनुष्य जो देख सकते हैं उसके लिए कोई निश्चित निर्णय नहीं दे सकते। हमारी आँख से जो दिखता है और जैसा दिखता है वैसा ही है ऐसा नहीं कह सकते। हम जो देखते हैं वह जगत नहीं है, वह सिर्फ एक कल्पना है।"

इससे मालूम होता है की हमारे युग का बड़े से बड़ा वैज्ञानिक कहता है कि जगत कोई सच्ची वस्तु नहीं है। अतः संसार का त्याग नहीं कर सकते और ग्रहण भी नहीं कर सकते। सीप में भ्रान्ति से दिखनेवाली चाँदी को ना तो ग्रहण ही कर सकते हैं ना ही उसका त्याग कर सकते हैं। यह एक प्रातिभासिक सत्तावाली घटना है और स्वप्न जैसी है।

कोई कहे कि जगत तो स्वप्न जैसा नहीं है, वह तो सब को एक जैसा दिखता है, तो उस व्यक्ति को पूछना चाहिए की 'तुझको जैसा दिखता है वैसा एक कागज पर लिख और नीचे हस्ताक्षर कर और फिर वैसा दूसरे किसीको दिखता है कि नहीं उसका पता लगाओ' इस प्रकार विचार करने से मालूम होगा की जिस प्रकार उसके हस्ताक्षर दूसरे किसीके हस्ताक्षर से नहीं मिलते वैसे उसने जाना हुआ जगत भी किसी दूसरे के साथ नहीं मिलता। नवजात शिशु समझते है की सस्ते अनाज का रेशनिंग जगत की उत्त्पत्ति के साथ ही हुआ होगा अथवा सिनेमा, रेडियो और विमान भी जगत की उत्पत्ति के साथ ही भगवान ने बनाये होंगे, क्योंकि नये जन्मे हुए मनुष्य उनके जगत के साथ ही इन घटनाओं को देखते है। उनको मालूम नहीं है कि ये घटनाएँ कुछ ही वर्ष पहले शुरू हुई है। अतः जगत प्रातिभासिक है, उसे देखनेवाला प्रमाता भी वैसा है और उसका प्रमाण भी वैसा ही है। इन तीनों को बाद करने पर जो शेष रहता है वह ब्रह्म स्वरुप है। कल्पित की निवृत्ति अधिष्ठान रूप होती है।

आधुनिक सायन्स वालों को एक ऐसी कठिनाई हो रही है कि ऐसा कोई जगत हो

सकता है कि जिसे कोई देखनेवाला न हो। इस मत को अज्ञातसत्ता कहते हैं। अर्थात मंगल जैसा कोई ग्रह हो और उसको देखनेवाला कोई न हो तो उसका अस्तित्व हो सकता है या नहीं ? देखने वाला हो वहाँ जगत प्रातिभासिक हो जाता है, परंतु हमारे जन्म से पहले जगत था कि नहीं अथवा तो किसीके जन्म के पहले जगत था कि नहीं और सब के मरने के बाद जगत रहेगा कि नहीं, इस प्रश्न को अज्ञातसत्ता का प्रश्न कहते है। उसका पूरा विचार बारहवें प्रकरण में किया गया है। संक्षेपमें ज्ञानीपुरुष का उत्तर है कि जड़ स्वयं नहीं कहता कि स्वयं कैसा है और चेतन स्वयं प्रकाश है, अथवा दूसरे तरीके से विचार करें तो द्वैत सच्चा है कि नहीं, यदि द्वैत सच्चा नहीं है तो सब इदंता यानि भिन्नता भ्रांति मात्र है।

इसके अलावा अज्ञातसत्ता सत्य है कि नहीं उसे निश्चित करने के लिए अज्ञान सच्चा है कि नहीं उसको जानने की आवश्यकता है। अतः बारहवें प्रकरण में अज्ञान का स्वरुप, अज्ञान का आश्रय, अज्ञान का विषय, अज्ञान का कारण, अज्ञान का कार्य और अज्ञान की निवृत्ति आदि का विचार किया गया है। यह विषय भी आत्मज्ञान में उपयोगी है। माया को भली प्रकार समझ लें तो उसे दूर करना अत्यंत सरल हो जाये।

उपरोक्त प्रकार से जगत की प्रतीति हो तो सभी घटनाओं का कारण क्या इसका विचार तेरहवें प्रकरण में किया गया है। यदि ईश्वरने पहले से ही सब निश्चित किया हुआ हो तो जीव को किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं रहेगी और यदि जीव स्वतंत्र हो तो भगवान स्वतंत्र नहीं रह सकते एवम् जीव अपने आप दुखी न हो। जीव और भगवान दोनों स्वतंत्र हो तो एक गाँव में बहुत से राजाओं के जैसा हो जाए और किसी प्रकार का नियम रहेगा नहीं। इस विषय पर आधुनिक सायन्स वाले बहुत अच्छा प्रकाश डाल सकते हैं। उनके कहने का आशय यह है कि जहाँ कई इलेक्ट्रोन हो वहाँ कार्य कारण भाव रहेगा परंतु एक इलेक्ट्रोन अलग होगा तो वह स्वतंत्र है। ऐसे ही समाज में रहनेवाले मनुष्य के लिए बंधन और कानून रहेंगे और जिसे संसार का सुख चाहिए वह भी बंधन में रहेगा। इस सिद्धांत के अनुसार प्रारब्ध अथवा कर्म से छूटना हो तो अमुक प्रकार का वैराग्य अनिवार्य है। संसार के विषयों में आसक्त मनुष्य वेदांत में मोक्ष के अधिकारी नहीं माने गये हैं। ऐसे धर्मों का पालन करनेवाला पुरुष ब्रह्मज्ञान का अधिकारी नहीं हो सकता। जो मनुष्य दिनरात संसारी प्रवृत्ति में व्यस्त रहते हैं, दिनरात जिनका अंतःकरण भेदभाव से भरा हुआ है, भेदव्यवहार के सिवा जिनका कोई कर्तव्य नहीं है ऐसे जीव जगत में समस्त प्राणियो में रागद्वेष से मुक्त होकर

समभाव से कैसे वर्तन कर सकते है ? अभेदज्ञान के लिए अभेदज्ञान उत्पन्न करनेवाली वृत्ति सतत रहनी चाहिए, उसी प्रकार के संस्कार चाहिए, उसी प्रकार के कर्म चाहिए। इन सब चीजों के बिना भी यदि ब्रह्मज्ञान अथवा अभेदज्ञान हो जाता तो सारा जगत ब्रह्मज्ञानी हो गया होता, लेकिन वैसा नहीं होता । आर्यों की विद्या इस विषय को स्पष्टता से समझाती है और अभ्यास और वैराग्य की आवश्यकता बताती है। अपना संसार बरकरार रहे और मोक्ष भी चाहिए ऐसा कुछ लोग मांगते हैं । उन्हें कोई सच्चा मार्ग नहीं मिलता। संसार की दशा में ब्रह्म अनावृत अनुभव में नहीं आता। जहाँ द्वैत की बातों का और द्वैत के विचारों का बाहुल्य होता है और देह और इंद्रीयों के सुख की चर्चा चलती हो वहाँ जीव और ब्रह्म का प्रत्यक्ष अभेद तुरंत अनुभव में नहीं आता।

आधुनिक सायन्स वाले कहते हैं कि कार्यकारण भाव जगत में नहीं है, अपितु जगत विषयक हमारे ज्ञान में है। वे कहते हैं कि कार्यकारण भाव में कारण प्रथम चाहिए फिर कार्य होता है, और दोनों में समान काल चाहिए किन्तु इस प्रकार का समान काल नहीं मिलता। एक ही घटना किसीको पहले मालूम पड़ती है किसीको कुछ देर के बाद मालूम पड़ती है । ऐसी काल की अदभुत रचना है । मानो कोई हिन्दु विकम संवत २०१६ में मर गया उसे दूसरे किसी संवत का पता नही था, वह दूसरे किसी स्थान में जन्म लेता है तो २०१६ के वर्ष के बाद जन्मना चाहिए, लेकिन यदि वह यूरोप अथवा अमेरिका में तुरंत जन्मे तो उसके जन्म का वर्ष इस्विसन १९६० होगा। २०१६ में आने के लिए उसे ५६ वर्ष लग जाय। लेकिन काल पीछे जाता है उस बात का उसे पता नही चलेगा। अब नए सायन्स वाले गणित से साबित कर सकते हैं, कि काल का आगे-पीछेपना देखनेवाले की भूमिका पर आधार रखता है। अतः काल कोई द्रव्य नहीं है और वस्तु भी नहीं है परंतु एक प्रकार का कल्पित संबंध है। यह एक अपने जमाने में हुई बड़े में बड़ी खोज है और यह आत्मज्ञान और सत्य समझने में अत्यंत उपयोगी है।

काल की विचित्रता को दर्शानेवाले कुछ दृष्टांत (शास्त्रों पर आधारित) दूसरे और चौदहवें प्रकरण में दिए गए हैं। और सायन्स के आधारपर लगभग सभी प्रकरण में इसी विषय पर विचार किया गया है।

हम रोजबरोज के व्यवहार में भी सभी बातों में बोलते हैं, कि मैं अमुक स्थान पर गया था, अमुक समय पर गया था, उस समय तू वहाँ नहीं था, और कोई नहीं होता है

तब भी देश काल विषयक मनोरथ करते रहते हैं। इन सब बातों में और इन सब विचारों में झूठे देश काल के चक्कर उत्पन्न होते हैं। लेकिन इस बात का हमें पता नहीं चलता। उसका मुख्य कारण (सायन्स के अनुसार) यह है कि विचार हमारा नाप बन जाता है। उस गलती को पकड़ना हो तो दूसरी अवस्था में आना चाहिए, लेकिन साधारण मनुष्य दूसरी अवस्था में कैसे आये? इस बात को ध्यान में रखकर परमात्मा ने हमें स्वप्नावस्था दी है। उसमें हम दूसरे लोगों से बातें करते हैं, वे लोग हम को उत्तर देते हैं। फिर स्वप्न में ही दूसरे दिन उसे मिलने जाते हैं परंतु यह सब देस काल के भेद के अतिरिक्त अन्य कुछ नही था ऐसा जगने के बाद पता चलता है। जाग्रत में भी यदि आत्मज्ञान हो तो उससे हमें लगता है कि हमारी की हुई सब बातें व्यर्थ थी। अब की बातें भी झूठी है, देश काल के विचार भी झूठे हैं, तो सत्य क्या है? सत्य यह है कि जन्म मृत्यु की घटनायें सत्य नहीं है, जीव अनेक नहीं है। जैसे स्वप्न में अनेक जीव नहीं है वैसे जाग्रत में भी नहीं है। एक जीव और दूसरे जीव के बीचमें जो रिक्त अवकाश है वह सच्चा और नियत नहीं है। वह ज्ञान के अनुसार बदल जाता है। अतः जगत में अनेक जीव नहीं है।

काल की गप्प किस प्रकार की है उसको समझने के लिए योगवासिष्ठ में कुछ दृष्टान्त मिलते हैं। उनमें विशेषकर गाधी ब्राह्मण का जल में डुबकी लगाना और उसमें उसको ६० वर्षों का अनुभव होना, लीला रानी को तीन पति एवम् राजा विदूरथ को एक दिन में १६ वर्ष का अनुभव, वसिष्ठ ब्राह्मण की मृत्यु के ८ दिन में उसके दूसरे जन्ममें पद्मराजा के रूप में ७० वर्ष हो गये। और लवण राजा के अनुभव के प्रसंग में भी थोड़े समय में राजसभा में बैठे बैठे उसे बहुत वर्षों के कई अनुभव हुए थे। यह सब अत्यंत विचित्र लगता है, फिर भी यह सब सचमुच में हो सके यह संभव है। यह बात आधुनिक सायन्स वाले समझा सकते हैं। काल एक ऐसी विचित्र वस्तु है कि वह भगवान के अंदर नहीं है, उसी प्रकार मनुष्य के अंदर भी नहीं है, परंतु एक प्रकार की माया का संबंध है। तदुपरांत यह माया भी ऐसी है कि एक अवस्था में सत्य की भाँति प्रतीत होती है और दूसरी अवस्था में हम देखें तो उसका बिलकुल बाध हो जाता है। स्वप्न में हमने कोई ८० वर्ष का मनुष्य देखा। उसको ८० वर्ष हुए हैं ऐसा उस समय हमने मान लिया। जगने के बाद उस गलती का पता चला। वहाँ ८० वर्ष केवल एक प्रकार का माया से उत्पन्न होनेवाला संबंध था। वह कोई सच्ची वस्तु नहीं थी। इसी प्रकार पृथ्वी पर १०० साल पूर्व हुआ कोई युद्ध हम आज आकाश के किसी १००

प्रकाशवर्ष दूर स्थित तारे पर से देख सकते हैं ऐसा आधुनिक सायन्स वाले निश्चय पूर्वक कहते हैं। प्रकाश की गति एक सेकंड में १,८६,००० मील है और कुछ तारे इतने दूर हैं कि यहाँ की घटना के प्रकाश को वहाँ पहुँचने में १०० वर्ष लगते हैं। अतः १०० साल पहले बनी हुई घटना से निकला हुआ प्रकाश आज वहाँ पहुचता हो और इसलिए यह घटना आज बनती हो ऐसा हम देख सकते है।

यहाँ मनुष्य जीवन में भी ऐसा ही है। योगवासिष्ठ में लीला के आख्यान में सरस्वती देवी लीला को कहती है कि हृदयाकाश में देश काल की कोई निश्चित लंबाई नहीं है। जीव को मृत्युरूपी मोह होने के बाद दूसरे जन्म का मोह होता है और उसमें देश काल, कुल, जन्म, मातापिता आदि दृश्य वर्ग की प्रतीति होती है। वास्तवमें आत्मा की दृष्टि से कुछ बनता नहीं है। मनुष्य की वासना ही समीप में दूरी का भ्रम उत्पन्न करती है और क्षण में कल्पान्तर का भ्रम उत्पन्न करती है। इसीलिए भागवत के दशम स्कन्ध में गोपियाँ भगवान की स्तुति में कहती हैं, आपको नहीं देखे तो एक क्षण युग के समान हो जाती है। **'त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् '**। हम लोगों को भी जब तक आत्मा का अनुभव नहीं हुआ तबतक युगके विचार आते हैं। आत्मा का अनुभव होने के बाद युग नहीं है, वर्ष नहीं है और इतिहास भी नहीं है।

अतः जितने मन हैं उतनी भ्रांतियाँ है। जितने अज्ञानी मनुष्य बढ़ते हैं उतनी ही भ्रांतियाँ बढ़ती है। योगवासिष्ठ में इस प्रकार की भ्रांतियों के अनेक दृष्टांत हैं। उनमें से कुछ चुनकर चौदहवें प्रकरण में दिए गए हैं। योगवासिष्ठ में ये भी कहा गया है कि कुछ सृष्टि ऐसी हैं जहाँ दिन या रात नहीं है, कुछ में पृथ्वी नहीं है, सूर्य नहीं है और वर्ष भी नहीं है। उनकी उत्पत्ति और विनाश केवल तर्क से देखे जाते थे। जैसे की गहरे समुद्र में रहनेवाले मत्स्य आदि के तर्क में पृथ्वी नहीं है और उल्लू की दृष्टि में सूर्य नहीं है।

छोटाउदेपुर में एक विद्वान् व्यक्ति ने अपने स्वप्न के बारे में हमे बताया था। उसमें उसने एक स्त्री के साथ अंग्रेजी में बात करना शुरू किया। थोड़े ही समय में वह स्त्री गाय बन गयी और उसकी बात अधूरी रह गयी। फिर वह आदमी स्वप्न में ही सोचने लगा कि यह क्या हो गया उतने में वह गाय धूल बन गयी। कई लोगों को इस प्रकार के विचित्र स्वप्न आते हैं।

उपरोक्त प्रकार से इस पुस्तक में चौदह प्रकरण हैं। उनमें माया की जानकारी शास्त्र द्वारा एवम् सायन्स के द्वारा मिल सके उतनी सरलतासे समझायी गयी है। यह विषय समझना कितना कठिन है उसे जानने के लिए

परिशिष्ट १ में कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर और प्रो.आइंस्टाइन का संवाद लिया गया है। उसमें आइंस्टाइन कहते हैं, कि सत्य मनुष्य की कल्पनातीत वस्तु है और टैगोर कहते हैं ,कि सत्य मनुष्य के अनुभव में आये वैसा होना चाहिए । यदि सत्य का अनुभव न हो तो उसे सत्य नहीं कहा जायेगा।

लेकिन जो सत्य हमारे अनुभव में आता है वह सचमुच में सत्य है कि नहीं उसका प्रमाण क्या? इस बात को समझने के लिए सच्चा प्रमाण किसे कहना चाहिए उसको जानने की आवश्यकता है । उसके लिए हमारे देश के कुछ विद्वान पुरुषों ने गहन विचार किया है उनमें से तीन के मत नीचे दिए गए हैं।

परिशिष्ट :२ : साधू निश्चलदास कृत प्रमाण निरूपण

परिशिष्ट : ३ :स्वामी चिदघनानंदजी कृत प्रमाण निरूपण

परिशिष्ट : ४ : स्वामी विद्यारण्य कृत बृहदारण्यक वार्त्तिक सार में वर्णित प्रमाण परीक्षा

सामान्य मनुष्य का प्रमाण (measure) उसकी अन्तः करण की वृत्ति है। वृत्ति स्वयं जड़ है, किन्तु चेतन सर्वव्यापक होने से प्रत्येक वृत्ति के साथ रहता है इसलिए वृत्ति को चेतनता प्राप्त होती है। इस प्रकार वृत्ति को जीवन मिलनेसे और वह चेतन की तरह कार्य करनेवाली होने से प्रत्येक मनुष्य अपनी वृत्ति को प्रमाण मानता है। उस समय जैसी परिस्थिति होती है उसके अनुकूल वृत्ति उत्पन्न होती है । अतः प्रमाता की अनुकूलता के कारण उस वृत्ति में गलती हो तो मालूम नहीं पड़ती। यह बात आधुनिक सायन्स से भी सिद्ध होती है।

सत्य की एक व्याख्या यह भी है कि वह अबाधित होना चाहिए अर्थात उसका काल से बाध नहीं होना चाहिए। ऐसा सत्य कि जो प्रमाण से अनुभव में आता है उसे सच्चा प्रमाण कहना चाहिए उसे शास्त्र में प्रमावृत्ति कहते हैं। लेकिन व्यवहार में व्यवहार के समय प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय अबाध्य रहते हैं। इसलिए व्यवहार में भी प्रमावृत्ति का उपयोग होता है और उससे व्यवहार चलता है। व्यवहार में ऐसी प्रमावृत्ति कितने प्रकार की है उसकी स्पष्टता परिशिष्ट २ और ३ में की गई है। अप्रमावृत्ति अथवा अध्यास कैसे उत्पन्न होता है, और उसके कितने प्रकार हैं वह भी संक्षेप में दिया गया है। सामान्य लोगों को इन बातों में रस नहीं आता, लेकिन जिनकी इच्छा सत्य जानने की हो उनको प्रमाण का स्वरुप समझने की विशेष आवश्यकता है। महात्मा गांधी जिसे सत्य कहते थे वह सत्य था कि नहीं? और उसका प्रमाण क्या?

ऐसे विचार में प्रमाण का विचार अत्यंत उपयोगी हो जाता है।

वेदांत प्रमाण से सिद्ध करता है कि जगत का नाश ब्रह्मज्ञान से नहीं होता, ब्रह्मज्ञान से जगत की निवृत्ति होती है, क्योंकि जगत ही अविद्या है। मनुष्य जिसे देखता है वह जगत नहीं है इस बात को तो प्रो.आइंस्टाइन भी कहते हैं और अनेक वैज्ञानिक भी अब कहने लगे हैं। तो फिर सत्य क्या है? इस विषय में वे अभी तक उलझ रहे हैं। वे अधिष्ठान का विचार नहीं ले सकते। अधिष्ठान का विचार सिर्फ कोई विचारक ले सकता है। सर जेम्स जीन्स और अल्दु हकसली ने अधिष्ठान का विचार किया हुआ है। यह वेदांत से मिलता जुलता है। जब ज्ञान होता है तब अधिष्ठान मात्र से अज्ञान सहित कल्पित जगत की निवृत्ति होती है। वेदांत में प्रातिभासिक सत्ता-कल्पित सत्ता का खूब विचार विचार किया हुआ है। और सायन्स में उस सत्ता का विचार सिर्फ सन १९२७ से (क्वोन्टम थियरी की खोज के बाद) हुआ है इसलिए अब भी कई लोग प्रातिभासिक सत्ता को ठीक से समझ नहीं सकते।

आरोपित वस्तु का अधिष्ठान में स्वरुप से अध्यास होता है और सत्य वस्तु के धर्म और संबंध आरोपित में अध्यस्त होते हैं। इन दो प्रकार की गलतियों से संसार चलता है। अन्तःकरण का आत्मा में स्वरुप से अध्यास है परंतु अन्तःकरण में आत्मा का स्वरुप से अध्यास नहीं है, अपितु आत्मा के धर्म का और उसके संबंध का अध्यास होता है। उसे संसर्गाध्यास कहते हैं। संबंध को रिलेशन कहते हैं। उसके स्वभाव को सापेक्षवाद के सायन्स वाले ठीक से समझाते हैं। वेदांत के अनुसार विचार करने की पद्धति जानना हो उसे इन पुस्तकों का अभ्यास करना चाहिए :

१. पंचीकरण २. विचारचंद्रोदय ३. विचारसागर ४. पंचदशी और वेदांत सिद्धांत मुक्तावली आदि।

इन सब में प्रमातारूप जीव, प्रमाणरूप वृत्ति और प्रमेयरूप विषय इन तीनों का विचार बहुत स्पष्ट किया हुआ है और उसकी वर्तमान सायन्स की खोज के साथ साम्यता है। संक्षेप में :

१. अप्रमावृत्ति होती है तब सृष्टि के अनुसार दृष्टि होती है।

२. थोडा ज्ञान होता है तब जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि दिखती है।

३. ज्ञान बढ़ता है तब दृष्टि काल में सृष्टि की प्रतीति होती है।

४. पूर्ण ज्ञान होनेपर सृष्टि है ही नहीं (क्योंकि काल केवल प्रतीति है ऐसा वर्तमान

सायन्स वाले कहते हैं। और काल के बिना सृष्टि की संभावना नहीं है) अतः केवल ब्रह्म ही है ऐसा ज्ञान होता है उसे प्रमा अथवा सच्चा प्रमाण कहते हैं।

प्रमा का जो करण याने साधन होता है उसे प्रमाण कहते हैं। यह बात परिशिष्ट में अधिक स्पष्ट की गई है। उसमें वेदांत की पद्धति होने के कारण जिन्हें वेदांत का परिचय होगा उनको ही यह बात समझमें आ सकती है। जिनको वेदांत का विषय समझ में न आये वे प्रमाण का स्वरुप समझने के लिए सायन्स की खोज के प्रकरण एकाग्रता पूर्वक दो तीन बार पढेंगे तो उनको प्रमाण का स्वरुप समझमें आयेगा।

संक्षेपमें अध्यस्त की सत्ता अधिष्ठान से भिन्न नहीं है। जैसे सीप में रूपा और रज्जु में सर्प आदि की सत्ता सीप और रज्जु आदि अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती है। उसी प्रकार जगत की सत्ता ब्रह्म से भिन्न नहीं है। अतः सर्वत्र एक ही सत्ता है। जिनको जगत में अनेक सत्ता दिखती हैं वे गलत धारणा में फंसे हुए है, उनको अपनी गलती निकालने के लिए कुछ उपाय करने पड़ेंगे। किसी भी तरह से सर्वत्र एक ही सत्ता है और वह भगवान की सत्ता है इस प्रकार का अनुभव करना मनुष्य जीवन का बड़े से बड़ा पुरुषार्थ है।

ज्ञानवान पुरुष यथेष्ट आचरण नहीं करता पर उसका शरीर तुरंत शांत नहीं हो जाता, अतः प्रारब्ध कर्म के भोग में अनुकूल जो आभासमात्र रागद्वेष आदि की प्रतीति होती है उसकी अनुवृत्ति ज्ञानी में रहती है। इस प्रकार के आभासमात्र रागद्वेष की अनुवृत्ति भी आत्मज्ञान में बाधक बनती हो तो किसी भी पुरुष को आत्मज्ञान नहीं हो सकेगा। ज्ञानी का राग उसे भोजन में और उपदेश में प्रवृत्त करता है और ज्ञानी का द्वेष उसको कुसंग में नहीं जाने देता। चित्त में कदाचित् उत्पन्न होनेवाला जो लेशमात्र राग है, उस राग की निवृत्ति करने में असमर्थ लोग किसी ब्रह्मनिष्ठ पुरुष से द्वेष करते हैं उनको किसी भी काल में आत्मा का निश्चय नहीं होता। अतः देहपात पर्यंत ज्ञानवान पुरुष भोजन ले या उपदेश दे और गलत बातें न करे, ऐसा रागद्वेष ज्ञानी का भूषण है और वह बाधितानुवृत्ति से सिद्ध होता है।

जिसे संसार में रागद्वेष कहते हैं वैसे कर्म में तो देह के अभिमान वाला पुरुष प्रवृत्त होता है। ज्ञानी को ऐसा अभिमान नहीं होता इसलिए संसारी के जैसे रागद्वेष उसमें नहीं होते। ज्ञानी के जीवन के बारे में विस्तृत विचार परिशिष्ट : ३ में किया हुआ है।

संपूर्ण सुख की प्राप्ति और समस्त दु:खों की निवृत्तिरूप मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है। जहाँ सब आत्ममय मालूम पड़े वहाँ कौन किसको देखे? ऐसी श्रुति से आत्मा से भिन्न

वस्तु का अभाव होने से सामने दुःख देनेवाला कोई नही रहता और आत्मस्वरूप निरतिशय आनंदरूप होने से मोक्ष में सर्व सुख की प्राप्ति होती है।

ज्ञान एवम् वैराग्य की आवश्यकता आवरण की निवृत्ति के लिए है। अज्ञान का विरोध ज्ञान से है इसलिए ज्ञान के उत्पन्न होनेपर अज्ञान नहीं रहेगा। भेद पुरुषार्थ नहीं है और न तो पुरुषार्थ का साधन ही, पर दुःख का साधन है। **द्वितीयाद्वै भयं भवति**। (दूसरे के दर्शन से भय होता है) यह श्रुति भी कहती है कि भेद पुरुषार्थ नहीं है। जिसे भेद दिखता है वह आत्मज्ञानी नहीं है। आत्मज्ञानी को परमार्थ दृष्टि से भेद नहीं दिखता, फिर भी माया से कल्पित भेद रहता है। श्रुति पारमार्थिक भेद का निषेध करती है, मायिक भेद का निषेध नहीं करती। भेद में जो मायिकत्व ज्ञान है वह अद्वैत ज्ञान का अंग है। भेद मायिक है इस प्रकार का ज्ञान हुए बिना अद्वैत ब्रह्म को नहीं जान सकते, क्योंकि विशेषण के ज्ञानपूर्वक ही विशिष्ट बुद्धि होती है, इसलिए माया का स्वरुप भी जानने की आवश्यकता रहती है। उसके लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी हो सकेगा।

माया द्वैत की प्रतीति कराती है और द्वैत में (रज्जु सर्प की नाईं) सत्यत्व का आरोप करती है, अतः मूढ़ मनुष्य द्वैत को सच्चा मानते हैं। श्रुति का प्रमाण ब्रह्म में द्वैत का निषेध करता है। द्वैत में सत्यत्व का निषेध किये बिना उसके मायामयत्व का प्रतिपादन नहीं हो सकता। अतः द्वैत के निषेध की आवश्यकता है। कल्पित धर्म वास्तविक अविशेषता का विरोधी नहीं होता, जैसे कि कल्पित सर्प से रस्सी विषैली नहीं होती।

सर राधाकृष्णन लिखते हैं कि जगत उत्पन्न होने से ब्रह्म की वृद्धि नहीं होती और जगत के बाध से ब्रह्म में कमी नहीं होती। इवोल्यूशन अथवा उत्क्रांतिवाद भी झूठा है, यह बात अब काल की सापेक्षता से सिद्ध हो सकती है।

आत्मज्ञान होने से पूर्व विषयों का बाध नहीं है, इसलिए व्यवहार दशा में सब प्रमाणों की प्रमाणता है। आत्मज्ञान होने के बाद अनात्म पदार्थों की निवृत्ति हो जाने से विधि आदि में प्रमाण नहीं रह सकता। अविद्या अवस्तु होने से उसमें कोई प्रमाण नहीं है। सीप में रूपा दिखे तो वह अवस्तु है और उसमें कोई प्रमाण नहीं है, वैसे ही अविद्या में कोई प्रमाण नहीं है। प्रमाण को सहन न करना अवस्तु का धर्म है।

जैसे सीप में रूपा के ज्ञान से पहले उसकी सत्ता मानी नहीं जाती, वैसे ही घट आदि समस्त प्रपंच की सत्ता भी उसकी प्रतीति से पहले मानी नहीं जाती। भ्रांत पुरुष

सीप में रूपा के ज्ञान को प्रमाण मानते हैं। बाध ज्ञान होने के बाद उसे भूल समझमें आती है, इसी प्रकार प्रपंच भी मायिक सामग्री से प्रतीत होने के कारण प्रमाण नहीं है। इस विषय को अनेक दृष्टान्तों से इस पुस्तक में समझाया गया है। विज्ञान वाले अब गणित से सिद्ध कर देते हैं, कि जो जगत मनुष्य को दिखता है वह मनुष्य के प्रमाण का है, वह प्रमाण सच्चा नहीं होने से वह जगत सच्चा नहीं है। सर जैम्स जीन्स कहते है कि हम लोग मनुष्य के कृत्रिम देश काल में रहते हैं और उसे सच्चे मानने से अनेक प्रकार की गलतियाँ होती हैं।

सीप में रूपा की कल्पना से पूर्व कल्पित रूपा नहीं है, अतः उसमें ज्ञातव्य अथवा अज्ञाततव्य कोई धर्म नहीं है। जहाँ धर्म नहीं है वहाँ धर्मी की स्थिति की सम्भावना कहां रही? जहाँ प्रमाण नही है वहाँ जगत है ऐसा कौन कहेगा ? देखनेवाला आता है उसके साथ ही उसका प्रमाण साथ में आता है। संसार के व्यवहार में प्रमाण का विचार नहीं होता, अपितु व्यवहार का विचार होता है, अतः भूल समझमें नहीं आती। स्कूलो में बुद्धि बढे वैसा ज्ञान दिया जाता है। उस प्रकार की बुद्धि इन्द्रियों के प्रमाण का पक्षपात करती है इसलिए उस बुद्धि से बंधन कटता नहीं है। सभी प्रकार के अज्ञान का बाध करे वैसा ज्ञान उत्पन्न होना चाहिए। विशेषकर आत्मा विषयक जो अज्ञान समाज में फैला हुआ है उस अज्ञान का बाध करे ऐसा ज्ञान उत्पन्न होना चाहिए। ऐसा ज्ञान सिर्फ आत्मज्ञानी महापुरुष दे सकते हैं, उसमें अभ्यास और वैराग्य की आवश्यकता होती है। वर्त्तमान लोग अभ्यास की तैयारी दिखाते हैं परंतु वैराग्य के लिए तैयारी नहीं दिखाते। जिसके चित्त में राग आदि दोष होते हैं वे तत्त्वज्ञानी नहीं हो सकते। और जो राग आदि को आत्मधर्म मानते हैं उनमें तो तत्त्वज्ञान की संभवना ही नहीं है। इसलिये अन्तःकरण रूपी आयनेकी अभ्यास और वैराग्य से सफाई करने की आवश्यकता है। जब बुद्धि इन्द्रियों का प्रमाण सच्चा मानती है, तब बुद्धि अप्रमात्मक हो जाती है, फिर भी व्यवहार दशा में (स्वप्न की नाईं) झूठे प्रमाण से व्यवहार चल सकता है।

गीता के पंद्रहवे अध्याय के तीसरे श्लोक में कहा है कि : -

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नांतो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।

अश्वत्थमेनं सुविरुढमूमसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।।

अर्थात् इस संसार का कोई रूप नहीं है ,उसका कोई आदि, मध्य या अंत नहीं है फिरभी उसकी जड़ें मानो दृढ हो ऐसा प्रतीत होता है उस संसाररूपी वृक्ष का

असंगत्व से छेदन करना चाहिये।

अद्वैतज्ञान में घटपट आदि द्वैतमें सत्यत्व का ग्रहण करानेवाला प्रत्यक्ष व्यवहारिक ज्ञान बाधक है। अपरोक्ष भ्रांति अपरोक्ष प्रमा से निवृत्त होती है। यह भ्रांति किस प्रकारकी है उसकी गलतीयाँ सायन्सवाले बहुत स्पष्टता से समझा सकते है। उसमें प्रमुख गलतियाँ प्रो.आइंस्टाइन ने बताई हैं। उनके सापेक्षवाद ने जगत को आश्चर्यचकित कर दिया है।

प्रो.आइंस्टाइन ने अपने एक भाषण में कहा था कि 'माल, मिल्कियत, मौज शौक, लोकप्रियता, बाहर की दुनयावी कुशलता ये सब मुझे हमेशा क्षुद्र और तिरस्कार के पात्र लगते हैं। जीव की सरल और आडम्बररहित रीति को मैं सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ।' उनके सापेक्षवाद का असर नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मानसशास्त्र और धर्मक्षेत्र में भी हुआ है। ऐसे महान वैज्ञानिक जिनको वर्तमानकाल के ऋषि की उपमा दे सकते हैं वे हमारे काल में हुए हैं। केवल इतनी ही कमी है कि वे माया का स्वरुप ठीक से समझा सकते है। लेकिन ब्रह्म का स्वरुप नहीं समझा सकते। उसके लिए वैज्ञानिकों को हमारे शास्त्रों का अभ्यास करने की आवश्यकता है, और हमारे पंडितों को उनके सापेक्षवाद को समझने की जरूरत है। यु.पी के वर्तमान शिक्षामंत्री सम्पूर्णानंदने काशी के पंडितो की सभा में एक बार ऐसी सुचना दी थी।

अमेरिका में इस्वीसन १९३१ में आइंस्टाइन के सन्मान में एक सभा आयोजित हुई थी उस समय डॉ.मिलिकन नामक वैज्ञानिक ने कहा था कि : 'सत्य विषयक यानि ब्रह्माण्ड किस प्रकार का है उस विषय में मनमाने अथवा मनचाहे तर्कों का आश्रय लेने की अपेक्षा प्रामाणिक और निश्चयपूर्वक जांच कर सके वैसी केवल प्रयोग सिद्ध हकीकतों पर ही आधार रखना यह विज्ञान का विशेष लक्षण है। विज्ञान तात्त्विकरूप से प्रयोगात्मक है और प्रयोगसिद्ध हकीकतों को ही स्वीकार करता है। विज्ञान के इस स्वरुप के गठन में किसी भी व्यक्ति का योगदान आइंस्टाइन के योगदान के समान नहीं है। इस पुस्तक से किसी को अच्छी फ़िल्म बनानी हो तो बन सकती है। जो भी दृष्टांत दिए है उसके चित्र बना सकते हैं। इस प्रकार की १०० स्लाइड वेदांत आश्रम के द्वारा बनाई गई है।

- स्वामी माधवतीर्थ

वेदांत आश्रम पो.वलाद (अमदावाद प्रांतिज रेलवे)

देश और काल

ज्ञान निष्ठ महाभाग ! स्थूल देहादिभिर्गतोऽपिसन् ।

ज्ञान देहे सदा तिष्ठन् भक्तानां हृदि राजसि । ।

हे ज्ञाननिष्ठ महाभाग्यशाली ! स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह से मुक्त होते हुए भी ज्ञान देह से, अपने भक्तों के हृदय में सदैव प्रकाशित होते हुए स्थित हो ।

पुनीत स्मृतिर् भवन्तां सौम्य सान्निध्यं सोमवत्
अनूपम वपु तात ब्रह्म तेजनवितं सदा ।
प्रसदतु हृदि तेषां प्रेम भावाभिपूतां
निखिल तव प्रकाशः प्रेरणा पूर्ण माधव ॥

हे माधव! आपकी चंद्रमा के समान शीतल स्मृति और सानिध्य ब्रह्मतेज से घिरी अनुपम देह है, प्रेमभाव से जिनके हृदय पवित्र हुए है आपके उस भक्त के हृदय में समग्र प्रकाश प्रेरणा-पूर्ण हो ।

पायन्तु ज्ञानामृतं, सेवितान्सदा
तमोऽन्धकारं नयसि भजन्ताम् ।
ते प्रेम प्लुता भव वारि तारणे
गृहणन्ति, गायन्ति, नमन्ति माधव ॥

आपकी सेवा करनेवाले को ज्ञानामृत पीलाकर, आपका भजन करनेवाले के अन्तःकरण के अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करते हो । प्रेम से सराबोर हुए हृदयवाले आपके भक्त संसार को पार करने के लिए आपकी कीर्ति का गान करते है और नमन करते हैं ।

१ : अच्छे जीवन का प्रमाण

जो कर्म करने से योग प्राप्त हो उसे कर्मयोग कहते है। योग अर्थात् जीव और ब्रह्म की एकता। अतः जो कर्म आत्मलक्षी हों अथवा जिस कर्म से भगवान संतुष्ट हो वैसे कर्म से कर्मयोग सिद्ध हो सकता है। उसी प्रकार जिस विद्या से ईश्वर की ओर अथवा आत्मा की ओर लक्ष्य हो उसे सच्ची विद्या कहते है। इस विषय में कुछ इसप्रकार के मत देखने को मिलते हैं :

(१) कोई कहते हैं कि आत्मा एक ऐसी उपयोगी और आवश्यक वस्तु है कि पूरा जीवन केवल उसी के लिए अर्पण करना चाहिए। यह मत कुछ साधू-संन्यासियों को पसंद आता है।

(२) कोई कहता है कि प्रथम कर्म और उपासना से मन को शुद्ध करने के पश्चात फिर आत्मज्ञान की तरफ मुड़ना चाहिए। इस मत को क्रम समुच्चय कहते है। मन की अशुद्धि को राग कहें तो जब राग निकल जाये और वैराग्य उत्पन्न हो तब मन शुद्ध हुआ कहा जायेगा। अतः वैराग्य बढ़ाने वाले कर्म प्रथम करने चाहिए और फिर आत्मज्ञान पाना चाहिए।

(३) कोई कहते हैं कि व्यवहार और परमार्थ दोनों नित्य साथ में रखने चाहिए; यानि जीवन के अंत तक दोनों साथ में रहने चाहिए इस मत को समसमुच्चय कहते है। इस मत को माननेवालों की संख्या अधिक है। विशेषकर नई शिक्षा वाले लोगों को यह मत अधिक पसंद है।

(४) कुछ लोग मानते है कि केवल समाजसेवा और देशसेवा से कर्मयोग सिद्ध हो सकता है। आत्मज्ञान प्राप्तकर केवल अपना ही कल्याण करना यह एक प्रकार का स्वार्थ है। इसलिए दूसरों का भला करना ही सच्चा कर्मयोग है। इस मत के कुछ लोग भला किसे कहते है और सच्चा सुख और सच्चा ज्ञान किसे कहते है उसको जानने का प्रयास नहीं करते। किसी तरह से सभी को ईश्वर मानकर सबका भला करना यही ईश्वर की सेवा है ऐसा मानते है लेकिन जबतक अपने को ईश्वरस्वरूप नहीं जानते तब तक सभी ईश्वर नहीं होते।

(५) कुछ लोग कहते हैं कि कर्म कुछ भी करो परंतु उसके पीछे भावना शुद्ध होनी चाहिए।

(६) अधिकतर लोग तो ऐसे कर्म में लिप्त हैं कि वे जीवन का हेतु क्या है वह नहीं

जान सकते और जानने का प्रयत्न भी नहीं करते। उनकी इच्छा ऐसी होती है कि जैसे दूसरे चलते हैं वैसे चलना और सबका जो होगा वह अपना होगा।

उपरोक्त सभी मतों में कौनसा मत सच्चा है ? उसे जानने की कईयों को इच्छा होती रहती है। इस प्रकार के कठिन विषय में प्रमाण का विचार अत्यंत जरूरी लगता है। सच्चा प्रमाण हमें अबाधित अर्थ की ओर ले जाता है। अर्थात् हमें नित्य अखंड चैतन्य की ओर ले जाता है। झूठा प्रमाण ऐसी वस्तु दिखाता है कि जिसका तुरंत बाध हो जाता है।

पिछले 100 वर्षो में मनुष्यों को जो शिक्षा मिली है उसमें प्रमाण का विचार ज्यादातर देखने को नहीं मिलता। सिर्फ पाँच इन्द्रियों से जिस जगत का अनुभव होता है वह सच्चा है, उसके सिवाय अन्य कोई उत्तम जीवन है कि नहीं, हो तो उसका प्रमाण क्या और उसे प्राप्त करने का साधन क्या ? उस विषयपर विद्यार्थियों का ध्यान नहीं गया। माया का ज्ञान अज्ञान का विरोधी नहीं है, माया के ज्ञान से तो अज्ञान बढ़ता है।

विज्ञान में यानी सायन्स में भी जो जो विद्यार्थी और शिक्षक पाश्चात्य देशों में हो गये उन्होंने १९वीं शताब्दी तक सिर्फ बाहर की वस्तुओं का यानी प्रमेय का अभ्यास किया। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में उनको मालूम पड़ा कि वे दो हजार साल से गलत दिशा में प्रयोग कर रहे थे। वर्त्तमान शताब्दी में उनको समझ में आया कि प्रमाण (मेज़र) को जाने बिना प्रमेय(जगत) को जानना अंधेरे में भटकने जैसा है। इतना ज्ञान होने के बाद अब इस विषय पर पश्चिम के देशों में हजारों पुस्तकें लिखी जा रही हैं।

हमारी जानकारी में अपने देश में प्रमाण विषयक कोई अच्छी पुस्तकें हो तो वे इस प्रकार है।

(१) साधु निश्चलदासजी कृत वृत्ति प्रभाकर (२) वेदांत परिभाषा (३) स्वामी चिद्घनानंदजी कृत तत्त्वानुसंधान (४) विचार चंद्रोदय, पंचीकरण, पंचदशी, बृहदारण्यक वार्त्तिकसार और अद्वैतसिद्धि आदि ग्रंथो में भी प्रमाण का विचार आता है।

जैसे कानून में 'लॉ ऑफ़ एवीडन्स' पुस्तक प्रमाण के लिये प्रमुख मानी जाती है, उसी प्रकार व्यवहार में और परमार्थ में जो जो विषय समझना हो उसके प्रमाण को दर्शाने वाला जो पुस्तक होगा उसका अभ्यास करना आवश्यक है। जो श्रद्धावान है और जिन्हें अधिक परिश्रम से बचना हो उनके लिये प्रस्थानत्रय अर्थात् गीता, उपनिषद और ब्रह्मसूत्र को प्रमाण के ग्रन्थ मान सकते है, लेकिन सब धर्मों को मानने

वाले उसे स्वीकार नहीं करेंगे।

यह संपूर्ण पुस्तक प्रमाण की पुस्तक है। इसमें नये सायन्सवालों ने प्रमाण (measure) का जो स्वरूप खोजा है उसे भिन्न भिन्न ढंग से समझाने का प्रयास किया गया है। मनुष्य के जीवन के लिए यह एक अत्यंत उपयोगी विषय है। उससे कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग इन सबको समझना आसान हो जाता हैं। मनुष्य के जीवन में कितने पुरुषार्थ हैं, सच्चा सुख क्या है, सच्चा ज्ञान किसे कहना इन सब बातों को जानने के लिये सच्चा प्रमाण जानने की जरुरत है। व्यवहार में एक व्यक्ति दूसरे से कहता है कि 'आप सच्चे हो उसका प्रमाण क्या ?' कौमवाद के संघर्ष में भी एक कौमवाले कहते हैं कि हम सच्चे और दूसरी कौमवाले कहते हैं कि हम सच्चे, उनमें कौन सच्चा इसे समझने के लिये प्रमाण की जरुरत पड़ती है। उसमें अतिशयोक्ति अधिक होती है। जो मनुष्य सच्चे प्रमाण को समझ सकता है वह दूसरे को भी सच्चा मार्ग दिखा सकता है। सामनेवाला मनुष्य किस प्रमाण से बात करता है उसको समझकर शांति से उसकी भूल बता सकते है। दरजी और मोची भी पहले नाप निश्चित करते है।

और जिस मनुष्य में जैसा ज्ञान होगा वैसा उस समय उसका प्रमाण बन जाता है और उस समय उसको अपनी गलती का पता नहीं चलता। अतः सिर्फ ज्ञान प्राप्त करने से अर्थ की सिद्धि नहीं होती। वह ज्ञान ठीक है अथवा नहीं उसको जानने की जरुरत है, पर माया का खेल इसप्रकार का है कि हर एक को अपना ज्ञान ठीक है ऐसा लगता है, क्योंकि झूठे प्रमाण से ही व्यवहार चलता है। स्वप्न में ऐसा होता है। जब व्यवहार में और विचार में गलती दिखती है और अपनी मानी हुई मान्यता में अड़चन आने लगे और उसके परिणाम स्वरूप दुःख और क्लेश उत्पन्न हो तब अपना खुद का माना हुआ कर्मयोग सच्चा है कि नहीं उसकी जाँच होती है। उस समय सच्चा प्रमाण खोजने की जरुरत पड़ती है। सामान्य व्यवहार में हमारी पाँच इन्द्रियों के ज्ञान को प्रमाण माना जाता है। उसमें भी आँख से दिखनेवाले रूप और कान से सुनाई पड़नेवाले शब्द मनपर अधिक असर करते है। अतः उपनिषदों में शांतिपाठ के आरंभ में ऐसा मन्त्र पढ़ा जाता है कि 'हे देवताओं ! हम कान से कल्याणमय वचन सुने, यज्ञकर्म में समर्थ होकर नेत्रों से शुभ दर्शन करें और अपने अंग को स्थिर करके शरीर से स्तुति करते हुए हम देवताओं के लिए जीवन व्यतीत करें। यदि आँख और कान का ठीक से उपयोग नहीं किया गया तो माया के शब्द कान में जाकर मन को बिगाड़ेंगे और

माया के रूप मन को बिगाड़ेंगे। फिर सत्य क्या है उसकी खबर नहीं पड़ेगी और कर्मयोग सिद्ध नहीं होगा। गीता के छठवें अध्याय में भगवान की उपस्थिति में भगवान के सामने अर्जुन ने ऐसा प्रश्न रखा है कि 'इस चंचल मन को वश करना अत्यंत कठिन कार्य है।' उसके उत्तर में भगवान कहते है : 'यह सच है फिर भी अभ्यास और वैराग्य से मन को वश में किया जा सकता है।' यहाँ अभ्यास का मतलब है जिससे आत्मा में प्रीति बढ़े ऐसा साधन करना और वैराग्य का अर्थ है इस लोक एवम् परलोक के सभी अनित्य सुखों से प्रीति न रहना। वैराग्य अर्थात् फाँसी की सजा समझना है। शास्त्र की भाषा में कहें तो अभ्यास यानी सजातीय प्रवाह बढ़ाना और वैराग्य का अर्थ विजातीय प्रवाह को कम करना। इसके लिए अपनी सभी प्रवृत्तियों को सात्त्विक रखनी चाहिए। असत् प्रवृत्ति तत्त्व स्मृति को भुला देती है। यदि सच्चे ज्ञान के अनुसार जीवन नहीं होगा तो गलत जीवन के अनुसार वैसा ज्ञान हो जायेगा। जो ज्ञान सच्चा लगे वह टिक सके उसप्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिए। यदि जीवन में ज्ञान और कर्म का मेल नहीं होगा तो सुना हुआ ज्ञान टिकेगा नहीं और अर्थ-गोचर नहीं होगा अर्थात् व्यवहार में उपयोगी नहीं होगा।

जिसमें ज्ञान न हो, वैराग्य न हों और श्रद्धा न हों वैसा मनुष्य यदि कर्म का त्याग करे तो वह विक्षेपरहित नहीं हुआ, अतः ऐसे मनुष्यों के लिये क्रम समुच्चय ठीक है। वह मनुष्य यदि शास्त्र में बतलायी गयी प्रवृत्ति के अनुसार रहे तो वह प्रवृत्ति को निवृत्ति की ओर ले जायेगी, पर यदि शास्त्र को प्रमाण नहीं माने और सिर्फ अपनी बुद्धि को प्रमाण माने तो गलतियाँ होने की संभावना है, अतः अच्छे जीवन के लिए शास्त्र, तर्क अथवा युक्ति और अनुभव इन तीनों की जरुरत है।

सब देशों के सब लोगों को संतोष हो उसप्रकार के नीति के नियम बनाने का कार्य मनुष्य के जीवन में सब से कठिन है। जब से मनुष्य जाति का उद्भव हुआ तब से कई ज्ञानी पुरुषों ने इस आवश्यक विषय पर खूब विचार किया है, पर एक देश के विचार दूसरे देश से नहीं मिलते और एक काल में तत्कालीन संयोगों के अनुसार बनाये हुए सिद्धांत दूसरे काल में दूसरे संयोगों में काम नहीं आते। उसका कारण यह है कि नीति के सिद्धांत सापेक्ष है, इसलिए सब मनुष्यों के लिये एक ही प्रकार के नियम नहीं चल सकते। फिर भी शास्त्रों में कुछ ऐसे नियम बतलाये गये है कि उनका पालन करने से मनुष्य का जीवन ठीक प्रगति कर सकता है।

समाज में सिर्फ बाहर के, पाँच इन्द्रियों के सुख और सुविधा के लिए अनेक

कानून बनाये जाते है, लेकिन मनुष्य का विकास इतने में ही सीमित नहीं किया जा सकता। इसलिये वे कानून अधिक लंबे समय तक नहीं टिकते। किसी मनुष्य को आत्मज्ञान की इच्छा हो और उसके लिए समाज में सुविधा नहीं हो तो उसे क्या करना चाहिए ?

सन् ईसवी १९१४-१८ के युद्ध के समय जर्मनी में जब सब युवाओं को तैयार रहने के लिए कहा गया तब उनमें प्रो.आइंस्टाइन को भी अपनी इच्छा के विरुद्ध तैयार होना पड़ा। वह वैज्ञानिक यदि उस युद्ध में मर गये होते तो उन्होंने दुनिया को जो आश्चर्यकारक खोज दी है वह कौन देता ? इसलिए उस समय जर्मन के शहंशाह कैसर ने प्रो.आइंस्टाइन को सेना से निवृत्त किये और उनको पेंशन देकर उनकी खोज को चालू रखने दी। मानो कि उस समय हिंदुस्तान में उसी प्रकार का कानून होता कि सभी युवाओं को तैयार रहना तो उस समय श्री रमण महर्षि की आयु ३७ वर्ष की थी उनको सेना में ले गये होते तो उन्होंने जो अद्भुत ज्ञान दुनिया को दिया है वह कैसे प्राप्त हो सकता था ? यदि समाज में ऐसे कानून बने कि जिनका पालन सब लोगों को करना चाहिए तो मनुष्य का अर्थात् व्यक्ति का विकास नहीं होगा और यदि मनुष्य का विकास नहीं हुआ तो समाज का विकास भी नहीं होगा। हमारे शास्त्रों में भी मनुष्यों के लिए कुछ बंधन रखे हुए है पर उसके साथ यह भी कहा गया है कि अमुक परिस्थिति में जीवन का उद्देश्य बदलने पर उसे उन बंधनों को तोड़ने चाहिए। जिसको आत्मज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न होती है वह समाज के सुधरने तक इंतजार करके बैठा नहीं रहता। वह सरकारी क़ानून की सहायता के बिना अपने स्वभाव पर अंकुश रखता है। गीता के अंत में भगवान ने अर्जुन को कहा है कि तू सभी धर्मों को छोड़कर एक मात्र मेरी शरण में आ। उससे कुछ पाप होगा तो मैं तुझे सब पापों से छुड़ाऊंगा।

अतः सभी प्रकार के मनुष्यों के लिये समान क़ानून काम में नहीं आ सकते। नीति के सिद्धांत सापेक्ष है, इसलिए सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तीनों प्रकार के मनुष्यों के लिये अलग-अलग नियम शास्त्रों में बतलाये गये हैं। सत्त्वगुणी मनुष्य उपदेश से सुधरता है। वह अहिंसा का पालन कर सकता है। ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है और समाज से कम फायदा लेकर बदले में अधिक सेवा दे सकता है।

रजोगुणी मनुष्य रोचक वस्तु मिलती है तब सुखी होता है। प्राचीन युग में उनको ऐसा समझाया जाता था कि पुण्य करने से स्वर्ग मिलता है, इसलिए वे दान-पुण्य करते और यज्ञ करते थे; उसमें उनकी आसक्ति बढ़ न जाये उसके लिए बार बार यज्ञ के

समय 'न मम' अर्थात् यह मेरा नहीं है ऐसा उनको याद कराया जाता है। इस प्रकार की सूचनाओं से उनमें वैराग्य उत्पन्न होता है। वर्त्तमान समय में जो जो सामाजिक अथवा राजकीय कर्म होते है उसमें 'न मम' नहीं होता। उलटा मेरा नाम कैसे प्रसिद्ध हो और मुझे मान मिले तो ठीक ऐसी भावना कई जगह पर रहती है, इसलिए वैराग्य उत्पन्न नहीं होता। शास्त्रों में कहा गया है कि कर्म इस प्रकार के होने चाहिए कि अंत में उससे वैराग्य उत्पन्न हो। उससे विपरीत वर्तमान में कई कर्म मनुष्य का राग बढ़ाते है। व्यवहारिक ज्ञान देह को आत्मा बताता है और जगत को अपने से अलग बताता है।

पहले से पसंद की हुई मनकी कुछ आदतें, कुछ विचार, कुछ शंकायें, कुछ आसक्ति और कुछ इच्छाओं को जीव छोड़ना नहीं चाहता, इसलिए देह का अभिमान दूर नहीं होता। अतः जीव एक प्रकार के स्थानधर्म में उलझ जाते हैं। साधारण इन्द्रियों के विषयों में जिनको राग है वैसे पुरुष को मोक्ष का अधिकार नहीं है। वह ब्रह्मज्ञान का अधिकारी नहीं हो सकता। दिनरात भेदभाव से जिसका अन्तःकरण भर गया है, भेद-व्यवहार के अलावा जिनके लिए कोई कर्तव्य नहीं रह गया हो वह जीव समस्त विश्व में सभी प्राणियों में रागद्वेष से मुक्त होकर समभाव से कैसे व्यवहार कर सकता है ? मनुष्यों के चालु व्यवहार में उसकी आत्मा उसकी प्रवृत्ति में इतनी तो लिप्त हो जाती है कि साक्षी के रूप में अथवा दृष्टा के रूप में अलग रहकर अपने मन की और अपनी इन्द्रियों की गलतियाँ पकड़ना उसको अत्यंत कठिन लगता है। जब शरीर में, इन्द्रियों में या मन में दुःख उत्पन्न होता है सिर्फ तभी मनुष्य सावधान होने लगता है, नए विचार करने लगता है और तभी उसको अपने जीवन में गलती हो ऐसा महसूस होता है।

हर एक प्रकार की प्रवृत्ति में माया का कुछ अंश आ जाता है। 'मैं और मेरा' बोले बिना कोई काम नहीं होता, पर माया के सुखमें आसक्ति बढ़ न जाय वैसे रहना चाहिये। ज्ञानी पुरुषों को बारम्बार 'मैं और मेरा' बोलने में शर्म आती है अथवा जब खास जरुरत हो तभी बोलते है या ऐसी बातों में उनको अधिक रुचि नहीं होती। अभी के समय में गाँव में कोई सात्त्विक वृत्ति की माई रहती हो और उसके बेटे के बारे में कोई पूछता है की बेटा आपका है, तो उत्तर में ऐसा नहीं कहती कि मेरा है, बोलेगी तुम्हारा है अथवा तो कहेगी भगवान का है।

प्रवृत्ति के बीच रहकर माया की गलतियाँ बढ़ न जाये उसके लिए भगवान और

विद्वान पुरुषों ने शास्त्रों में माया के तीन प्रकार बताकर सात्त्विक प्रवृत्ति अच्छी है और रजोगुणी और तमोगुणी प्रवृत्ति त्याग करने योग है ऐसा समझाया है। गीता में तीन प्रकार के कर्ता, तीन प्रकार के कर्म, तीन प्रकार के ज्ञान, तीन सुख, तप, श्रद्धा, आहार, धीरज आदि बहुत स्पष्टरूप से समझाया गया है। अभी की शिक्षा में इस प्रकार का अभ्यास कम हुआ है इसलिये ऐसे सूक्ष्म भेद विद्यार्थियों के ध्यान में नहीं आते। सब देशों में वर्तमान शिक्षा प्रणाली अधिकतर सिर्फ भौतिक सुख यानी शरीर, प्राण और मन के सुख तक ही विद्यार्थियों को ले जाती है। फलतः मनुष्य रजो और तमोगुण के जीवन में रुक जाता है। वह सत्त्वगुणी तो हो ही नहीं सकता। फिर गुणातीत दशा में तो कैसे आ सकता है ? कुछ लोगों को लगता है कि मनुष्य के बाहरी सुख की दशा मानो आख़री दशा है और वही प्रमाण है। और फिर बाहर के सुख कितने बढ़ाने उसकी कोई सीमा नहीं रहती इसलिए जीवन का विकास रुक जाता है। 'कुछ न कुछ करो पर निकम्मे मत बैठे रहो' यदि यही जीवन का लक्ष्य हो तो किसान, मजदूर, और काम करनेवाला जो स्वाश्रयी जीवन जीते है और लगभग पूरा दिन काम करते है उनको जल्दी मोक्ष मिलना चाहिए। स्वाश्रय का सही अर्थ है कि स्व अर्थात् आत्मा के आश्रय रहना। लम्बा समय जीना और रहना सभी जीवों को अच्छा लगता है और मरना अच्छा नहीं लगता, तो जो चेतन नित्य रहता है उसके आश्रित रहने से ही स्वाश्रयपना सिद्ध हो सकता है और ऐसे रहा जाय तो कायम रहना और कायम जीना संभव हो सकता है। अतः सिर्फ नीति वाले मजदूर होना हिन्द का कर्मयोग नहीं है पर ब्रह्मनिष्ठ होना यह आर्यों के संस्कार का फल है।

अतः प्रवृत्ति ठीक करनी हो, कर्मयोग ठीक ढंग से करना हो तो अपने जीवन का हेतु समझना चाहिए। यदि जीवन का हेतु सुख पाने का हो तो सुख कितने प्रकार के हैं वह भी जानना चाहिए। सब प्रवृत्ति अच्छी नहीं होती, और सब निवृत्ति भी अच्छी नहीं होती। सुख मनुष्य के जीवन की आवश्यक वस्तु होने से सुख की व्याख़्या गीता के आधारपर संक्षेप में इसप्रकार से कर सकते है :-

सच्चा सुख

सच्चा सुख समाधि के अभ्यास से मिलता है। उसमें जब वृत्ति स्थिर होती है, और आनंद आता है तब सब दुखों का अंत हो जाता है। ऐसा सुख पाने के लिए जो साधन करने पड़ते है उसमें यम, नियम, ब्रह्मचर्य, तप, सत्य, अहिंसा, आदि का समावेश होता है इसलिए इनका पालन करना साधक को पहले जहर जैसा लगता है।

उस दिशा में उन्नति करने के लिए पहले सत्-असत् का विवेक करना चाहिये, फिर असत् यानी अनित्य सुख में वैराग्य आना चाहिये। वैराग्य टिकाने के लिये शम, दम आदि का पालन करना चाहिए, उसके साथ मोक्ष की इच्छा रखनी चाहिए, वैसी इच्छा होने के बाद आत्मज्ञानी पुरुष को गुरु बनाकर उनसे आत्मा के स्वरूप का श्रवण करना चाहिए। श्रवण के बाद मनन और निदिध्यासन करना चाहिये। इस प्रकार ब्रह्मसुख पाने के लिए आरंभ में अति कलेश होने के कारण अधिकतर लोग उसकी ओर नहीं आते, परंतु कोई आता है और दृढ़ता रखे तो अंततः सच्ची दशा प्राप्त होती है। वह सुख आत्मबुद्धि के प्रसाद से प्राप्त होता है। अतः अन्तःकरण शुद्ध होने से मिलता है और इस सुख को सात्त्विक सुख कहते है।

झूठा सुख

विषय और इन्द्रियों के संयोग से जो सुख मिलता है वह शुरुआत में अमृत के समान लगता है पर अंततः विष के समान फल को उत्पन्न करता है और जीवन का नाश करता है। इस प्रकार का सुख अज्ञान को बढ़ाता है, इसलिए मनुष्य को बार बार जन्म मरण के चक्कर में जाना पड़ता है। इसप्रकार का सुख राजसी सुख कहा जाता है।

अत्यंत झूठा सुख

जिस सुख को प्राप्त करके आरंभ में और अंत में विवेक नहीं रहता और जिससे निद्रा, आलस्य और प्रमाद बढ़ता है ऐसा सुख तामस सुख कहा जाता है।

पाश्चात्य शिक्षा में सुख की ऐसी स्पष्ट हकीकत नहीं देखी जाती। जो लोग सिर्फ पाँच इन्द्रियों से जो दिखता है, सुनने में आता है, चखने में आता है और भोगा जाता है उसी को सच्चा मानते है, वे लोग सच्चे कर्मयोग को साध नहीं सकते।

विषयों का स्वभाव ऐसा है कि उसके न मिलनेपर चिंता होती है और मिले तो सुमति का नाश होता है।

और बहुमत से चलनेवाले अभी के कुछ राज्य प्रजा को सच्चे जीवन का मार्ग नहीं दिखा सकते। अधिकतर उनकी निगाह बहुमत अपने पक्ष में रहे उस हद में ही रहती है, पर सच्चा जीवन किसे कहते है उस ओर नहीं जाती। अतः मनुष्य समाज में होता है तब अपने को सही मानता है और अकेला हो जाने के बाद अपना जीवन निकम्मा समझता है। आत्मज्ञान से रहित मनुष्य डरपोक होता है, उसे मृत्यु का डर रहता है, पड़ोसी से डर लगता है, दंगो से डरता है, दूसरी कौम से डरता है। डरपोक मनुष्य कई

बार मरता है यानी जितनी बार डरता है उतनी बार मरता है। रुपये, सत्ता, मौज शौक आदि जो मनुष्य के अहंकार को बढ़ाते हैं उससे मानो जीवन बढ़ता हो ऐसा लगता है पर मृत्यु का प्रसंग आने पर फिर डर शुरू हो जाता है। ऐसी माया में कईयों का जीवन शुरू होता है और कईयों का जीवन पूरा होता है। अधिक प्रवृत्ति से थके हुए मनुष्य को थोड़ी फुर्सत मिले तो उसे सिनेमा देखने की इच्छा होती है और कोई खेल अच्छा लगता है या तो गपशप करना अच्छा लगता है, पर उसे अकेले रहना अच्छा नहीं लगता। यह एक प्रकार का मानसिक रोग है। एक दिन सबको छोड़कर अकेला जायेगा इस बात को वह भूल जाता है। मनुष्य को फुर्सत की जरुरत है और फुर्सत के समय का आत्मज्ञान के लिए कैसे उपयोग करना उसको जानने की जरुरत है। प्रवृत्ति की जरुरत है और सच्ची एवम् अच्छी प्रवृत्ति कैसे हो उसे जानने की भी जरुरत है। यदि जीवन का सारा समय सिर्फ खाने-पीने और माया के सुख में व्यतीत हो तो वह जीवन केवल पशु के समान होता है।

माया की व्याख्या ठीक तरह से करें तो नीचे बताये अनुसार दो प्रकार की माया दिखाई देती है।

1) गुण-दोषवाली माया : इसके परिणाम से रागद्वेष होता है और मनुष्य नीति और अनीति के सिद्धांत को ठीक तरह से नहीं समझ सकते।

2) देशकाल की माया : अगर हमारा किसी के प्रति रागद्वेष न हो पर उन दूसरे मनुष्यों को अपने से अलग देखते है तो इसे देशकाल की माया कहते है।

ठीक तरह से कर्मयोग को साधना हो तो दोनों प्रकार की माया का स्वरूप समझने की जरुरत है। प्रथम माया का विचार इस प्रकरण में लिया है, और दूसरी माया का विचार आगे के प्रकरणों में लिया है।

ऊपर बताये अनुसार सत्त्वगुणी मनुष्य उपदेशमात्र से सुधरते है, और वो ब्रह्मज्ञान की ओर मुड़ जाते है।

रजोगुणी मनुष्य फल की आशा से कर्म करते है, पर जो तमोगुणी स्वभाव के है उन पर उपदेश का कोई असर नहीं होता। जो तमोगुणी गुंडे जैसे हो जो दूसरों को चोट पहुँचाते या मारते हो उनको सुधारने के लिए भयानक साधनों की जरुरत पड़ती है। उनके लिए पुलिस की या तो लश्कर की जरुरत पड़ती है, इसलिए उनके लिए राजसत्ता का उपयोग करना पड़ता है। वे अहिंसा का पालन नहीं कर सकते। इसलिए उन को थोड़े समय के लिए समाज से अलग करने की जरुरत है।

इस प्रकार से समाज में तीन प्रकार के मनुष्य होने के कारण सबके लिए एक ही प्रकार के नीति नियम नहीं बना सकते है। अभी के समय में बस्ती (आबादी) बहुत बढ़ रही है, उनमें अज्ञानी मनुष्यों की बस्ती ज्यादा है। उनको अपने जीवन के हेतु का पता नहीं है। और महँगाई के कारण उनके जीवन का ज्यादातर समय सिर्फ खाने पीने की चीजों को पाने में ही चला जाता है। पाठशालाओं में और कॉलेज में जो ज्ञान दिया जाता है वह केवल जगत के विषय में ही होता है, आत्मा के विषय में या ईश्वर के विषय में वह ज्ञान नहीं होता है। गत दो महायुद्ध गलत ज्ञान का परिणाम था। ऐसी शिक्षा का असर ये हो रहा है कि मनुष्य स्वयं सही तरह से विचार नहीं कर सकता है। केवल धन और सत्ता ये ही मानो जीवन का लक्ष्य हो ऐसा मान बैठा है। मनुष्य जड़ वस्तु से प्रेम करने में दूसरे जीव से प्रेम करना भूल गया है। ऐसी विद्या से सभी देशो में इच्छा और डर बढ़ गये है।

शिक्षा ऐसी होनी चाहिए की जिससे जीवन का हेतु ठीक तरह से समझ में आ जाय। धर्म ऐसा होना चाहिए कि जो मनुष्य को परमात्मा के साथ एक कर दे। गीता में तीन प्रकार के ज्ञान बताये है वो निम्नलिखित है :

1) जिस ज्ञान से सब में एक परमात्मा रहते है ऐसा लगता है वो सच्चा ज्ञान है।

2) जिस ज्ञान से भेद दिखता है और भेद बढ़ता है उसे झूठा ज्ञान कहते है।

3) जिस ज्ञान से कोई एक काम में आसक्ति हो जाय और जीवन का हेतु का पता न चले और सत्य समझ में ना आये उसे बहुत ही झूठा ज्ञान अथवा तमोगुणी ज्ञान कहते है।

यदि सच्चा ज्ञान न मिले तो जीव झुठी इच्छाओं के वश हो जाता है और अनीति में पड़ता है। यदि धर्म का सच्चा हेतु समझ मे न आये तो धर्म प्रेम पैदा करने के बदले झगड़े करवाता है। इसलिए मनुष्य को दूसरे पर शासन करने से पहले खुद के स्वभाव पर शासन करना सीखना चाहिए।

अब विज्ञान ने ऐसी खोज की है कि उसका दुरुपयोग किया जाय तो सम्पूर्ण मानव जाति को खत्म कर सकते है और सदुपयोग करे तो मनुष्य को ज्यादा फुरसत मिल सकती है और उसका उपयोग ज्ञान प्राप्त करने के लिए कर सकते है। एटम बम से जो प्रकाश निकलता है वह एक सेकण्ड में 1, 86, 000 मील की रफ़्तार से जाता है। अपनी पृथ्वी की परिधि सिर्फ 25, 000 मील है, इसलिए अगर एटम से निकलती हुई शक्ति के ऊपर ठीक तरह से नियंत्रण नहीं रख पाये तो वो सम्पूर्ण पृथ्वी को जला

सकती है। इसलिए सब देशों में अच्छे संस्कार फैलाने की जरुरत है। उसके लिए नीचे बताये हुए दो उपाय लेने चाहिए।

1) सामान्य मनुष्य को व्यवहार में अनीति कैसे दूर हो और नीति कैसे बढ़े ये समझाना आवश्यक है।

2) जो सात्त्विक वृत्ति में होने के बावजूद अज्ञान में हो उनको अज्ञान से हटाकर सच्चे ज्ञान की तरफ मोड़ना चाहिए।

जिस शहर में बड़े बड़े मकान हो और जिस देश में साइन्स के बड़े अविष्कार होते हो वह बड़ा देश नहीं है। पर जहाँ अच्छे संस्कार वाले थोड़े साधू झोंपड़ी में रहते हो तो भी वो बड़ा शहर है। हर प्रकार के मनुष्य के लिए एक ही प्रकार का कर्त्तव्य नहीं रख सकते है, पर हर एक मनुष्य को खुद का कर्त्तव्य निस्वार्थ भाव से किस तरह निभाना ये सिखाना चाहिए। और प्रत्येक मनुष्य को धीरे धीरे संयम किस तरह से विकसित करना ये समझाना चाहिए। रसिया की समाजव्यवस्था में कुछ अंश में समानता का झुकाव लागू हुआ है और प्रत्येक मनुष्य को सबकी सेवा में भाग लेना चाहिए, ऐसा वहाँ समझाया जाता है, फिर भी संयम कैसे अपनाये और आत्मज्ञान कैसे पाया जाय उस विषय में कुछ भी दिखाई नहीं देता। केवल लोगों की आर्थिक स्थिति कैसे सुधरे उस तरफ ध्यान दिया गया है। आर्थिक समानता का आधार नीति के ऊपर होता है और नीति का आधार सच्चे ज्ञान के ऊपर होता है। अगर वे सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं करेंगे तो उनकी मानी हुयी नीति इस प्रकार की हो जायेगी कि वे दूसरों के राज्य हड़प लेंगे। जो मनुष्य विचारों से नहीं सुधरते है उनको सुधारने के लिए युद्ध आते है। अगर किसी देश को अपने लश्कर के निर्वाह के लिए करोड़ों रुपयों का खर्च करना पड़ता हो तो वह देश सच्ची शिक्षा के लिए खर्च नहीं कर सकते।

प्राचीन काल में सिर्फ क्षत्रिय ही लड़ते थे, पर अब अर्वाचीन काल में एक सम्पूर्ण प्रजा दूसरी सम्पूर्ण प्रजा से लड़ती है, इसलिए प्रत्येक मनुष्य को स्वयं के बचाव के लिए तैयार रहना पड़ता है। इसलिए वर्त्तमान काल में प्रत्येक मनुष्य को ब्राह्मण जैसा ज्ञान, क्षत्रिय जैसी वीरता, वैश्य जैसी आर्थिक बुद्धि और शुद्र जैसा सेवा भाव सीखना पड़ता है। इस तरह एक प्रकार का बिलकुल नए प्रकार का कर्मयोग अनिवार्य हो जाता है, पर उस कर्मयोग से आत्मज्ञान उत्पन्न नहीं होता। साधारण लोकसेवा करते वक्त कुछ अनात्मभाव के विचार बढ़ाने पड़ते है और उस विचार की पुष्टि के लिए दूसरे अनात्मभाव के विचार बढ़ाने पड़ते है, इससे भी आत्मज्ञान नहीं होता। जब आत्मज्ञान

नहीं होता तब नीचे बताये अनुसार ३ बड़ी इच्छाएँ उत्पन्न होती है।

1) स्त्री-पुत्र की इच्छा

2) धन की इच्छा

3) लोगो में प्रसिद्ध होने की इच्छा।

इन तीनों इच्छाओं को नियम में रखना ये बहुत मुश्किल काम है।

किस जीवन को श्रेष्ठ कह सकते है इस बारे में विचार करें तो नीचे बताये अनुसार समझ सकते है:

1) पत्थर आदि अचेतन पदार्थ से पेड़ आदि का जीवन श्रेष्ठ है।

2) पेड़ से भी स्वास लेने वाले प्राणी श्रेष्ठ है।

3) उनसे इंद्रियोवाले प्राणी श्रेष्ठ है।

4) इंद्रियोवाले में भी स्पर्श का ज्ञान रखने वाले से रस का ज्ञान रखने वाले श्रेष्ठ है, उन से भी गंध का ज्ञान रखने वाले श्रेष्ठ है, उनसे भी शब्द का ज्ञान रखने वाले श्रेष्ठ है और उनसे भी रूप का ज्ञान रखने वाले श्रेष्ठ है।

5) उनसे भी जिनमें दोनों तरफ दाँत होते है वे जीव श्रेष्ठ है।

6) उनसे भी ज्यादा पैर वाले श्रेष्ठ है और उनसे भी चार पैर वाले श्रेष्ठ है।

7) चार पैर वालो से दो पैर वाले जीव श्रेष्ठ है।

8) दो पैर वाले मनुष्य में ब्राह्मण(याने की संयम वाला) श्रेष्ठ है।

9) ब्राह्मण में भी वेद जाननेवाला श्रेष्ठ है।

10) वेद जाननेवाले ब्राह्मण से भी वेदों का तात्पर्य जानने वाले श्रेष्ठ है।

11) ऊपर के ब्राह्मणों से भी सबके संदेह दूर करने वाला ज्ञानी उत्तम है।

12) ऐसे ज्ञानी में भी वैराग्यवान, ज्ञानपूर्वक निष्कामकर्म करनेवाला उत्तम है।

13) उससे भी अपने कर्मों के फल और अपना चित्त भगवान को अर्पण करनेवाला श्रेष्ठ है, याने कि जिसकी निष्ठा ज्यादा हो और जो स्थितप्रज्ञ हुआ हो वो अतिउत्तम है । ऐसे पुरुषों से उत्तम दूसरा कोई नहीं । ऐसे पुरुष साक्षात नारायणस्वरूप हैं।

वर्त्तमान समाज में ज्यादातर भाग 7 नंबर तक ही अटक जाता है और नीतिवाले मजदूर होने की इच्छा रखते है। हिंद के इतिहास में अधिक क्षत्रियों की, राजाओं की या तो लड़ाई की बातें नहीं आती, पर जिन साधुओ ने संयम पालकर प्रभु के नजदीक पहुँचने का मार्ग खोजा है उनका इतिहास यहाँ मिल सकता है। ये हिंदुस्तान का सच्चा

धन है। इन संस्कारों को ठीक तरह से बनाए रखे तो वे सब देशों के लिए उपयोगी हो सकते है। छोटे अहंकार में से निकलकर कौम के अहंकार में आने से अथवा देश के अभिमान में आने से भी अहंकार के क्षेत्र में जीव अटक जाता है। वह मनुष्य माया को नहीं तर सकता। सच्चा धर्म मनुष्य को सब प्रकार के अहंकार से छुड़ाता है। इन्द्रियों के झूठे सुख में अटक जाने से सभी दुःख उत्पन्न होते है, उसमें देह का अभिमान बढ़ता है। अगर मनुष्य कर्म न करे तो वह आलसी और निष्क्रिय बन जाता है ऐसी मान्यता को लेकर बहुत से लोग अनेक प्रकार के कर्म में लग जाते है। हर एक स्वयं की कर्म पद्धति को कर्मयोग कहता है, पर ऐसे कर्म में अनात्मा के प्रत्यय बढ़ते है कि आत्मा के प्रत्यय बढ़ते है ये देखना खास जरुरी है। अगर आत्मा के प्रत्यय बढ़ते हो और आत्मसाक्षात्कार हो ऐसी वृत्ति उत्पन्न होती हो, तो उसे कर्मयोग मानने में कोई हरकत नहीं। सौ वर्ष पहले लोगों के जीवन पर धर्म का अंकुश था, इसलिए वे लोग नीति में रहते थे। अभी के विज्ञान की खोजने जो सांसारिक भोग की व्यवस्था दी है उससे धर्म का अभ्यास कम हो गया है, इस से नीति के लिए जरुरी अंकुश नहीं रहा और उसकी जगह अन्य प्रकार की भिन्न भिन्न मान्यतायें लोगो के अंदर घुस गयी है।

हम अगर भगवान के लिए कर्म करते हो तो दूसरों को हमारे कर्म के द्वारा हम से भगवान मिलने चाहिए। पर दूसरों को अपनी प्रवृत्ति से विषय सुख मिलता हो तो ऐसी प्रवृत्ति से जीवन का विकास नहीं होगा। अपने जीवन में सच्चा झगड़ा एक कौम और दूसरी कौम के बीच नहीं, पर हलके स्वभाव और उत्तम स्वभाव के बीच में है। और ये झगड़ा भी दो प्रकार का है, एक नीति और अनीति के बीच है और दूसरा ज्ञान और अज्ञान के बीच में है। नीति सापेक्ष होने से समाज में पहले झगड़े का अंत नहीं आता। प्रत्येक नीतिमान मनुष्य को स्वयं को अच्छी लगे वह नीति जगत में फैलाने की इच्छा होती है। लेकिन ज्ञान और अज्ञान के बीच झगड़े का ठीक तरह से सामना किया जाय तो उसका अंत आ सकता है। क्योंकि ज्ञान से समझने की वस्तु ब्रह्म है उसके पहले या उसके बाद में कोई उत्तम तत्त्व नहीं है। ऐसे मार्ग में अच्छे संस्कार वाली विद्या कला उपयोगी होती है।

श्री मद्भागवत के छठवें स्कंध में ऐसी बात आती है कि दक्ष प्रजापति ने अपने पुत्रों को प्रजा की कि वृद्धि करने की आज्ञा दी। इसलिए पहले वे इसके लिए तप करने गये। वहाँ उनको नारदजी मिले। नारदजी ने उनको कहा कि कुछ महत्त्व की बातें समझे बगैर संसार चलाना ये हार जाने के बराबर है। जिस देश में एक ही पुरुष है उस

देश को तुम जानते हो ? पृथ्वी का अंत जानते हो ? जिस गुफा में से निकलने का मार्ग न हो उस गुफा को आप जानते हो ? पचीस पदार्थों से बने हुए घर को तुम जानते हो ? ऐसी जरुरी बातों को समझे बगैर आप संसार किस तरह चलाओगे ? इन प्रश्नों के अंदर जो अर्थ समाया हुआ था उसके अनुसार उन पुत्रों के मन में निम्न प्रकार के विचार आये :

1) ये जीव नाम का लिंग शरीर है यही पृथ्वी है, उसका आत्मा के साथ बंधन है, उसका अंत देखे बगैर दूसरे कार्य में लगे रहने से क्या लाभ ?

2) सब अवस्थाओं के साक्षी, स्वयं के आश्रय में रहने से और प्रकृति से अतीत एक ही ईश्वर है। उस नित्ययुक्त परमात्मा को देखे बिना दूसरे असत्कार्यों से क्या लाभ ?

3) जिसको प्राप्त करके पुरुष का फिर से जन्म नहीं होता उसको जाने बगैर दूसरे कर्म व्यर्थ है।

4) यह गुणमय बुद्धि व्यभिचारी है, उसका अंत जानना चाहिए। यह बहुरूपिणी बुद्धि के संसर्ग से ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर, उसकी सुख-दुःख रूपी गति को प्राप्त हुए जीव को जाने बिना इस संसार के दूसरे कर्म से क्या लाभ ?

5) मायारूपी नदी कि जो इस लोक और परलोक रूपी दोनों किनारों से बहती है, उसे जाने बगैर दूसरे असत् कर्मों से क्या लाभ ?

6) अंतर्यामी पुरुष २५ तत्त्वों के आश्रय रूप होते है। उसे जाने बगैर दूसरे असत् कर्मों से क्या लाभ ?

7) जिन शास्त्रों से बंध और मोक्ष का विवेक होता है ऐसे ईश्वरप्रतिपादक शास्त्रों को छोड़कर और जड़-चेतन का ज्ञान प्राप्त किये बिना बहिर्मुख कर्मों से क्या लाभ ?

8) शास्त्र पिता तुल्य है। उनकी जो निवृत्तिकारक आज्ञा है उसे जो नहीं जानते वो माया के गुणों में रमने वाले पुरुष को किस तरह से निवृत्ति मिल सकती है और सच्चा सुख मिल सकता है ?

ऐसे विचार करके उन पुत्रों ने सन्यास धारण किया और फिर घर वापस नहीं गये।

भेदभाव दूर करना ये सच्ची विद्या का काम है। कुछ भेद सेवा से दूर होता है, कुछ दान से दूर होता है, पर सब भेद दूर करना हो तो भक्ति और ज्ञान से हो सकता है। जिसका अंतःकरण शुद्ध हो वही भक्ति और ज्ञान की बातों को समझ सकता है।

जो रजोगुणी स्वाभाव के हो वे पुण्य के लिए सेवा करते है और तमोगुणी मनुष्य राज्य के डर से सेवा करते है। व्यापारी दान देकर भेद कम करता है। विद्वान वर्ग भक्ति और ज्ञान समाज में फैलाकर भेद दूर कर सकता है। किसी भी तरह से भेद दूर किये बगैर सुख मिलने वाला नहीं। ये ही कर्मयोग का रहस्य है। अगर विचारों में भेद होगा तो कर्मों में भेद रहेगा। मनुष्य के मन में और विचारों में प्रथम द्वंद्व शुरू होता है। कितनी बार खुद की मान्यता सच्ची है ऐसा लगता है पर वह मान्यता टिक नहीं सकती। क्योंकि बाद में उसके अंदर की गलतियों का पता चलता है, इसलिए प्रथम अपनी मान्यता को ठीक करना अत्यंत जरुरी है।

जो आगे बढ़े है उनका अनुकरण पीछे वाले करते है। जब किसी देश में धनवानों को बहुत मान मिलता हो तब उस देश के लोगों को धनवान होना अच्छा लगता है। जब कौमी नेता पूजा जाता है तब वैसा होना अच्छा लगता है। और जब साधू ज्यादा पूजे जाते है तब लोगों को साधू जैसा होना अच्छा लगता है। जब सेवक को मान मिलता हो तब कईयों को समाज सेवक बनना अच्छा लगता है। इन प्रकारों में हमें अपने जीवन का लक्ष्य क्या है वो नहीं भूलना चाहिए। सिर्फ चीजें इकट्ठी करने से मनुष्य का जीवन उत्तम नहीं होता। अगर चीजों से सुख मिलता हो तो चीजें न हो तब दुःख होना चाहिए, याने नींद में जब कोई चीज नहीं होती तब दुःख होना चाहिए। और पैसेवाले अमीर लोगों के पास बहुत प्रकार की चीजें होती है फिर भी उसके प्रमाण में वे सुखी हो ऐसा लगता नहीं है। इसलिए सुख का ज्यादातर आधार मनुष्य की प्रकृति के ऊपर है। उस प्रकृति के ऊपर जितना संयम बढ़ता है उतना सुख बढ़ता है। और संयम न हो तब चीजें पाने के लिए एवं इंद्रियों को सुख देने के लिए जहाँ तहाँ भागना पड़ता है।

सिनेमा और न्यूसपेपर वाले भी सच्चा क्या है उसकी ओर ध्यान नहीं देते, अपितु कैसे लेख लोग पसंद करेंगे और उनको आकर्षित करेंगे उस ओर अधिक ध्यान देते है। अधिक लोगों को परिवार का सुख, पैसे और कीर्ति अच्छी लगते है, इसलिए न्यूसपेपर और सिनेमा वैसी घटनाओं की ओर अधिक ध्यान देते है। इसके अलावा सायन्स की कुछ खोजों से इन्द्रियों के भोग की सामग्री में वृद्धि हुई है भोग की शक्ति भी बढ़ाई है। इसलिए ऐसे भोग की मर्यादा नहीं रही। अंत में अति भोग से मनुष्य बीमार होकर अशक्त होता है और मन भी कमजोर होता है।

धर्मगुरु भी राज्यसत्ता के बिना समाज में कोई खास बदलाव नहीं ला सकते।

राज्य की सत्ता भोगनेवाले सत्ताधीशों के लिए और समाज में अच्छे संस्कार फ़ैलाने के लिए धर्मगुरुओं की सहायता की जरुरत पड़ती है।

अतः राज्य को चाहिए की साधुओं को सहयोग करे। देशी राज्यों में राजाओं को उनकी प्रजा 'गौ ब्राह्मण प्रतिपाल' कहती थी। अर्थात् गौओं और विद्वानों की रक्षा करना उनका पहला और आवश्यक कर्तव्य था। गाय घास खाती है और बदले में दूध देती है। साधु भी समाज से थोड़ा लेते है (क्योंकि उनको परिवार या बच्चे नहीं होते) और बदले में सच्ची शिक्षा देते है; अतः समाज सुधार के लिए गौओं और साधुओं की रक्षा की विशेष जरुरत है। स्व.लोकमान्य तिलक ने एक स्थान पर कहा है कि 'यदि मैं सुधार की अधिकार काउंसिल में जाऊं और वहाँ मुझे शिक्षा का विभाग दिया जाय तो सबसे पहले मैं हमारी प्राचीन संस्कृति के पुराण पढ़ने वाले (कथाकार), प्रवचनकार और कीर्तनकारों की पुरानी संस्थाओं को उन्नत करवाकर प्रवचन, कीर्तन इत्यादि के द्वारा धर्म का प्रचार करने वाली पुरानी संस्थाओं को विकसित करूँगा;और शिक्षित, संस्कृत और स्वार्थत्यागी युवानों को पुराण पढ़ने वाले, प्रवचनकार और कीर्तनकार की पदवी देकर देश के छोटे-बड़े गाँवों में धर्म के उपदेशक और प्रचारक के रूप में भेजूंगा उसके साथ साथ वर्त्तमान स्थिति का भी ध्यान रहे इस तरह से लोकजागृति का काम भी करूँगा। '(लोकमान्य की आख्यायिका खण्ड, २, पृ.८३)

जीवन एक कला है और कला की बहुत बड़ी महिमा है। कभी कभी जूठी कला भी हमारे जीवन में उच्च भावना पैदा कर सकती है। भक्त चरित्र के नाटक झूठे होते है, भक्तों की सिनेमा भी झूठी होती है फिर भी भक्ति उत्पन्न करते है। और कोई नटी की कला देखने में सावधान नहीं रहे तो मनुष्य में पशु जैसी वृत्ति जाग्रत हो सकती है। अतः खराब वृत्ति उत्पन्न हों ऐसी कला से दूर रहना सीखना चाहिए। अच्छी कला मनुष्य के आत्मा को जाग्रत करती है। सच्चा भोक्ता कला में अपने आत्मा को देखता है, झूठा भोक्ता कला का भोग्य बन जाता है एवम् काम और क्रोध उसके भोक्ता बन जाते है। जैसे सच्चा सुख भोगने की कला है वैसे ही मिथ्या सुख छोड़ने की भी कला है।

जो लोग सदगुणों को विकसित किये बिना अथवा सदाचार का विकास किये बिना जल्दबाजी में लोकसेवा के कार्य में प्रवृत्त हो जाते है वे कर्मयोगी नहीं हो सकते। और थोड़े ही समय में सेवा से ऊब जाते है। हमारे देश का युवा वर्ग धर्महीनता की और जा रहा है। उसके उपाय करने की आवश्यकता है। श्री अरविन्द लिखते है कि

'हमारी वृत्ति में एक ऐसा चैतन्य छुपा हुआ है कि वह आत्मा के नित्य स्वरूप को प्रकट करने की चाह रखता है। वह चैतन्य किसी क्षुद्र मनकी भावनामें अथवा एक ही नीति के नियम में बंधा रहे वैसा नहीं है। जब मन के ऊपर के क्षेत्र का अर्थात् आत्मा का ज्ञान मिलता है तब सभी प्रकार के भेद के संघर्ष का सच्चा रहस्य समझ में आता है।'

युवा वर्ग में देह को मैं मानने की अर्थात् देह मैं हूँ ऐसी भावना दृढ़ है और उससे कई लोग सिर्फ देह को सुख देनेवाली प्रवृत्ति को प्रमुख प्रवृत्ति मानतें है, पर जिनकी इच्छा जीवन को उन्नत करने की हो उन्हें अपना जीवन साधारण मनुष्य के जीवन से विलक्षण बनाना ही पड़ेगा।

सच्चा कर्मयोग उसे ही कहा जाता है जो मनुष्य के संस्कारों को उत्तम गति दे सके। जिस इतिहास में सिर्फ लड़ाई की बातें आती हो वह सच्चा इतिहास नहीं है। सच्चा इतिहास संस्कारों को अच्छे बनाने का मार्ग बतलाता है। ऐसे प्रयोजन से रामायण, महाभारत और पुराणों की रचना की गयी है। वह इतिहास मनुष्य को पशु जैसा बनने से बचाता है। और प्रभु के पास पहुँचने में उसे सहयोग करता है। अच्छे लेखक मनुष्य जीवन का लक्ष्य कैसा होना चाहिए उस ओर समाज का ध्यान खींचते है। यदि लोगों को असत्य पसंद हो, लड़ाई पसंद हो तो उन्हें दूर करना मुश्किल हो जाता है, फिर भी उसे रोकने के लिए विद्वान पुरुष प्रयास करते हैं।

अतः वर्तमान समय में नए एटम बम बनाने की जरुरत नहीं है, अपितु नई शिक्षा की आवश्यकता है जिससे मनुष्य उपरोक्त दो प्रकार की माया से निकल पाये। इतिहास और भूगोल विषयक हमारे ज्ञानमें कितनी और कैसी गलतियाँ है उसे बाद के अन्य प्रकरणों में विज्ञान की दृष्टि से विस्तारपूर्वक समझाया गया है।

जब तक इन्द्रियों के सुख में ही मनुष्यों के चित्त लगे रहेंगे तब तक समाज की मुसीबतें बढ़ती जायेगी। मनुष्य के जीवन में सादगी, संयम और आत्मविचार की जरुरत है। उसकी प्राप्ति हो ऐसे कर्मों को कर्मयोग कह सकते है। मनुष्य के दुःख उसके स्वनिर्मित होते है फिर भी उसको इस बात का पता नहीं चलता, उसका कारण माया है। स्वप्नमें हम अपने लिए दुःख और भय उत्पन्न करते हैं, पर जैसे उस समय गलती का पता नहीं चलता वैसे ही जाग्रत की माया भी मनुष्य को ऐसे ही भुलावे में डालती है।

वर्त्तमान में जिसको विकास कहा जाता है उसमें आत्मज्ञान के लिए पर्याप्त सुविधा नहीं है। इसलिए उसे कर्मयोग नहीं कह सकते। खूब पैसे कमाकर अच्छे

मकान में रहना अथवा अच्छी गाड़ी में घूमना यह सब समझना आसान है, पर उस मकान में रहनेवाले का स्वभाव अच्छा है कि नहीं उसे समझना हो तो अलग प्रकार की विद्या-कला का परिचय चाहिए। अपने स्वभाव से सुख भी उपजता है और दुःख का भी उद्भव होता है। यह बात बहुत कम लोग जानते है। साधारण लोग तो ऐसा मानते हैं कि सुख अथवा दुःख बाहर की चीजों से और बाह्य परिस्थितियों से उत्पन्न होते है, पर यह भूल है।

प्लेटो अपने 'रिपब्लिक' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में लिखते है:

'प्रपंची, रागद्वेष और कामवासना से तप्त, सत्तालोलुप, इस पृथ्वी का अहंकारी मनुष्य सामाजिक नियमों से नहीं सुधरेगा, राजतंत्र की शिक्षाप्रणाली से नहीं सुधरेगा। यदि उसमें परलोक का (काल का) भय उत्पन्न होगा, मनुष्य जीवन की क्षुद्र मर्यादा के उस पार के गूढ़ रहस्यमय अनंत अवतारों में विस्तीर्ण जीवन को समझेगा और यदि उसकी दृष्टि विशाल होगी तो ही मानव सुधार सम्भव है और समाज में नैतिक जीवन का गौरव बढ़ेगा।'

अतः समाज को मोक्ष नामक चतुर्थ पुरुषार्थ की भी आवश्यकता है और वह आदर्श समाज के सामने रखना चाहिए। कोई भी अच्छे आदर्श के बिना स्वतंत्रता मिले तो वह स्वतंत्रता निकम्मी है। मुडीवाद की स्वतंत्रता ने कईयों को लोभी बना दिया है। वकील लोभी होगा तो केस लंबा चलेगा, डॉक्टर लोभी होगा तो मरीज ठीक नहीं होगा, राजा लोभी होगा तो व्यापारी बनेगा। गुरु लोभी होगा तो सच्चा ज्ञान मिलेगा नहीं और मजदूर लोभी होगा तो वेतन के अनुसार काम नहीं करेगा। इसलिए वर्तमान समय में नीति अनीति का ठिकाना नहीं रहा और अनीति की बाढ़ आई हुई है। आज का कर्मयोग यानी अनीति से नीति में आना। सच्चा कर्मयोग मनुष्य को अज्ञान से ज्ञान में ले आता है। हमारे संसार में अनादिकाल से प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग चले आ रहे है। प्रवृत्तिमार्गी के लिए दो प्रकार की माया है (१) रागद्वेष की माया (२) देश काल की माया। दोनों प्रकार की माया को जीतना पड़ेगा, इसलिए उनको दुगुना पुरुषार्थ करना पड़ेगा। जो निवृत्तिपरायण जीवन व्यतीत करता हो और नीतिपूर्वक रहता हो उसके लिए सिर्फ देशकाल की माया को जीतकर ज्ञान प्राप्त करने का ही पुरुषार्थ है। आज के समय में प्रवृत्ति का अधिक जोर है और उस प्रवृत्ति में अज्ञान समाविष्ट होने के कारण लोग काला बाजार करने को नीति मान बैठे हैं और निर्दोष लोगों को मारकर जानमाल का विनाश करते हैं।

कोई एक व्यक्ति दूसरे की हत्या करता है तो समाज में उस कर्म को बहुत क्रूर माना जाता है, लेकिन जब देश के लिए अथवा कौम के लिए ऐसी क्रूरता की जाती है तब उस देश के अथवा कौम के लोग कभी कभी खूनी की सराहना करते हैं। यह एक मुसीबत समाज में उत्पन्न हुई है और इससे नीति के सिद्धांतों को झटका लगता है।

मनुष्य जीवन ही ऐसा है कि कई बार दो तीन कर्तव्य एक साथ उत्पन्न होते है: जैसेकि-

१. परिवार के प्रति कर्तव्य और कौम के प्रति कर्तव्य।

२. कौम के प्रति कर्तव्य और देश के प्रति कर्तव्य।

३. अपने देश के प्रति कर्तव्य और सब देशों के मनुष्यों के प्रति कर्तव्य

४. मनुष्य के प्रति कर्तव्य और सब प्राणियों के प्रति कर्तव्य।

उसमें भी एक परिवार में सास और बहु का झगड़ा हो तब मनुष्य का क्या कर्तव्य है ? माँ ने बचपन से पालन करके बड़ा किया और स्त्री मायके में सभी रिश्तेदारों को छोड़कर सिर्फ एक पति के आश्रित होकर ससुराल आती है। ऐसे समय में कैसी नीति ग्रहण करनी चाहिए। साधारण परिस्थितियों में नीति-अनीति स्पष्ट समझमें आती है, परंतु जब दो तीन परिस्थितियाँ एक साथ आती है तब जिस व्यक्ति का लक्ष्य ऊँचा हो अथवा जिनको अपने लिए असुविधा को सहन करने की आदत हो गई हो वे ही ऐसी परिस्थिति में मार्ग निकाल सकते है। यदि खुद को देह की सुविधा चाहिए तो जीवन में अनेक अच्छे बुरे प्रसंग उत्पन्न होने से उसका हल नहीं निकाल पायेंगे। अतः साधारण मनुष्य के लिए नीति में रहने के लिए इस प्रकार के सिद्धांत काम में आ सकते है :

१. जिन कर्मों से भेद बढ़े वे दुराचार है, जिन कर्मों से एकता की वृद्धि होती है वे सदाचार है, फिर भी व्यवहार में थोड़ा भेद रखे बिना नहीं चलता, इसलिए यथासंभव सात्त्विक प्रवृत्ति में रहना चाहिए।

२. विवाह होने के बाद तुरंत भगवान को प्रार्थना करनी चाहिए जिससे पशुभाव बढ़े नहीं। और ऐसी प्रार्थना नित्य करनी चाहिए।

३. अपनी कमाई का अमुक हिस्सा दान के लिये नियमित उपयोग करना।

४. इन्द्रियों का दमन करना सीखें।

५. अपने धर्मशास्त्रों का अभ्यास करना।

६. मन, वाणी और कर्म से किसी को कष्ट न देना।

७. सत्य बोलना।

८. अधिक परिग्रह (संचय) नहीं करना।

९. सबसे मिलजुल कर रहना।

१०. चित को शांत रखना।

११. प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखना।

१२. कष्ट के समय धैर्य रखना।

१३. शत्रु के प्रति भी द्वेष नहीं रखना।

१४. पवित्रता रखना।

१५. माता-पिता, गुरु एवम् बुजुर्गों का सन्मान करना।

१६. वाणी में और भाषा में विवेक रखना।

१७. आलस्य नहीं करना।

१८. ब्रह्मचर्य का पालन करना।

१९. भोजन में मिताहारी होना।

२०. खुद को कोई दुःख देता है तो अच्छा नहीं लगता। अतः दूसरों को दुःख हो ऐसे कर्म नहीं करने चाहिए।

२१. पूरे दिन का समय ठीक से व्यतीत करने हेतु टाईमटेबल तैयार करना।

२२. जो मेरा है वह अच्छा और सच्चा है ऐसा न मानकर जो अच्छा और सच्चा है वह मेरा है ऐसा मानना अर्थात् अच्छे और सच्चे कर्म करना।

२३. प्रतिदिन किसीकी सेवा के एक या अनेक कार्य करना, ऐसा प्रसंग न मिलने पर सभी के कल्याण की प्रार्थना करना।

२४. स्वयं अमानी रहकर दूसरों को मान देना।

२५. अहिंसा का पालन करना।

२६. जन्म, मृत्यु, वृद्धत्व और व्याधि से उत्पन्न होनेवाले दुःख का विचार करके भक्ति में आगे बढ़ना।

२७. अज्ञानी और अनीतिवाले मनुष्यों का संग यथासंभव कम करे।

हमारे देश में उपरोक्त दैवी संपत्ति को सच्ची संपत्ति अथवा प्रमुख संपत्ति मानी गयी है धन को नहीं। उपरोक्त नीति जितनी समझना सरल है उतना उसका पालन करना सरल नहीं है। अतः सभी देशों के समझदार मनुष्यों के लिए साधारण लोगों को नीति के मार्गपर लाने में बड़ी कठिनाई होती है।

इच्छा और भय का त्याग करना, निंदा और स्तुति में सम रहना अति कठिन कार्य है। एक बार एक उद्धत मनुष्य ने सॉक्रेटीस को उनके मित्रों के सामने लात मारी। इस अपमान को सॉक्रेटीस ने चुपचाप सहन कर लिया। यह देखकर एक मित्र को आश्चर्य हुआ। सॉक्रेटीस को पूछने पर उन्होंने कहा : 'कोई गधा मुझे लात मारे तो भी मैं कोर्ट में न्याय माँगने जाऊँ ऐसा आप कहते हो ?'

मान और प्रतिष्ठा कईयों को मीठे लगते है और इसलिए सब बातों में 'मैं समझदार' ऐसा बताने की साधारण मनुष्य में वांछा रहती है। अहिंसा के सिद्धांत का विचार किया जाय तो उसमें भी मतभेद रहता है। जिसे ब्रह्मज्ञानी बनना हो उसे सभी प्रकार से अहिंसा का पालन करना चाहिए, परंतु क्षत्रिय होने के नाते अपनी या परिवार की रक्षा करने के लिए मारने आनेवाले शत्रु का सामना करना भी अहिंसा है। क्षत्रिय देश को जीतना पसंद करते है और ब्रह्मज्ञानी काल को जीतना पसंद करते हैं। देश को जीतने के लिए अन्य लोगों की सहायता चाहिए लेकिन काल को जीतने के लिए मनुष्य को स्वयं खुद अकेले ही सारा पुरुषार्थ करना पड़ता है। इन कारणों से हिंदुस्तान में पहले इतिहास सिखाने पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता था। हमारे देश में इतिहास की अधिक पुस्तकें उपलब्ध नहीं है। जो लोग इतिहास के बारे में बहुत जानकारी प्राप्त करते है और न्यूज़ पेपरों में प्रसिद्ध होनेवाली घटनाओं में अधिक रुचि रखते हैं वे काल को सच्चा मानते है इसलिए काल को नहीं जीत सकते। समाज के साधारण जीवन में और समाज की सेवामें एक अपूर्ण जीव का दूसरे अपूर्ण जीव से संबंध होता है। भक्ति में और ज्ञान में अपूर्ण जीव का पूर्ण परमात्मा से संबंध होता है। इसीलिए आगे बढ़ने की चाह रखनेवालों को साधारण मनुष्यों के कानून अनुकूल नहीं लगते। पुराने कानून का भंग करने की आवश्यकता हो तबभी लक्ष्य ऊँचा होना चाहिए। अतः माया को जीतने के लिए काफी सावधानी की आवश्यकता है। कर्मयोग के नामपर संगदोष में आकर हल्के भाव न आये इसके लिए सावधान रहने की आवश्यकता है। यदि बचपन से अच्छे संस्कार नहीं पड़े हो तो बड़ी उम्र में बहुत कठिनाई महसूस होती है। जब 'मैं शरीर हूँ' ऐसी बुद्धि होती है तब देह के सुख को आत्मा का सुख माना जाता है और उस भाव में अनेक प्रकार के क्लेश उत्पन्न होते हैं। नीतिमान लोग भी सब प्रकार के भेद दूर नहीं कर सकते, इसलिए आत्मज्ञान पाने की आवश्यकता है। श्री अरविन्द पूर्णयोग के सातवें प्रकरण में लिखते है, कि 'आत्मा की विशालता प्राप्त हो और सब से पूर्ण ऐक्य हो तब आत्मज्ञान स्थिर रहता है और दिव्य जीवन टिक सकता है।' मनुष्य

का जीवन ऐसा है कि पहले उसके भीतर इच्छा और आवश्यकता पैदा होती है, फिर नीति के अनुसार उसे पूर्ण करने की इच्छा होती है। फिर इच्छा के स्वरूप में और ज्ञान के स्वरूप में बदलाव आता है, उस समय अहंकार दूर करके आत्मा की ब्रह्मरूपता का अनुभव लेनेमें एक नया आनंद आता है, और नया कर्मयोग शुरू होता है, अर्थात् श्रवण, मनन और निदिध्यासन शुरु होता है। पृथ्वीपर समाज के लिए दिव्य जीवन तैयार करने हेतु श्री अरविन्द मानते है कि एक व्यक्ति में वह जीवन पूर्णता से आना चाहिए उसके बाद उसका असर समाजपर होगा।

साधारण संसार की अवस्था में ब्रह्मस्वरूप अनावृत अनुभव में नहीं आता। आत्मा अत्यंत निकट होते हुए भी संसार में कईयों को उसके लिए जरूरी समय नहीं मिलता। जहाँ द्वैत की बातें अधिक होती हो, द्वैत के विचारों का बाहुल्य हो एवम् देह और इन्द्रियों के सुखकी चर्चा होती हो वहाँ जीव और ब्रह्म का प्रत्यक्ष अभेद तुरंत अनुभव में नहीं आता।

सच्चा सुख सर्वात्म भाव प्राप्त करने से मिलता है। उपनिषद में आता है कि **'यो वै भूमा तत्सुखम्'** अतः पूर्ण ब्रह्मदशा प्राप्त करना प्रत्येक जिज्ञासु का मुख्य कर्तव्य है। उसके लिए प्रथम कुछ अंश में असंगभाव प्राप्त करना चाहिए।

कर्म ठीक ज्ञानपूर्वक किये जाय तो वे चित्तशुद्धि के द्वारा मुक्ति का कारण बनते है। गीता में भी आया है कि **'योगस्थ कुरु कर्माणि'** २-४८। यदि ज्ञानपूर्वक कर्म नहीं होंगे तो बंधन का कारण बनते है। कर्म की अवस्था जाग्रत अवस्था है। स्वप्न या सुषुप्ति में कर्म करने में जीव स्वतंत्र नहीं है। जाग्रत अवस्था में भी मैं और अन्य है – इस प्रकार के ज्ञानवाली अवस्था ज्ञानी पुरुषों को सच्ची नहीं लगती। क्योंकि ब्रह्मज्ञान से उस दशा का बाध हो जाता है। अतः ज्ञानी पुरुषों के कर्म भिन्न प्रकार के होते है। अंतरंग कर्मों के रूप में वे ब्रह्माकार वृत्ति से ज्ञाननिष्ठा बढ़ाते हैं। बहिरंग कर्म के रूप में वे सजातीय प्रवाह स्थिर करनेवाला उपदेश देते हैं अथवा सब को ईश्वर का स्वरूप मानकर सेवा करते हैं। उनको व्यवहारिक दशा में आना हो तो जैसे भगवान अवतार लेकर कर्म करते है उसी तरह ज्ञानी पुरुषों को भक्त की दशा में आकर कर्म करने चाहिए। भक्तिमार्ग की दृष्टि से वस्तु अनेक है फिर भी सभी में एक परमात्मा का वास है और सभी का जीवन एक सत्ता से चलता है। सृष्टि भगवान की बनाई हुई है, उसकी सत्ता से स्थित है और उसकी सत्ता से लय होती है। इसे सृष्टि-दृष्टिवाद कहते है। जिस भगवान की सत्ता से सभी प्रवृत्तियाँ चलती है, जिससे यह सारा जगत व्याप्त

है उसको अपने कर्म अर्पण करना-यही सच्ची पूजा और कर्मयोग है। वैसा करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

भक्त मानता है कि वस्तु अनेक है, जीव अनेक है लेकिन सत्ता एक है। अतः भक्ति बढ़ाने के लिए बार बार शरणभाव की जरुरत पड़ती है। यदि जीव में अहंकार आ जाय तो दो सत्ता अथवा दो भगवान जैसा हो जाय।

श्री रामकृष्ण परमहंस कहते थे कि माया की जाल में नहीं फंसने के लिए या तो नागमहाशय की नाईं अत्यंत छोटी मछली के जैसा (यानि दीन) बनना अथवा स्वामी विवेकानंद जैसे बहुत बड़ी मछली जैसा (यानि स्वयं को ब्रह्मरूप में देख सके वैसा) बनना। दोनों प्रकार की मछली माया के जाल में नहीं आती। दोनों ढंग से भगवदप्राप्ति होती है।

जीव स्वतंत्र हो तो भगवान स्वतंत्र नहीं रह सकते, भगवान स्वतंत्र हो तो जीव स्वतंत्र नहीं रह सकता, अतः जीव को भगवान ने आत्मरूप से स्वतंत्रता दी हुई है और शरीर रूपसे परतंत्रता दी हुई है। भगवान ने हिन्द को स्वतंत्रता दी फिर भी हिन्द के रक्षण के लिए चिंता क्यों हो रही है, ऐसा आक्षेप कोई भगवान के लिए कर सकते है। अब अगर भगवान सब का पूर्ण रक्षण करेंगे तो जीव को किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं रहेगी और जीव आलसी भी बन जायेगा। अतः जीव को देह भाव से परतंत्रता और आत्मभाव से स्वतंत्रता है। जितना देहभाव छूटता है और आत्मभाव जागृत होता है उतनी मुक्ति उसके अनुभव में आती है, अतः पुरुषार्थ रहता है। पुरुष अर्थात् चेतन के लिए रहना पुरुषार्थ है, बाकी सब प्रकृतिअर्थ है।

मंगलमय और आनंदमय भगवान के राज्य में अमंगल अथवा दुख की संभावना नहीं है। ऐसे सर्वात्मभाव में विश्वास रखना प्रथम कर्तव्य है। उस सिद्धांत में विश्वास न हो तब जो दशा उत्पन्न होती है वह माया की दशा है, उससे दुःख और अज्ञान उत्पन्न होते है।

द्वैत का अवलंबन लेने से चित्तवृत्ति में दूसरी वस्तु के गुण के अनुसार चेतना प्राप्त होती है और उसके अनुसार नया कर्तव्यज्ञान उत्पन्न होने से जो इन्द्रियों की क्रिया होने लगती है, उसे ही परधर्म कहते है। अतः अखंड अद्वैत वस्तु का चिंतन करना और उसके प्रतिकूल चिंतन नहीं करना कर्मयोग का प्रमुख साधन है। कर्म के समय कभी कभी कुछ अभिमान आने की संभावना रहती है। पर ज्ञानी का अभिमान पानी में खीची हुई लकीर के समान क्षणभर में दूर हो जाता है।

जब तक मैं और अन्य दिखते हैं तबतक अधिक प्रवृत्ति बढ़ाने से अधिक अज्ञान बढ़ता है। जब मैं और अन्य जैसा द्वैत नहीं दिखता तब थोड़ी सी प्रवृत्ति से भी बहुत अच्छा कार्य होता है। अतः अद्वैतभाव दृढ़ हुए बिना ज्ञान और कर्म की एकता ठीक से नहीं हो सकती। जिसको लड़ाई, झगड़े, दुःख आदि दिखते है और उसके विचार अधिक आते है उसकी दृष्टि भिन्न दिशा में चली जाती है। वह सर्वत्र विद्यमान परमात्मा का परिचय नहीं दे सकता। अतः एक अखंड परमात्म वस्तु में ध्यान रखकर कर्म करना है।

जिसकी दृष्टि एकदम दृश्य की ओर जाती है अर्थात् बाहर की परिणामी वस्तुओं की तरफ भागती है वह नित्य सत्य स्वरूप को समझ नहीं पायेगा। जहाँ जहाँ भेददृष्टि है वहाँ वहाँ लौकिक व्यवहार के लिए भेद आने की संभावना है, वह माया है। जिस परमात्मा का नित्य संबंध सभी कर्मों के साथ है, उसका परिचय अपने कर्मों के द्वारा मिलना चाहिए, उसके लिए प्रथम ज्ञान को ठीक कर लेना चाहिए।

हालांकि गीता में ज्ञानयोग (सांख्य) और कर्मयोग दोनों को समान माने हुए हैं फिर भी तीसरे अध्याय के आरंभ में अर्जुन ने ऐसा प्रश्न किया है कि यदि कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ है तो मुझे ऐसे घोर कर्म में क्यों लगाते हो ? यह प्रश्न दर्शाता है कि कर्म से ज्ञान अधिक अच्छा है। और फिर चौथे अध्याय में भगवान ने कहा है कि सभी कर्म ज्ञान में समाप्त होते है, तो वह ज्ञान कैसा है और मिथ्याज्ञान कैसा है उसका खुलासा आगे के प्रकरण में किया जायेगा।

सब भेद दूर करने के लिए देशकाल वाली माया के स्वरूप को समझना जरुरी है। यह माया ठीक से समझमें आये तो आत्मज्ञान का मार्ग खुल जाता है।

अहंकार अपने देह जितने क्षेत्र में जोर मारके रहता है। जिसकी थोड़े समय की आयु है वह जीव का सच्चा स्वरूप नहीं है। अतः अहंकार को दूर करने की आवश्यकता है। व्यवहार में उसके बिना काम नहीं चलता फिर भी वही अहंकार सुषुप्ति में चला जाता है और जाग्रत में उसपर अधिक निगरानी रखी हो और उसका सच्चा स्वरूप जो देश और काल से अतीत है वह जानने में आये तो जीव का सच्चा जीवन शुरू होता है। श्री रमण महर्षि कहते है कि “मैं” का मूल खोजो, वह जहाँ से उत्पन्न होता है वहाँ ध्यान लगाओ।

इस पुस्तक में गुणदोष की माया का अधिक विचार नहीं किया गया। यह कार्य तो जिसको भगवान के सी. आई. डी. (जासूस) के रूप में कार्य करना हो उसका है।

उच्च कोटि के मनुष्यों के लिए तो किसी के गुण दोष में नहीं पड़ना ये गुण है और गुण दोष में पड़ना ये दोष है। (भागवत-११-१९-४५) निम्न कोटि के लोगों के लिए संयोगों को बदलने की जरुरत है। संयोगों में बदलाव लाये बिना उनके जीवन ठीक नही हो सकते। अतः उनका आधार समाज की स्थिति पर रहता है। उच्च कोटि के लोग अपना मन बदल सकते है और किसी भी प्रकार के संयोगों में अपनी समता रख सकते है पर सब ऐसी दृढ़ता नहीं रख सकते। श्री रामकृष्ण परमहंस जैसे विरले पुरुष ही पूरा जीवन स्त्री के साथ रहकर ब्रह्मचारी रह सकते है, पर कई लोगों को ब्रह्मचर्य का पालन कराना हो तो स्त्री के साथ एकांत में नहीं रहना चाहिए। उन्हें अपने संयोग ऐसे बनाने चाहिए कि जिससे स्त्रियों से अधिक परिचय न हो। जो व्यवहारिक सत्ता में हों उन्हें सात्त्विक वृत्ति से रहना चाहिए और अच्छे संग में ही रहना चाहिए। समाज की समस्त रचनाओं का मुख्य हेतु धीरे-धीरे वैराग्य बढ़ाकर और अभ्यास का आश्रय लेकर आत्मज्ञान पाना है। वस्तुतः आत्मा ही एकमात्र जानने योग्य वस्तु है, परंतु उसमें कल्पित माया का आवरण कइयों को आड़े आता है। उस माया के स्वरूप का अधिक स्पष्टीकरण इसके बाद के प्रकरणों में किया गया है।

जिनको ऐसा लगता है कि पाँच इन्द्रियों से जो ज्ञान मिलता है वही सच्चा है वे आगे नहीं बढ़ सकते। जब तक सच्चे विचार की पद्धति नही मिलती तब तक सत्य मिलेगा नहीं। पश्चिम की व्यापारी ढंग की विद्या कला ने कई वर्षों तक अन्य देशों के संस्कारों को बिगाड़ा है। उन्होंने यदि कोई अच्छा काम किया हो तो वह सापेक्षवाद और तरंगवाद की खोज है। उस खोज से इतिहास और भूगोल पर बहुत असर पड़ता है क्योंकि उस खोज से देश और काल कल्पित हो गये हैं। उस खोज को ठीक से समझने के बाद मनुष्य को न्यूज़ पेपर पढ़ने में रूचि नहीं रहेगी, और इतिहास और भूगोल की घटनाओं में भी रूचि नहीं रहेगी। फलतः देश और काल को जीतना आसान हो जायेगा। उसके कारण देश और काल की माया को जीतने में सुविधा मिलेगी और उस माया को जीतने से गुण और दोष वाली माया को जीतने में भी सुविधा होगी। ऊपर कहे अनुसार मनुष्य जीवन का पहला झगड़ा नीति और अनीति के बीच है। पर सच्चा झगड़ा ज्ञान और अज्ञान के बीच है। ऐसा कोई गुण नहीं है जो अभेदबुद्धि से उत्पन्न न हो, ऐसा कोई दोष नहीं जो भेद बुद्धि से उत्पन्न न हो, तो भेद का कारण क्या है ? देश और काल। हमारे शास्त्रों में देश काल का खेल तीन अवस्थाओं के विचार से समझाया जाता था, अर्थात् जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में

देशकाल कैसे काम करते है उसके आधार पर माया समझायी जाती थी। और अभी भी वह रीत चालू है। प्रो.आईन्स्टाइन के सापेक्षवाद की खोज से सिर्फ जाग्रत अवस्था के अनुभव के दृष्टान्तों को लेकर देश और काल को सापेक्ष बना सकते है। यह एक आश्चर्य कारक नई खोज का परिणाम है।

ॐ ॐ

2 : देशकाल की माया
(शास्त्र की दृष्टि से)

माया के बिना व्यवहार का कोई काम नहीं हो सकता। व्यवहार में माया की जरुरत पड़ती है, पर माया का उपयोग अग्नि की तरह सावधानीपूर्वक करना चाहिए। कई बार अग्नि का व्यवहार के लिए उपयोग किया जाता है। रसोई के लिए अग्नि चाहिए, ट्रेन चलाने के लिए अग्नि चाहिए, अग्नि से और भी अनेक कार्य होते है परंतु उसे छुऐगें तो जलेंगे इसलिए अग्नि की सिगड़ी को लोग कपड़े से अथवा सँड़सी से पकड़ते है,। ठीक वैसे ही माया को भी युक्ति से पकड़ कर उससे व्यवहार करना चाहिए। यदि माया से व्यवहार करना नहीं जाना तो विजातीय संस्कारों का बाहुल्य बढ़ जायेगा और जीव बंधन में पड़ेगा। माया का सुख ही ऐसा है कि यदि पृथ्वी के सारे भोग एक मनुष्य को दिये जाय तो भी उसे तृप्ति नहीं होती।

मनुष्य जीवन ऐसा बेढ़ंगा है कि गुणदोष उत्पन्न होने में देर नहीं लगती। गुणदोष उत्पन्न होने का मुख्य कारण भेदबुद्धि है। मूल प्रकृति में क्षोभ करनेवाला काल नहीं आता तब तक प्रकृति में क्षोभ नहीं होता। अतः मूल प्रकृति से पहले भी काल चाहिए। हम रात्रि को सो जाते है तब प्रकृति भी सो जाती है। सुबह उठकर जब देशकाल के भेद देखते है तब हमारी प्रकृति में क्षोभ होता है और क्षोभ होने के बाद काम, कर्म आदि उत्पन्न होते है। यदि आत्मानुसंधान रहे तो भेदबुद्धि उत्पन्न नहीं होती क्योंकि सभी देहों में आत्मा एक ही है, पर आत्मानुसंधान न रहे तो भेदबुद्धि उत्पन्न होती है, फिर गुण दोष की बुद्धि उत्पन्न होती है और फिर कर्म, अकर्म या विकर्म के झगड़े की संभावना हो जाती है। भेदबुद्धि कैसे कार्य करती है ये बैकुंठ से पतित हुए जय-विजय के दृष्टांत से समझमें आता है। जब सनकादिक भगवान के दर्शन के लिए जा रहे थे तब जय-विजय नामक पार्षदों ने उनको छोटे समझकर रोक दिए। इससे सनकादि ने जय विजय को शाप दिया और जय विजय को तीन जन्म लेने पड़े। इस कथा का तात्पर्य है कि यदि मनुष्य में भेदबुद्धि रह जायेगी तो उसको बैकुंठ से भी गिरना पड़ सकता है और अभेदबुद्धि उत्पन्न होती है तो संसार में भी बैकुंठ का अनुभव हो सकता है। कठोपनिषद में भी कहा है कि जो यहाँ है वह वहाँ है और जो वहाँ है वह यहाँ भी है। ऐसे परम तत्त्व में जिसको भेद दिखता है वह जन्म मरण को पाता है। ऐसा परम तत्त्व शुद्ध मन से ही प्राप्त होता है, आदि-इस सिद्धांत से समझ सकते है कि सब

अनर्थों का कारण भेद बुद्धि है। भेद का मुख्य कारण देशकाल की माया है। देश की गलती से एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपने से भिन्न देखता है और फिर उससे रागद्वेष होता है। यदि वह सब को अपने आत्मरुप से देखे तो किसी से रागद्वेष नहीं होगा।

इसके अलावा काल से भी भेदबुद्धि उत्पन्न होती है। वर्तमानकाल का जगत भूतकाल के जगत से और भविष्य के जगत से भिन्न होता है। कल का जगत आज के जगत से भिन्न होता है। काल ऐसा तत्त्व है कि जो प्रेमियों को दूर कर देता है, मित्रों को दूर कर देता है, पिता-पुत्र को अलग कर देता है, पति-पत्नी को अलग कर देता है। देश के अच्छे अच्छे नेताओं को काल उठाकर ले जाता है और अनेक मनुष्यों को रुलाता है तो ऐसा काल कहाँ से आया ? और काल की उत्पत्ति के लिए भी काल की जरुरत पड़ती है। अतः इस तत्त्वको मनुष्य की बुद्धि में तुरंत उतारना कठिन लगता है।

गीतामें काल के विषय में स्पष्ट समझ नहीं मिलती। उपनिषदों में भी काल विषयक स्पष्ट विवेचन नहीं मिलता। मुण्डकोपनिषद् पर श्री शंकराचार्य का भाष्य है। उसमें संक्षेप में कहा है कि काल कर्म का अंग है अतः कर्म के समय काल उत्पन्न होता है। यह सिद्धांत आधुनिक विज्ञान की खोज से मिलता जुलता है। ब्रह्मसूत्र में काल का समाधान नहीं मिलता। भागवत में कहीं कहा गया है कि काल भगवान से निकला है और कहीं कहा है कि काल भगवान में नहीं है। अतः व्यासजी के लेखों में काल की हकीकत ठीक से नहीं मिल सकती। भागवत में सिर्फ एक स्थानपर गोपीगीत में गोपियाँ स्तुति करते हुए भगवान को कहती है कि **'त्रुटीर्युगायते त्वामपश्यताम्'** आपको न देखने पर एक क्षण युग के समान हो जाती है, यहाँ काल की सापेक्षता प्रतीत होती है।

वाल्मीकि ऋषि का योगवासिष्ठ कि जो वसिष्ठ मुनि ने श्री रामचन्द्रजी को सुनाया था, उसमें काल के विषय में स्पष्ट खुलासा मिलता है। श्री रामचन्द्रजी वसिष्ठ मुनि को प्रश्न करते है कि एक ही ब्रह्माण्ड में मनुष्य का एक वर्ष देवताओं का एक दिन कैसे ? किसी क्षुद्र प्राणी का बड़ा काल ब्रह्माजी की एक क्षण कैसे ? काल एक ही है फिर भी भिन्न भिन्न प्रतीति कैसे होती है ?

वसिष्ठ कहते है कि प्रत्येक मनुष्य को जिस जिस स्थान में जैसी जैसी प्रतीति होती है उस उस स्थानपर उसे वैसा अनुभव होता है। एक पलक जितने काल में भी

अगर एक कल्प का संवेदन हो तो वह पलक भी कल्प के समान हो जाती है। कल्प में पलक का संवेदन हो तो कल्प पलक के समान हो जाता है। ऐसा चैतन्य का स्वभाव है। काल का स्वभाव ऐसा विचित्र होने से विद्यार्थी इतिहास और भूगोल सीखते हैं वह झूठी विद्या है। उसमें देशकाल के सच्चे भेदकी बात आती है इससे एक देश के दूसरे देश से राग-द्वेष बढ़ते है। हमारे देश में पहले से ही इतिहास और भूगोल के ज्ञान की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया, क्योंकि देश और काल को अपने शास्त्रों में कल्पित माना गया है।

यह विषय वर्तमान समय में नए सायन्स के द्वारा गणित से सिद्ध हुआ है और गणित एक ऐसा शास्त्र है कि वह सब देशों में मान्य हो सकता है। यह गणित ठीक से समझमें आये तो मनुष्य देश काल की माया से छूट सकता है पर यह गणित पूर्णतया हमारी स्कूल- कॉलेजों में प्रविष्ट नहीं हुआ। कुछ प्रोफेसर इतना समझ पाये हैं कि काल कल्पित है पर इतनी अधिक बुद्धि नहीं चला पाते कि उससे इतिहास और भूगोल आदि कल्पित हो जाते हैं और जन्म मरण भी कल्पित हो जाते है।

किसी एक मनुष्यको दूसरे मनुष्य के प्रति राग न हो या द्वेष न हो फिर भी वह दूसरे को अपने से अलग देखता है तो उसे देश की माया कहते है। पत्थर, वृक्ष, सूर्य, चंद्र, तारा आदि के प्रति हमें राग-द्वेष नहीं है फिर भी वे हम से अलग दिखे तो वह देश की माया है। साधारण मनुष्य की मान्यता के अनुसार सूर्य और हमारे बीच जो रिक्त अवकाश है वह भगवान ने बनाया है ऐसा माना जाता है, परंतु वर्तमान सायन्स वाले गणित से सिद्ध करके दिखाते है कि वह अवकाश मनुष्य की दृष्टि से बनता है। सूर्य के तेज को पृथ्वी पर पहुँचने में आठ मिनट लगती है। अतः हम जिस सूर्य को देखते है वह आठ मिनट पहले का सूर्य दिखता है। सूर्य का तेज निकलने के बाद किसी कारण से ३ मिनट में सूर्य नष्ट हो जाये तो भी हमें सूर्य पाँच मिनट तक दिखता रहेगा। और सूर्य पृथ्वी से बड़ा होने पर भी बहुत छोटा दिखता है। सूर्य घूमता नहीं है फिर भी घूमता हुआ दिखता है, अतः वास्तवमें सूर्य को हम देखते है तब सूर्य विषयक हमारा ज्ञान कैसा है वह मालूम पड़ता है। सूर्य जैसा है वैसा मालूम नहीं पड़ता। हमारे ज्ञान का सूर्य हम से भिन्न नहीं है फिर भी भिन्न दिखता है। इस प्रकार दृष्टि के विकार से स्थान की अथवा देश की भूल होती है। और फिर जैसा देश (space) वैसा काल (Time) बन जाता है यह बात हमारे शास्त्रों में कुछ स्थानपर आयी है और वर्तमान विज्ञान में भी गणित से समझायी गयी है। इस विषय का अधिक स्पष्टीकरण बाद के

प्रकरणों में विस्तार से किया जायेगा। हमारे शास्त्रों में देश काल का खेल किस तरह बताया गया है और उसको समझाने के लिए कैसी युक्तियों का प्रयोग किया गया है-यह बात इस प्रकरण में बतलायी गयी है। इस विषय को समझने के लिए शास्त्रों में दिए हुए कुछ दृष्टान्तों से अधिक सरलता होती है। अतः यहाँ पर कुछ प्रसंग दिए जा रहे है। ये प्रसंग सचमुच घटित हुए है कि नहीं यह नहीं कहा जा सकता। परंतु ऐसे प्रसंग अथवा घटना हो सकती है यह वर्तमान विज्ञान से सिद्ध हो सकता है।

दृष्टांत : १ : सुदामाजी को दिखी हुई माया

एक बार सुदामाजीने श्रीकृष्ण से कहा कि मुझे आपकी माया दिखाइये। श्री कृष्ण ने कहा कि कोई प्रसंग आनेपर दिखाऊंगा। कुछ समय के बाद दोनों एक दिन सुदामापुरी से बाहर स्नान करने गये। वहाँ श्रीकृष्ण ने सुदामाजी को कहा आज हम डुबकी लगाने का खेल खेलते हैं और कौन अधिक समय पानी में डुबकी लगाकर रहता है उसकी परीक्षा करते है। इस प्रकार संकेत करके दोनों ने नदी में डुबकी लगायी। फिर माया ने अपना स्वरूप प्रकट किया और पानी में डुबकी लगाये हुए सुदामा का पैर खिंचकर बहुत दूर प्रदेश में ले गयी और कोई अनजान जगह पर छोड़ दिए। वहाँ जलसे बाहर निकलते समय सुदामाजी ने अत्यंत भयानक जंगल देखा। वहाँ वे एक पेड़ के नीचे शांति पाने बैठे। इतने में कुछ लुटेरे उनको दिखे तो डर के कारण पेड़ पर चढ़ गये। लुटेरे पास में आये और पेड़ पर चढ़े हुए मनुष्य पर उनकी दृष्टि पड़ी। उस मनुष्य (सुदामाजी) को उनकी देवी को भोग चढ़ाने के काम में आएगा ऐसा समझकर अपने गाँव में ले गये। वहाँ जाने के बाद मुखिया की युवती कन्या सुदामाजी पर मोहित हो गयी। अतः उसने एक युक्ति रची। जब सुदामाजी को देवीके भोग के लिए मंदिर में लिवा लिए गये और सुदामाजी को मारने का समय आया तब मुखिया की युवती कन्या चुपके से मंदिर में घुस गयी और वहाँ से आवाज दी कि मैं तुम्हारी माता हूँ इस परदेशी को मारना नहीं, उसका तुम्हारे मुखिया की कन्या के साथ विवाह करवा दो। ऐसी आवाज मंदिर के भीतर से आने की वजह से सुदामाजी को मारने के बदले मुखिया की कन्या के साथ विवाह करवाया गया। यह सब आधी मिनट की डुबकी में श्री कृष्ण की उपस्थिति में हो रहा था। लेकिन सुदामाजी को उसका पता नहीं चला। क्योंकि वे अलग देशकाल की माया के प्रभाव में थे। विवाह के बाद सुदामाजी ने स्त्री के साथ कुछ वर्ष व्यतीत किये और उसको तीन पुत्र हुए। एक दिन सुदामाजी ने अपनी स्त्री से पूछा कि 'सुदामापुरी यहाँ से कितनी दूर है ?' स्त्री ने उत्तर

दिया "मुझे नहीं पता, लेकिन मेरी नानी अभी जीवित है उसे पता होगा। " नानी को पूछनेपर उस बुढ़िया ने उत्तर दिया कि "मेरी नानी कहती थी कि यहाँ से रात-दिन लगातार जहाज चले तो तीन साल में सुदामापुरी पहुँच सकते है। " यह उत्तर स्त्री ने सुदामाजी को सुनाया। सुनकर सुदामाजी अत्यंत विचारमग्न हो गये कि मैं किस लोक में आ गया हूँ ? अब वे उस डुबकी से बाहर आये तो सुदामापुरी में ही थे। पर देशकाल की माया के कारण उनको बड़ा देशकाल का अंतर मालूम पड़ा। एक दिन घर के चबूतरे पर सुदामाजी बैठे थे तब उन्होंने देखा कि कुछ लोग मुर्दा जलाने के लिए श्मशान में लिए जा रहे थे। उनके पीछे एक आदमी को भी पकड़कर ले जा रहे थे उसका कारण सुदामाजी ने उनकी स्त्री को पूछा। स्त्री ने कहा कि हमारी जाति में ऐसा रिवाज है कि कोई स्त्री मर जाये तो उसके पीछे जैसे पति के पीछे पत्नी सती होती है वैसे पति को सता होना पड़ता है। अर्थात् स्त्री के साथ उसके पति को भी जलना चाहिए। उसका उत्तर सुनकर सुदामाजी ने अपनी स्त्री को कहा कि 'आजसे घर का सारा काम मैं करूँगा, तुम थोड़ा बहुत करना, क्योंकि यदि तुम जल्दी मर जाओगी तो मुझे जिन्दा जलकर मरना पड़ेगा और यह मुझसे सहा नहीं जायेगा। उस दिन से सुदामा घर का अधिकाधिक काम स्वयं करने लगे, फिर भी कुछ समय के बाद एक दिन उनकी स्त्री को सर्प ने काट लिया और वह मर गई। अतः सुदामाजी को चिता में जलने की अपेक्षा वहाँ की नदी में स्नान करके भगवान को प्रार्थना करने की इच्छा हुई इसलिए नदी में कूद पड़े। तब भगवान ने माया को कहा कि 'अब सुदामाजी को वापस लेकर आओ। ' भगवान की आज्ञा सुनकर माया सुदामाजी को सुदामापुरी में जहाँ डुबकी लगाई थी वहाँ लेकर आयी। वास्तवमें यह सब थोड़ी देर की जल की डुबकी के समय में ही घटित हुआ था। जैसे ही सुदामाजी जल से बाहर निकले कि भगवान को देखा। भगवान ने कहा "सुदामाजी आज आप मेरे से ज्यादा समय पानी में डुबकी लगाकर रहे।" सुदामाजी ने कहा "आपकी इस माया को कौन समझ सकता है ?" एक आधी मिनट की डुबकी में मुझे कई वर्षों की अनेक घटनाओं के अनुभव करानेवाली आपकी आश्चर्य में डालने वाली माया दिखी। अब इस घटना की मनुष्य के जीवन के साथ तुलना करें तो मालूम पड़ेगा कि मनुष्य भी पानी की बूंद से बनता है। उस पानी की बूंद के अंदर सभी मनुष्य ने डुबकी लगाई है और थोड़े से समय की डुबकी में हर एक मनुष्य को कई वर्षों का प्रत्यक्ष अनुभव होता है, पर यदि डुबकी से बाहर निकलकर जीव देखे अर्थात् देहाभिमान छोड़कर देखे तो वह २५ या ५० वर्ष का नहीं

हुआ पर आत्मभाव से उसका जन्म ही नहीं हुआ। लगभग सब मनुष्य ऐसी पानी की डुबकी में पड़कर देशकाल की माया में पड़कर फँस गये है।

दृष्टांत : २ : अक्रूरजी ने देखी हुई माया

जब अक्रूरजी श्री कृष्ण और बलरामजी को रथ में बिठाकर गोकुल से मथुरा ले जा रहे थे, तब रास्ते में अक्रूरजी जमुना में स्नान करने को उतरे। वहाँ वे जल में बैठकर गायत्री का जप करने लगे। इतने में उन्होंने जल में श्रीकृष्ण और बलरामजी को देखा। उस समय उनको लगा कि इन दोनों को तो मैं रथपर छोड़कर आया हूँ फिर यहाँ कैसे ? ऐसा सोचकर जल से मस्तक बाहर निकालकर देखा तो उन्होंने दोनों भाइयों को उसी समय रथ पर भी देखे। उनको शंका उपजी तो फिर से जल में डुबकी लगाई तो शेषनागरुप अनंत भगवान उनके देखने में आये और उनकी गोद में मेघवर्ण चतुर्भुज श्री नारायण दिखने में आये। कुछ सिद्धियाँ और शक्तियाँ उस नारायण की सेवा कर रही थी। अक्रूरजी ने उस समय के भगवान के स्वरूप की स्तुति करते हुए कहा है कि 'ब्रह्मा आदि जो अनात्मरूप में मोह को प्राप्त हो रहे है वे आपके स्वरूप को जान नहीं सकते अपितु योगीजन, भक्तजन, ज्ञानी एवम् वैष्णव अलग अलग साधन से आपको पा सकते है। (भागवत पुराण १०.४०.३-८) इस अविद्याकृत माया का गुणप्रवाह देव, मनुष्य और तिर्यक आदि योनियों में रहता है अर्थात् वास्तव में आप उनसे सर्वथा अलिप्त हो। जैसे जल में अनेक जलचर जीव रहते है और औदुम्बर के फल में अनेक छोटे छोटे जीव (मच्छर, डांस) पाये जाते है वैसे आपके मनोमय स्वरूप में यह सारा जगत कल्पित है। (भागवत पुराण १०.४०.१२, १५) सब जीव आपकी माया से मोहित होकर 'मैं और मेरा' इस प्रकार के असत् आग्रहरूप कर्म के मार्ग में फँसे हुए है। (भागवत पुराण १०.४०.२३) जैसे कोई अज्ञानी मनुष्य निकट के जल से उत्पन्न शैवाल से ढके हुए शुद्ध पानी को छोड़कर दूर के मृगजल को पीने की इच्छा करता है वैसे ही आपकी माया से आवृत्त मैं आपको छोड़कर विषयों में भटक रहा हूँ। जब संसार के बंधनो का अंत आनेवाला हो तभी मनुष्य की बुद्धि भक्तिपूर्वक आपके स्वरूप में लगती है। इस प्रकार भगवान का सगुण स्वरूप (दोनों भाईयों के रूप में) जलमें और थल में अक्रूरजी को दिखने में आया था और पुनः डुबकी लगाने पर पूरा ब्रह्माण्ड दिखाई दिया वह सब माया के गुण का प्रवाह अविद्या से दिखाई दे रहा था। वास्तव में एक भगवान स्वयं ही सर्वत्र हैं, यह इस दृष्टान्त से समझना है। जब व्यावहारिक सत्ता प्रातिभासिक बनती है तब सब एक ही ज्ञान के विवर्तरूप है। ऐसा

ज्ञानीपुरुष समझ सकते है । व्यावहारिक को प्रातिभासिक क्यों मानना चाहिए उस विषयपर वर्तमान विज्ञान (सायन्स) अधिक स्पष्ट करके बताता है । यह विषय इसके बाद के प्रकरण में आएगा।

दृष्टान्त : ३ : अर्जुन को दिखी हुई माया

अर्जुन को भगवान ने जो माया दिखाई उसकी हकीकत गीता के ग्यारहवें अध्याय में दी गयी है। गीता के दसवें अध्याय में जिन विभूतियों का वर्णन दिया हुआ है वे विभूतियाँ जिन भगवान के एक अंश में स्थित है, उस विश्वरूप को देखने की इच्छा से अर्जुन ने भगवान को प्रार्थना की, इसलिए भगवानने उसको दिव्य दृष्टि देकर सम्पूर्ण चराचर जगत अपने विश्वरूप में स्थित दिखाया। उसमें भगवान के अनेक मुख, अनेक नेत्र और अनेक दृष्टियाँ थी। मानों आकाश में एक साथ हजारों सूर्य उदय हुए हो ऐसा उनका तेज था। उस समय अर्जुन ने स्तुति करते हुए कहा है कि 'मैं देख रहा हूँ यह सम्पूर्ण जगत आप का ही स्वरूप है। आपके स्वरूप में कोई दिशा निश्चित नहीं है। (दिशा-स्थान कोई सच्ची वस्तु नहीं है, यह हकीकत वर्तमान सायन्स से भी सिद्ध हुई है।) आपके स्वरूप से सम्पूर्ण जगत व्याप्त है अतः आप ही सर्वात्मक हो। आपकी महिमा को जाने बिना मैंने इतने समय से आपको मित्र के रूप में माना उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।' भगवान ने उत्तर दिया 'ऐसे स्वरूप को अनन्य भक्ति से मुमुक्षु ही जान सकते है और वे मेरे स्वरूप में रह सकते है। ' यहाँ पर अनन्य भक्ति यानी भगवान के सिवाय अन्य किसी प्रत्ययरहित दशा समझना है, अर्थात् सिर्फ स्वयं सहित सर्व को ब्रह्मरूप जानने वाली ब्रह्माकार वृत्ति ही अनन्य भक्ति का स्वरूप है। जिस समय भेद प्रत्यय का नाश होता है उस समय पुरुष को परब्रह्म का साक्षात्कार होता है, और उस रूप में उसकी निष्ठा होती है।

दृष्टांत : ४ : नारदजी को दिखी हुई देश विषयक माया

एक बार नारदजी को ऐसा विचार आया कि भगवान श्रीकृष्ण ने एक ही शरीर से अलग अलग घर में सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियों के साथ विवाह कर लिया, यह कैसे हो सकता है, इसे देखने के लिए द्वारिकापुरी आये। वहाँ पहुचकर प्रथम रुक्मिणी के घर पर गये तो रुक्मणी भगवान की सेवा कर रही थी। नारदजी को देखते ही भगवान पलंग से नीचे उतर गये और नारदजी को अपने आसन पर बिठाये। फिर नारदजी ने भगवान को कहा कि बताइये हम आपका क्या काम कर सकते है ? नारदजी ने कहा 'आप भक्तों पर अनुग्रह करते हो और दुष्टों का दमन करते हो यह तो

आप का स्वभाव ही है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। अब ऐसी कृपा करें की मैं आपका स्मरण करते हुए विचरण करूँ और मुझे निरंतर आपकी स्मृति बनी रहे।' ऐसी भावना होना तभी संभव है जब सब जगह भक्त भगवान के दर्शन कर सके। उसके लिए नारदजी को भगवान के सब घरों में घूमने की इच्छा हुई।

फिर नारदजी भगवान की योगमाया देखने के लिए तुरंत दूसरी स्त्री के महल में गये। वहाँ भगवान अपनी पत्नी और उद्धवजी के साथ चौसर (चौपड़) खेल रहे थे। वहाँ भी भगवान ने उठकर नारदजी का सत्कार किया और पूछा 'नारदजी आप कब पधारे ? आप तो आप्तकाम हो फिर भी हमें कुछ सेवा का अवसर दो। हम सकामी आपकी क्या सेवा करें ?' ये शब्द सुनकर नारदजी आश्चर्यचकित होकर चुपचाप दूसरे घर में चले गये।

भगवान सर्वत्र है फिर भी हम एक घर का काम पूरा करके दूसरे घर में जाते है तो दूसरे मनुष्य के रूप में वही भगवान आज भी पूछते है कि 'तुम कब आये ?' साधारण मनुष्य दूसरे घर में दूसरे व्यक्ति को देखता है, पर भक्त वहाँ भगवान को देखता है। फिर नारदजी तीसरे महल में गये तो भगवान श्री कृष्ण बालक के साथ खेल रहे थे। चौथे घर में गये तो भगवान स्नान कर रहे थे। किसी महल में भगवान भोजन कर रहे थे, किसी में अपने मंत्रियों के साथ बातचीत कर रहे थे। कहीं पर धर्म का, कहीं अर्थ का और कहीं काम का पालन कर रहे थे। किसी महल में ध्यान कर रहे थे, किसी जगह विग्रह कर रहे थे और कहीं पर सत्पुरुषों का कल्याण कैसे हो उसका चिंतन कर रहे थे। कहीं पर कन्याओं का विवाह करवा रहे थे और कहीं पर बालकों के जन्म का उत्सव मना रहे थे। कहीं यज्ञ कर रहे थे कहीं बगीचे बनवा रहे थे तो किसी जगह पर धर्मशाला बनवा रहे थे। कोई स्थान पर शिकार करने जा रहे थे तो कहीं पर प्रजा का भाव जानने के लिए वेश बदलकर विचरण कर रहे थे।

यहाँ पर आखरी भावना में भगवान की लीला अथवा नाटक की रुपरेखा स्पष्टरूप से समझमें आती है। इसी कारण से भगवान को नटवर कहा गया है। नटवर यानी जो खुद हो वैसा प्रतीत होने न दे वैसा महान कुशल नट। आखिर में नारदजी ने भगवान को कहा कि 'आपकी योगमाया को समझना तो ब्रह्माजी आदि देवताओं के लिए भी कठिन है, पर आपके चरणों की सेवा के प्रताप से मुझे अब दिखने में आयी है। अब मुझे ऐसी आज्ञा दो, कि आपकी यशपूर्ण लीला का गान करते हुए विचरण करूँ।'

भगवान ने कहा "हे नारदजी, संसार को धर्म सिखाने के लिए मैं इस तरह का

आचरण करता हूँ। अतः आप मेरी योगमाया को देखकर मोहित मत होना।'

इस तरह नारदजी ने सब घरों में एक भगवान को देखे। आज हम भी अपनी देहदृष्टि छोड़कर अथवा अपनी कल्पना को छोड़कर जहाँ जो घटना घटती है वहाँ उस घटना को उस समय के नाप के अनुसार देखने का प्रयत्न करे तो भगवान की माया समझमें आ सकती है। किसी गोलाकार आइने (concave mirror) में कोई मनुष्य अपना मुँह देखे तो उस मनुष्य का आईने में दिखनेवाला प्रतिबिंब दुगुना बड़ा दिखता है। अब बिंबरूप मनुष्य प्रतिबिंबरूप मनुष्य को पूछे कि तू दुगुना बड़ा कैसे दिखता है? प्रतिबिंब में उत्तर देने की शक्ति हो तो बिंब को बोले कि अपने हाथ में एक फूट पट्टी (स्केल) रखकर फिर मुझे देख। पहला मनुष्य फूट पट्टी हाथमें रखकर देखे तो प्रतिबिंब में फूट भी बड़ा हो गया होता है। और प्रतिबिंब को प्रतिबिंब के स्केल से नापने पर वह बड़ा नहीं हुआ होगा। दोनों पाँच फुट ऊँचे है। ऐसे ही छोटे बालक की ऊँचाई उसके साढ़े तीन हाथ के बराबर होती है और बड़े मनुष्य की ऊँचाई भी उसके साढ़े तीन हाथ के बराबर होती है। अतः बड़ा मनुष्य वास्तव में बड़ा नहीं है। इसलिए माया के स्वरूप को ठीक से जानना हो तो जिस समय जो नाप चलता हो उसका उपयोग करने की आदत बनाई हो तो माया ठीक से समझ में आयेगी। इस सिद्धांत को नए सायन्स में समीकरण (प्रिन्सिपल ऑफ़ इकविवेलन्स) कहते है। अर्थात् अलग अलग घटनाओं में भी समानता है ऐसा गणित से सिद्ध हो सकता है।

दृष्टान्त : ५ : नारदजी को काल की भ्रांति

एक बार नारदजी ने भगवान श्री कृष्ण को कहा: 'मुझे आपकी माया बताईये।' भगवान ने कहा 'किसी समय दिखाऊंगा।' उसके बाद कुछ दिन बीत गये। एक दिन श्रीकृष्ण भगवान ने नारदजी को कहा कि चलो आज जंगल देखने जाते है। तत्पश्चात दोनों एक जंगल में गये। कुछ समय के बाद एक रेगिस्तान आया। वहाँ श्रीकृष्ण को बहुत प्यास लगी तो उन्होंने नारदजी से कहा 'मुझे बहुत प्यास लगी है कहीं से पानी लेकर आओ।' उनकी आज्ञा पाकर नारदजी पानी लेने गये। कुछ दूर गये तो नारदजी को एक गाँव दिखाई दिया। पानी के लिए उस गाँव में गये और किसी घर का द्वार खटखटाया। अंदर से एक सुंदर युवती कन्या बाहर आई। उसको देखकर नारदजी भगवान को पिलाने का पानी भूल गये और उस कन्या के साथ बातें करते हुए उसके घरमें गये। उनकी बातें पूरी नहीं हुई तो दूसरे दिन बातें करने के उद्देश्य से वे गाँव की धर्मशाला में ठहरे, पर भगवान के पास वापस नहीं गये। दूसरे दिन नारदजी उस कन्या

के पास गये और फिरसे बातें करने लगे। फलतः दोनों में परस्पर प्रेम हुआ और कन्या के माता पिता की सम्मति से दोनों का विवाह हुआ। कुछ वर्षों के बाद उनके बच्चे हुए। वहाँ उस संसार में नारदजी को १२ साल बीत गये। फिर नारदजी के ससुर मर गये और उनकी संपत्ति नारदजी को मिली। इस प्रकार पुत्रेषणा और वित्तेषणा इकट्ठी हुई। फिर लोगों में नारदजी की कीर्ति बढ़ी तो लोकेषणा भी आ गयी और नारदजी संसार का सुख भोगने लगे। फिर एक बार अतिवृष्टि के कारण उस गाँव की नदी में बाढ़ आयी उसमें गाँव डूबने लगा। मकान गिर पड़े, मनुष्य और पशु डूबने लगे। नारदजी एक हाथ में स्त्री को, दूसरे हाथमें दो बच्चों को और तीसरे बच्चे को कंधेपर लेकर भागने लगे, परंतु बहुत अधिक बाढ़ के कारण पार करने में कठिनाई के कारण कंधेपर का बच्चा पानी में गिर गया, उसको बचाने में दूसरा और तीसरा भी हाथ से छूट गये और पानी में डूब गये। आखिर में उनकी स्त्री भी पानी में बह गयी। नारदजी नदी किनारे बैठकर शोक करने लगे उतने में उनके पीछे से आवाज आई, "बेटा ! नारद ! पानी कहाँ है ? मुझे बहुत प्यास लगी है। तुझे पानी लाने भेजा था और मैं यहाँ पानी की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तुझे गये आधा घण्टा हो गया अतः अब जल्दी से पानी दे" नारदजीने भगवान के इन वचनों को सुनकर विचार किया : आधा घंटा ! इस प्रकार संकल्प उठने से बारह वर्ष पहले की याद आयी। ओह ! यह सब बारह साल की घटना सिर्फ आधे घंटे में घटी ! फिर नारदजी ने भगवान के पास आकर क्षमा माँगी। इसका नाम है माया।

आज भी किसीकी कन्या को अपनी स्त्री बनाकर उसकी माया में जीव ऐसा फँस जाता है कि जीवन रूपी पानी भगवान को अर्पण करना भूल जाता है और उस गलती में उसके अनेक साल बीत जाते है। सिर्फ वे ही इस माया को जीत सकते है जो आत्मनिष्ठा में रहते है।

दृष्टांत : ६ : रमण महर्षि के ५३ वर्ष

दक्षिण भारत में तिरुवन्नमलई गाँव के पास अरुणाचल पर्वत की तलहटी में श्री रमण महर्षि नामके एक महात्मा रहते थे। वे दिनांक १-९-१८९६ के दिन वहाँ गये थे और दिनांक १-९-१९४९ के दिन उनको एक स्थान पर पूर्ण हो रहे है। (ये पुस्तक उनके जीवनकाल में लिखी गई थी) संसार के किसी भी सुख के साधन के बिना अर्थात् स्त्री, पुत्र, या धन-कीर्ति की परवाह किये बिना सिर्फ लंगोट पहनकर एकांत में ब्रह्मदशा में ५३ वर्ष बितानेवाले ऐसे व्यक्ति कोई विरले ही पाये जाते है। उनसे किसीने

पूछा तो कहते है कि, वो ५३ साल तो बिजली की एक चमक की तरह बीत गये। उससे विपरीत कुछ संसार के प्रपंच में रहनेवाले लोगों को पूछे तो कहते है कि आज तो दिन ही नहीं कट रहा था इसलिए सिनेमा देखने गया था। फिर जब सिनेमा के परदे पर भी थोड़ी देर के लिए चित्र नहीं आया अथवा मशीन बिगड़ गया हो तो भी देखनेवाले शोरगुल मचाने लगते है। यह एक आदत का परिणाम है। जहाँ घटना घटती है वहाँ काल उत्पन्न होता है। श्री रमण महर्षि के जीवन में अधिक घटनायें नही घटी। पहले पर्वतपर गुफा में रहते थे, वहाँ से ऊपर की गुफा में गए, फिर वहाँ से तलहटी में रहने आये। थोड़ा खान-पान में बदलाव आया और कुछ साधुओं ने उनकी निंदा की, कुछ भक्तों ने उनकी प्रसंशा की। इसके अलावा अधिक घटनायें उनके जीवनमें नहीं घटी इसलिए उनको ५३ साल जैसा नहीं लगा। वे कहते है कि "मेरा कुछ नहीं है। मेरा जन्म भी नहीं हुआ मैं तो जैसा था वैसा हूँ। " मनुष्य यदि अपना अज्ञान दूर कर दे तो देशकाल की माया कोई सच्ची वस्तु नहीं है, अतः सिर्फ अपने को जानना है। एक के ज्ञान से सर्व का ज्ञान होता है ऐसी वेदांत की प्रतिज्ञा है।

दृष्टांत : ७ : तीन कदम पृथ्वी

वामन भगवानने बलिराजा से सिर्फ तीन कदम पृथ्वी माँगी। उस समय बलिराजा को लगा कि इतनी छोटी वस्तु क्यों माँग रहे है ! फिर भी जब पृथ्वी को नापने का समय आया तब वामन भगवान ने अपने पैर इतने बड़े बनाये कि दो कदम में तो सर्वस्व नाप लिया और तीसरा कदम रखने की जगह नहीं रही, तब बलिराजा ने कहा: ‘मेरे मस्तक पर चरण पैर रखो। ‘ इस कथा में नाप (मेझर) का विचित्र स्वभाव दृष्टिगोचर होता है। उस समय वामन भगवान की लकड़ी भी बड़ी हो गयी थी।

दृष्टान्त : ८ : रेवती का विवाह

एक बार राजा रेवत अपनी पुत्री का विवाह किस राजा के साथ करवाना यह पूछने के लिए भगवान ब्रह्माजी के पास गये। उस समय ब्रह्माजी की सभा में अप्सराओं के नृत्य एवम् गायन चल रहे थे। इसलिए रेवतराजा को थोड़ी देर वहाँ बैठे रहना पड़ा। नृत्य और गायन पूरे होने के बाद रेवतराजा ने रेवती के विवाह के लिए पूछा : ब्रह्माजी ने कहा: 'तुम यहाँ थोड़ा समय ठहरे तब तक तो तुम्हारे लोक में अनेक युग बीत गये है, अतः जिन राजाओं को तुम देखकर आये हो वे सब मर चुके है। इसी समय वहाँ नए युग की शुरुआत हुई है। उसमें यदुवंश में बलरामजी का जन्म हुआ है उनको अपनी पुत्री बिहा दो। '

इस दृष्टांत में भी काल की विचित्र माया प्रतीत होती है। जैसे ऊँचाई, लम्बाई और चौड़ाई वस्तु के कद के अंदर आ जाते है, वैसे काल भी हर एक घटना के साथ घटना के अंतर्गत आ जाता है।

दृष्टान्त : ९ : नयी दशा में काल पर विजय

सावित्री के पति सत्यवान का आयुष्य सिर्फ एक वर्ष शेष था फिर भी सावित्री ने उससे विवाह किया और व्रत करके इतनी शक्ति प्राप्त की कि जब यमराज आकर सत्यवान के जीव को ले गये तब सावित्री ने उनसे शास्त्रार्थ करके सत्यवान को छुड़ाया था। इस दृष्टांत में भी यह बताया गया है कि नई दशा में काल को जीत सकते है। सूर्य को सविता कहा जाता है इसलिए उसका नाम सावित्री रखा होगा।

कुछ समय पहले बनारस में एक विशुद्धानंद स्वामी रहते थे। वे सूर्य के उपासक थे, इसलिए कई प्रकार की सुगंध उत्पन्न कर सकते थे और मरे हुए पक्षी को जीवित कर सकते थे।

देश और काल दोनों कल्पित है, इस विषय पर वर्तमान के विख्यात सायंटिस्ट सर जेम्स जीन्स कहते है कि : देश अथवा आकाश अपने मन की कल्पना से बनता है, उसी तरह काल भी एक कल्पित वस्तु है। देश और काल जगत में नहीं है, अपितु जगत के साथ के अपने संबंध में से उत्पन्न होते है।

श्रीमद् भागवत में काल का स्वरूप

राजा परीक्षित को शमीक ऋषि के पुत्र का शाप लगा। फिर सात दिन में अपनी मृत्यु होनेवाली है, यह जानकर उन्होंने शुकदेवजी को पूछा कि ऐसा कौनसा शुद्ध कर्म है जो सब अवस्थाओं में सब को करना चाहिए, और विशेषकर जिसकी मृत्यु थोड़े दिन में होनेवाली हो उसे कौनसा शुद्ध कर्म करना चाहिए ? उसके उत्तर में शुकदेवजी कहते है कि जिसे अभय पद की इच्छा हो उसे अपने आत्मस्वरूप श्री हरि का श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिए। किसी भी उपाय से अंतकाल में भगवान का स्मरण रहे यह मनुष्य जन्म का परम लाभ है। (२-१-६) जब इस लोक को छोड़ने की इच्छा हो तब मनमें देश और काल का विचार नहीं करना और इन्द्रियों को जीतकर प्राणों को संयत करना चाहिए। (२-२-१५) धीर पुरुष को चाहिए कि अपनी विशुद्ध बुद्धि से मनको संयत करके मन सहित बुद्धि को क्षेत्रज्ञ अंतरात्मा में लीन करना और अंतरात्मा को परमात्मा में स्थिर करके चेष्टारहित हो जाना। उस अवस्थामें सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण, अहंकार, महत्तत्त्व और मूल प्रकृति (प्रधान) आदि कुछ नहीं है। उसमें

देवता आदि का नियामक काल भी नहीं है, फिर देवता और उनके नियम्य अन्य प्राणी तो कैसे रहेंगे ? (२-२-१७) जिस दशा में 'नेति नेति' कहकर अनात्म पदार्थों को त्यागने की इच्छावाले अनन्य प्रेमी योगीजन लौकिक आसक्ति छोड़कर पूजनीय परमपद का हृदयसे आलिंगन करते है, उसको शास्त्रमें भगवान विष्णु का परमपद कहा गया है। (२-२-१८)।

यहाँ श्री शुकदेवजी ने आरंभ में ही परीक्षित राजा को भगवान विष्णु का परमपद समझा दिया कि वहाँ देश और काल बिलकुल नहीं है। फिर भी यह बात राजा परीक्षित को ठीक से समझमें नहीं आयी, इसलिए उन्होंने शुकदेवजी से पूछा : एक ही भगवान सृष्टि आदि अनेक कर्म करने के लिए प्रकृति के सत्त्वादी गुणों को एकसाथ कैसे धारण करते है अथवा अवतार लेकर क्रम से कैसे ग्रहण करते है ? (२-४-९) शुकदेवजी परमपुरुष भगवान को नमस्कार करके उत्तर देते है : 'ऐसा प्रश्न नारदजी ने ब्रह्माजी से पूछा था और ब्रह्माजी ने स्वयं नारायण से जो सुना था वह नारदजी को सुनाया था। ब्रह्माजी कहते है कि 'जगत के उपादानरुप द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव आदि कोई वस्तु वासुदेव से भिन्न नहीं है (२-५-१४) मैं भी उसकी दृष्टि से प्रेरणा पाकर सृष्टि की रचना करता हूँ। (२-५-१७) जब भगवान को अनेकरूप होने की इच्छा हुई तब उन्होंने अपनी माया से अपने स्वरूप में प्राप्त हो रहे काल, कर्म और स्वभाव का स्वीकार किया। (२-५-२१) काल से गुणों में विषमता आयी, स्वभाव से गुणों में परिणाम हुआ और कर्म से महत्तत्त्व का जन्म हुआ।' (२-५-२२) तत्पश्चात सांख्य की पद्धति के अनुसार सृष्टि क्रम ब्रह्माजी ने नारदजी को समझाया। ब्रह्माजी कहते है कि जिनके वास्तविक स्वरूप को, मैं तुम या महादेवजी भी नहीं जान सकते उनकी माया के द्वारा रचित इस जगत को हम माया से मोहित होने के कारण अपनी अपनी मति के अनुसार जानते है अर्थात् सम्पूर्ण रूप से नहीं जान सकते।

यहाँ प्रथम सृष्टि रचना के बाद तुरंत ब्रह्माजी ने दृष्टि सृष्टिवाद समझाया है| ब्रह्माजी कहते है यदि कोई मुनि अपने देह, मन, इन्द्रियों को स्वाधीन और शांत कर ले, तो ही उसको ब्रह्म स्वरूप समझमें आता है और असत्पुरुष उसमें कुतर्क करे तो वह स्वरूप आच्छादित हो जाने से अंतर्धान हो जाता है। (२-६-४९)

जिन को कुत्ते के भक्ष्यरूप इस देह में अहंबुद्धि नहीं है, ऐसे निष्कपट पुरुष भगवान का आश्रय लेते हैं। जिन पर भगवान की कृपा होती है वे ही माया का पार पा सकते है। (२-७-४२) जैसे बरसात आने के बाद कुआँ खोदने के साधन की जरुरत

नहीं रहती ऐसे ही जिनका चित्त ब्रह्म में स्थिर हुआ है वे भेद बुद्धि दूर करने हेतु अन्य साधनों का त्याग करते है। (२-७-४८) राजा परीक्षित श्री शुकदेवजी से पूछते है 'महाभूत के संबंध से रहित इस जीव का शरीर पाँच भूतों से बनता है अथवा स्वभाव से ऐसा होता है या किसी कर्म के कारण से होता है ? (२-८-७) पहले आपने कहा कि भगवान के अंग से काल, कर्म और स्वभाव का प्रादुर्भाव हुआ (२-५-१३) और उससे सारी सृष्टि हुई, और यह भी सुनाया कि यह सारी सृष्टि कल्पित है (२-२-१७) तो इस का क्या तात्पर्य हुआ?' (२-८-११) उसके उत्तर में सच्चा संबंध नहीं बनता। अनेकरूप वाली माया के कारण आत्मा अनेकरूप होकर प्रतीत होता है और माया के गुण में रमण करने से इन देह, मकान आदि असत् पदार्थों में 'यह मैं और यह मेरा' इस प्रकार का भाव उत्पन्न होता है। (२-९-२) जिस भगवान के अंदर माया अथवा काल नहीं है, उन्होंने जो ज्ञान ब्रह्माजी को दिया उससे आत्मसाक्षात्कार होता है।

इस ज्ञान को चतु:श्लोकी भागवत कहते है। उसके प्रथम श्लोक में कहा गया है कि 'यह प्रपंच उत्पन्न हुए बिना सिर्फ प्रतीत होता है और आत्मा नित्य होते हुए भी प्रतीयमान नहीं होता। इसे आत्मा की माया समझना चाहिए।' (२-९-३३)

इस प्रकार उपदेश प्राप्त करने के बाद ब्रह्माजीने जिस प्रकारसे सृष्टि की रचना की, उसका वर्णन शुकदेवजी ने करके कहा है कि 'भगवान का यह स्थूल रूप और सूक्ष्म रूप दोनों मायामय है, अतः ज्ञानीपुरुष इन दोनों में से किसी का स्वीकार नहीं करते। (२-१०-३५) क्योंकि स्वरूपभूत जगत की उत्पत्ति आदि में भगवान का कर्तृत्व वास्तविक नहीं है अपितु कर्तृत्व का निषेध करने हेतु माया का आरोप किया गया है। (२-१०-४५) इस प्रकार ब्राह्म कल्प का वर्णन हुआ।

भागवत के तीसरे स्कंध में उद्धवजी विदुर को कहते है कि भगवान श्रीकृष्ण द्वारिका में बड़े परिवार के साथ रहते थे, पर सांख्ययोग में स्थित रहने से उनकी उन में आसक्ति न हुई। (३-२-१९)

इस विषय को यहाँ इसलिए लिया गया है कि सांख्य दर्शन में कहा गया है कि प्रकृति और पुरुष का सच्चा संबंध नहीं होता। फिर भी अधिक समय विहार करते करते गृहस्थाश्रम के भोगों से उनको वैराग्य हुआ। (३-२-२२) इसके वर्णन का उद्देश्य है कि मनुष्य को भी वैराग्य उत्पन्न होना चाहिए। फिर अधिक उपदेश के लिए उद्धवजीने विदुरजी को मैत्रेय के पास भेजे।

विदुरजीने ऋषि मैत्रेय के पास जाकर सृष्टि विषयक प्रश्न किया। उसके उत्तर में

मैत्रेयजी कहते है : 'सृष्टि से पहले यह सारा जगत एक मात्र भगवान रूप ही था। उस समय परमात्मा ने अपने सिवाय कोई और दृश्य नहीं देखा। उसमें माया-शक्ति लीन थी और ज्ञानशक्ति जाग्रत थी, इसलिए अहंकार भी नहीं था। इसलिए अपने को असत् जैसा मान लिया। फिर सत् असत् रूप माया शक्ति से भगवान ने इस सम्पूर्ण जगत की रचना की। '(३-५-२५) कालक्रम के क्षोभ से प्राप्त हुए इन तीनगुण वाली माया में उस चिन्मय परमात्मा ने अपने अंशभूत पूर्ण अंश से चेतन रूप बीज स्थापित किया। फिर काल की प्रेरणा से उस अव्यक्त माया से महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ और फिर सांख्य के अनुसार अहंकार आदि सृष्टि कि उत्पत्ति का क्रम मैत्रेयजी ने विदुरजी को सुनाकर अंतमें कहा कि ब्रह्माजी भी उस माया का पार नहीं पा सकते।

सांख्य शास्त्र में बतलाया गया है कि प्रकृति से जो विकृति होती है वह भावी विकृति की प्रकृति बनती है। उस दृष्टि से हमारा अभी का ज्ञान आनेवाली कल के ज्ञान का प्रमाण बनता है और कल का ज्ञान उसके आनेवाली कल के ज्ञान का प्रमाण बनेगा।

भगवान की माया बड़े बड़े मायावीयों को भी मोहित करनेवाली है। माया की गति तो स्वयं भगवान भी नहीं जानते, फिर दूसरों की तो बात ही क्या है ? अतः माया को जानने के लिए गये हुए मन और वाणी लौट आते है।

अब विदुरजी प्रश्न करते है कि 'जो भगवान केवल चेतन मात्र निर्विकार और निर्गुण है, उनके साथ लीला से भी गुण और क्रिया का सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? बालक भी कुछ न कुछ आनंद लेने के लिए खेल खेलता है, परंतु भगवान तो आप्तकाम है और नित्य अन्य किसीके संबंध से रहित अद्वितीय है। उसमें जगत रचना की क्रीड़ा अथवा कामना कैसे उत्पन्न हो सकती है ? देश, काल और अवस्था से जिसके ज्ञान का लोप नहीं होता, अर्थात् जिसमें नित्य अद्वैत ज्ञान रहता है (जिसके ज्ञान में दो नहीं) उनका माया से संयोग कैसे हो सकता है ? (३-७-५) सब क्षेत्रों में अर्थात् शरीरों में क्षेत्ररूप से एक ही परमात्मा बिराजमान है, तो फिर कोई मनुष्य दुर्भागी क्यों दिखता है? और कर्मजन्य कलेश की प्राप्ति कैसे होती है ? हे विद्वान ! ऐसे अज्ञात संकट में पड़कर मेरा मन अत्यंत खेद को प्राप्त हुआ है, अतः मेरा यह संदेह दूर कीजिये। '(३-७-७)

मैत्रेयजी ने भगवान का स्मरण किया और मुस्कुराते हुए उत्तर दिया : 'जो आत्मा सब का प्रभु है और मुक्तस्वरूप है वह दीनता और बंधन को कैसे प्राप्त हुए इस प्रकार तर्क से विरुद्ध भाव की जो प्रतीति होती है, वही भगवान की माया है। जैसे स्वप्नदृष्टा

पुरुष को स्वप्न में अपना मस्तक कटा हुआ दिखता है वैसे जीव को बंधन आदि की प्रतीति मिथ्या ही होती है। (३-७-१०) जैसे जल में चंद्रमा का प्रतिबिम्ब पड़ता है तब जल के कम्पन से चंद्रमा का कम्पन दिखता है पर वास्तवमें वह जल का गुण है (चंद्रमा का नहीं)। उसी प्रकार साक्षी आत्मा में भी अनात्मा के गुण सुखदुःख आदि सच्चे नहीं है फिर भी भासित होते है। (३-७-११) ऐसी माया अर्थात् अनात्मा में आत्मबुद्धिरूप माया निष्काम भाव से धर्म का आचरण करने से और भगवान की भक्ति से भगवान की कृपा होने पर निवृत्त होती है। जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ विषयों से उपराम होकर साक्षी आत्मा श्रीहरी में लीन हो जाती है तब निद्राधीन पुरुष की भाँति जीव के सम्पूर्ण क्लेश क्षीण हो जाते है।' (३-७-१३) यदि भगवान के गुणों के श्रवण से ही सम्पूर्ण क्लेश शांत हो जाये, तो हृदय में प्रेमसे भगवान प्रकट होनेपर क्लेश शांत हो तो उसमें क्या आश्चर्य है ?

वेदांत में माया का स्वरूप

वेदांत में बहुधा तीन अवस्थाओं के विचार से माया का स्वरूप समझाया जाता है। जाग्रत अवस्था के कुछ संस्कार स्वप्न अवस्थामें आते है, पर जाग्रत का काल स्वप्न में नहीं आता। अतः स्वप्न अवस्था भी एक माया की अवस्था है और प्रगाढ़ निद्रा भी माया की एक अवस्था है। और एक अवस्था में दूसरी अवस्था नहीं रहती। जाग्रत का स्वप्नमें बाध होता है और स्वप्न का जाग्रत में बाध होता है। इन दोनों का सुषुप्ति में बाध होता है और सुषुप्ति का जाग्रत में बाध होता है, अतः ये तीनों अवस्था माया की है।

स्वप्न सृष्टि बिना सामग्री के ही उपजती है इसलिए वह सम्पूर्ण सृष्टि मिथ्या है। एवम् जिस ब्रह्म में देश और काल लेशमात्र भी नहीं है उसमें सम्पूर्ण जगत उत्पन्न होता हुआ प्रतीत होता है। अतः जगत को स्वप्न के जैसा मिथ्या माना जाता है, उसे लेशमात्र भी सत्य नहीं मानना चाहिये। ब्रह्मसूत्र के रचयिता श्री व्यासजी ने एवम् भाष्यकार ने भी देशकाल का उद्भव कैसे हुआ यह नहीं बताया। देशकाल की उत्पत्ति में पूर्वकाल की अपेक्षा रहती है, पर काल की उत्पत्ति के बिना पूर्वकाल की सिद्धि नहीं होती। अतः आकाश आदि से पूर्वकाल में देशकाल हो ऐसी संभावना नहीं बनती। यदि पूर्वकाल की उत्पत्ति में भी अन्य किसी काल को कारण माना जाय तो आत्माश्रय आदि अनेक दोष आ जायेंगे, जैसे कि :-

(१) यदि अपनी उत्पत्ति में स्वयं ही कारण बनता है तो वह आत्माश्रय दोष

कहलाता है।

(२) यदि एक प्रस्तुत काल का कारण पूर्वकाल और पूर्वकाल का कारण प्रस्तुत काल-ऐसे एक दूसरे का कारण कार्य बने तो अन्योन्याश्रय दोष कहलाता है।

(३) यदि प्रथम पूर्वकाल का कारण दूसरा पूर्वकाल और दूसरे पूर्वकाल का कारण तीसरा पूर्वकाल और तीसरे पूर्वकाल का कारण प्रथम पूर्वकाल कहेंगे तो चक्रिका दोष कहलाता है।

(४) यदि तीसरे पूर्वकाल का कारण चौथा पूर्वकाल, ऐसे पूर्वकाल का प्रवाह चालु रखे तो अनवस्था दोष कहलाता है। इस प्रकार अनेक दोष उत्पन्न होने के कारण देशकाल की उत्पत्ति में पूर्वकाल को कारण मानना अयुक्त है (तर्क संगत नहीं है)।

अतः कुछ वेदांतीयों का मानना है कि देश काल माया का परिणाम है और चेतन का विवर्त है, अथवा स्वप्न के पिता पुत्र की नाईं देशकाल सहित आकाशादिक प्रपंच परमात्मा से उत्पन्न होते है, अथवा जिस माया से देशकाल सहित प्रपंच की उत्पत्ति होती है, उसी माया से देशकाल कारण है और अन्य सभी प्रपंच कार्य है, ऐसा भी प्रतीत होता है।

कारण और कार्य के विषयमें वेदान्त के अनुसार अधिक खुलासा इस प्रकार है : इसका खुलासा करने का कारण यह है कि विज्ञान की दृष्टि से इस विषय पर पुनः विचार तेरहवें प्रकरण में आयेगा। स्वप्न में पितापुत्र दिखते हैं वहाँ दो शरीर उत्पन्न होते है :

(१) एक शरीर पिता के रूप में प्रतीत होता है और (२) दूसरा शरीर पुत्र के रूप में प्रतीत होता है। यहाँ दोनों शरीरों का स्वप्न के अधिष्ठान चेतन से संबंध भी है, तथापि पिताके शरीरमें अधिष्ठान की कारणता प्रतीत होती है और पुत्र के शरीर में कार्यता प्रतीत होती है। वैसे ही हालांकि अधिष्ठान चेतन के साथ संबंध तो सब का है, तथापि देशकाल में चेतनधर्म की कारणता की और अन्य सभी में कार्यता की प्रतीति होती है।

अथवा अधिष्ठानचेतन असंग है। वह किसीका परमार्थसे (वास्तविक) कारण नहीं है।

यदि परमात्मा जगत का कारण हो तो परमात्मा प्रथम और जगत बाद में, ऐसे बीज से वृक्ष की नाईं देखनेमें आयेगा लेकिन वृक्ष होने के बाद उसका मूल कारण जो बीज है वह देखने में नहीं आता वैसे ही जगत होने के बाद भगवान नहीं दिखते, अतः

परमात्मा को कारण नहीं माना। परमात्मा कारण आदि धर्म से रहित असंग है। अतः जैसी माया है वैसे देशकाल है। मायाकृत अनिर्वचनीय देशकाल अनिर्वचनीय कारणता से युक्त प्रतीत होते है।

वास्तवमें देखा जाय तो देशकाल भी जगत का कारण नहीं है। पुत्ररहित पुरुष स्वप्नमें पुत्र और पौत्र दोनों को देखता है तब पुत्र और पौत्र के शरीर अनिर्वचनीय उत्पन्न होते है और पुत्र के शरीरमें पौत्र के शरीर का परस्पर कार्यकारण भाव वास्तविक नहीं होता। उसी तरह जाग्रत में भी देशकाल और आकाश आदि प्रपंच का कार्यकारण भाव मिथ्या माना गया है।

ब्रह्मसूत्र में कई स्थानपर पंचम विभक्ति का उपयोग किया गया है। द्वितीय सूत्र में ही कहा है कि जिससे जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है वह ब्रह्म है। यहाँ भी पंचम विभक्ति बतायी है। और अन्य कई स्थानपर पंचम विभक्ति का प्रयोग कर कार्यकारण भाव बनाया हुआ है पर वास्तवमें वेदांत में कार्य-कारण भाव का स्वीकार नहीं किया गया। कार्यकारण भाव की उत्पत्ति हेतु देशकाल चाहिए और देशकाल की उत्पत्ति के लिए भी काल चाहिए। इसके अलावा कारण प्रथम चाहिए और बादमें कार्य होना चाहिए। ऐसा क्षणान्तर सापेक्ष है, ऐसा वर्तमान सायन्स से भी सिद्ध हुआ है। उदाहरण के तौरपर बारिश के समय में बादलों के परस्पर टकराव से बिजली की चमक और बादलों की गड़गड़ाहट आकाश में एकसाथ उत्पन्न होती है, पर पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्यों को चमक प्रथम दिखती है। और आवाज बादमें सुनाई पड़ती है। अतः क्षणान्तर जैसी प्रगति सिर्फ स्थानधर्म से दिखती है, वास्तवमें वह सच्ची नहीं है। इस विषय के अधिक दृष्टांत आगे के प्रकरणों में दिये गये है। संक्षेप में क्षणान्तर सच्चा नहीं होने से कारण कार्य भाव नहीं बन सकता।

स्वप्न के समय स्वप्न जाग्रत जैसा लगता है। स्वप्न के पदार्थ स्वप्न के समय उत्पन्न होते है। फिर भी उस समय प्रतीत होता है कि 'मेरे जन्म से पहले उपजे हुए ये पर्वत, समुद्र आदि है।' उस समय तत्काल उपजे हुए पदार्थों में भी बहुत काल तक स्थिरता की भ्रांति होती है, अतः जिस अविद्या ने मिथ्या पर्वत, समुद्र आदि उपजाये है, उसी अविद्या से बहुत काल तक स्थिरता और स्थिरता की अनिर्वचनीय प्रतीति उपजती है।

इसी प्रकार जाग्रत के पदार्थों के विषय में भी बहुत काल की (लंबे समय तक की) स्थिरता नहीं है, पर अविद्या के बल से मिथ्या स्थिरता भी उन पदार्थों के साथ ही

उत्पन्न होकर प्रतीत होती है। जाग्रत अवस्था में हिमालय पर्वत को देखा। वह हमारे जन्म के पहले था ऐसा कहना हो तो उतना ही कह सकते है कि वह हमारे वर्तमान शरीर से पहले था, पर शरीर हमारा सच्चा स्वरूप नहीं है। हमारा सच्चा स्वरूप आत्मा है, इसलिए जाग्रत का पर्वत भी हमारे जन्म से पूर्व था ऐसा नहीं कह सकते। यह बात इसके बाद के प्रकरण पढ़ने के बाद अधिक स्पष्टता से समझमें आयेगी।

वेदांत में तो माना गया है कि अविद्या का ज्ञानाकार परिणाम और ज्ञेयाकार परिणाम एक ही समय में होते है और एक ही समय में बाधित होते है। अतः जिस समय पदार्थ की प्रतीति होती है उसी समय उस प्रतीति का विषय-पदार्थ भी प्रतीत होता है, अन्य समय में उत्पन्न नहीं होता। इसे दृष्टि-सृष्टिवाद कहते है। दृष्टि-सृष्टिवाद में पदार्थ की अज्ञात सत्ता नहीं है अपितु ज्ञात सत्ता है अर्थात् जिस समय जिस पदार्थ को नहीं जाना उस समय उसका अस्तित्व नहीं होता पर जिस समय पदार्थ जानने में आता है उसी समय उसका अस्तित्व भी भासता है। अद्वैतवाद में इस सिद्धांत के अनुसार दो सत्ता है उसे प्रातिभासिक और पारमार्थिक सत्ता कहते है। प्रातिभासिक सत्ता झूठी होने से अंततः सिर्फ पारमार्थिक सत्ता रहती है। सारे अनात्म पदार्थ स्वप्न की नाईं प्रातिभासिक है। प्रातिभासिक पदार्थों में ज्ञात सत्ता ही होती है। प्रातिभासिक पदार्थों का जिस समय ज्ञान होता है सिर्फ उसी समय उसकी सत्ता (अस्तित्व) है। उसके सिवाय उन अनात्म पदार्थों की सत्ता नहीं है। वे पदार्थ स्वयं नहीं कहते कि हम है अतः व्यावहारिक सत्ता है ही नहीं, फिर भी स्वप्न की नाईं प्रातिभासिक पदार्थों से व्यवहार हो सकता है।

इसके अलावा प्रातिभासिक पदार्थों में अभानापादक आवरण नहीं होता। जहाँ व्यावहारिक सत्ता हो और व्यावहारिक वस्तु ज्ञान होने से पहले मौजूद हो वहाँ अभानापादक आवरण बन सकता है, लेकिन प्रातिभासिक पदार्थ ज्ञानकाल में प्रतीत होते है इसलिए प्रातिभासिक सत्ता में अभानापादक आवरण नहीं होता, इस विषय पर ग्यारहवें प्रकरण में अधिक स्पष्टता की गयी है।

स्वप्न का अन्तःकरण इन्द्रियाँ, विषय और उसका प्रमाता ये सब स्वप्न के ज्ञान से पहले नहीं थे। वैसे ही जाग्रत में भी प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय तीनों एकसाथ अविद्या से प्रतीत होते है और ज्ञानकाल में उनका त्रिकालिक निषेध होता है। अतः प्रपंच वास्तवमें सच्चा नहीं है। माण्डूक्य उपनिषद में भी कहा गया है कि यदि प्रपंच हो तो उसकी निवृत्ति होवे। प्रपंच तीनों काल में नहीं है इसलिए वस्तुस्थिति को ज्यों का

त्यों समझना है। यही वेदांत का सिद्धांत है।

यह सब अविद्या की महिमा है, पर मूल अविद्या आई कहाँ से उसके दो उत्तर इस प्रकार बन सकते है :

१. अविद्या कहाँ से आई यह ढूँढने की जरुरत नहीं है, क्योंकि अविद्या स्वयं मिथ्या है अर्थात् ज्ञानकाल में उसका बाध हो जाता है। जिसका ज्ञानकाल में बाध हो उसकी अज्ञानकाल में ही प्रतीति होती है।

२. अथवा अविद्या कहाँ से आई उसे जानने के लिए प्रश्न पूछनेवाले की दशा का विचार करना चाहिए। अतः जो पूछता है कि अविद्या कहाँ से आयी वही उस समय अविद्या का मालिक (आश्रय) है । उसका प्रमाण गीता के तेरहवें अध्याय के दूसरे श्लोक पर श्री शंकर भाष्य में है। प्रश्नकर्ता ब्रह्मदशा में हो तो अज्ञान कहाँ से आया - ऐसा प्रश्न नहीं बन सकता और प्रश्नकर्ता अज्ञानदशा में हो तो वह अज्ञान का स्वीकार करके प्रश्न करता है इसलिए प्रश्न करनेवाला ही अज्ञानी है, उसीको प्रमाता, चिदाभास, जीव, अहंकार कहते है। जैसे पिता और पुत्र दोनों एक साथ उत्पन्न होते है (क्योंकि पुत्र के जन्म से पहले उसे कोई पिता नहीं कहता था) वैसे ही अज्ञान, अज्ञान का आश्रय और अज्ञान का विषय ये तीनों एक ही समय प्रतीत होते है और ज्ञान होते ही इन तीनों का बाध होता है। वास्तवमें चैतन्य एक ही है, पर उपाधि के भेद से प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय जैसा दिखता है। उपाधि अर्थात् आगंतुक स्वभाव। जब उपाधि भिन्न देशमें हो अथवा भिन्न काल में हो तब उपहित में (चैतन्य में) भेद बताती है, परंतु वह आभासमात्र है । ज्ञानकाल में त्रिविध चैतन्य एक हो जाता है । इसलिए अविद्या जगत का कारण है यह बात भी सच्ची नहीं । अगर यह बात सच्ची हो तो अविद्या पहले रहनी चाहिए और जगत बादमें होना चाहिए परंतु ऐसा नहीं है । अविद्याकाल में ही जगत की प्रतीति होने के कारण वास्तवमें कार्य-कारणभाव नहीं बनता, यह बात आजके नए सायन्स से भी सिद्ध हो सकती है।

और जगत अविद्या का परिणाम है ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि अविद्या स्वयं ब्रह्म का विवर्त है। वेदांत में परिणामवाद नहीं माना गया और सापेक्षवाद के सायन्स से भी परिणामवाद टूट गया है, इसलिए सब ब्रह्म का विवर्त है। प्रातिभासिक सत्ता में परिणाम नहीं होता।

वेदांत में अनिर्वचनीय ख्याति मानी हुई है उसका अर्थ यह नहीं कि माया को समझा नहीं सकते। माया को समझा सकते है पर दूसरी अवस्था में उसका तुरंत बाध

होता है। और जब बाध होता है तब उसका त्रिकालिक निषेध अनुभव में आता है।

दृष्टांत के तौर पर दोपहर बारह बजे एक व्यक्ति के मन में कोई वृत्ति उत्पन्न हुई। उस समय उसका वह प्रमाण हुआ, अथवा उसकी माया हुई। अब वह प्रमाण सच्चा है कि नहीं उसको निश्चित करने के लिये बारह बजकर एक मिनट की वृत्ति यानी अलग काल की वृत्ति उत्पन्न होगी। बारह बजे की वृत्ति को समझने के लिए बारह बजकर एक मिनट की वृत्ति नहीं चलेगी। जिस प्रमाण से जिस वस्तु की सिद्धि हो उसे उसी प्रमाण से समझना चाहिए। इसी कारण से माया समझने में कठिनाई पड़ती है। इस संबंध को नए सायन्स में अपरिणामी (irreversible) संबंध कहते है। ब्रह्म में जगत का ज्ञान सत् असत् से विलक्षण है इसलिए अनिर्वचनीय है। वर्तमान सायन्स इसे समझने में हमें बहुत सुगमता प्रदान करता है। उसकी हकीकत इसके बाद के प्रकरणों में सविस्तार दी गयी है।

ॐ ॐ

३ : विज्ञान की नई खोज

वर्तमान समय में इस प्रकार की पाँच नई खोजें हुई है :

१. विमान २.रेडियो ३. सिनेमा थियेटर ४. सापेक्षवाद (theory of relativity) और ५. तरंगवाद (quantum theory)

प्रथम तीन खोज का लाभ साधारण मनुष्य ले सकते हैं। विमान में मूर्ख बैठ सकते है और विद्वान भी बैठ सकते है। रेडियो और सिनेमा का उपयोग भी मूर्ख भी कर सकते है और विद्वान भी कर सकते है, लेकिन आखरी दो खोज को समझने के लिए और उसका लाभ प्राप्त करने के लिये अच्छी बुद्धि की जरुरत है अथवा सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता है। सापेक्षवाद की खोज सन ईस्वी १९०५ में प्रो.आईन्स्टाइन ने की है। इस खोज का रहस्य पूरे विश्व में सिर्फ १२ लोग समझते होंगे ऐसा उस समय माना जाता था। उसके बाद उसपर अब तक लगभग बीस से पचीस हजार पुस्तकें लिखी जा चुकी होंगी फिर भी अभी तक उसका रहस्य समझने वाले लोग बहुत कम है। १९२१ में यदि कोई व्यक्ति सापेक्षवाद की खोज को सरलता से गणित के बिना अमुक शब्दों में समझाये तो उसे १५, ००० का इनाम दिया जायेगा ऐसी घोषणा की गयी। उसपर सभी देशों से लगभग २५० लेख आये थे। उनमें इनलैंड की पेटंट ऑफिस में काम करनेवाले बोल्टन को यह इनाम प्राप्त हुआ था। उन लेखों में से लगभग २० अच्छे लेख अलग निकालकर 'रीलेटिविटी एण्ड ग्रेवीटेशन' नामक एक पुस्तक अमेरिका में प्रसिद्ध हुआ है। यह खोज जगत की बड़ी घटनायें समझनेमें उपयोगी हुई है और माया का तत्त्व समझने में भी उपयोगी सिद्ध हुई है। इस नई खोज का रहस्य समझने हेतु माया अर्थात् नाप अथवा मेझर अथवा प्रमाण या परिमाण ऐसा अर्थ करना चाहिए। इस खोज से पहले वैज्ञानिकों का ध्यान सिर्फ जगत की वस्तुयें है उसे जानने में लगा था लेकिन सापेक्षवाद की खोज के बाद हम किस प्रकार के नाप से (प्रमाण से) वस्तु को देखते है अथवा कैसी दृष्टि से देखते है उसपर ध्यान गया है, अर्थात् देखनेवाला कैसी दशा में अथवा कैसे देशकाल में रहकर देखता है उसपर जगत का आधार है। वर्तमान के कुछ विज्ञान पढ़ने-पढ़ानेवाले इस खोज को समझने का प्रयास कर रहे हैं। उन में से कुछ लोग इस खोज का गणित का भाग समझ पाये है, परंतु मानस शास्त्रमें और तत्त्वज्ञान में इस खोज की उपयोगिता कितनी हो सकती है यह समझने का बहुत ही कम लोगों ने प्रयास किया है। इस नई खोज पर आधारित

थोड़ा सा गणित हमारी कॉलेजो में पढ़ाया जाता है। फिर भी यदि तत्त्वज्ञान में इस विषय की उपयोगिता के विषय में जानना हो तो यह पुस्तक कॉलेजो के लिए भी उपयोगी हो सकता है। सन ईस्वी १९२७ में प्रो.हाइसन बर्ग ने तरंगवाद (quantum theory) की खोज की है, जो परमाणु (एटम) और इलेक्ट्रोन के स्वभाव और सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु का स्वभाव जानने में उपयोगी हो रही है। उसका स्पष्टीकरण आगे के प्रकरण ९ एवम् प्रकरण १० में किया गयी है। उसकी मदद से भी माया को समझ सकते है।

अभी तक मनुष्य तीन परिमाण वाले अथवा तीन नाप वाले जगत को समझ पाये हैं। उस नाप को लंबाई, चौड़ाई और ऊंचाई कहते है उसे फुट (स्केल) से नाप सकते है। (*जहाँ परिमाण शब्द का उल्लेख हो वहाँ नाप अथवा मेजर समझना और जहाँ परिणाम शब्द हो वहाँ बदलाव अथवा फेरफार समझना।)

सापेक्षवाद की खोज होने के बाद यह निश्चित हुआ है कि हमारे जगत के चार परिमाण अथवा नाप है। चतुर्थ परिमाण को काल कहते है। इसलिए अब बीजगणित में चार अक्षर के गणित के प्रश्न आते है। हर एक वस्तुमें काल को जोड़ा जाता है उसे घटना (event) कहते है। और जैसे लंबाई, चौड़ाई और ऊंचाई हर एक वस्तु में है वैसे काल भी हर एक घटना में है। काल को नापने का साधन प्रकाश है। किसी वस्तु को देखनेवाला किस दशा में है, अथवा किस भूमिका में है और उसका उस वस्तु से क्या संबंध है उस के आधारपर काल की गिनती होती है। उसकी अधिक जानकारी आगे अनेक दृष्टान्तों से बतलायी गयी है।

यह खोज होने के बाद कोई वस्तु, वस्तु (object) के रूप में नहीं रहती, अपितु एक घटना बन जाती है। उसको हम प्रसंग अथवा घटना या कर्म भी कह सकते है। दूसरे शब्दों में कहें तो मैं जब किसी पत्थर को अथवा किसी पेड़ को देखता हूँ तब मैं किसी वस्तु को नहीं देखता, अपितु किसी घटना को देखता हूँ, यह एक कर्म है अथवा एक प्रसंग है। अभी के नए सायन्स वाले इस नई खोज के बाद जगत की वस्तुओं की बात नहीं करते पर घटना (कर्म) की बातें करते है।

नए सायन्स में नई भाषा का प्रयोग होने के कारण नई भाषा समझने की आदत डालनी चाहिए, जैसे कोई सास बहु को कहती है कि गेहूँ बीन लो तो बहु गेहूँ नहीं बीनती, कंकड़ बीनती है। दोनों एक दूसरे की भाषा समझ जाती है। ट्रेन में बैठे यात्री कहते है कि स्टेशन आया। हकीकत में स्टेशन नहीं आता फिर भी वह भाषा सच्ची

मानी जाती है। क्योंकि उससे अमुक घटना समझमें आती है। सुबह में लोग कहते है कि सूर्य उदय हुआ। सूर्य उदय नहीं होता, वह सदा प्रकाशमान है, फिर भी व्यवहार में इस प्रकार की भाषा से काम चलता है। ऐसे ही जब नए सायन्स वाले कहें कि हम एक घटना (प्रसंग) को देखते है तब उनकी भाषा समझने की आदत डालनी चाहिए। निम्नलिखित कुछ दृष्टान्त से भी यह विषय सरल हो सकता है।

दृष्टान्त : १ :

घंटा, दिन, महीना, साल, दिन-रात आदि से काल का नाप लिया जाता है। इस काल की उत्पत्ति सूर्य और पृथ्वी की गति के आधारपर निर्धारित की जाती है। पहले यह निश्चित करना चाहिए कि वह गति किस प्रकार की है। उसमें इस प्रकार की विज्ञान की खोज हुई है। :

(१) सन ईस्वी १५० में टॉलेमी नामक वैज्ञानिक ने सिद्ध किया कि सूर्य पृथ्वी के इर्द गिर्द घूमता है। इस बात को आज गाँव में रहनेवाले कई अज्ञानी भी मानते है।

(२) सन ईस्वी १५४३ में कोपरनिकस नामक वैज्ञानिक ने सिद्ध किया कि पृथ्वी घूमती है और सूर्य घूमता नहीं है।

(३) उसके पश्चात केप्लर नामक खगोलवेत्ता ने सिद्ध किया कि पृथ्वी सूर्य के आसपास घूमती है, पर वह दीर्घवृत्तिय कक्षा में घूमती है और पृथ्वी की दो गतियाँ है। एक तो अपनी धुरी पर दिन में एक बार घूमती है और दूसरी गति सूर्य के आसपास साल में एक चक्कर लगाती है। यह चक्कर इतना बड़ा है कि एक सेकण्ड में १८ मिल गति करते हुए एक साल में सिर्फ एक चक्कर पूरा होता है।

(४) सन् ईस्वी १६०९ में एक नये दूरबीन की खोज हुई उसकी मदद से उपरोक्त सिद्धांत (२) और (३) सत्य सिद्ध हुए।

(५) उसके बाद न्यूटन नामक वैज्ञानिक ने सिद्ध किया कि पृथ्वी सूर्य के आसपास घूमती है उसका कारण गुरुत्वाकर्षण (gravitation) है। यह नियम सूर्य के आसपास घूमने वाले अन्य ग्रहों को भी लागू हुआ, पर मर्क्युरी (बुध) नामक ग्रह को लागू नहीं हुआ। वह न्यूटन के सिद्धांतानुसार घूमता नहीं था इससे खगोलशास्त्री को कठिनाई होती थी।

(६) उपरोक्त बात १९वीं शताब्दी तक सच्ची मानी जाती थी और अभी भी लगभग सभी स्कूल एवं कॉलेजो में उपरोक्त प्रकार से खगोल का ज्ञान समझाया जाता है।

(७) बीसवीं सदी के प्रारंभ में अर्थात् सनईस्वी १९०५ में प्रो.आइंस्टाइन ने सापेक्षवाद का नया सिद्धांत पेश किया और प्रसिद्ध किया कि पृथ्वी पर से देखनेपर सूर्य घूमता हुआ दिखेगा और सूर्य पर से देखेंगे तो पृथ्वी घूमती हुई दिखेगी। यानी जिस स्थान पर देखनेवाला बैठा हो वह वस्तु घूमती हुई नहीं दिखेगी। अतः देखनेवाला कहाँ पर खड़ा है उसका विचार पहले करना चाहिए।

पृथ्वी घूमती है ऐसा कहना हो तो पृथ्वी से अलग होकर कहे तभी बात सच होगी। पृथ्वी पर का मनुष्य कहता है कि सूर्य घूमता है और सूर्य पर कोई हो तो वह कहेगा कि पृथ्वी घूमती है।

सच्चा कौन ?

सापेक्षवाद के विज्ञान वाले से कोई पूछे कि 'पृथ्वी घूमती है कि सूर्य घूमता है ?' तो वह उत्तर देगा कि देखनेवाले को लाओ। देखने वाला सूर्यपर होगा तो पृथ्वी घूमती नजर आयेगी और देखनेवाला पृथ्वीपर होगा तो सूर्य घूमता हुआ नजर आयेगा। स्वामी रामतीर्थ से किसीने पूछा कि जगत कैसा है ? उन्होंने उत्तर दिया कि 'तू कैसा है ? जैसा तू है वैसा जगत है।'

सूर्यपर रहनेवाला कोई हो तो वह पृथ्वी के मनुष्य को कहे कि तू क्यों घूमता है और पृथ्वी पर रहने वाला सूर्य वाले मनुष्य को कह सकता है कि मैं नहीं घूमता पर तू घूमता है।

सच्चा कौन ?

दोनों सच्चे अथवा दोनों झूठे है, क्योंकि मनुष्य जिस समय जिस स्थान पर जो देखता है वह कोई वस्तु नहीं है, अपितु घटना है और घटना हमेशा सापेक्ष रहती है।

अब इस बात को शास्त्र के अनुसार निश्चित करते है :

(१) वैष्णव कहेंगे कि दोनों सच्चे है, भगवान में ऐसे विरुद्ध धर्म रह सकते है।

(२) सायन्स वाले भी कहते हैं दोनों अपनी अपनी दृष्टि से सही है।

(३) जैन धर्म वाले कहते है कि अमुक अपेक्षा से पहला सच्चा है और अमुक अपेक्षा से दूसरा मनुष्य भी सच्चा है। इसे स्यादवाद कहते है।

(४) वेदांत कहता है कि **'यद्व्यिम व्यभिचरति न तस्य स्वाभाविको धर्मः शुक्तिकायां रूप्यम्। '**

जिस धर्म का व्यभिचार हो वह कोई सच्चा धर्म नहीं है, अतः दोनों देखनेवाले झूठे है। वेदांत में यह माना गया है कि यदि प्रथम अनुभव का दूसरे अनुभव से बाध

होता हो तो प्रथम अनुभव सच्चा नहीं है। जैसे कि पृथ्वी घूमती है -इस अनुभव का बाध पृथ्वी पर बैठकर देखने से होता है और पृथ्वी घूमती नहीं है -इस अनुभव का बाध सूर्य पर से देखनेपर होता है। दोनों स्थानधर्म है और अन्य काल में बाधित होने के कारण मिथ्या है।

इस सिद्धांत को ब्रह्मज्ञान में लाये तो जो लोग कहते है कि ब्रह्म में क्रिया है वे ब्रह्म से अलग रहकर ही कह सकते है। जैसे उपरोक्त दृष्टान्त में पृथ्वी घूमती है ऐसा सिद्ध करना हो तो पृथ्वी से अलग होकर कह सकते है। जो पृथ्वी के साथ है वे पृथ्वी को घूमती हुई नहीं देख पायेंगे, ऐसे ही महात्मा लोग ब्रह्म के साथ एकरूप हो गये है उनको ब्रह्म में क्रिया नहीं दिखती।

दृष्टांत : २ :

जाग्रत का काल अलग है और स्वप्न का काल अलग है यह सभी के अनुभव की बात है। सुषुप्ति (निद्रा) में कोई घटना नहीं है, इसलिए काल का पता नहीं चलता। जाग्रत में भी जिनके जीवन में कम घटनायें घटती हो उन्हें काल का पता नहीं चलता। गाँव की बुढ़िया को पूछे कि तुम्हें कितने साल हुए अथवा अभी कितने बजे होंगे तो सिर्फ अनुमान से कह सकती है और जल्दबाजी से काम करनेवाले हाथ की कलाई पर घड़ी बाँध करके बारबार टाइम देखते रहते है। अतः उन्हें काल का असर महसूस होता है। कोई नया काम आ जाता है तो कहते है टाइम मिलनेपर कर के दूंगा। उन्हें काम के लिये समय चाहिए। वह काल कार्य के साथ ही उत्पन्न होता है।

दृष्टांत : ३ :

प्रकाश की गति एक सेकंड में १, ८६, ००० मील है। सूर्य पृथ्वी से इतना दूर है कि सूर्य का प्रकाश पृथ्वीपर आने में ८ मिनट लगती है। इस दृष्टांत को लेकर काल की सापेक्षता इस प्रकार समझ सकते है। :

मान लो कि एक मनुष्य सूर्य पर है और एक पृथ्वी पर है और दोनों के पास घड़ी है और दोनों को अपनी घड़ी परस्पर मिलाने की इच्छा हुई।
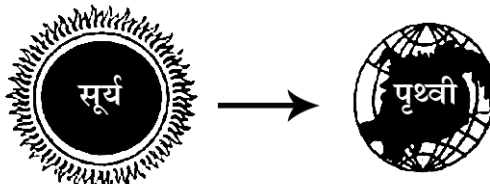
सूर्यपर दोपहर के १२ बजे है उस समय सूर्य का मनुष्य एक प्रकाश की चमक

पृथ्वीपर के मनुष्य को भेजे तो १२ बजकर ८ मिनट को मिलेगी और वह आदमी अपनी घड़ी उसके अनुसार रखे, और सूर्य पर के मनुष्य को उसकी खबर प्रकाश की एक चमक से दे तो सूर्य के मनुष्य को १२ बजकर १६ मिनट को वह प्रकाश मिलेगा और वह यदि अपनी घड़ी में देखे कि १२ बजकर १६ मिनट हुई कि नहीं उस प्रकार से मिला लेंगे तो दोनों की घड़ी सच्ची हो सकती है।

अब मान लो कि सूर्य और पृथ्वी दोनों दाहिनी ओर गति करते है और सूर्य का मनुष्य पृथ्वी के मनुष्य को तेज की एक किरण भेजकर समझाता है कि मेरी घड़ी में १२ बजे है। उस किरण को भेजने के बाद जो ८ मिनट का समय लगता है उतने समय में पृथ्वी अधिक दूर खिसक जाती है इसलिए मानो कि एक मिनट का अंतर बढ़ जाता है तो जब प्रकाश पृथ्वी पर पहुँचेगा तब पृथ्वी पर के मनुष्य की घड़ी में १२ बजकर ९ मिनट हो चुकी होगी। वह फिर अपनी घड़ी का समय सूर्य के मनुष्य को प्रकाश के द्वारा भेजे तो उतने समय में यानी ८ मिनट में सूर्य पृथ्वी के नज़दीक आ जाता है अतः उस प्रकाश को वापस आने में ७ मिनट लगती है, ऐसे कुल सोलह मिनट होगी पर पृथ्वीपर के मनुष्य की घड़ी में १२ बजकर ९ मिनट कैसे हुई इस बात को सूर्य पर स्थित मनुष्य नहीं समझ पायेगा। उसको लगता है कि हम दोनों के बीच सिर्फ ८ मिनट का अंतर है, क्योंकि दोनों को अपनी गति का पता नहीं चलता, फिर भी पृथ्वी वाला १२ बजकर ९ मिनट क्यों बताता है? घटना की गति के साथ ही नया काल उत्पन्न होता है यह बात ईस.१९०५ में प्रो.आईन्स्टाइन ने सिद्ध कर के बतायी। उस सिद्धांत के फल स्वरूप विज्ञान में अनेक नए सिद्धांतो का उद्भव हुआ है। जगत का आधार देशकाल पर है, देशकाल का आधार देखनेवाले की भूमिका (दशा) पर और देखनेवाले की गतिपर है ऐसा सिद्धांत आने से तत्त्वज्ञान में भी यह सिद्धांत उपयोगी हुआ है। सायन्स वाले (वैज्ञानिक) कहते है कि हमने २००० साल तक जगत की रचना समझने में गलती की है और सिर्फ ईस.१९०५ से हम सही मार्ग पर आये है।

दृष्टांत : ४ : स्थानधर्म

वर्ष, कल्प, युग, आदि जो लौकिक काल है वह सूर्य की गति और पृथ्वी की गति के आधारपर निर्धारित किये गये है, पर सूर्य पर रात दिन नहीं है। चंद्रपर दूज, तृतीया, चतुर्थी आदि नहीं है, फिर भी हमें पृथ्वी पर रहकर रात दिन और दूज, तृतीया, चतुर्थी दिखती है अतः ये सब स्थानधर्म है, वस्तुधर्म नहीं है। अतः हर एक देखनेवाला सिर्फ

एक घटना को देखता है, किसी वस्तु को नहीं देखता । देखनेवाले की गति और स्थिति के अनुसार देशकाल उत्पन्न होते है । स्वप्न में स्वप्न के स्थानधर्म के अनुसार देशकाल उत्पन्न होते है । जाग्रत में भी ऐसा बनता है । प्रेम में समय जल्दी चला जाता है और दुखमें समय नहीं कटता । यदि कोई न्यूसपेपर न पढ़े तो उतनी घटनायें उसके जीवन में नहीं घटती । कोई मर जाता है तब भी लोग कहते है 'उसका काल आ गया' अर्थात् काल व्यक्तिगत था, फिर भी समान काल हो ऐसी भ्रांति हो सकती है ।

दृष्टांत : ५

कुछ समय पहले अंतिम युध्द के समय वाइसरॉय ने हमारे देश की सब घड़ीयों में एक घंटे का बदलाव किया था । वह १ घण्टा सच्चा नहीं था, क्योंकि युद्ध के बाद वाइसरॉय ने उसे बदल दिया था, फिर भी कुछ लोगों को उस नए समय के अनुसार भूख लगती थी और कुछ लोगों को उस नए समय के अनुसार नींद आती थी । उसी प्रकार हमें कोई स्वर्ग में ले जाय और वहाँ का काल अलग होगा तो हमारी काल की कल्पना का क्या होगा ?

दृष्टांत : ६

मुम्बई से लन्दन के लिए रवाना होनेवाली स्टीमर की सभी घड़ियों को हररोज दोपहर में स्टीमर के स्थान के अनुसार बदलना पड़ता है । यदि ऐसा नहीं किया गया तो स्टीमर लन्दन पहुँचे तब तक पाँच घंटे का अंतर पड़ जाता है और वहाँ पहुचनेवालों के हिंदुस्तानी घड़ी के अनुसार काम नहीं होंगे । उन्हें भी लन्दन की घड़ी के अनुसार अपनी घड़ी में समय बदलना पड़ेगा । यदि कोई स्टीमर जापान की ओर जाती है तो हररोज सुबह स्टीमर की घड़ी का टाइम स्थान के अनुसार बढ़ाना पड़ेगा और जापान की दिनांक के लिए निर्धारित लाइन को स्टीमर पसार करती है तब एक तारीख बदलना पड़ता है । यदि कोई मनुष्य अपनी घड़ी का समय बदले बिना ही सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है तो २४ घण्टे का अंतर पड़ जाता है और शुक्रवार के स्थानपर गुरुवार अथवा शनिवार हो जायेगा ।

दृष्टांत : ७

यदि कोई विमान एक घण्टे में १, ००० मिल की गति से दोपहर १२ बजे पूर्व से पश्चिम की ओर जाता है तो उसे हर समय दोपहर का सूर्य ही लगेगा । उसके लिए न शाम होगी न रात होगी, हिंदुस्तान से सोमवार को दोपहर १२ बजे निकला हुआ विमानी इंग्लॅण्ड में सोमवार को दोपहर १२ बजे पहुँच सकता है, क्योंकि सूर्य के

आसपास पृथ्वी भी उतनी ही गति से घूमती है। भविष्य में विमान की गति में इतनी गति आ सकती है इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

दृष्टांत : ८ : राजा की सवारी

प्रत्येक वस्तु में तीन परिमाण होते है : ऊंचाई, लम्बाई, चौड़ाई; और ये तीनों देखनेवाले की भूमिका के अनुसार बदलते है। उदाहरणार्थ घर की छत ऊँची होती है, किन्तु विमान में बैठकर कोई उस छत को देखे तो उसे नीची लगती है। लम्बाई के विषय में भी कोई एक लकड़ी दूसरी छोटी लकड़ी के पास पड़ी हो तो बड़ी लगती है और बड़ी लकड़ी के पास पड़ी हो तो छोटी लगती है। पेड़ मनुष्य को बड़ा लगता है और ऊंट को अथवा हाथी को छोटा लगता है। ऐसे नाप में ज्यों परिवर्तन होता है त्यों काल में भी परिवर्तन होता है अर्थात् देखनेवाले की भूमिका के अनुसार भूतकाल से भविष्यकाल होता है और भविष्यकाल से भूतकाल होता है, भूतकाल से वर्तमानकाल और वर्तमानकाल से भूतकाल अथवा भविष्यकाल भी हो सकता है। यह विषय नीचे दिए हुए दृष्टांत से स्पष्ट समझमें आयेगा। मान लो शहर के बाज़ार से एक राजा की सवारी जा रही है। उस समय एक गली (आकृति में 'क') के पास खड़े मनुष्य कहते है कि सवारी पसार हो गई, 'ख' के पास खड़े मनुष्य कहेंगे कि सवारी आ रही है और सवारी के साथ जो राजा के अंगरक्षक हो उनके लिए सवारी न आती है न जाती है।

क अ ख
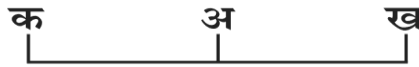
इस प्रकार एक ही घटना को तीन स्थानों से देखनेपर तीन काल बन जाते है। अब 'क' के पास का मनुष्य दौड़कर 'ख' के पास चला जाता है तो भूतकाल की जो घटना थी वह भविष्य की बन जाती है। 'ख' के पास का कोई मनुष्य 'क' के पास पहुँचे तो भविष्य की घटना भूतकाल की हो जायेगी।

'अ' के पास के किसी मनुष्य को राजा किसी काम हेतु 'क' के पास भेजे तो वर्तमान घटना भूतकाल की हो जाएगी और 'ख' के पास भेजे और वहाँ कोई उसे पूछे तो बतायेगा कि सवारी आ रही है। अब 'ख' के पास खड़े हुए लोगों में से किसीको राजा अपनी नौकरी में रख ले तो उसके लिए हमेशा वर्तमानकाल रहेगा। ऐसे ही सिद्धांत में जीव यदि ब्रह्म के साथ ही रहे तो उसके लिए सदा वर्तमानकाल ही रहता है। उसके लिए जगत की उत्त्पत्ति स्थिति या लय नहीं है। हम जन्मे हैं ऐसा सदा मानेंगे तो उसे भूतकाल कहेंगे और जो घटनायें घटेगी उसे भविष्यकाल कहेंगे, पर देह का

अभिमान भूलकर हम आत्मभाव से देखेंगे तो हम आत्मरूप से व्यापक होने से सदा ब्रह्म के साथ ही रहेंगे और उत्पति, स्थिति या लय नहीं दिखेगा। इस प्रकार देखनेवाले की भूमिका के अनुसार काल में परिवर्तन हो सकता है। अतः काल कोई सच्ची वस्तु नहीं है। सापेक्षवाद की खोज होने के बाद मेटरलिंक नामक एक लेखक कहता है कि : 'जिस काल के आधारपर हमारा सम्पूर्ण जीवन चलता है वह काल सच्चा नहीं है। बीती कल, आनेवाली कल, परसों ये सब कल्पित है। वास्तविकता यह है कि जिस घटना का अनुभव होता है वह समकालिक प्रतीतिरूप है।'

अर्थात् भगवान ने (घड़ी की चाबी की तरह) जगत को पूर्व से निर्धारित कर के नहीं रखा। जगत को देखनेवाला कब किस स्थानपर क्या देखता है उसपर पूरा आधार है। शिवाजी महाराज के समय में जन्मे हुए मनुष्यों को स्वप्न में भी पता नहीं होगा कि हिन्दुस्तान में अंग्रेजों का राज्य आयेगा और आखरी युद्ध में मरे हुए मनुष्यों को मालूम नहीं होगा कि जर्मनी, जापान और इटली का पराजय होगा। हिन्द के भूतकाल के नेता गोखलेजी को अथवा दादाभाई को पता नहीं होगा कि हिन्द को स्वराज्य मिला और महात्मा गांधीजी की गोली से मृत्यु हुई। महात्मा गांधीजी को मालूम नहीं है कि पाकिस्तान के गवर्नर जनरल झीणा कब मर गये और झीणा को मालूम नहीं है कि निझाम की क्या दशा हुई है।

दृष्टांत : ९ : प्रातिभासिक घटनायें

हमें किसी दूसरे गाँव जाने के लिये ट्रेन में बैठने के लिए स्टेशन जाना है। स्टेशन जाने के लिए टाँगे वाले को बुलाया पर समयपर नहीं आया, तो हमने सोचा स्टेशन के रास्ते पर चलते है कोई गाड़ी मिल जायेगी तो बैठ जायेंगे। इस घटना में प्रत्येक क्षण नए देशकाल उत्पन्न होते है। स्टेशन पहुँचने के रास्ते में और समय में भी प्रत्येक क्षण परिवर्तन होता जाता है। इस प्रकार प्रत्येक घटना के साथ नया काल होने से सभी घटनायें प्रातिभासिक हो जाती है।

दृष्टांत : १०

कोई बुनकर गलीचा बुनता हो और बहुत छोटा हिस्सा शेष रह गया हो तब उसपर कीड़े चल रहे हो तो जाजिम बनाना शेष है ये कीड़ों को पता नहीं चलेगा। जाजिम का जो हिस्सा एक दिशा में जानेवाले कीड़ों को भविष्य में हो वह दूसरे कीड़ों को वर्त्तमान में हो या भूतकाल में हो ऐसा हो सकता है।

दृष्टांत : ११ : अखंड जगत

कोई चार अंधे मनुष्यों ने एक हाथी को स्पर्श किया। एक ने कान पकड़ा और कहा हाथी सूप जैसा है। दूसरे ने सूंड को पकड़कर कहा हाथी अजगर जैसा है। तीसरे ने पूंछ पकड़कर कहा हाथी रस्सी जैसा है और चौथे ने पैर पकड़कर कहा ये कोई खम्भे जैसा प्राणी है। फिर चौथे ने (जिसने पीछे का पैर पकड़ा था) हाथ ऊपर किये तो उसके हाथमें पूंछ आयी तब उसने कहा इस खम्भे में से यह रस्सी निकली होगी। ऐसे ही लोग कहते है कि भूतकाल के जगत से वर्तमान का जगत उपजा होगा, पर जैसे हाथी पूर्ण है वैसे ही जगत रूप से प्रतीत होनेवाला ब्रह्म भी सदा अखंड है। जो अखंड है उसे अखण्डरूप से ही देखना चाहिए।

दृष्टांत : १२ :

मुम्बई में एक ट्रेन दादर स्टेशन से सेंट्रल स्टेशन को जाती है उस समय ड्राइवर के लिए सेंट्रल स्टेशन भविष्य में है परंतु ऊपर से विमान उड़ रहा हो तो विमान के अंदर बैठे हुए मनुष्य के लिए दोनों स्टेशन वर्तमान काल में एक साथ दिखते हैं। और यदि विमान सुबह करांची से उड़कर शाम को मद्रास पहुँचता हो, उसे सूर्यपर से कोई देखे तो उसको सुबह शाम जैसा कुछ नहीं लगेगा। पूरा मार्ग वर्तमानकाल में दिखेगा। इसलिए ऐसा सिद्धांत निश्चित हो सकता है कि काल स्थानधर्म है और वह देखनेवाले की भूमिका के अनुसार परिवर्तित होता है।

दृष्टांत: १३ : टाईम कृत्रिम है

मुम्बई के उपनगरों में कुछ लोग रहते है, वे लोकल ट्रेन में हररोज सुबह मुम्बई जाते है और रात्रि की ट्रेन से अपने उपनगर में वापस आते है। कोई सुबह ९:३० की ट्रेन से जाते है। कोई १०-१५ की ट्रेन से जाते है और कोई ११-०० की ट्रेन से जाते है। उस समय सुबह की बातचीत में एकदूसरे से कहते है आपका टाइम हो गया, मेरा अभी नहीं हुआ। इस बातचीत से पता चलता है कि टाईम एक कृत्रिम वस्तु है।

दृष्टांत : १४

कच्छमें कुछ समय पहले दो टाइम चलते थे। एक कच्छ का लोकल टाईम और दूसरा स्टैंडर्ड टाईम। जिस व्यक्ति को जो काम करना हो और जो टाईम अनुकूल पड़ता हो उस टाईम को अपने उपयोग में लेते थे। मुम्बई और कलकत्ता में भी दो टाईम चलते थे। किसीको इंग्लॅण्ड का ब्रॉडकास्टिंग रेडियो से सुनना हो अथवा अमेरिका का सुनना हो तो उस स्थान का जो टाईम हो उस के अनुसार रेडियो में वेव-

लेंग्थ रखनी चाहिए।

दृष्टांत : १५

कभी कभी काल पीछे जाता है। कोंग्रेस का प्रस्ताव हिंदुस्तान में रविवार को शाम के समय पास होता है वह रेडियो के द्वारा इंग्लॅण्ड में रविवार को दोपहरमें ही पहुँच जाता है। ईसा के जीवन के अनुसार सन ईस्वी १९४९ गिनी जाती है। लेकिन हिन्दू और मुस्लिम अलग तरीके से वर्ष की गणना करते है। विक्रम से पहले भी काल की गणना की कोई रीत होगी और शालिवाहन से पहले भी साल बीते होंगे, पर उस समय इतिहास सँभालने की जरुरत किसीको लगी नहीं इसलिए वर्ष का नाप नहीं रखा। वास्तवमें मनुष्य को इतिहास सीखने की जरुरत भी नहीं है। नदी में अनेक मछलियों को बगुले खा जाते है फिर भी उस युद्ध का समाचार किसी न्यूसपेपर में नहीं आता। बिल्ली चूहों को मार डालती है और कुत्ता बिल्ली को मारने के लिए उसके पीछे दौड़ता है उसका बचाव कोई नहीं करता। सिर्फ मनुष्य के बचाव का प्रयास होता है।

दृष्टान्त : १६

विक्रम संवत २०१६ में कोई हिन्दू मर जाय और यूरोप में जन्मे तो वह १९६० में जन्मेगा और तुर्कस्तान में जन्मेगा तो १३७८ जन्मेगा। उसके देश और काल बदल जाते है और उसे उसका पता नहीं चलता।

दृष्टांत :१७

एक मनुष्य अन्य गाँव जा रहा था। किसीने उससे पूछा : 'वापस कब आओगे ?' उसने कहा :'एक वर्ष के बाद' दूसरे ने कहा 'यह तो बहुत लम्बा समय है थोड़ा जल्दी आओगे तो अच्छा होगा। ' तब पहले ने कहा 'तुम चिट्ठी लिखोगे तब आऊंगा। ' इस उत्तर में चिट्ठी के समय उसके वापस आने के समय का उद्भव होगा।

वह समय पहले से निश्चित नहीं हो सकता। चिट्ठी लिखने में और पहुँचने में अनेक प्रकार के विघ्न उत्पन्न होने की संभावना है। अतः घटना के समय काल उत्पन्न होता है।

उक्त प्रकार से काल की विचित्रता के कुछ दृष्टांत दिये गये। अब देश अर्थात् स्थान विषयक गलती किस प्रकार होती है वह नीचे के कुछ दृष्टान्तों से समझ में आयेगा।

दृष्टांत : १

हमारा गाँव एक स्थायी स्थान लगता है, किन्तु गाँव को लेकर पृथ्वी सूर्य के

आसपास घूमती है अतः गाँव के लोग एक स्थान पर बैठे नहीं होते। जैसे किसी चलती ट्रेन में कोई बच्चे को उसकी माँ कहती है, 'एक जगह पर बैठ के भोजन कर ले' तो वह एक सीट पर एक स्थानपर बैठकर भोजन करता है और समझता है कि मैंने एक ही स्थानपर बैठकर भोजन किया, फिर भी भोजन करते समय प्रत्येक क्षण ट्रेन के पहिये घूमते है अतः उस बालक ने एक स्थानपर बैठकर भोजन नहीं किया। हमारी नजर में ट्रेन चलती है, स्टेशन नहीं चलते, पर सूर्य पर से देखेंगे तो स्टेशन भी चलते हुए दिखाई देंगे क्योंकि पृथ्वी उस समय घूमती हुई दिखती है और कहा जाता है कि सूर्य भी किसी तारे के आसपास घूमता है एवम् वह तारा भी किसी के आसपास घूमता होगा, पर मनुष्य को उस बात का पता नहीं चलता उसका कारण सापेक्षवाद की खोज करनेवाले प्रो.आइंस्टाइन निम्नलिखित प्रकार से बताते है-

जिस सर्ग में जो मनुष्य रहता हो वह उस सर्ग के धर्म के प्रभाव में आता है। वह सर्ग स्थिर हो अथवा गतिमान हो तो भी एक समान परिणाम आता है। हम स्वप्न में होते है तब उस समय के देशकाल को सच्चे मानने पड़ते है। स्वर्ग में जायेंगे तो वहाँ के देशकाल का स्वीकार करना पड़ेगा, फिर भी वे सभी स्थानधर्म है और अन्य दशा में उनका बाध होता है, इसलिए हमारे शास्त्र उसे मिथ्या कहते है।

दृष्टांत : २

पर्वत का शिखर दूर से देखनेपर ऊँचा दिखता है। हम शिखरपर जाते है तो वह शिखर नहीं रहता। वहाँ ऊंचाई जैसा नहीं है पर दूसरा कुछ नीचा दिखाई देता है। अतः ऊँचा या नीचा सापेक्ष है। ताश के पत्तों के राजा रानी को देखेंगे तो दो सिर होने से और पैर न होने से ऊपर नीचे जैसा कुछ नहीं बनता। आजकल कुछ तीन कदवाले चित्रों के (६ तरफ चित्र हो ऐसे) खिलौने मिलते है। उसको अमुक ढंग से रखनेपर एक चित्र बनेगा, दूसरे ढंग से रखनेपर दूसरा चित्र बनेगा ऐसे ६ तरफ से होने से ६ चित्र बनेंगे। उसमें हर एक चित्र के ऊपर-नीचे की तरफ फेरबदल होता है। वहाँ ऊपर-नीचे जैसा कुछ निश्चित नहीं है। चित्र के अनुसार ऊपर-नीचे का निर्णय होता है। प्रो.आइंस्टाइन के सिद्धांत को स्वीकार करने वाले प्रो.एडिंगटन कहते है :

हम से अमुक वस्तु कितनी दूर है उसका आधार उस समय की दृष्टि पर रहता है। दूसरे व्यक्ति को वह वस्तु नजदीक लगती होने से वस्तु को घटना कहते है।

दृष्टांत : ३

कभी कभी रात्री के समय यात्रा करते समय ट्रेन कोई स्टेशन से वापस चलती है।

ऐसे स्टेशनो में सौराष्ट्र के वढवाण और बोटाद है। उत्तर भारत में सहारनपुर ऐसा स्टेशन है। ऐसी ट्रेन में यात्रा करनेवाला मनुष्य जब सुबह उठता है तो थोड़ी देर के लिए उसको लगता है मानों वह अपने गाँव वापस जा रहा हो। बहुत देर के बाद अथवा नया स्टेशन आने के बाद उसकी भ्रांति दूर होती है। उन जंक्शनों से चढ़नेवाले पेसेंजरो को ऐसी भ्रांति नहीं होती, ड्राईवर और गार्ड को भी ऐसी रोज की आदत के कारण भ्रांति नहीं होती।

दृष्टांत : ४

कईं बार किसी आईने के सामने जाकर चिड़िया उसमें देखती है तो आइने में दूसरी सच्ची चिड़िया उसे नजर आती है, कुत्ता देखता है तो दूसरा कुत्ता दिखता है। ऐसे प्रसंगों में दिशा की भ्रांति पैदा होती है। एक बार रात्रि के १० बजे एक बिल्ली कमरे में घुसी। घर के मालिक ने उसे बाहर निकाल ने का प्रयास किया। बिजली की बत्ती का प्रकाश था जिससे एक आइने में बिल्ली ने एक कमरा देखा और उस कमरे में जाने के लिए कूदी परंतु वह आईने से टकराई।

अतः देखनेवाला, उसकी दृष्टि और दृश्य ये सब मिलकर एक क्षेत्र बनता है। उस क्षेत्र में देश काल भी उसी समय उत्पन्न होते है। अलग प्रकार का दृष्टा होगा तो अलग प्रकार का क्षेत्र (field) और अलग प्रकार का देशकाल प्रतीत होता है।

दृष्टान्त : ५

छोटे बच्चे खेलते हुए गोल गोल घूमते है और फिर रुक जाते है तब धरती घूमती हुई प्रतीत होती है। नौका से उतरने के बाद जमीन समुद्र की नाईं डोलती हुई प्रतीत होती है। उसकी वजह यह है कि वहाँ तीन जगह का मिश्रण होती है। नौका में बैठा हुआ एक मनुष्य नौका का स्थान देखता है, दूसरा समुद्र का स्थान देखता है और तीसरा दूर स्थित जमीन का स्थान देखता है इसलिए उसको चक्कर आते है। ऐसे ही कारण से झूले पर झूलते हुए कईयों को चक्कर आते है। इसी प्रकार भक्ति करते करते भी एक दशा से निकलकर दूसरी दशा में आना पड़ता है, इसलिए कईयों को चक्कर आते है और घबराहट होती है। जब नई दशा में टिक सकते है तब आनंद आता है।

अतः क्षेत्र मुख्य वस्तु नहीं है, अपितु क्षेत्रज्ञ किस दशा में है उस पर सब आधारित। अर्थात् ज्ञान के अनुसार ज्ञेय होता है।

दृष्टांत : ६

यदि छोटे बालक को कहेंगे की पृथ्वी गोल है तो मानेगा नहीं वह कहेगा कि ऐसा

होता तो अमेरिका के लोग उलटे चलने चाहिए या गिर जाने चाहिए, किन्तु ना तो उलटे चलते है न ही गिर जाते है। और पृथ्वी पर एक हिस्सा जमीन है और तीन हिस्से पानी है। पृथ्वी गोल होती तो पानी सब एक तरफ आ जाना चाहिए था परंतु ऐसा नहीं होता है। फिर भी पृथ्वी गोल है इस बात का निश्चय हो सकता है। कोई विमान पूर्व से पश्चिम की तरफ जाता हो और कहीं रूकेगा नहीं तो फिर पूर्व से आयेगा। इस बात के सबूत इतने है कि आज के समय में इस गोल पृथ्वी की प्रदक्षिणा अनेक यात्री कर सकते है। फिर भी जिस स्थान पर यात्री हो वहाँ से पृथ्वी गोल नहीं दिखती। सब स्टीमर गोल जगह में गोल पृथ्वीपर घूमती है, फिर भी यात्रियों को लगता है कि वे एक सपाट पृथ्वी पर घूम रहे है। एक बड़े गोले पर चींटियाँ घूमती हो और वे गोले के नीचे जाती है तब हमको चींटियाँ उलटी दिखती है, क्योंकि हम गोले से अलग है पर चींटियों को नहीं लगता कि वे उलटी है। ऐसे ही मनुष्य का और पृथ्वी का संबंध समझना चाहिए। प्रो.मिन्कोवस्की कहते है कि : देशकाल के भेद जगत में नहीं है, अपितु जगत के साथ के हमारे संबंधो में है जिसे माया कहते है, क्योंकि देशकाल के भेद ब्रह्म में भी नहीं है।

जहाँ संगदोषयुक्त जीवन है वहाँ देशकाल बदल नहीं सकते। देखनेवाला अपनी भूमिका बदले तो देशकाल बदल जाते है। जहाँ कुछ भी आकर्षण होगा वहाँ अपने देशकाल को बदल नहीं सकते। इस सिद्धांत के अनुसार जो मनुष्य साधारण कोटि के समाज से असंग रहकर सत्संग अथवा निजसंग (एकांत) में रह सकता है वह अधिक उन्नति कर सकता है।

दृष्टांत : ७

पाँच साल के एक लड़के ने एक चबूतरा देखा। उसे चबूतरे के ऊपर चढ़ना है। उसको चबूतरा इतना बड़ा लगता है कि उसके ऊपर चढ़ने के लिए उसे कूदना पड़ता है। लड़का दूसरे गाँव चला गया और पच्चीस साल के बाद वापस उसी चबूतरे के पास आता है तो उसपर आसानी से बैठ जाता है। उस समय वही चबूतरा उसके लिए बड़ा नहीं है, अपितु छोटा हो जाता है, क्योंकि उसका शरीर बड़ा हो गया। वह दूसरे लोगों को पूछता है कि चबूतरे को किसीने छोटा कर दिया है क्या ? सब ने कहा वही चबूतरा जैसा का तैसा पच्चीस साल से यहाँ पर है। सोचने की बात है कि कौनसा चबूतरा सच्चा ? उसने ५ साल की आयु में देखा हुआ चबूतरा सच्चा कि ३० साल कि आयु में देखा हुआ चबूतरा सच्चा ? आधुनिक सायन्स कहता है कि ५ साल में देखा हुआ

चबूतरा कोई वस्तु नहीं थी पर एक घटना (इवेंट) थी और ३० साल की उम्र में देखा हुआ चबूतरा भी कोई वस्तु नहीं, अपितु एक घटना थी। आधुनिक सायन्स तीन परिमाण वाले जगत का नहीं अपितु चार परिमाण वाले जगत को मानता है। अतः कोई भी वस्तु वस्तु के रूप में नहीं रही, उन सब को घटना के रूप में जाना जाता है और प्रत्येक घटना (इवेंट) के साथ नया काल रहता है इसलिए सब वस्तुयें प्रातिभासिक हो जाती है। प्रातिभासिक वस्तुओं को आकार नहीं होता, घटनाओं को भी आकार नहीं होता अतः जगत निराकार है। उपरोक्त दृष्टांत में चबूतरे को आकार नहीं था अतः देखनेवाले के ज्ञान के अनुसार छोटा-बड़ा प्रतीत होता था।

एक छोटे बालक ने एक कमरा देखा, फिर वह २५ वर्ष दूसरे गाँव में रहकर पुनः उस कमरे को देखने आता है तो वह कमरा उसको बहुत छोटा लगता है। कमरे का द्वार भी छोटा लगता है। उन दोनों में कौनसा कमरा सच्चा ? सायन्स कहता है कि दोनों अनुभव किसी वस्तु के नहीं है, अपितु घटना है।

बरट्रान्ड रसेल कहते है कि 'हमारी दृष्टि से जो दिखता है उसे सच्चा मानना यह बड़ी मूर्खता है, वह अज्ञान है। अज्ञान से जाने हुए जगत को भूलकर घटना अथवा कर्म किसे कहना-इसपर विचार करेंगे तो जगत का तत्त्व मिलेगा। जो घटना जिस समय जानने में आती है उससे पहले की उस घटना की स्थिति को जानने का प्रयास करना व्यर्थ है। जिस समय जो जानने में आता है उसी समय गलती खोजने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए।

दृष्टांत : ८

जन्म से अंध व्यक्ति आँखों का ऑपरेशन करवाके रौशनी प्राप्त करे और देखने लग जाये तब उसे सब वस्तुयें आँखों को छूती हुई प्रतीत होती है। ये सब घटनायें है। कोई वस्तु नहीं है। हमारी आँखे हर एक वस्तुओ का फोटो खींचती है वह दो कदवाला होता है, फिर भी हम तीन कदवाले होने से तीन कदवाली चीजें देखनेकी आदत पड़ गई है। यदि दिव्य चक्षु प्राप्त हो जाय तो हम चार कदवाला जगत भी देख सकते है।

दृष्टांत : ९

कोई दो मनुष्य पास पास बैठे हो और दोनों को एकदूसरे से द्वेष हो तो कहा जाता है कि दोनों के बीच बहुत अंतर है और दो मित्र दूर से एक दूसरे को देखे तो बीच की जगह ऐसी वक्रिभूत हो जाती है कि दोनों पास में आते है और मिलते है।। नाग नागिन को प्रिय लगता है इसलिए नागिन उसके पास जाती है और मनुष्य को नाग से डर

लगता है इसलिए मनुष्य उससे दूर भागता है। मेढक को साँप मृत्युरूप लगता है और मोर साँप को मारने पीछे दौड़ता है। कौन सच्चा ? किसके देशकाल सच्चे ? बरट्रान्ड रसेल कहते है कि :

दो घटनाओं के बीच का अंतर निश्चित नहीं है, किन्तु वे दोनों घटनायें बहुत नजदीक होती है तो गलती समझमें नहीं आती। वह दूर होगी तो एक घटना से दूसरी घटना तक जाने में जितना समय लगता है उतनी दूर लगती है। और वह दृष्टा की दृष्टि से सापेक्ष है, अतः अब दो वस्तुओंके बीच कितना अंतर है उसे नहीं खोजना है, अपितु दो घटनाओं के बीच कितना अंतर है यह वैज्ञानिक गणित से खोज लेते है।

गीता में कहा है कि **दुरस्थं चान्तिके च तत्।** अर्थात् भगवान जीव से दूर है और नजदीक भी है। यानी अज्ञानी को भगवान दूर लगते है और ज्ञानी को नजदीक लगते है। यह सिद्धांत अब गणित से सिद्ध होता है।

दृष्टांत : १०

कोई ट्रेन एक स्टेशन से दूसरे नजदीक के स्टेशन जाती हो, जैसे अहमदाबाद से मणिनगर जाती हो और चलती हुई ट्रेन के आगे कोई गाय सामने आ जाय तो ट्रेन का ड्राईवर हॉर्न बजाता है। उस हॉर्न का आवाज अहमदाबाद के स्टेशन मास्टर को कम होता हुआ सुनाई देता है और मणिनगर के स्टेशन मास्टर को बढ़ता हुआ सुनाई देता है। और उस हॉर्न की आवाज ड्राईवर के लिए न कम होती है न बढ़ती है। अब अहमदाबाद का स्टेशनमास्टर ड्राईवर को पूछता है कि तुम आवाज कम क्यों कर रहे थे ? तो ड्राईवर कहेगा कि ये तुम्हारे हॉर्न की बात है, मेरे हॉर्न की बात नहीं है; और मणिनगर का स्टेशन मास्टर ड्राईवर को पूछे कि तुमने हॉर्न का आवाज क्यों बढ़ाया, तो ड्राईवर उसको उत्तर देता है कि, वह तुम्हारे हॉर्न की बात है मेरे हॉर्न की नहीं।
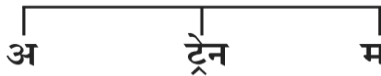
इस तरह व्यावहारिक सत्ता को देखनेवाले का विचार किया जाता है, तब व्यावहारिक सत्ता प्रातिभासिक हो जाती है क्योंकि सब मनुष्यों को जगत एक जैसा नहीं दिखता। प्रातिभासिक सत्ता को वर्तमान सायन्सवाले घटना (इवेंट) कहते है। प्रातिभासिक सत्ता का अधिक खुलासा ११ वें प्रक़रण में मिलेगा।

दृष्टांत : ११

सूर्य का उदय हुआ या अस्त हुआ- यह व्यवहार कल्पित है। सूर्य का उदय या

अस्त नहीं होता। सूर्य सदा प्रकाशमान है, फिर भी पृथ्वीपर से देखने से सूर्य का उदय एवम् अस्त होना मालूम पड़ता है। ऐसे ही जीव जन्मता है और मरता है यह व्यवहार कल्पित है। जीव अपने आत्मस्वरूप में सदा प्रकाशमान है। फिर भी देहभाव से देखने से जीव जन्मता-मरता दिखता है। बरट्रान्ड रसेल कहते है कि : हम अपने बाहर जो वस्तु देखते है वह वहाँ पर नहीं है। जैसे हमारा सिरदर्द हमारे भीतर है ऐसे ही बाहर की वस्तुयें भी हमारे भीतर है अर्थात् वे सब घटनायें है और सब घटनायें ज्ञाता के ज्ञान के साथ ही रहती है। जैसा स्वप्न में होता है वैसा ही जाग्रत में होता है, किन्तु स्वप्न के दृष्टान्त का सहारा लिए बिना जाग्रत को प्रातिभासिक बनाना -यह वर्तमान सायन्स के सापेक्षवाद की बड़े में बड़ी खोज है।

दृष्टांत : १२

एक घर में एक मनुष्य 'अ' से दूसरा मनुष्य 'क' पाँच फुट दूर बैठा है। कुछ देर बाद 'क' घर के बाहर किसी तीसरे मनुष्य को बुलाने बाहर जाता है तब 'अ' से 'क' १५ फुट दूर हो जाता है। फिर 'अ' 'क' से पानी लाने को कहता है जब 'क' पानी भरकर 'अ' को देने जाता है तब 'अ' और 'क' के बीच की जगह १ फुट हो जाती है। इस प्रकार यदि 'अ' और 'क' के बीच की जगह में फर्क पड़ता है और दोनों के बीच का अंतर बहुत कम हो सकता है तो दोनों एक ही है अथवा दो है ही नहीं-अर्थात् द्वैत है ही नहीं ऐसा मानने में क्या कठिनाई होगी ? एक मनुष्य के स्वप्न में दूसरे अनेक दिखते है, पर जब वह जगता है तो सब (अनेक) नहीं जगते, अपितु सब मिलकर एक हो जाता है। यानी वास्तवमें सब नहीं थे। ऐसे ही मनुष्य की जाग्रत अवस्था के देशकाल को समान (एक जैसा) किया जाय तो जाग्रत में भी अनेक मनुष्य नहीं दिखेंगे सिर्फ एक ही दिखेगा। स्वप्न में (दो मनुष्यों के) बीच की जगह जैसे स्वप्न के समय बनती है वैसे ही जाग्रत में भी बीच की जगह जाग्रत के समय गलती से बनती है, पर समाजसेवा करते समय और व्यवहार में कई लोग स्वतंत्र ढंग से काम करते हो ऐसा प्रतीत होता है। यह बात साधारण दृष्टि से सत्य है पर उस समय समाज सेवक अपने देह को वह खुद है ऐसा मान बैठता है और अपने देह से जो भिन्न है उन्हें भिन्न मनुष्य मानता है। यदि वह अपने को आत्मा जाने तो आत्मा सब में एक होने से अनेक मनुष्य नहीं दिखेंगे, किन्तु समाजसेवा में सेवक अपने को छोड़कर शेष सब को सुधारना चाहता है, अतः "स्वयं कौन" ये समझने की फुर्सत उसको नहीं मिलती और उसकी दृष्टि से अनेकत्व दूर नहीं होता। इसका अर्थ यह नहीं कि जाग्रत में क्या है उसे नहीं जानना, अपितु

उसने जो जाना है वह कैसे जाना है इस बात को जानने की जरुरत है, और जो नहीं जाना वह कैसे नहीं जाना उसे भी जानने की जरुरत है। वह जाननेवाले को जानता नहीं है इसलिए उसने जो जाना है वह ठीक से जाना हुआ नहीं है और अपने को ठीक से जान लिया तो अनेकत्व सच्चा नहीं रह सकता।

हमारे जगत में जीव अनेक नहीं है पर एक जीव में अनेक की कल्पना उठती है। और एक की कल्पना में दूसरे रहते है इसलिए एक की कल्पना शांत होने से सारा जगत शांत हो जाता है। संक्षेप में जगत देखनेवाले की दृष्टि से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। अतः जगत प्रातिभासिक बन जाता है। प्रातिभासिक अर्थात् आभासमात्र यानी एक स्थान से देखा हुआ जगत। लेकिन इतनी छोटी व्याख्या से प्रातिभासिक घटना समझ में नहीं आयेगी। इसलिए इस पर ११ वें प्रकरण में सविस्तार खुलासा दिया गया है। बरट्रान्ड रसेल कहते है : दूसरे मेरे लिए क्या अभिप्राय देते है उसका विचार करने में अपने स्वरूप का विचार नहीं आता क्योंकि दूसरे नहीं है फिर भी उनको मानना पड़ता है। जैसे जगत की वस्तुयें मिथ्या है वैसे अनेक जीव भी (स्वप्न की नाईं) मिथ्या है। श्रोडिन्जर नामक वैज्ञानिक भी कहते है कि जब दो प्रेमी मनुष्य एक दूसरे के सामने प्रेम से देखते है तब उनके विचार और उनका आनंद एक हो जाता है। लेकिन प्रेम की मस्ती में उस एकता का रहस्य उन्हें समझ में नहीं आता। प्रेम के समय वे देह में नहीं समाते। पर बाद में देहभाव में आ जाते है और छोटे जीव जैसे हो जाते है। उसके बाद जैसी उनकी मनोदशा होती है वैसा जगत उनको दिखता है।

कोई कहेगा कि जगत तो सब को एक समान दिखता है। मुम्बई में रहनेवाले सब लोगों को मुम्बई एक जैसा दिखता है। ऐसा कहनेवाले को प्रश्न पूछना चाहिए कि 'तुझको जैसा जगत दिखता है वैसा एक कागज पर लिख और उसके नीचे हस्ताक्षर कर।' फिर देख कि वैसा मुम्बई किसीको दिखता है कि नहीं ? इस प्रकार प्रयोग करने से मालूम पड़ेगा कि उस व्यक्ति को जैसा मुम्बई दिखता है वैसा दूसरे किसीको नहीं दिखता। उसके हस्ताक्षर अन्य किसीके हस्ताक्षर से नहीं मिलते। पूरा मुम्बई कोई देख ही नहीं सकता। सब के घरों की सब घटनाओं को कोई जान नहीं सकता। प्रत्येक मनुष्य उसको पसंद हो उतना मुम्बई देखता है और उसीको सारा मुंबई अथवा सच्चा मुंबई मान बैठता है। इसी प्रकार हर एक मनुष्य के जगत के विषय में समझना चाहिए। उस जगत से व्यवहार होता है इसलिए कुछ लोग व्यावहारिक सत्ता को सच्ची मानते है। ऐसे ही घोड़े को जो मुंबई दिखता है, गाय, भैंस या कुत्ते को जो मुंबई

दिखता है, उनके व्यवहार भी चलते है फिर भी उन सब का मुंबई भिन्न भिन्न है। अतः वेदांत में सत्य समझने के लिए निम्न तीन प्रकार की सत्ता का स्वीकार किया गया है।

१. पारमार्थिक सत्ता - यानी जिस वस्तु का तीनों काल में अथवा किसी भी काल में बाध न होता हो वह ब्रह्म स्वरूप है।

२. व्यावहारिक सत्ता- यानी जो वस्तु ब्रह्मसाक्षात्कार तक स्थूल रूप से अथवा सूक्ष्म रूप से व्यवहार के योग्य है और व्यवहार काल में अबाध्य रहती है। उसे व्यावहारिक सत्ता कहते है।

३. प्रातिभासिक सत्ता- यानी जो वस्तु अधिष्ठान की सत्ता से अधिष्ठान के अज्ञान के समय सत् जैसी प्रतीत हो पर अधिष्ठान के ज्ञान से जिसकी निवृत्ति हो ऐसी अध्यस्त वस्तु को प्रातिभासिक कहते है। जैसे सीप में रूपा दिखता है तब सीप का अज्ञान होता है और सीप के ज्ञान से उसका बाध होता है। जिस वस्तु में अन्य धर्म का व्यभिचार होता है वह उस वस्तु का सच्चा धर्म नहीं होता, जैसे सीप का ज्ञान होनेपर रूपा का बाध होता है तो रूपा कोई सच्ची वस्तु नहीं है। सीप में रूपा देखते समय रूपा सच्चा दिखने से सच्चा रूपा नहीं हो जाता, ऐसे ही ब्रह्म में जगत दिखने से जगत सत्य नहीं हो जाता, स्वप्न में भी ऐसा ही होता है। बरट्रान्ड रसेल कहते है कि :

'यदि वर्तमान के सापेक्षवाद के गणित को सच्चा माना जाय तो जाग्रत के अनुभव में और स्वप्न के अनुभव में कोई फर्क नहीं है। जाग्रत अवस्था स्वप्न जैसी है पर जैसे स्वप्न के समय स्वप्न में रहते हुए भूल का पता नहीं चलता वैसे ही जाग्रत के अनुभव के समय जाग्रत की गलती खोजना अत्यंत कठिन कार्य है।'

ॐ ॐ

4: छोटी उम्र का ज्ञान और बड़ी उम्र का ज्ञान

पिछले प्रकरण में बताये अनुसार यदि सब वस्तुयें सिर्फ घटना जैसी हो (याने इवेंट हो) तो पूरा जगत प्रातिभासिक प्रतीत हो, उससे विपरीत हमें लगता है कि जैसे सच्ची वस्तुयें हमारी आँखों के सामने हमसे अलग पड़ी हो। उसमें कुछ नियम है और उनके अनुसार व्यवहार भी हो सकता है। इस विषय को ठीक से समझने के लिए मनुष्य का जन्म कैसे होता है और उसमें ज्ञान क्रमशः कैसे उत्पन्न होता है यह जानना जरूरी है। मान लो कि एक जीव कोई स्त्री के गर्भ में आया। उस समय उस में कैसा ज्ञान होता है वह दूसरे लोग जान नहीं सकते और वह स्वयं भी बड़ा होने के बाद बता नहीं सकता, पर शास्त्र कहते है कि मूल शुद्ध जीव चैतन्य, नित्य और निरहंकारी है, पर गर्भ में आने के बाद जब नया शरीर धारण करता है तब जीव का उस शरीर से ममत्व हो जाता है।

अब नए सायन्स की दृष्टि से देखें तो जब पुरुष का वीर्य स्त्री के शरीर में जाता है तब उसमें अनेक बिंदु (शुक्राणु) होते है। उसे सायन्स में स्पर्म कहते है। उन सभी बिंदुओं में से जिस बिंदु को पर्याप्त ऊर्जा मिलती है उसमें जीवपना विकसित होने लगता है। उस बिंदु में अनेक प्रकार के परमाणु (एटम) होते है और प्रत्येक परमाणु में अनेक इलेक्ट्रोन होते है। किसी एक इलेक्ट्रोन से जीव नहीं बनता और किसी एक परमाणु की गति और स्थिति को एक समय में सुनिश्चित रूप से नहीं जान सकते। यह हकीकत नौवें प्रकरण में बतायेंगे। अनेक इलेक्ट्रोन जिसमें होते है वैसे समूह (एटम) में कुछ न कुछ नियम होते है। ऐसे एटम में अथवा ऐसे परमाणु में जो इलेक्ट्रोन समूह में होते है उनकी गति को आज के वैज्ञानिक नाप सकते है। ऐसे कुछ परमाणु (एटम) मिलकर बिंदु (स्पर्म) बनता है। उसमें कुछ परमाणु (एटम) नियामक होते है और कुछ नियम्य होते है। वे सब कर्म के अनुसार बंधन उत्पन्न करते है, इसी वजह से बिंदु में स्थायित्व आता है। उसको पर्याप्त गर्मी (ऊर्जा) मिले तो गर्मी के प्रकार के अनुसार परमाणु में परिवर्तन होता है और जीव का शरीर बनने लगता है। उसमें अमुक प्रकार की गर्मी माता के शरीर से मिलती है और अमुक प्रकार की पिता के वीर्य से मिलती है। अतः अच्छी प्रजा के लिए अच्छे कुल के लोगों में विवाह होने चाहिए और गर्भावस्था में माता को उचित वातावरण में रखना चाहिए और उचित विचार देने चाहिए। कुछ वर्ष पहले हिंदुस्तान के वाइसरॉय बैल की प्रजाति को सुधारने हेतु

किसानों को अच्छे सांड भेट के रूप में देते थे, किन्तु मनुष्य की प्रजाति सुधारने के लिए अभी तक कोई अच्छे प्रयोग किये जाते हो ऐसा नहीं देखा गया। गर्भ में स्थित बिंदु को जिस प्रकार की गर्मी अथवा संस्कार दिए जाये उसका असर उस पर कितने समय में होगा उसका आधार भी गर्भ के प्रकार पर और गर्मी के प्रकार पर रहता है। मुर्ग़ी के अण्डों को भी मुर्ग़ी अमुक प्रकार की गर्मी देती है तब उनमें से बच्चे बाहर आते है। कोई बिंदु ऐसा भी होता है कि उसके भीतर के परमाणुओं को अनेक प्रकार से व्यवस्थित करके रख सकते है अतः एक ही बिंदु को नये किस्म का बना सकते है। यह बात आज के रसायनशास्त्र पढ़नेवाले विद्यार्थी सरलता से समझ सकते है। अतः यदि गर्भ के बिंदु की उचित देखभाल की जाय तो उच्च कक्षा का बिंदु बना सकते है। इस परिवर्तन में बिंदु के बहुत थोड़े से हिस्से में भी असर हो तो भी बहुत है, लेकिन बिंदु को असर करनेवाला माहौल बनाना चाहिए। जैसे टेलीग्राम ऑफिस में सिर्फ .(dot) और -(line) इन दोनों से अनेक शब्द बना सकते है वैसे एक बिंदु के परमाणु (genes) में थोड़े से परिवर्तन से नये प्रकार के स्वभाव (गुण धर्म) का जीव तैयार कर सकते है। उन प्रत्येक परमाणु में जितनी गर्मी होती है उतना उसका जीवन होता है। इस प्रकार की कुछ गर्मी माता के खाये हुए खुराक से प्राप्त होती है। अतः माता के खुराक पर ध्यान देना चाहिए। उस समय यदि जीव का शरीर ठीक से गठित होता है तो अधिक साल तक टिक सकता है। पर इस प्रकार की हृदय पूर्वक देखभाल आजकल के माँ बाप नहीं करते। बिलकुल जड़ वस्तु की गति अपने आप रुक जाती है, जैसे घड़ी का लोलक चलाने के बाद कुछ समय के बाद बंद हो जाता है पर उसका संबंध फौलाद की पट्टी (कमान) से जोड़कर उसकी चाबी दी जाये तो अधिक समय चलती है। जीव भी जन्म के बाद बार बार खा कर, पानी पी कर और व्यायाम कर के अपने शरीर के नष्ट होनेवाले परमाणुओं को नई गति देकर चालू रख सकते है, फिर भी एक दिन उस शरीर को मरना पड़ता है। घड़ी के यंत्र की नाईं शरीर भी एक दिन काम करना बंद कर देता है। जिंदा रहने के लिए अमुक हद तक ही वह बाहर की शक्ति ग्रहण कर सकता है। जो परमाणु प्रारब्ध से बंधे हो उनकी शक्ति खत्म होती है और जो कर्म अब गतिमान होना चाहते हो उनके काम आने योग्य शरीर नहीं रहता इसलिए शरीर में रोग आते है अथवा शरीर को अकस्मात होता है। साधारणतया अलग अलग इलेक्ट्रोन के स्वभाव का निरीक्षण करेंगे तो मालूम पड़ेगा कि उनमें बहुत अनियमितता होती है पर समूह में रहनेवाले इलेक्ट्रोन में नियम रहते है। जैसे किसी मनुष्य के

जीवन में नियम नहीं दिखता पर यदि वह अमुक जाति (समाज) में रहता हो तो उसके जीवन में नियम काम करते दिखते है वैसे ही इलेक्ट्रोन के स्वभाव के विषय में समझना है। यही कारण है कि समाज के मनुष्य को सुधारना हो तो तमोगुणी और रजोगुणी मनुष्य समाज के कानून से सुधरते है किन्तु जिसे आगे बढ़ना हो और आत्मज्ञान पाना हो ऐसे सत्त्वगुणी मनुष्य के लिए समाज के कानून बंधनरूप होते है और वे उसके विकास में रुकावट डालते है। समाज के कानून में रहने से मनुष्य पाप करने से बचते है और सत्त्वगुणी मनुष्य इतने शुद्ध होते है कि वे पाप कर ही नहीं सकते। गर्भस्थ शिशु पर उसके पूर्व जन्म के कर्म का असर होता है और माता के शरीर के स्वभाव का भी असर होता है। अतः शरीर जड़ की नाईं पराधीन लगता है फिर भी जीव के जन्म लेने के पश्चात थोड़े ही समय में शरीर को उसकी मर्जी के अनुसार चला सकता है।

यदि कहना हो कि गर्भ में जीव को ज्ञान नहीं है तो इतना ही कह सकते है कि उसे हमारे जैसा ज्ञान नहीं है। जिसको हमारे जैसा ज्ञान हो उसको ही हम समझ पायेगें। घोड़े में ज्ञान है लेकिन हमारे जैसा उसका ज्ञान नहीं है इसलिए हम उसके ज्ञान को नहीं समझ सकते। जिस प्रकार के गर्भ में जो जीव स्थित हो उस पर उस शरीर के ज्ञान का असर होता है। बंदरी के गर्भ में स्थित जीव बंदरी के चैतन्य के प्रभाव में आता है और बंदर के जैसा ज्ञान धारण करता है। हर एक जीव में स्वरूप ज्ञान तो अखण्ड रहता ही है, पर वृत्तिज्ञान देशकाल के अनुसार (उपाधि के अनुसार) बदलता है। जीव को जितना जीवन उसके कर्म के अनुसार उपयोगी लगता है वह उसकी उपाधि की हद है। इसे सायन्स की भाषा में (inertia) तमोगुण कहते है। अगर कोई सम्पूर्ण जीवन अपना माने तो उसकी सीमा रहेगी नहीं किसीके गर्भ में आयेगा नहीं। सिर्फ अहंकार से एक स्थान को धारण करे तब जीव अमुक प्रकार की माया में अथवा अमुक नाप में बंधता है। छोटे जीव में जो बन्धन होता है उस कारण से जन्म के समय बालक रोता है। बालक जब जन्म लेता है तब उसके जन्म का ज्ञान उसके माता-पिता को होता है। उस समय स्वयं बालक को बड़े मनुष्य के जैसा ज्ञान नहीं होता, इसलिए वह बड़े मनुष्य की बातें नहीं समझ सकता और उस बालक को कैसी भावनायें होती है उसे बड़े मनुष्य नहीं समझ पाते। एक ही घटना को जितने देखनेवाले हो उसके अनुसार उस घटना के देशकाल बनते है। मनुष्य जब गर्भ में होता है तब मनुष्य नहीं कहलाता। अनेक विचित्र प्रकार के राक्षस जैसे शरीरों के भी

जन्म होते है। किन्तु जन्म लेने के बाद वे मनुष्य जैसे बनने लगते है। कुछ दिन बाद उसकी बुआ उसका नाम रखती है। मान लो किसीके घर एक बेटे का जन्म हुआ और उसकी बुआ ने उसका नाम रखा कांतिलाल। वह जब छोटा होता है तब सब उसको कांति कहकर बुलाते है। इस प्रकार दूसरे जब कांति कहते है तब से बुलानेवाले की ओर देखने की आदत बनने लगती है। छोटी आयु में जब माँ उसे गोद में लेकर घूमती है अथवा पालने में सुलाती है तब तक उसे ऐसा ही लगता है कि अभी वह माँ के पेट में ही घूम रहा है। कुछ समय के बाद कांति पैरो के बल चलने लगता है। उस समय जो शरीर चल रहा है वह मैं हूँ और जो नहीं चलता है वह जगत है ऐसा उसको अनुभव होता है। फिर देह का अभिमान ऐसा बढ़ता है कि जगत में खुद भी कोई वस्तु हो ऐसा उसको लगने लगता है। इस समय अलग अलग वस्तु का ज्ञान उसमें शुरू होता है। अपना नाम कांति है इस बात को निश्चित कर लेता है। कुछ लोग गाय और कुत्तों के नाम रखते है और वे पशु भी समझ जाते है। कुत्ते का नाम कालू रखा हो और कालू नाम से पुकारने पर कुत्ता नजदीक आता है। उसी प्रकार मनुष्य भी अपना अमुक नाम है ऐसा मान लेता है और मनुष्यों के बीच मनुष्य जैसा होने लगता है। जैसे सर्कस का शेर बकरों के बीच में रहकर बकरे जैसा बन जाता है ऐसे ही यह बालक भी मनुष्यों के बीच रहकर मनुष्य बनने लगता है और मनुष्य के देशकाल सच्चे मानता है।

फिर कांति को बाहर की वस्तु मिले तब सुख होता है और नहीं मिलनेपर दुःख होता है, इससे उसके सुख दुःख का कारण बाहर की वस्तुयें है ऐसा उसको प्रतीत होने लगता है किन्तु उसका कारण मन है यह बात उसकी समझमें नहीं आती। फिर कोई वस्तु उसको चाहिए वह मिले नहीं और उसके लिए इन्तजार करना पड़े तब काल अथवा समय जैसा कुछ है ऐसा उसको प्रारंभिक जीवन में लगने लगता है। धीरे धीरे पाँच इन्द्रियों से जो जगत दिखे, सुनने में आये, चखने में आये और स्पर्श हो सके उसीको सच्चा मानने की आदत पड़ जाती है, अर्थात् इन्द्रियाँ उसका प्रमाण बन जाती है। इन्द्रियों के प्रमाण से वह अपने शरीर को 'मैं' मानता है और दूसरे शरीर को 'तू' अथवा 'वह' मानता है, जगत को अपने से अलग यह (इदम्) मानता है। साधारणतया कांतिलाल की आँख में दो परिमाणवाले (लंबाई और चौड़ाई वाले) चित्र आने लगते है लेकिन जब चलना सीखता है तब वह अपना शरीर तीन परिमाणवाला होने से दूसरा बाहर का जगत भी तीन परिमाणवाला है ऐसा उसे लगता है। आगे चलकर उसमें देह का अभिमान बढ़ने लगता है। उस समय जीव का जन्म होता है

ऐसा भागवत में कहा गया है। ज्योतिष शास्त्र वाले शरीर जब गर्भ से बाहर आता है तब उसका जन्म मानते है। वेदांत में माना गया है कि जब देह का अभिमान आता है तब उसका सच्चा जन्म होता है क्योंकि देह का अभिमान नहीं हो तो जन्म जैसा कुछ लगता नहीं है किन्तु सामान्यतया सब मनुष्यों में देह का अभिमान और नामका अभिमान इतना दृढ़ हो जाता है कि कांतिलाल को नींद में भी कोई उसका नाम पुकारे तो भी वह उत्तर देता है। फिर बड़ा होने के बाद (relativity) की शुरुआत होती है। उसको चाचा होगा तो स्वयं भतीजा बनता है, चाचा नहीं हो तो भतीजा नहीं बनता। फिर कोई पूछता है तो बताता है कि मैं अमुक का भतीजा लगता हूँ। कांतिलाल आत्मरूप से ब्रह्मस्वरूप है किन्तु उसका भान न होने से किसीका भतीजा बनता है, भानजा बनता है, भाई बनता है, आदि..फिर कभी कभी माँ को भाभी कहता है और बाप को भाई कहता है। ऐसी परम्परा व्यवहार में चली आती है पर ऐसे मिथ्या शब्दों से व्यवहार होता है इसलिए इस विषय पर कोई ज्यादा ध्यान नहीं देता। उसे खुद को देह का अभिमान होता है, इसलिए वह मानता है कि सब को देह का अभिमान होगा और अनेक जीव सच्चे हो ऐसा उसको ज्ञान होने लगता है। कांतिलाल लगभग पाँच वर्ष का हुआ तब रास्ते पर किसी की मोटरगाड़ी जा रही थी। उसने अपने बाप से कहा कि मुझे इस गाड़ी में बैठना है, तब बाप ने कहा कि यह हमारी नहीं है। कांतिलाल ने पूछा वह अपनी क्यों नहीं है ? उसका बाप उसका उत्तर नहीं दे पाया। उस समय इस जगत में कुछ हमारा है और कुछ हमारा नहीं है यह मालूम पड़ा। छोटी आयु में कांतिलाल किसीका विवाह देखने गया। विवाह देखकर वापस आने के बाद उसने अपने दादा से कहा : मैं अमुक स्थानपर बहुत अच्छा विवाह देखकर आया परंतु मैंने आपका विवाह क्यों नहीं देखा ? उसके दादाजी ने उत्तर दिया 'तू तो क्या तेरा बाप भी उस विवाह को नहीं देख सकता था, पर यह बात तुझे अभी नहीं समझ में आयेगी। ' कुछ समय के बाद कांतिलाल की माँ को प्रसूति के लिए हॉस्पिटल जाना पड़ा और वहाँ प्रसूति कर के वह अन्य बालक को घर पर ले आयी। तब कांतिलाल को लगा कि सब बालक हॉस्पिटल से आते है। उसने अपने छोटे मित्रों को भी कहा : 'तुम भी अपनी माँ से कहो कि हॉस्पिटल से छोटे भाई को ले आये। 'मनुष्य का जन्म कैसे होता है उसका ज्ञान छोटे बालक में कैसा होता है और वह नया जगत कैसे गलत तरीके से सीखता है यह इससे मालूम पड़ता है। पशु पक्षियों को जन्म मृत्यु का पता नहीं होता। और सारी सृष्टि एक ही तरह से उत्पन्न नहीं होती। भैंस के गोबर में गधे

का मूत्र मिलने से बिच्छू पैदा होते है। मोर आदि की उत्पत्ति नेत्र के बिंदु से होती है। ब्रह्माजी ने मन से कुछ सृष्टि उत्पन्न की थी। स्वप्न में अनेक प्रकार की सृष्टि कारण बिना उत्पन्न होती है। मृत्यु के बाद वासना से भूत-प्रेत की उत्पत्ति होती है। महाभारत में अनेक पात्रों की उत्पत्ति विचित्र प्रकार की देखने में आती है। द्रोपदी वेदी से प्रकट हुई थी। सीताजी हल चलाते हुए जमीन से निकली थी। आज के नए जन्मे हुए बालक छोटी उम्र में रेशनिंग का अनाज देखते है। उनको लगता है कि रेशनिंग भी दुनिया की उत्पत्ति के साथ उत्पन्न हुआ होगा। ऐसे ही रेडियो, सिनेमा, न्यूसपेपर, रेल्वे, स्टीमर और विमान आदि भी दुनिया की उत्पत्ति के साथ ही उत्पन्न हुए होंगे ऐसा कुछ बच्चे मानते है।

कांतिलाल १२ साल की आयु में किसी बूढ़े मनुष्य से बात कर रहा था। कुछ दिन बाद वह बूढ़ा मनुष्य मर गया। यह बात सुनकर कांतिलाल सोचने लगा कि वह मरकर कहाँ गया होगा ? यह प्रश्न उसने अनेक लोगों से पूछा किन्तु कोई उसका उत्तर नहीं दे पाया, अतः उसको लगने लगा कि खुद कोई ऐसे नये लोक में जन्मा है जहाँ कोई सदा रहते नहीं। जिससे अधिक प्यार हो ऐसे लोग भी चले जाते है तो ऐसे मनुष्यलोक में मैं किसलिए आया ? ऐसे विचार अब कांतिलाल को आने लगे। और जो जगत पाँच इन्द्रियों से जानने और देखने में आता था, उसमें भी कांतिलाल को गलतियाँ प्रतीत होने लगी, पृथ्वी गोल है फिर भी सपाट दिखती है, सूर्य पृथ्वी से बड़ा है फिर भी बहुत छोटा दिखता है, कई बार रस्सी में गलती से सर्प दिखता है, सीपी में रूपा दिखता है, ठूंठ में पुरुष की भ्रांति होती है, मृगजल हो वहाँ जल दिखता है, तब पाँच इन्द्रियों के ज्ञान का क्या भरोसा ? ऐसे विचार उसके मनमें आ रहे थे। कांतिलाल जन्मा था तब उसको मालूम नहीं था कि वह कौनसी जाति का है। फिर धीरे धीरे उसमें जाति का अभिमान उत्पन्न हुआ। कांतिलाल को लगा कि हम सब मनुष्य है तो फिर इतनी सारी न्यात-जात क्यों? सब के साथ मिल-जुलकर रहे तो कितना अच्छा ! एक दिन कांतिलाल ने आईने में अपना चहेरा देखा तो उसे निम्नलिखित भिन्न भिन्न अनुभव होने लगे : १. आईने में स्वयं बिंब रूपसे पूर्व की ओर देखता है तो प्रतिबिंब उसकी ओर पश्चिम की तरफ देखता है। २. स्वयं तीन परिमाणवाला है फिर भी आईने में उसे दो परिमाण दिखते है। ३. खुद दाहिना हाथ ऊपर उठाता है तो आईने के कांतिलाल का बायाँ हाथ ऊपर उठता है। ४. आइना उत्तल हो (convex mirror) तो उसमें कांतिलाल छोटा दिखता है और आइना

अवतल (concave mirror) हो तो कांतिलाल दुगुना बड़ा दिखता है। इन सब में सही क्या होगा ऐसे विचार उसको आने लगे। ज्ञानी लोग कहते है कि आत्मा जन्मता नहीं, मरता नहीं, तो जन्म मृत्यु किसके होते है ? कांतिलाल बीमार होता है तब चिल्लाता कौन है ? और कांतिलाल के सो जाने पर उसका दर्द कहाँ चला जाता है ? इस प्रकार के प्रश्न उसके मन में चलते रहते है। अब कुछ बड़ी उम्र का हुआ तब कांतिलाल हाईस्कूल में पढ़ाई करने लगा और वहाँ इतिहास, भूगोल, व्याकरण, गणित आदि पढ़ने पढ़ते उसे नए विचार आने लगे।

इतिहास

स्कूलों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है वह ठीक है कि नहीं उस विषयपर अभी तक पूरा विचार नहीं किया गया। अब सापेक्षवाद की खोज होने के बाद देशकाल सापेक्ष हो जाने से हमारे इतिहास में और भूगोल में बड़ा परिवर्तन होने की संभावना है। साधारण दृष्टि से देखा जाय तो कांतिलाल पाठशालाओं में जो इतिहास सीखता है वह किसीका लिखा होता है, उसमें लेखक की भावना मिली होती है। एवम् सरकार भी जिस पुस्तक को पसंद करती है वही पाठशालाओं में पढ़ायी जाती है। उस इतिहास का ठीक से निरीक्षण करेंगे तो आज के कोंग्रेस के प्रधान, उससे पूर्व के वाइसरॉय, उनके क़ानून और उनके सुधार, उससे पूर्व का उत्तर में मुगल और दक्षिण में मराठाओं का राज्य, उससे पूर्व खिलजी वंश और घोरी वंश और उससे पूर्व का इतिहास सविस्तर नहीं मिलता। एशिया के उत्तर में आर्य रहते थे। उससे पूर्व महाभारत और महाभारत से पूर्व रामायण, रामायण के पूर्व का इतिहास नहीं मिलता। पर कांतिलाल को विचार आते थे कि सबसे पहले क्या होगा ? यदि सबसे पहले भगवान हो तो भगवान से पहले क्या होगा ? कांतिलाल को ऐसा भी विचार आता था कि मेरे एक पिता है, उनके भी पिता है। उनके भी पिता होंगे और उनके भी पिता होंगे, तो प्रथम पिता कब और कैसे हुआ होगा ? इन सभी प्रश्नों में एक समान काल की धारणा रहती है, यानी २४ घण्टे का दिन, ३० दिन का महीना, १२ महीनों का वर्ष होता है इस बात का स्वीकार करके यह प्रश्न किया गया है किन्तु यह बात मनुष्य की एक अवस्था के काल की है, स्वप्न में काल बदल जाता है। जाग्रत में भी कांतिलाल शिवाजी के समय में जन्मा होता तो शिवाजी का इतिहास उसे वर्तमान काल लगता। और कोंग्रेस के राज्य के इतिहास को भविष्य के विद्यार्थी भूतकाल के इतिहास के रूप में पढ़ेंगे। भूतकाल किसे कहना या वर्तमानकाल किसे कहना यह मनुष्य के जन्म पर

आधारित है। कांतिलाल जगत से पहले जन्मा होता तो जगत कब उत्पन्न हुआ उसका विचार उसे नहीं आता। कुछ समय पहले पूना के केम्प में बाबाजान नामक एक ज्ञानी मुस्लिम वृद्धा (लगभग ९५ साल की आयु की) किसीके देखने में आयी। किसीने उनसे पूछा कि आप पूना कब आये ? उसके उत्तर में उन्होंने कहा: 'जगत उत्पन्न हुआ उससे पहले से मैं आयी हुई हूँ।' अहमदनगर के पास शिरडी गाँव है वहाँ एक साईबाबा रहते थे। उनसे किसीने पूछा, "आप कहाँ के रहनेवाले है ? आपका घर कहाँ है ? आपके माँ बाप कौन है ?" तब उन्होंने उत्तर दिया कि 'विश्व मेरा घर है, ब्रह्म मेरे पिता है और माया मेरी माता है।' कांतिलाल के पिता के पिता के पिता की खोज भी दो प्रकार से हो सकती है : कांतिलाल के सच्चे पिता जानने के लिए कांतिलाल कौन है यह जानना चाहिए। अभी तक पाठशाला के अभ्यास में कांतिलाल खुद कौन है यह बात किसीने नहीं समझाई, पर अपने शरीर को वह कांतिलाल कहता है। शरीर सो जाता है अथवा शरीर को मूर्छा आती है उस समय शरीर का भान उसे नहीं रहता, फिर भी वह नहीं मरता। अतः कांतिलाल को खुद को समझे बिना उसके सच्चे पिता को समझ नहीं पायेंगे। जब कांतिलाल जन्मा तभी तो कोई उसका पिता बना, उससे पहले उसके पिता को कोई पिता नहीं कहता था। अतः पिता और पुत्र दोनों का जन्म एक साथ ही होता है। इतिहास सीखने का सच्चा उद्देश्य यह है कि पूर्व में जो उच्च कोटि के मनुष्य हो गये उनके जीवन को समझकर हम अपना जीवन अच्छा बना सकें। ऐसा जीवन बनाने के लिए अच्छे जीवन की परिभाषा ठीक से समझना चाहिए। इंग्लॉण्ड में आबादी अधिक है और जमीन ऐसी है कि कोयला और लोहा अधिक निकलते है, इसलिए उनको दूसरे देशों के साथ व्यापार करके व्यवहार चलाना आवश्यक हो गया, अतः सिर्फ व्यापारियों के और लड़ाई के इतिहास वहाँ सिखाये जाते हैं। हिंदुस्तान एक ऐसा देश है जहाँ वर्षा ठीक से हो तो धन धान्य बहुत उत्पन्न होता है, इसलिए खाने पीने की चिंता पहले कम थी तो आत्मज्ञान की ओर जो महात्मा बढ़ पायें उनके इतिहास यहाँ पर पाये जाते हैं, किन्तु अच्छे व्यापारी हो गये उनके इतिहास हमारे देश में नहीं मिलते। जब देश में अराजकता और दंगे चल रहें हो और मनुष्यों के मन में अशांति रहती हो तब थोड़ा समय शांति मिले तो भी अच्छा है ऐसे उद्देश्य से मनुष्य पाँच इन्द्रियों के अनित्य विषयों में सुख लेकर संतोष मान लेते है, पर बाहर के जीवन में जब दंगे आदि नहीं थे और खाना-पीना सरलता से कम मेहनत से मिलता था, उस समय समझदार लोग विषयों के सुख को सच्चा नहीं मानकर जीव,

जगत और ईश्वर के सच्चे तत्त्वों को जानने के लिए ध्यान, धारणा करके समाधि का सुख अथवा ज्ञान से सहजावस्था का सुख पाने का प्रयास करते थे। अब का इतिहास जगत का ज्ञान देता है लेकिन आत्मा या ईश्वर क्या है उसका ज्ञान नहीं देता। न्यूसपेपर भी जगत का ज्ञान देते है। कहीं लड़ाई हुई हो, किसी के वहाँ प्रेम का नया किस्सा हुआ हो अथवा शेयर बाजार में उथल पुथल हुई हो, तो न्यूसपेपर वाले बड़े अक्षर में छापते है और वह ज्ञान कांतिलाल और उसके मित्र बड़ी दिलचस्पी से पढ़ते हैं, लेकिन आत्मा अथवा ईश्वर का सच्चा तत्त्व क्या है वह न्यूसपेपर वाले अथवा पाठशालाओं के शिक्षक नहीं सिखा सकते। और जगत स्वयं नहीं कहता कि वह कैसा है। उसको देखनेवाला न हो तो जगत की सिद्धि नहीं होती। किसी गाँव में सब अंधे या बहरे हो तो वह गाँव कैसा ? वहाँ कोई किसीको देख नहीं सकता और बात करे तो कोई सुन नहीं सकता। पशु-पक्षी-मछली-बगुले आदि प्राणियों के जीवन में भी अनेक प्रेम की और लड़ाई की घटनायें घटती है फिर भी उन घटनाओं का इतिहास किसी न्यूसपेपर में प्रगट नहीं होता। सिर्फ मनुष्यों के जीवन की कुछ घटनायें न्यूसपेपर में आती है, वह भी न्यूसपेपर के अधिपति की समझ के अनुसार लिखा जाता है और ऐसा पढ़ने की आदत लगने से ऐसा व्यसन हो जाता है कि न्यूसपेपर के बिना नहीं चलता। लेकिन इस इतिहास में देश और काल की बड़ी गलती चली आ रही है। हम जानते है कि हम नये समाचार जानते है, किन्तु वे तुरंत पुराने हो जाते है। पुनः नये समाचार जानने की इच्छा होती है वे भी पुराने होते है इस प्रकार इसका अंत नहीं आता। एक मनुष्य ने मरने से कुछ समय पहले कहा कि 'मेरे पास न्यूज़पेपर रखो जिससे आज क्या हुआ जरा देख लूँ। ' न्यूसपेपर मँगवाया गया किन्तु आने से पहले वह मर गया। अब उसका देश कौनसा ? काल कौन सा ? उसके रिश्तेदार कौन ? और उसका न्यूसपेपर कौनसा और कहाँ मिलेगा ? संयुक्त प्रान्त (अमेरिका) में एक विद्यार्थी स्कूल में इतिहास ठीकसे नहीं पढ़ता था तो उसके शिक्षक ने उसको डाँटते हुए कहा : 'तू इतिहास क्यों नहीं पढ़ता ?' वह विद्यार्थी राजकीय आन्दोलनों में हिस्सा लिया करता था इसलिए उसने उत्तर दिया : 'मैं इतिहास बनाना चाहता हूँ। ' उसके कहने का अर्थ ऐसा था कि जैसे म.गांधीजी ने नया इतिहास बनाया है वैसे वह भी इतिहास बना सकेगा। संक्षेप में इतिहास कोई सच्ची वस्तु नहीं है, कोई भी उसे बना सकता है। यह बात वर्तमान सायन्स से भी सिद्ध हुई है। अतः सच्चे तत्त्व को जानना हो तो जीव, जगत और ईश्वर -इन तीनों का ठीक से अभ्यास करना चाहिए। जगत

विषयक थोड़ा ज्ञान पाठशालाओं में मिलता है किन्तु जीव अथवा ईश्वर संबंधी जरूरी ज्ञान वहाँ नहीं मिलता । ऐसा ज्ञान जिसके पास हो उनसे ही मिल सकता है । समाजसेवा में साधारण मनुष्य अपने को छोड़कर अन्य सबको सुधारने की मेहनत करता है। अनेकत्व अथवा द्वैत की भावना उसमें अधिक होती है, इसलिए ही तो वह सेवा कर पाता है, उसके पास शायद अद्वैत की बातें सुनने को मिल भी सकती है, किन्तु उसका अनुभव वे नहीं करा सकते। सच्चा इतिहास मनुष्य के जीवन के अमुक हिस्से को नहीं दिखाता अपितु पूरा मनुष्य कैसा है यह बताता है। मनुष्य का जीवन सिर्फ स्वराज मिलने से पूर्ण नहीं होता, कुछ देशों में स्वराज है, किन्तु वहाँ समाज में जंगलीपना है, इसलिए सच्चे स्वराज को समझना हो तो अच्छा और सच्चा जीवन किसे कहना यह बात समझनी चाहिए और उसके लिए अधिक समझ देनेवाला साहित्य पढ़ना चाहिये। मनुष्य के जीवन का अधिक समय व्यर्थ की बातें याद रखने में जाता है। किसी विद्यार्थी को पूछा जाय कि तुम्हारे जीवन का उद्देश्य क्या है तो वह तुरंत उत्तर नहीं दे सकता । यह पाठशालाओं की पढ़ाई की एक बड़ी कमी है । साधारण मनुष्य इतिहास की घटनायें पढ़ता है। मनुष्यों पर ऐसी घटनायें कैसा असर करती है उसका अभ्यास महात्मा लोग करते है। महापुरुष देखनेवाले को देखते हैं, हर एक मनुष्य को अमुक घटना कैसे असर करती है उसको जानना और उसमें से अच्छा और सच्चा क्या है उसका संकलन करना, यह सिर्फ अच्छे इतिहास और अच्छे न्यूसपेपर ही सिखा सकते है। अतः पढ़ने से पहले इतिहास और न्यूसपेपर अच्छे है कि नहीं उसका विचार करने के बाद ही पढ़ने चाहिए। इस दृष्टिकोण से देखे तो इस समय पाठशालाओं में जो पढ़ाया जाता है उस इतिहास की अपेक्षा रामायण और महाभारत एवम् गीता और भागवत जैसे ग्रन्थ मनुष्य जीवन को उन्नत करने में अधिक उपयोगी होते है। अन्य साधारण इतिहास रागद्वेष बढ़ाते है। वर्तमान के विद्यार्थी सिर्फ अपनी बुद्धि को समझमें आये उतना ही सच्चा मानते है। परंतु उनकी वह बुद्धि सच्ची है कि नहीं उसका विचार नहीं करते। इतिहास बताता है कि अनेक राज्यों की उन्नति और अवनति होती रहने के कारण कोई भी स्वराज्य कायम नहीं रहता। अतः पहले सच्चा स्वराज्य किसे कहना यह सीखने की विशेष आवश्यकता है। अज्ञानी मनुष्यों का बहुमत इकट्ठा हो और वे जो निर्णय ले वह उचित माने जाते हो, ऐसी स्थिति में सिर्फ अपने लिये बहुमत एकत्र करने का लक्ष्य रहता है, किन्तु सच्चा जीवन क्या है उसकी ओर लक्ष्य नहीं रहता । वर्तमान समय में मूर्ख को एक मत (वोट) देने का

अधिकार रहता है और समझदार को भी एक मत देनेका अधिकार रहता है। यह एक बड़ी कमी है।

भूगोल

कांतिलाल की पाठशाला में जो भूगोल सिखाई जाती थी वह सीखा। फिर उसके मनमें विचार आने लगे कि मेरे देश के बाहर दूसरे कई देश है। फिर पृथ्वी के ऊपर आकाश है। आकाश में तारे है तो तारों के पीछे क्या होगा ? क्या वहाँ किसीने दीवार चुन रखी होगी ? और दीवार होगी तो उसके पीछे क्या होगा ? ऐसे विचार आने का कारण यह है कि उसके जीवन में एक के पीछे दूसरा कुछ दिखता है। अब दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो पृथ्वी कहती नहीं कि मैं पृथ्वी हूँ, सूर्य और चंद्र नहीं कहते कि हम सूर्य और चंद्र है। पृथ्वी गोल है फिर भी सपाट दिखती है, घूमती है फिरभी स्थिर लगती है। सूर्य पृथ्वी से बड़ा है फिर भी छोटा लगता है, अतः भूगोल के विषयमें विचार करना हो तो भी देखनेवाले का विचार करना ही पड़ता है। एक कमरे में एक मनुष्य हो और एक चिड़िया हो तो चिड़िया को वह कमरा उडान भरने जैसा लगता है अतः दोनों एक कमरे में नहीं है, अपितु हर एक जीव अपने अपने देशकाल में रहते है। योगवासिष्ठ में भी आया है कि इतिहास और भूगोल सिर्फ मन की कल्पना है। अतः हमारा देश कितना और हमारा काल कितना यह पुनः सीखने की जरुरत पड़ती है। पृथ्वी का छोर ढूँढने के लिये एक तरफ चलते रहेंगे तो उसका छोर नहीं मिलेगा, फिर भी चलते रहेंगे तो वहीं पहुँचेंगे जहाँ से चले थे। दूसरी दृष्टि से पृथ्वी का अंत आ जाता है। तीन परिमाण वाले गोले के विषयमें जैसा बनता है वैसा ही चार परिमाण वाले गोले के विषय में भी बनता है। नया सायन्स कहता है कि : हमारे जगत की सीमा है, किन्तु उस सीमा को लांघ सकते है। इस बात को ठीक से समझना हो तो देखनेवाले के जगत का विचार करना चाहिए। वह जगत उसकी कल्पना के अनुसार सीमा वाला है, लेकिन उसकी कल्पना विशाल हो सकती है। अतः उसका जगत भी विशाल हो सकता है। किन्तु साधारण मनुष्य मनुष्य की कल्पना को छोड़कर सहसा ब्रह्मभावना जैसी विशालता प्राप्त नहीं कर सकते। विशेषकर आज के समय में मनुष्य के मनमें अनेक चिंताएं होने से सिर्फ उसका देश जितना विशाल हो उतना ही उसका देश है ऐसा मान लेता है, किन्तु सब देशों में रहनेवाले सब लोग अपने है ऐसी विशाल भावना कोई विरले ही रख सकते है। अतः हमारे भूगोल का आधार हमारे मन की विशालता पर है। ये विषय विद्यार्थियों को ठीक से समझाने की जरुरत है। अपना देश कितना है

यह जानना हो तो अपना अभिमान कितना है उसकी जाँच करना चाहिए। हिन्द के कुछ विद्यार्थी अमेरिका जाकर वहाँ विवाह करके वहाँ के निवासी बन जाते है। कोई अंग्रेज महिला हिन्दू से विवाह करके हिंदुस्तान की निवासी बन जाती है। पाकिस्तान वाले कुछ लोग हिंदुस्तान में जन्मे है फिर भी खुद को हिंदुस्तान के निवासी नहीं मानते। अतः जन्म के अनुसार देश नहीं है, अभिमान के अनुसार देश है। काल भी अभिमान के अनुसार बदलता है। स्वप्न के जगत का अभिमान धारण करते है तब स्वप्न के काल का असर होता है। जाग्रत में जिस मनुष्य को जाग्रत का अभिमान न हो वह मनुष्य जन्मा ही नहीं। अतः हमे जो पाठशालाओं में अपने देश का ज्ञान दिया जाता है सिर्फ उतना ही हमारा देश नहीं है अपितु हम जितना बड़ा बनाना चाहे उतना हो सकता है, अर्थात् लड़ाई करके देश की सीमा नहीं बढ़ाना है, अपितु प्रेम से जितनों को अपना बना ले, उतने अपने होते है। लड़ाई से एक बार जीता हुआ देश फिर से कोई छीन सकते है, किन्तु प्रेम से प्राप्त की हुई विशालता कोई छीन नहीं सकता। यूनिवर्सिटी का सच्चा अर्थ है कि जो भिन्न भिन्न दिखता है उसे एक करके समझाना। यूनि अर्थात् एक और वर्स यानी गीत अर्थात् सब एक संगीत की तरह अखंड है ऐसा ज्ञान जहाँ से मिलता हो उसे यूनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) कहा जाता है। विद्यार्थी गलत सीखें तो उसमे उनकी गलती नहीं। देश के नेता संकुचित वृत्ति के हो और समाज में उनके बखान होते हो तो विद्यार्थी गलती में फँसते है। कई लोग जो कहते है वह कई बार सच्चा नहीं होता, लेकिन वाहवाही पाने की लालच से उसे सच्चा मान लिया जाता है। अतः देश के नेताओं को थोड़ा समय निकालकर बाह्य कार्यों से निवृत्त होकर एकांत में ध्यान करके विश्व जितनी विशालता प्राप्त करनी चाहिए। पश्चिम के व्यापारी संस्कार वाले राज्य अपने पक्ष में बहुमत बढ़ाने के लिए प्रयासरत रहते है, किन्तु अच्छे संस्कार किसे कहते है उस ओर ध्यान नहीं देते। सत्याग्रही व्यक्ति मनुष्य के संस्कार सुधारने की ओर अधिक ध्यान देता है, अतः जन समाज को नया चेतन मिलता है, लेकिन उस आंदोलन का पूरा लाभ उठाना हो तो सत्य की ओर ठीक से ध्यान देना चाहिए। वर्तमान समय में अनीति या असत्य का विरोध करने को सत्याग्रह कहते है, किन्तु सच्चा सत्याग्रह वस्तुतंत्र है। सच्चे सत्य में भेद नहीं होता। वह सत्य में निष्ठा कराता है। सत्य को भविष्य नहीं है, देश की परिच्छिन्नता नहीं है। वह सारे इतिहास और सारी भूगोल से परे है। सत्य काल या देश के अनुसार बदलता नहीं है। प्रथम प्रकरण में बताये अनुसार मनुष्य के जीवन में

प्रारंभिक लड़ाई नीति और अनीति के बीच है, लेकिन सच्ची लड़ाई अज्ञान और ज्ञान के बीच है। अब कांतिलाल की पाठशाला का ज्ञान पुनः जाँचते है।

व्याकरण

कांतिलाल पाठशाला में व्याकरण पढ़ने लगा तब 'मैं' का बहुवचन 'हम' होता है ऐसा उसके सीखने में आया। लेकिन 'हम' कहने के लिए 'मैं' के साथ 'तू' और 'वह' को लेना पड़ता है, अतः वास्तवमें 'मैं' का बहुवचन नहीं होता। वह 'हम' बताता है कि सभी में 'मैं' एक हूँ फिर भी एक स्थान का 'मैं' दूसरे स्थान के 'मैं' को अलग मानकर 'तू' कहता है। स्वप्न में भी सब 'मैं' है फिर भी एक 'मैं' दूसरे को 'तू' कहता है। जगने के बाद मालूम पड़ता है कि सब नहीं थे। सिर्फ एक 'मैं' ही था। स्वप्न में देश काल की गलती के सिवाय और कुछ नहीं था। जाग्रत में भी देशकाल की ऐसी ही गलती होती है। इस विषय को नये वैज्ञानिक अब ठीक से समझा सकते है। उस विषयक कुछ हकीकत पहले दे चुके है और कुछ आगे दी जायेगी।

कांतिलाल का गणित

कांतिलाल गणित सीखने गया तब कुछ गणित के प्रश्नों में आता था कि अमुक संख्या को सरल करो और उसके उत्तर में सिर्फ 0 आता था। और कुछ गणित के सवाल ऐसे थे कि जिसका सरलीकरण करने पर १ उत्तर आता था। इसी प्रकार हमारे संसार को सरल करें तो मायारूप में 0 उत्तर आयेगा अथवा ब्रह्मरूप से १ उत्तर आयेगा। गणित में त्रिराशि के जो सवाल आते हैं वे हमको सिखाते है कि तीन संख्या दी हो उसमें से चौथी खोज लेना। सिद्धांत में तीन गुणवाली माया को देखकर उसमें से ब्रह्म को खोजना अथवा बीज गणित के अनुसार जैसे उत्तर x मानकर x की कीमत निकाली जाती है उसी प्रकार सब का तत्त्व ब्रह्म है ऐसा पहले से मानकर फिर ब्रह्म की कीमत अथवा ब्रह्म के सुख की अनुभूति करना। त्रैराशिक की रीति को योग की विधि कहते है। बीज गणित की रीति को वेदांत की विधि कहते है। भूमिति में भी निम्नलिखित कुछ गलतियाँ मिलती है, उसका कारण भी परिमाण अथवा नाप में निहित है, यह निम्नलिखित कुछ दृष्टान्तों से समझमें आयेगा। (१) कोई सीधी रेखा बनाये तो साधारणतया दो परिमाणवाले समतल स्थानपर वह सीधी लगती है, किन्तु उस सीधी रेखा को २५००० मिल जितनी बहुत लंबी की जाय तो पृथ्वी के बराबर होगी और पृथ्वी गोल होने से सीधी रेखा भी गोल हो जायेगी।

(२) इसी प्रकार दो समान्तर रेखाएं (parallel lines) हो और उनके बीच समान

अंतर हो तो वे परस्पर मिलेगी नहीं, किन्तु ऐसी रेखाएं गोल पृथ्वी जैसी वस्तु पर की जाय तो ऐसी रेखायें मिल सकती है, क्योंकि उनके कोण (angle) में फर्क पड़ जाता है, लेकिन दो परिमाण वाले स्थान पर ऐसी गलती पकड़ नहीं सकते।

(३) ऐसे ही किसी भी त्रिकोण के तीन कोण (angle) की डिग्री का योग (१८०) होता है, किन्तु उस त्रिकोण को बहुत बड़ा किया जाय तो पृथ्वी की गोल जगह में आ जायेगा और उसके तीन कोणों का योगफल १८० डिग्री नहीं रहेगा।

(४) साधारण तौर पर कोई सर्कल और उसके रेडियस का प्रमाण ३.१४५९ जितना होता है पर यदि वह सर्कल गोल वस्तुपर किया हो तो वह प्रमाण सच्चा नहीं रहता।

(५) उपरोक्त प्रकार से यदि दो परिमाण और तीन परिमाण वाली जगह की भूमिति में फर्क पड़ जाता है तो तीन परिमाण वाली और चार परिमाण वाली जगह की भूमिति में फर्क क्यों नहीं पड़ेगा ? अब कांतिलाल हाईस्कूल में भौतिकशास्त्र (physics) सीखा। उसमें पदार्थ का ज्ञान, प्रकाश की गति आदि सिखाये जाते है और न्यूटन के सिद्धांत तक विद्यार्थी पहुँच सकता है। किन्तु प्रो.आइंस्टाइन के सापेक्षवाद की शुरुआत होने के बाद न्यूटन के सिद्धांत टूट चुके है। फिर भी अभी स्कूलों और कॉलेजों में न्यूटन के सिद्धान्त चलते हैं। न्यूटन कहता है कि काल के बिना घटना नहीं घटती। आइन्स्टाइन कहते है कि घटना के बिना काल उत्पन्न नहीं हो सकता। उसकी अधिक जानकारी आगे के प्रकरण में मिलेगी। अब कांतिलाल को स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई पूरी करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने हेतु कोई कन्या से मंगनी (विवाह का पूर्व सम्बन्ध) करने की इच्छा हुई। उसको लगा कि अभी तक मैं कौन हूँ यह मैंने नहीं जाना। मैं अभी तक मूर्ख जैसा रहा हूँ और मैं विवाह करुँ तो मेरे घर में दो मूर्ख हो जायेंगे। ऐसा सोचकर थोड़ा समय अकेले रहने का निश्चय किया। किन्तु कुछ परिजनों के आग्रह से उसका विवाह हुआ। स्कूल में कांतिलाल सीखा था की एक और एक दो होता है किन्तु विवाह के बाद घर में एक और एक मिलने से संख्या बढ़ने लगी और कांतिलाल की चिंता भी बढ़ने लगी। बड़ी उम्र में कांतिलाल मनुष्य जैसा बनने लगा और समाज का सुख लेने के बदले में समाज के कानून और राज्य के क़ानून के प्रभाव में आने लगा। उसे न्यूज़ पेपरों का जगत सच्चा लगने लगा, पर बाद में उसको लगा कि मनुष्य को सिर्फ कमाने का ज्ञान पाने के अलावा और भी बहुत कुछ जानने की जरुरत है और सत्य क्या है उसे जानने के लिये सच्ची रीति से

विचार करने की आदत डालनी चाहिये। व्यापारियों के राज्यों ने व्यापार बढ़ाये, धन बढ़ाया और सब देश आपस में व्यवहार तुरंत कर सके ऐसे यंत्र बनाये, मजदूरों के राज्य धन को ठीक से बाटेंगे, किन्तु सभी के हृदय ठीक करने हो तो अलग प्रकार के ज्ञान की जरुरत है। अति प्रवृत्ति में चित्त को शांत रखना हो तो उस प्रकार का ज्ञान चाहिये। एक बार कांतिलाल को चित्रकला सीखने की इच्छा हुई। उसमें अच्छा अभ्यास करने के बाद एक विद्वान व्यक्ति ने कांतिलाल को एक स्थानपर ले जाकर कहा कि 'यहाँ जो भी दिखता है वैसा चित्र बना।' फिर वह मनुष्य चला गया। वहाँ उस समय दूसरा कोई नहीं था। कांतिलाल ने चित्र पूरा किया और मनमें विचार किया कि 'इस चित्र में कुछ बाकी रह गया है कि नहीं ?' उसको विचार आया कि मैं भी यहाँ हूँ तो मुझे भी चित्र में रखना चाहिये, अतः उसने दूसरा चित्र इस प्रकार तैयार किया :
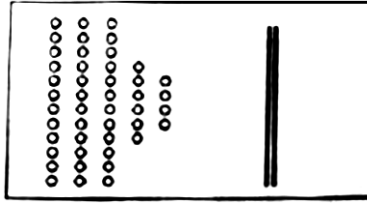
इस चित्र में दृश्य और उसको देखनेवाला कांतिलाल भी समाविष्ट हो जाते है, उसमें कांतिलाल का सम्बन्ध जगत से कैसा है वह भी मालूम पड़ता है। उस स्थानपर कोई बन्दर होता तो बंदर और उसको जो दिखता है उन दोनों को चित्रित करना चाहिये, लेकिन मनुष्य का जीव बंदर से बात नहीं कर सकता, इसलिए सिर्फ मनुष्य को दृष्टा के रूप में लिया है। अब दूसरे चित्र को भी कांतिलाल देख रहा था और वो वहीं था। उसको भी चित्रित करने के लिए कांतिलाल ने तीसरा चित्र बनाया :
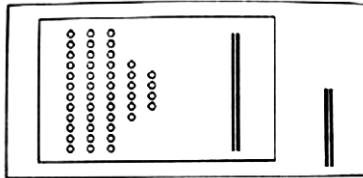
इस तीसरे चित्र को भी कोई देख रहा है, अतः सच्चा दृष्टा कौन ? उसकी चिंता कांतिलाल को होने लगी। और उसको कोई साधू और ज्ञानी सत्पुरुष का सत्संग

करने की इच्छा हुई। जो दृष्टा सिर्फ दृश्य को देखता है वह (दृष्टा और दृश्य के) संबंध को नहीं देख सकता। अतः संबंध को देखनेवाली स्थिति उत्पन्न करनी हो तो दृष्टा का दृश्य बनना चाहिए। साधारण व्यवहार में लोग सिर्फ जगत को ही देखते है इसलिए जगत के साथ हमारा संबंध कैसा है उसे नहीं जान सकते। अज्ञानी मनुष्य जगत को देखते हैं और ज्ञानी देखनेवाले को देखता है। कांतिलाल को धीरे धीरे लगने लगा कि अच्छे विचार तो चित्त में शांति हो तभी उत्पन्न हो सकते है, इसलिए रोज न्यूसपेपर पढ़ने के बदले किसी निर्जन शांत जगह पर ८ दिन एकांत में रहकर अपने हृदय में क्या होता है उसकी जाँच करना चाहिए। जिनको साधारण मनुष्यों से आगे बढ़ना हो उनको साधारण मनुष्यों से भिन्न प्रकार की आदत डालनी चाहिए। ऊँचा जीवन बनाने में अनेक मनुष्य एकसाथ नहीं चल सकते। गीता में भी भगवान ने कहा है कि हजारों में कोई एक इस मार्गपर चलता है और उनमें भी कोई विरला मुझको जानता है। पैसा कमाने में मूर्ख के जैसा जीवन हो जाता हो उससे तो भीख माँगकर संस्कारी जीवन बिताना अच्छा धर्म है। जो लोग अपने मनको नहीं सुधारते वे जीवन में मुसीबतों के समय डर जाते हैं पर ज्ञानी मनुष्य सब परिस्थितियों में सम रह सकते है। ऐसे ज्ञानी मनुष्य पूर्वकाल में हिंदुस्तान में काफी संख्या में मिलते थे, किन्तु उस समय सब देशों से व्यवहार के लिए सुविधा नहीं थी। अब विमान और स्टीमरों की सुविधा हुई है, पर सच्चे साधू कम हो गये है। उपरोक्त चित्रकार के दृष्टांत में दृष्टा नं १ अपने प्रमाण के साथ रहता है इसी कारण से उसे अपनी गलती का पता नहीं चलता। दृष्टा नं. २ दृष्टा नं.१ की गलती को जान सकता है। क्योंकि वह दृष्टा नं. १ के प्रमाण का स्वीकार नहीं करता। साधारण मनुष्य की दशा कैसी है वह नीचे दिये गये दृष्टांत से समझ सकते है :

समुद्र किनारे के एक गाँव में कोई मछुआरा रहता था। वह हररोज समुद्र में जाल से मछली पकड़ता था और उसको बेचकर अपनी जीविका चलाता था। उसकी जाल में जिस प्रकार की मछली आती थी उसपर से वह ऐसा मानता था कि इस समुद्र में इतनी बड़ी मछली ही है।

एक दिन नजदीक के गाँव से दूसरा मछुआरा मिलने आया। उसकी जाल थोड़ी बारीक थी इसलिए अलग प्रकार की मछलियाँ भी उसकी जाल में आती थी। उसने पहले मछुआरे को कहा कि इस समुद्र में तो अनेक प्रकार की मछलियाँ है। पहले ने उत्तर दिया कि मेरे बाप दादाओं के समय से हम यह धंधा करते है और यहाँ एक ही प्रकार की मछलियाँ निकलती है। दूसरे मछुआरे ने उसको समझाया कि 'यह तेरी जाल का स्वभाव है समुद्र का नहीं।' फिर पहले मछुआरे को अपनी गलती समझ में आयी। उसी प्रकार जो लोग जैसा जगत जानते है वह उनकी वृत्ति का स्वभाव है। वह जगत का स्वभाव नहीं है। यदि मनुष्य की वृत्ति ब्रह्माकार हो जाय तो नहीं जाना हुआ बहुत कुछ जानने में आये। किसी मनुष्य की आँखें एक्स-रे जैसी हो तो वह दूसरे मनुष्यों की हड्डियाँ और शरीर के अंदर का भाग भी देख सकता है। टेलीग्राम ऑफिस में डेमी की आवाज में जो कटकट होता है उसमें साधारण मनुष्य को कुछ समझमें नहीं आता, लेकिन जिसे टेलीग्राम का ज्ञान होता है वह उन कटकट शब्दों से भाषा का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। वकील लोग मरीज की बातें नहीं समझ सकते और डॉक्टर लोग कोर्ट के सब झगड़े कैसे निपटाना ये नहीं जान सकते। मद्रासी की भाषा उत्तर भारत वाले नहीं समझ सकते और हिंदी भाषा मद्रासी नहीं समझ सकते। यह मद्रास का स्वभाव नहीं है किन्तु वहाँ रहनेवाले मनुष्यों की जाल का यानी उनकी वृत्ति का स्वभाव है। ऐसे ही जब तक मनुष्य के अंतःकरण की शुद्धि नहीं होती अर्थात् जब तक उसे वैराग्य नहीं होता तबतक उसका मन संसार की जाल में इतना लुब्ध रहता है कि वह ज्ञान की दूसरी बातों को सच्ची नहीं मान सकता। विशेषकर जिनको लगता है कि स्वराज्य सच्चा है अथवा पेट भरने का काम ही उपयोगी है अथवा समाज के लोग

कहते हैं वही सच्चा है, वे एक प्रकार की जाल में बंधे होने से सच्चे ज्ञान की ओर नहीं मुड़ सकते। उनको सब प्रसंगों में आत्मा का विचार करने का पर्याप्त समय नहीं मिलता। अधिक विचार करनेपर समझमें आयेगा कि पैसेवाले लोग और गरीब लोग एक जगत में नहीं रहते। स्त्रियों का जगत भिन्न प्रकार का होता है। उनको नाक, कान में छेद करवाने पड़ते हैं और पुरुषों का जगत भी अलग प्रकार का है। रशिया और अमेरिका के सिद्धांत अलग होने से वे भी एक जगत में नहीं रहते। हर एक की जाल अलग प्रकार की होती है और यह जगत का स्वभाव है ऐसा अज्ञानी लोग मान बैठते हैं। एकबार कांतिलाल अहमदाबाद में बस में बैठकर एक स्थान से दूसरे स्थान जा रहा था। रास्ते में उस बसमें १० विद्यार्थी बैठे। बस वाले ने टिकट लेने को कहा तो एक विद्यार्थी गिनती करने लगा। उसकी गिनती में ९ विद्यार्थी हुए। बस वाले ने गिनती की तो १० हुए। फिर दूसरे विद्यार्थी के गिनने पर ९ हुए और फिर बस वाले ने गिने तो १० हुए। उसके बाद एक विद्यार्थी ने कहा कि संख्या की गिनती करने में हमारी गलती हो रही है। हम गिननेवाले को नहीं गिनते। यह गलती समझमें आने के बाद १० विद्यार्थियों के लिए १० टिकट ली गयी। इस घटना को देखकर कांतिलाल को लगा कि मनुष्य के संसार में भी मनुष्य और सबकुछ गिनता है लेकिन स्वयं कौन है उसकी गिनती नहीं करता। समाज में भी समाजसेवक दूसरों को सुधारने के प्रयास में खुद को भूलता है। वर्तमान सायन्स वाले भी कहते है कि हमने जगत को समझने में दो हजार साल तक बड़ी गलती की है कि हमने जगत को देखनेवाले की दशा का बिलकुल विचार नहीं किया। उस गलती को इस.१९०५ में प्रो.आइंस्टाइन ने पकड़ी। उसके बाद अब सब वैज्ञानिक कहने लगे है कि अब हम सही मार्ग पर आये है। फिर भी व्यापारियों के राज्यों में और मजदूरों के राज्यों में अभी भी यह गलती चली आ रही है। यह गलती ठीक से पकड़ में आएगी तब सतयुग की शुरुआत होगी। इस गलती को सिर्फ ज्ञानी ऋषि मुनि बता सकते है, फिर भी जीवन सुधारने का काम लोगों को ही करना पड़ेगा। उसके लिए श्रद्धा चाहिए, उत्साह चाहिए और संसार के क्षणिक भोगों के प्रति वैराग्य भी चाहिए। मनुष्य के जीवन में सच्ची लड़ाई अपने स्वभाव से है। जबतक स्वभाव में मैल रह गया हो तब तक वस्तु यथावत् नहीं दिखती। इसी कारण से वेदांत में साधन चतुष्टय की आवश्यकता बतलायी गई है। यानी विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति और मोक्ष की इच्छा -इतनी संपत्ति हो तब सत्य को जानने योग्य बुद्धि तैयार होती है। यही सच्ची संपत्ति है। यह संपत्ति दूसरे जन्म में भी काम आती है। धन

सच्ची संपत्ति नहीं है क्योंकि उसका तुरंत नाश होता है अथवा शरीर के रहने तक ही काम आता है। धन से अमरत्व की आशा नहीं रख सकते। इस बात को याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को स्पष्ट ढंगसे समझायी है । अधिकतर लोग भावना प्रधान होते है, विचारप्रधान लोग बहुत कम होते हैं। यदि विचार से भावना को वश में नहीं रखेंगे तो भावनायें जीवन को अनेक अनर्थों में गिराती है।

हमने किसी दर्जी को कपड़े सीने को दिए और एक कोट का नाप देकर ऐसे दस कोट बनाने को कहा। दर्जी कोट बनाकर ले आया। किन्तु हमको फिट नहीं आये तो दर्जी पर गुस्सा आया। दर्जी ने कहा पहले आपके नाप की जाँच करो। जाँच करने से मालूम पड़ा कि दर्जी को नाप देने में गलती हुई थी। फिर दर्जी पर आया हुआ क्रोध शांत हो गया। ऐसे ही हमने हमारे कर्मरूपी नाप अथवा प्रमाण भगवान को दिया। भगवान ने उसके अनुसार हमको शरीर बनाकर दिया अब हमको वह रुचता नहीं। भगवान ने ऐसा जीवन क्यों दिया उसके लिए भगवान को पूछेंगे तो भगवान कहेंगे कि पहले अपना नाप अथवा अपने कर्मों की जाँच करो। उन कर्मों की जाँच करने पर मालूम पड़ा कि हमारे कर्मों का ही ठिकाना नहीं है फिर भगवान को क्यों दोष दें! सारी गड़बड़ी का कारण गलत प्रमाण है। वर्तमान में कुछ लोग भावनाओं के वश होकर मान लेते है कि जो तत्त्व कई लोगों को उपयोगी हो वही सच्चा बाकी सब झूठा। दृष्टांत के तौर पर जो मनुष्य कई भूखे लोगों को अन्नदान करे उसका जीवन और कोई महात्मा एकांत में बैठकर सिर्फ किसी एक को ज्ञान दे उन दोनों की तुलना में दोनों की सेवा अच्छी है। तत्त्व दृष्टि से दोनों की आवश्यकता है। जैसे अन्न की मनुष्य को आवश्यकता है वैसे अज्ञानी को ज्ञान देने की भी आवश्यकता है किन्तु अधिकतर लोग ज्ञान ग्रहण नहीं कर सकते, इसलिए सेवा का दूसरा प्रकार झूठा है ऐसा नहीं कह सकते। ज्ञान के लिए अज्ञानी को ज्ञानी की सेवा करना चाहिए। ऐसे विषय में सेवा की संख्या की अपेक्षा सेवा का प्रकार समझने की विशेष जरुरत है। हमारी अपनी इच्छाएं और हमारे स्वार्थ हमें सत्य ठीक से जानने नहीं देते। सच्चा ज्ञान सिर्फ वर्तमानकाल का क्षणिक सत्य जानने की मजदूरी नहीं करता, अपितु नित्य सत्य क्या है उसको जानने का प्रयास करता है। अतः सत्य कैसा नहीं हो सकता उसे जानने की विशेष जरुरत है। अर्थात् ज्ञान क्या वस्तु है, हमें ज्ञान कैसे प्राप्त होता है और कौनसा ज्ञान सच्चा है यह जानने की जरुरत है। गणित में दस लाख को शून्य से गुणा करनेपर उत्तर शून्य मिलता है, ऐसे ही जगत में बहुत कुछ जाना हो और अपने आप को नहीं

जाना तो शून्य जैसी दशा उत्पन्न होती है और जीवन के अंत में घबराहट होती है। कांतिलाल को अब लग रहा था कि रोटी कमाने के लिए जिस ज्ञान की जरुरत है उससे परम सत्य नहीं मिलेगा। उसकी अपनी समझ गलत है ऐसा उसे कई प्रसंगों में लगता रहता था। कांतिलाल स्वयं कौन है उसे जानने की उसे विशेष आवश्यकता महसूस होने लगी। समाज सेवा से भी इस विषय को नहीं जान सकते ऐसा उसको लगा। समाज में साधारणतया एक अपूर्ण मनुष्य का दूसरे अपूर्ण मनुष्य के साथ संबंध होता है। कुछ लोग मानते है कि ध्यान करना सीख ले और बाहर का सबकुछ भूल जायें ऐसी दशा उत्पन्न हो तो अच्छा। लेकिन ध्यान की तुलना में ध्यान रहित दशा में अधिक समय जाता है। अतः जाग्रत अवस्था में ध्यान जैसा रहे और सहज अवस्था प्राप्त हो उसे ज्ञानी पुरुष ऊँची दशा (स्थिति) कहते है।

कुछ लोगों को संदेह रहता है कि मनुष्य से ऊँची दशा भी हो सकती है क्या ? ऐसी दशा का अनुभव न हो फिर भी मनुष्य से निम्न दशा का अनुभव तो कईयों को होता है। उसकी तुलना करें तो ऊँची दशा हो सकती है ये मान सकते है। किसीको चार इन्द्रियाँ हो यानी कोई अंध हो और लकड़ी के सहारे चलता हो तो उसकी लकड़ी जहाँ लगती है उतना ही जगत है ऐसा वह मानता है। सूर्य का उदय या अस्त होना उसे मालूम नहीं पड़ता। बहरे को संगीत का पता नहीं चलता। किसीका नाक गंध को ग्रहण नहीं करता हो तो उसके पास सिर्फ चार इन्द्रियों का जगत है। कोई तीन इंद्रियोंवाले जीव हो तो उसका जगत कैसा ? किसी गाँव में सब मनुष्य अंधे हो अथवा बहरे हो तो वह गाँव कैसा ? कोई गाँव को देख नहीं सकता और बात करे तो कोई सुन नहीं सकता। किसी टेबल पर चींटियाँ चल रही हो और हम वहाँ पाँच ऊँगली रखे तो चींटियों को लगेगा कि उनके जगत में पाँच वृत्ताकार जीव पैदा हुए। चींटी का नाक ऐसा होता है कि बहुत दूर से उसको शक्कर की गंध आती है। गिद्ध की आँख बड़ी (संवेदनशील) होती है, दीमक का दाँत बड़ा होता है, मक्खी की दृष्टि भी बड़ी होती है। बिल्ली रात्रि में भी अधिक देख सकती है। उल्लू और चमगादड़ भी रात्रि में देख सकते है। हाथी की दृष्टि में मनुष्य बड़ा लगता है। कुत्ते को अनेक प्रकार की गंध आती है। अतः प्रत्येक जीव का जगत अलग अलग होता है। हम बाहर की वस्तु को अथवा दृश्य को प्रधानता देंगे तो उससे तत्त्व क्या है उसका पता नहीं चलेगा। तत्त्व को जानना हो तो देखनेवाले का भी विचार करना पड़ता है। वर्तमान विज्ञान (सायन्स) जगत को तीन हिस्से में बाँटता है :

(१) देखनेवाला (२) देखने का साधन (३) बाहर का जगत। ऐसे तीन भाग करके आज का विज्ञान दूसरे नम्बर पर यानी देखनेवाले के प्रमाण पर विशेष ध्यान देने को कहता है। देशकाल के बिना जगत बन नहीं सकता, फिर भी देश काल जगत में नहीं है। जगत को स्वसत्ता नहीं है। ब्रह्म में भी देशकाल नहीं है अन्यथा उसमें विकार होता। तब शेष रहनेवाले उस देखनेवाले (प्रमाता) जीव की दृष्टि में यानी उसके प्रमाण (माप) में अथवा उसकी माया में देशकाल रहते है। देखनेवाले की दो अवस्था मान सकते है। जब देखनेवाला जगत में हो तब उसको प्रमाता कहते है और उसकी दृष्टि में जैसा देशकाल हो वैसा वह जगत पर आरोपित करता है। देखनेवाला साक्षी के रूप में रहे तब वह जगत का हिस्सा नहीं है, उस समय वह ब्रह्मरूप है। साक्षी में देशकाल नहीं होने से जगत में देशकाल नहीं आते। अतः साक्षी की मदद से जगत नहीं बन सकता, अपितु प्रमाता से जगत बनता है और जैसा प्रमाता होता है वैसा जगत दिखता है। कांतिलाल को छोटी उम्र में ऐसा सवाल उठा था कि मनुष्य मरकर कहाँ जाता है ? उसका खुलासा अब मिल सकेगा। हररोज वह देह भाव से प्रमाता होकर किसी न किसी स्थान में जाता है इसलिए उसको ऐसा मानने की आदत बन गयी है कि मनुष्य मरने के बाद भी कहीं न कहीं जाता होगा और यदि अपनी मान्यता नहीं छोड़ेगा तो अवश्य ही नये देशकाल बनाकर किसी नए लोक में जा भी सकता है। किन्तु अपनी देहभाव की कल्पना छोड़कर आत्मा के रूप में अपना भान रखे तो वह जन्मा नहीं है और मरनेवाला भी नहीं है। कांतिलाल की जैसी भावना होगी वैसा उसका स्वभाव होगा ऐसा लगता है, लेकिन सत्य क्या है यह जानना हो तो भावना से ऊपर उठना चाहिए। मनुष्य में भावना आवश्यक है और उसे दूर भी नहीं कर सकते किन्तु सच्चा ज्ञान पाकर उसकी सहाय से भावनाओं को भी सच्ची बनाना चाहिए। भागवत के माहात्म्य में लिखा है कि ज्ञान और वैराग्य दोनों भक्ति के बेटे है और वे वृद्ध हो तब भक्ति रोती रहती है। जगत ऐसा है, वैसा है ऐसा जो कहता है वह अपना स्वभाव बताता है। जगत को नहीं बताता। पाँच इन्द्रियों से जो जगत दिखता है कि मुर्गा बोले तब, कोई कहता है कि सूर्य उदय हो तब और कोई कहता है हम जगते है तब सुबह होती है। जो मनुष्य सारी रात सोया नहीं उसे कब जागा ऐसा नहीं कह सकते। उसकी सुबह कब होती होगी ? रेल्वे वालों की सुबह रात्रि को १२ बजे होती है और उस समय वे दिनांक बदलते है। यूरोप के लोग एक दूसरे को मिलते है तब 'गुड मोर्निंग' कहते हैं। उनकी सुबह मिलने पर होती है। हिंदुस्तान वाले अमेरिका वाले को

टेलीफोन करके कहते है 'गुड मॉर्निंग' और अमेरिका वाले बदले में कहते है कि 'गुड नाईट' यानी जब हिंदुस्तान में सुबह हो तब अमेरिका में रात्रि होती है। जब जापान में सुबह होती है तब हिंदुस्तान में रात्रि होती है। अतः दिनांक कहाँ से गिनना और कौनसे देश की दिनांक सच्ची उसमें गड़बड़ न हो ऐसा सोचकर सब देशों ने मिलकर जापान में सूर्य दिखे उसे पूर्व दिशा मानकर वहाँ से दिनांक की शुरुआत (गिनती) करना ऐसा निश्चित किया है, क्योंकि सूर्य उदय हो उस जगह से दिनांक की गिनती करें तो सब देशों में भिन्न भिन्न समयपर सूर्य उदय होता है और सब देश उसके आधारपर दिनांक रखे तो व्यवहार में गड़बड़ होगी। पृथ्वी को स्वयंको पूर्व या पश्चिम दिशा नहीं है, लेकिन व्यवहार के लिए जापान को पूर्व का देश कहते है और यूरोप और अमेरिका को पश्चिम के देश कहते है। वास्तव में देखा जाय तो अमेरिका जापान के पूर्व में होने से अमेरिका वालों को जापान वाले पूर्व के देश के निवासी कह सकते है, फिर भी जापानी मनुष्य भी अमेरिका वालों को पश्चिम के लोग कहते हैं। हमारे जन्म के बाद पहली सुबह कब हुई ? नवजात शिशु बहुत समय तक सोता है उसको सुबह किसे कहते है उसका पता नहीं है। उत्तर ध्रुव और दक्षिण ध्रुव में ६ महीने की रात्रि होती है। इस प्रकार देश और काल का निश्चित नाप नहीं रह सकता लेकिन व्यवहार के लिए कल्पित काल रखा जाता है। रेल्वे ट्रेन यदि सब स्टेशनों से सही (स्थानिक) समय से चले और सही समय पर पहुँचे तो व्यवहार नहीं चल सकता।। मुम्बई से छूटनेवाली ट्रेन मुम्बई के टाइम से छूटे और कलकत्ता की ट्रेन कलकत्ता से कलकत्ता के टाइम से छूटे तो मार्ग में आनेवाले स्टेशनों पर कौन सा टाइम रखना उसका पता नहीं चलेगा और व्यवहार चलेगा नहीं। मुम्बई से कलकत्ता जानेवाली ट्रेन को कलकत्ता मेल कहते है, और वही ट्रेन जब नागपुर से आगे जाती है तो दूसरे स्टेशन वाले उसे मुम्बई मेल कहते है, अथवा तो कलकत्ता वाले मुम्बई आये हो और उन्हें कलकत्ता जाना हो तब भी उसे मुम्बई मेल कहते है और मुम्बई वाले कलकत्ता गये हो और वहाँ से वापस आते हो तब कभी कभी उसे कलकत्ता मेल कहते है, क्योंकि मुम्बई में ऐसा बोलने की आदत पड़ी हुई होती है। अतः व्यवहार के लिए कुछ नए काल अथवा नये शब्द बनाये जाते है। ऐसे झूठे लोक में जन्म लेकर कांतिलाल झूठे देशकाल को सच्चा मानने लगा। जैसे सर्कस का शेर बकरों के साथ रहकर बकरे जैसा हो जाता है वैसे सब कांतिलाल (मनुष्यों) के विषय में होता।

किसी परिचित मनुष्य की मृत्यु होती है तब वह दूसरे मनुष्य को अच्छा नहीं

लगता किन्तु किसी से बैर हो और वह मर जाए तो दुश्मन को खुशी होती है। एक मनुष्य को दो पत्नियाँ थी। उनमें से जिससे अधिक प्रीती थी वह मर गयी तो वह मनुष्य बोला 'भगवान ने बहुत गलत किया, मेरी पत्नी को मार डाला। 'और उस मरने वाली स्त्री की सौत कहती है कि 'भगवान ने बहुत अच्छा किया' क्योंकि हमारे प्रेम को बाँटने वाला अब कोई नहीं बचा। कुछ गाँव में नगरपालिका का कारकुन गाँव में होनेवाले जन्म मृत्यु का पंजीकरण करता है। किसी के घर लड़का पैदा होता है तो उस मनुष्य को ख़ुशी होती है लेकिन पंजीकरण करने वाले कारकुन को नाम लिखते समय ख़ुशी नहीं होती। ऐसे ही किसी की मृत्यु होनेपर उसके परिजन रोते है, दुखी होते है किन्तु उस मृत्यु का पंजीकरण करनेवाले कारकुन को कुछ खेद नहीं होता। लेकिन कारकुन के अपने घर में होनेवाले जन्म मृत्यु का असर उस पर होता है। इस प्रकार मनुष्य की भावना के अनुसार और उसके देशकाल के अनुसार उसका जगत बनता है। सच्चा जगत कैसा है उसको जानने के लिए अलग प्रकार से विचार करने की आदत बनाना चाहिए। नये सायन्स वाले कहते है कि हर एक जीव अपने देशकाल में रहते है। वह उसका प्रमाण बन जाता है और उस प्रमाण से उसकी गलती दूर नहीं हो सकती। (We carry space and time around with us like turtles with shells. -Robert Lanza) जिस प्रमाण से जिस घटना की सिद्धि होती है उस प्रमाण से उस घटना की निवृत्ति नहीं होती। स्वप्न के ज्ञान से स्वप्न की घटनायें सिद्ध होती है, इसलिए स्वप्न के ज्ञान से वे झूठी नहीं लगेगी। ऐसे ही जाग्रत के ज्ञान से जाग्रत की घटनायें सिद्ध होती है इसलिए जाग्रत के ज्ञान से वे झूठी नहीं लगेगी। अतः प्रमाण को बदलने की आवश्यकता है। जैसे देशकाल बदल जाते है वैसे लंबाई, वजन आदि बदल जाते है। उसकी कल्पना मनुष्य के मनमें है, इसलिए माया को समझने में मनुष्य को बड़ी कठिनाई होती है। याने जगत कोई वस्तु नहीं है, अपितु कठिनाई से समझमें आनेवाली घटना है। जाँच करनेपर हमारे सामान्य अनुभव गलत सिद्ध होते है और इसी कारण से मनुष्य समाज जो सच्चा मान लेता है वह कई बार सच्चा नहीं रह सकता। मनुष्य का समाज जन्म और मृत्यु को सच्चा मानता है। ज्ञानी पुरुष जन्म और मृत्यु को सच्चा नहीं मानते। गीता के आरंभ में ही अर्जुन ने भगवान से ऐसा सवाल किया है, उसके उत्तर में भगवान कहते है कि जीव स्वयं आत्मस्वरूप है और आत्मा के जन्म या मृत्यु नहीं होते। अतः सिर्फ समाज के द्वारा स्वीकृत ज्ञान के अनुसार चलने से भी जीवन सही नहीं होता। यदि सत्य को समझना हो तो नये

दृष्टिबिन्दु को पकड़ने की आदत डालनी चाहिए। उसके लिए हमारी पृथ्वीपर जो ज्ञानी पुरुष हो गये और उनके चलाये हुए धर्मों का क्या कहना है उसको समझने की आदत बनानी चाहिए। मनुष्य को गलत मान्यताओं से छुड़ाकर सही मार्ग पर ले चलना यह धर्म का सच्चा कार्य है। अब कांतिलाल के मनमें कुछ सच्ची समझ आने लगी थी, लेकिन शायद अपनी मान्यता में गलती रह गई हो तो मनुष्य को स्वयं अपनी गलती तुरंत मिलती नहीं है, इसलिए कांतिलाल ने अन्य कुछ धर्मों के रहस्य समझने के लिये प्रयास किया। जब शास्त्र, आप्तवाक्य और अपना अनुभव ये सब एक समान बात करे तब अपना अनुभव सच्चा है कि नहीं यह निश्चित होता है। अन्यथा सिर्फ अपने अनुभव पर आधार रखने से स्वप्न की नाईं एक गलती से निकलकर दूसरी गलती में पड़ते है। अतः इसके बाद के प्रकरण में माया के विषय में अलग अलग धर्मों में किस प्रकार विचार किया गया है उसकी जाँच संक्षेप में की गयी है।

ॐ ॐ

५ : माया के विषय में विविध धर्मों के मत

सब धर्मों में माया के स्वभाव के विषयमें विचार करने का मुख्य कारण यह है कि भगवान अपने स्वरूप से सत् चित आनंदरूप है तो ऐसे भगवान में से असत्, जड़ और दुखरूप जगत कैसे उत्पन्न हुआ। हम बाजरा बोते है तो बाजरा उगता है, और गेहूँ बोते है तो गेहूँ उगते है, पर गेहूँ बोने पर बाजरा नहीं उगता। जैसा कारण हो वैसा कार्य होता है। मिट्टी से घड़ा बनता है, किन्तु कपड़े से घड़ा नहीं बनता। अतः मनुष्य में दुःख, अज्ञान और बंधन कहाँ से आये, इस विषयपर सब धर्मों में सूक्ष्मता से विचार किया गया है। सब इच्छाओं से सत्य को जानने की इच्छा श्रेष्ठ है। सब धर्म यही कहते है कि आत्मा से प्रीति रखना और संसार के सुख में वैराग्य रखना। इतना साम्य सबमें देखनेमें आता है, लेकिन दुःख और अज्ञान वाला जगत कैसे उत्पन्न हुआ उस विषयमें ज्यादा साम्य देखने में नहीं आता। ये तो सच है कि क्षणिक भोग में जिसका मन आसक्त रहता है वह अंतमें दु:खी होता है और नित्य रहनेवाले चैतन्य के सुखमें जिसका मन आसक्त होता है वह सुखी होता है, फिरभी भगवान ने ऐसा क्यों किया और गलती की शुरुआत कहाँ और कैसे हुई इस विषय में भिन्न भिन्न मत देखने में आते है। यह कार्य स्वयं भगवान ने किया अथवा किसी कॉन्ट्रैक्टर को बनाने के लिए दिया और मानो उस कार्य में कॉन्ट्रैक्टर ने कुछ गड़बड़ की हो ऐसी शंका अनेकों के मन में उत्पन्न हुआ करती है। फिर भी भगवान की ऐसी करुणा अवश्य दिखाई देती है कि जैसे अज्ञान और दुःख जगत में दिखते है वैसे उनके निवारण के साधन भी यहाँ पर देखे जाते हैं। यह भी बड़ा लाभ है, इसलिए ही पुरुषार्थ हेतु अवकाश रहता है। कोई निर्दोष बालक छोटी आयु में मर जाता है, कोई क्रूर मनुष्य सुखी दिखता है, कोई पुण्यशाली दु:खी दिखता है। इसलिए हिन्दू धर्म में कर्म का सिद्धांत और पुनर्जन्म का सिद्धांत माना गया है। ईसाई और इस्लाम धर्म में सभी जीवों का न्याय एक साथ कयामत के दिन होगा ऐसा कहते है। मनुष्य खुद ज्ञानी बने तो निश्चित ही जीव, जगत और ईश्वर के सच्चे तत्त्व को समझ सकता है लेकिन अज्ञानी मनुष्य की दृष्टि से भगवान का सच्चा स्वरूप क्यों नहीं समझ में आता उसके बारे में इंग्लॅण्ड के एक तत्त्ववेत्ता ब्रेडली निम्नलिखित स्पष्ट खुलासा करते है : जीव की भूमिका से ब्रह्म का स्वरूप समझ में नहीं आएगा क्योंकि ब्रह्मदशा समझने के लिये जीवको ब्रह्मरूप होना चाहिए और ब्रह्मरूप होने पर जीवदशा नहीं रहेगी।

१ : ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म

माया का खेल ऐसा है कि मानो हम दूसरे से प्रेम करते है लेकिन वास्तव में हम अपने आप से ही प्रेम करते है क्योंकि उस समय हमारी वृत्ति की अपूर्णता को मिटाने का प्रयास होता है, और मानो हम दूसरे के विषय में ज्ञान प्राप्त करते है, फिर भी वह हमारे ज्ञान की ही दशा है। भगवान एक है और उसके सिवाय और कुछ नहीं है फिर भी उससे अनेक कैसे हुए वह अज्ञान की दशा में स्थित जीव को समझ में नहीं आयेगा। उसका कारण ऊपर दिया हुआ है, अतः माया की गुत्थी सुलझाना कठिन है। फिर भी कुछ धर्मों ने उसे समझने के लिए कैसा कैसा परिश्रम किया है और उसको समझनेमें नया सायन्स हमें कितनी मदद कर सकता है उसको समझने से अनेक शंकायें दूर हो सकती है। ईसाई और इस्लाम धर्म में माया विषयक और जीव की सच्ची दशा के विषयमें अधिक हकीकत नहीं मिल सकती। उनमें धर्म है, इसलिए भावना का तत्त्व अधिक होता है, पर तत्त्वज्ञान(philosophy) कितना है ये ठीक तरह से जान नहीं सकते अथवा वे दूसरों को ठीक से नहीं समझा सकते। धार्मिक दृष्टि वाले बहुत से ईसाई और मुसलमान मानते हैं कि जीव ब्रह्म हो ही नहीं सकता, फिर भी कोई कोई यूरोप के ईसाई तत्त्ववेत्ता जीव-ब्रह्म की एकता हो सकती है ऐसा मानने लगे है और मुसलमानों में सूफी लोग उससे सम्मत हुए है। यूरोप और अमेरिका में डार्विन के मत इवोल्यूशन के अनुसार ऐसा भी मानने लगे है कि पहले यहाँ सिर्फ पृथ्वी ही थी अर्थात् सारा जगत जड़ पदार्थों से बना हुआ था। उसके बाद वृक्ष, वनस्पति, और जलमें मछली आदि हुए। उनमें अन्नमय और प्राणमय ऐसे दो कोष आये। उसके बाद पशु, पक्षी और बंदर और बाद में पूँछ बिना के बन्दर हुए। उनमें मन नामक तत्त्व अव्यक्तरूप से प्रतीत होने लगा उसके बाद मनुष्य हुए उनमें मन व्यक्त रूप से भासने लगा। इस मत में एक के बाद एक कहने के लिये एक समान काल चाहिए और अब सापेक्षवाद के सिद्धांत से समान काल जैसी कोई वस्तु नहीं रह गयी। अतः डार्विन का उत्क्रांतिवाद टूट जाता है। अमेरिका में किसी पादरी ने ऐसा पुस्तक लिखा है कि (Evolution disproved) यानी डार्विन का मत सच्चा नहीं है। उसके प्रमाण के लिए उसने ५० कारण उसमें दिये है, और उनमें एक कारण सापेक्षवाद का दिया है। हिन्दू धर्म में पहले सतयुग बताया हुआ है और बाद में त्रेता, द्वापर और बाद में कलयुग आता है। शुरुआत अच्छे तत्त्व से की गयी है। पश्चिमवाले शुरुआत जड़ तत्व से बताते है क्योंकि जीव जन्मता है तब पहले जड़ जैसा दिखता है। फिर वृक्ष की नाईं बढ़ता है,

फिर उसमें पशुता आती है, किन्तु वह सिर्फ दिखता है। आत्मा अंत में अनुभव में आता है इसलिए अंत में उत्पन्न हुआ है ऐसा मान नहीं सकते। अनात्मा अथवा जड़ पदार्थ को स्वसत्ता नहीं है, इसलिए ये उत्पन्न कब हुए उसका विचार करना व्यर्थ है। स्वप्न के पदार्थों को स्वसत्ता नहीं है, इसलिए उनकी उत्पत्ति स्थिति या लय नहीं जान सकते। जाग्रत के अनात्म पदार्थ भी स्वसत्तावाले नहीं है इसलिए वे किसी देश अथवा काल को (स्वप्न की नाईं) घेर नहीं सकते। कल के जगत को देखकर सब देखनेवाले मर जाय तो आज का जगत किसी तरह से सिद्ध नहीं होगा।

२ : जैन दर्शन

जैन दर्शन में अनैकान्तिकवाद माना गया है। वे ऐसा मानते है कि ऐसा गड़बड़ वाला जगत अकेले ईश्वर से नहीं बन सकता। ईश्वर चैतन्य स्वरूप है और चैतन्य आनंदस्वरूप है। कोई वस्तु अपना स्वभाव नहीं छोड़ती। इसलिए यदि बीज में आनंद हो तो वृक्ष में भी आनंद आना चाहिए। यानी जगत में भी आनंद आना चाहिये किन्तु जगत में दुःख और अज्ञान दिखाई देते हैं। अतः जगत में एक तत्त्व नहीं है लेकिन अन्य कोई आपत्ति साथ में है उस आपत्ति को जैन दर्शन में पर वस्तु कहा है अथवा अजीव या जड़ या कर्म कहते है। किसी जीव को जब बुखार आया हो, वह दुखी हो रहा हो और चिल्लाता हो तब जड़ को दुःख नहीं हो सकता इसलिए चैतन्य को दुःख होता है ऐसा जैन धर्म में माना गया है। चैतन्य भी अपनी पूर्ण दशा में आनंदरूप है लेकिन वर्तमान दशा में पर वस्तु से जुड़ता है इसलिए दु:खी होता है। जीव को जब आत्मज्ञान होता है तब वह पर परिणाम से असंग रहता है और स्व परिणाम से रहता है इसलिए सुख होता है। यह मत लगभग सांख्य जैसा है, फिर भी सांख्य के मत से कुछ भिन्नता है। सांख्य में आत्मा का स्व-परिणाम नहीं माना गया। सांख्य की विचारपद्धति को अख्याति कहते है, और जैन की विचारपद्धति को स्याद् वाद कहते है अथवा कहीं कहीं बुद्ध की नाईं आत्मख्याति भी कहते है। स्याद् वाद आजके सायन्स से अधिक मिलता है, यानी एक ही जीव व्यावहारिक दृष्टि से बंधन में लगता है और परमार्थ दृष्टि से मुक्त लगता है। उसे सापेक्षवाद भी कहते है। जैन धर्मवाले कहते है कि जब किसी विषय पर विचार करना हो तो किस अपेक्षा से किया जाता है उसे पहले निश्चित करना चाहिए। यह निश्चित हो जाय तो फिर किसीसे झगड़ा रहेगा नहीं। यदि जैन धर्मवाले नये सायन्स का यानी सापेक्षवाद का अभ्यास करे तो उनके अपने सिद्धांत को समझनेमें अधिक अनुकूलता होगी। एक जैन साधू जैन धर्म के

अनैकान्तिक वाद का ऐसा भी अर्थ करते है कि जो मार्ग अनेक का अंत लाये वह अनैकान्तिक वाद है। इस दृष्टि से जैन धर्म वेदांत से मिलता है।

३ : बौद्ध धर्म

असत् ख्याति : बौद्धमत में एक शून्यवादी नामक समुदाय है। वे मानते है कि सारा जगत असत् अर्थात् है ही नहीं। वे मानते है कि रस्सी में सर्प गलती से दिखे तब वह साँप अत्यंत असत् है यानी सच्चा साँप नहीं है। और अन्य कोई स्थानपर भी सच्चा साँप नहीं है। ऐसा अत्यंत असत् सर्प रस्सी में देखने में आता है। इसलिये उसे असत् ख्याति कहते है। अत्यंत असत्य सर्प की ख्याति यानी भान और कथन को असत् ख्याति कहते है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि वह नाग मनुष्य की दृष्टि में नाग है। किन्तु नागिन की दृष्टि में नाग नहीं है, अथवा बंदर को या कुत्ते को वह कोई अलग ही प्राणी लगता है। अतः सर्प सिर्फ मनुष्य की जाति के अनुभव का प्रत्यय है। मनुष्य मरकर सर्प हो जाय तो दूसरा सर्प उसको काटेगा नहीं अपितु दोनों एक जाति वाले हो जाय। वेदांत वाले उसका उत्तर इस प्रकार देते है कि यदि असत् वस्तु की प्रतीति होती हो तो वंध्या का पुत्र दिखना चाहिए अथवा खरगोश के सींग भी दिखने चाहिये, इसलिए पूर्णतः असत् वस्तु की प्रतीति नहीं होती। बौद्ध धर्म वाले उत्तर देते है कि संसार के व्यवहार में सिर्फ संबंध जैसा दिखता है, किन्तु संबंध बनाने की वस्तु नहीं मिलती। संबंध चेतन में नहीं है और जड़ में भी नहीं है। जिसे व्यवहार में जीवात्मा कहते है वह अनेक प्रकार की भावनाओं का पुलिंदा है। शून्यवाद में दृष्टा का आधार शून्य पर है और दृश्य का आधार दृष्टा पर है। दोनों में से किसीको स्वतंत्र स्वभाव नहीं है इसलिए दोनों शून्य है।

आत्मख्याति : बौद्ध मत के कुछ अन्य अनुयायी, जो मानते है कि बुद्धि ही आत्मा है उन्हें क्षणिक विज्ञानवादी कहते है। उनका अभिप्राय है कि रस्सी में जब सर्प दिखता है तब रस्सी में अथवा बुद्धि से बाहर अन्य किसी स्थान में सर्प नहीं है। सब पदार्थ बुद्धि से भिन्न नहीं है, अपितु बुद्धि ही सब पदार्थों के आकार को धारण करती है यह बुद्धि क्षणिक विज्ञान रूप है। क्षण क्षण में जो विज्ञान उत्पन्न होकर नाश होता है उसको क्षणिक विज्ञान कहते है। यह विज्ञान ही सर्प रूप से प्रतीत होता है। उसे आत्मख्याति कहते है। आत्मा यानी क्षणिक विज्ञानरूप बुद्धि, उसकी ख्याति यानी सर्प के रूप में कथन और भान-यह हुई आत्मख्याति। जैसे नदी के प्रवाह में क्षण क्षण में एक पानी आया-चला गया, उसके स्थान पर दूसरा आया-चला गया, लेकिन

देखनेवाला भ्रांति से उसे एक ही पानी मानता है ऐसे ही क्षण क्षण में उत्पन्न होकर नाश होनेवाला इस बुद्धिरूप जगत का ज्ञान भी क्षणिक है फिर भी एक का एक हो ऐसा बौद्ध धर्म वाले मानते है। इस मत का वेदांत के मत से इतना अंतर है कि वेदांत क्षणिक विज्ञान को वृत्तिज्ञान कहता है और अधिष्ठान के रूप में स्वरूप ज्ञान को कायम रखता है। बौद्ध धर्म में अधिष्ठान के ज्ञान को अविलुप्त विज्ञान कहते है और वृत्तिज्ञान को लुप्त विज्ञान कहते है। दूसरा अंतर वेदांत और बौद्ध धर्म के बीच यह है कि बौद्ध मत के अनुसार ज्ञान की वस्तु एक क्षण तक रहती है और वेदांत में सभी अनात्म वस्तुयें अध्यस्त अथवा कल्पित है, और इसलिए परिणाम नहीं होता। आत्मख्याति का उल्लेख भागवत के एकादश स्कंध में श्लोक ११-२ में भी आता है वहाँ ऐसा कहा गया है कि :

शोकमोहौ सुखं दुःखं देहोत्पत्तिश्चमायया।
स्वप्नो यथात्मन ख्यातिःसंसृतिर्न तु वास्तवि।।

- शोक, मोह, सुख, दुःख और देह की उत्पत्ति ये सब माया के कार्य है और यह संसार भी स्वप्न की नाईं बुद्धिजनित प्रतीति रूप ही है, वास्तविक नहीं है। यहाँ बुद्धिजनित शब्द आत्मख्याति के अर्थ में लिया है। वर्तमान सायन्स में भी(क्वांटम थियरी में) जगत बुद्धिजनित है ऐसा सिद्ध किया गया है, फिर भी उस दृष्टि में व्यवस्था और नियम क्यों दिखते है उसका विचार पश्चिम के विद्वान कर रहे है। क्षणिक विज्ञानरूप आत्मा का आकार रस्सी में सर्प के रूप में प्रतीत होता हो अथवा ब्रह्म में जगत के रूप में प्रतीत होता हो तो क्षण से अधिक समय दिखना नहीं चाहिये पर दिखता है, अतः क्षणिक विज्ञानवादी बौद्ध जिसको मानते है वह आत्मख्याति भी जगत को ठीक से नहीं समझा सकती। एक स्थानपर किसी मन्दिर पर ध्वजा लहरा रही थी। उसको देखकर बौद्ध धर्म के दो साधू तर्क करने लगे कि इस घटना में ध्वजा चल रही है या हवा चल रही है आखिर में वे ऐसे निर्णय पर पहुँचे कि न ध्वजा चल रही है न हवा चल रही है, क्योंकि ध्वजा या हवा अपने जीवन के विषयमें कुछ नहीं कह सकते, अतः सिर्फ देखनेवाले का मन चल रहा था।

४ : न्याय और वैशेषिक मत

अन्यथा ख्याति : कुछ लोगों का मानना है कि रस्सी में गलती से सर्प दिखता है तो ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति ने अन्य कोई स्थानपर सच्चा सर्प देखा हुआ होना चाहिये। ऐसे ही यदि ब्रह्म में जगत दिखता है तो मनुष्य ने ऐसा जगत पहले देखा होना

चाहिये अथवा अन्य कोई स्थानपर होना चाहिये। दूसरे स्थान की वस्तु अथवा दूसरे काल की वस्तु वर्तमान में अभी यहाँ आँखों के सामने दिखे और उसे सच्ची मानी जाए उसे अन्यथाख्याति कहते है। इस विषय में तीन विकल्प हो सकते है : (१) कोई वस्तु पहले देखी हो उसकी भ्रांति दुबारा हो सकती है, लेकिन पहले की वस्तु सच्ची दृष्टि से नहीं देखी होगी तो भी भ्रांति हो सकती है। किसी अंधे ने भूत की बात सुनी, उसने दूसरे अंधे को बतायी, दूसरे ने तीसरे को बतायी, ऐसे बीस अन्धों तक बात पहुँच गई और बीसवाँ अंधा कुछ खनखनाहट की आवाज आने से डर गया, तो उन में किसीने सच्चा भूत देखा नहीं है फिर भी भ्रांति हो सकती है।

(२) कल का देखा हुआ जगत आज दिखता है तो कल जो देखा था वह सच्ची दृष्टि से नहीं देखा हो तो भी भ्रांति हो सकती है।

(३) फिर, प्रश्न यह उठता है कि जहाँ जगत दिखता है उस समय वहाँ जगत है कि नहीं ? अन्य स्थानपर अथवा अन्य समयपर जगत हो उसका प्रश्न यहाँ नहीं है अतः अन्यथा ख्याति सच्ची नहीं हो सकती।

५ : सांख्य का मत

अख्याति : जहाँ रस्सी में सर्प की भ्रांति होती है (अथवा ब्रह्म में जगत की भ्रांति होती है) वहाँ दो ज्ञान उत्पन्न होते है। एक तो रस्सी के साथ नेत्र का वृत्ति के द्वारा संबंध होकर 'यह कुछ है' ऐसा रस्सी का सामान्य ज्ञान होता है और दूसरा अन्य स्थानपर देखे हुए सर्प का स्मरण ज्ञान होता है अर्थात् 'यह साँप है' इस स्थानपर निम्नलिखित दो ज्ञान है :

(१) 'यह' अंश तो रस्सी का सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान है: और (२) 'सर्प है' ऐसा सर्प का स्मृतिरूप ज्ञान है। लेकिन प्रमाता (जीव) में भय-दोष होने के कारण मुझे दो ज्ञान हुए है ऐसा विवेक देखनेवाले को नहीं रहता। हालांकि 'यह' अंश रस्सी का सामान्य ज्ञान है ऐसा यथार्थ है और पहले दिखे हुए सर्प का स्मृतिज्ञान भी यथार्थ है फिर भी 'मुझे दो ज्ञान हुए है' उसमें रस्सी का सामान्य प्रत्यक्षज्ञान है और सर्प का स्मृतिज्ञान है।' ऐसा विवेक नहीं होता। इन दोनों ज्ञान के अविवेक को सांख्य मत में भ्रांति कहते है। उस भ्रांति के अनुसार ब्रह्म में जगत की प्रतीति होती है।

किन्तु स्मरण के सर्प के ज्ञान से डर नहीं लगना चाहिए। जब रस्सी का सच्चा ज्ञान होता है तब दृष्टि के सर्प का बाध होता है, स्मरण के सर्प का बाध नहीं होता। इससे समझमें आता है कि रस्सी में सर्प का ज्ञान स्मृतिज्ञान नहीं है। अतः वास्तवमें

एक ही ज्ञान होता है। सांख्य का मार्ग ज्ञान का मार्ग है। उसमें यहाँ तक कहा गया है कि माया का स्वरूप जानने से माया बाधा नहीं डालती। भगवान कपिल सांख्यसूत्र में कहते है कि **' दोषबोधेऽपि नोप सर्पणम् प्रधानस्य कुलवधुवत्। '** अच्छे कुल की स्त्री अपना दोष उजागर हो जानेपर जैसे अपने पति के पास नहीं जा सकती वैसे प्रकृति अर्थात् माया भी उसके दोष को जानने वाले महापुरुष के पास नहीं जा सकती। यह विषय निम्नलिखित दृष्टांत से समझ सकते है : किसी अच्छे कुल की स्त्री ने अनीति में डूबी होने के बावजूद भी अपने पति को खुद सती है इसप्रकार का निश्चय करवाया था। पति के मित्रों ने उसके दुराचरण के विषय में कहा तब उसने उत्तर दिया कि मुझे प्रत्यक्ष दिखाओ तब मैं सच्चा मान सकता हूँ। तो उसके मित्रों ने प्रसंग आनेपर उस का कुकृत्य प्रत्यक्ष दिखाया। पति-पत्नी दोनों की नजरें मिली इससे पति को अत्यंत दुःख हुआ और फिर कभी उस दुष्टा का मुख नहीं देखने का निश्चय किया। वह स्त्री भी अपने सतीपने के दंभकी पोल खुल जाने से अपना मुख नहीं दिखाने का निश्चय कर वहाँ से भाग गयी। इसी तरह माया और माया के कार्य ज्ञानी के पास ठहर नहीं सकते। कबीरजी कहते है कि : ज्ञानी के पास माया लज्जित हो जाती है। माया मदहोश स्त्री जैसी है। वह मदहोश व्यभिचारी के पास खड़ी रहती है वैसे ज्ञानीपुरुषों के पास खड़ी नहीं रहती, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है संसार के विषयों में दोषदृष्टि करनेवाले वैराग्यवान जिज्ञासु के आगे माया खड़ी नहीं रह सकती। तो फिर ज्ञानी के पास तो खड़ी कैसे रहेगी ?

६ : शंकराचार्य का वेदांत मत अनिर्वचनीयख्याति : इस सिद्धांत की रीति इस प्रकार की है : अन्तःकरण की वृत्ति नेत्र के द्वारा बाहर निकलकर पदार्थ के जैसी आकृति को धारण करती है, इससे पदार्थ का आवरण दूर होता है और पदार्थ की प्रतीति होती है। प्रकाश उसमें सहायक होता है। रस्सी में सर्प दिखता है उसमें आवरण का भंग नहीं होता। अन्तःकरण की वृत्ति रस्सी तक जाती तो है, लेकिन मंद प्रकाश के कारण वृत्ति रस्सी के समान आकारवाली नहीं होती और रस्सी रूपी चेतन में रही हुई अविद्या के कारण कोई अन्य आकार दिखता है। रस्सी लम्बी होनेसे और अन्तःकरण में सर्प के संस्कार होने के कारण रस्सी में सर्प दिखता है। अविद्या का कार्य सर्प सत् हो तो रस्सी के ज्ञान से उसका बाध नहीं होता। किन्तु रस्सी का सच्चा ज्ञान होने के बाद उसका बाध होता है, अतः वह सत् नहीं है और असत् भी नहीं है। असत् हो तो वंध्या के पुत्र की भाँति अथवा खरगोश के सिंग की भाँति सर्प प्रतीत नहीं

होना चाहिये, लेकिन वह प्रतीत होता है इसलिए असत्य भी नहीं है। इस तरह सर्प का ज्ञान सत्-असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय है। अध्यास का विषय सर्प और सर्प का (अध्यास के विषय का) ज्ञान ये दोनों अविद्या का परिणाम है और ये दोनों अनिर्वचनीय है, क्योंकि ज्ञान काल में उन दोनों का बाध होता है। ज्ञानकाल में अध्यस्त का अभाव होनेसे अध्यस्त के ज्ञान की भी निवृत्ति होती है। इस मत में जगत का कारण अविद्या है। अविद्या न हो तो जगत दिखेगा नहीं इसलिए वेदांती कहते है कि मूर्ख को जगत दिखता है और वही जगत ज्ञानी को ब्रह्मरूप से दिखता है, लेकिन ऐसी मूर्खता अथवा अज्ञान कहाँ से आये और किसको हुए उस विषय में कुछ अधिक खुलासा नीचे दिया हुआ है। इस अनिर्वचनीय ख्याति पर हमारे देश में अच्छा विचार किया गया है उसमें प्रमुख विचारकों के मत निम्नलिखित है।

७ : सुरेश्वराचार्य का आभासवाद

(१) कार्य अध्यास स्मृतिरुप है, कारण अध्यास अनादि और अज्ञान है।

(२) अज्ञान अनिर्वचनीय है और ज्ञान से बाध्य है।

(३) अज्ञानरूप उपाधि से युक्त आत्मा अज्ञान के साथ तादात्म्य प्राप्तकर अपने चिदाभास के अविवेक से अंतर्यामी, साक्षी, जगत्कारण और ईश्वर कहाता है उसकी विगत निम्नलिखित है :

(अ) अज्ञानरूप उपाधि में स्थित होने से अंतर्यामी कहलाता है।

(क) अज्ञानरूप उपाधि दृश्य है इसलिए उसका दृष्टा साक्षी है।

(ख) उपाधि का जगतरूप से परिणाम होने में चिदाभास कारण है।

(ग) अतः चिदाभास जगत का कारण है, उसको ईश्वर भी कह सकते है, समष्टि चिदाभास ईश्वर है।

(४) उपाधि से मुक्त चिदात्मा और उपाधि में स्थित चिदाभास दोनों में भेद है, पर ग्रहण नहीं होता (मालूम नहीं पड़ता), क्योंकि स्फटिक में दिखने वाले लाल जपा कुसुम की नाईं अज्ञानरूप उपाधि के साथ तादात्म्यभाव को प्राप्त हुआ चिदाभास अज्ञान से भिन्न प्रतीत नहीं होता।

(५) अज्ञान का कार्य बुद्धि है, उसके साथ चिदात्मा का तादात्म्य होने से चिदाभास के अविवेक से जीव कर्ता, भोक्ता और प्रमाता कहा जाता है। वहाँ भी चिदात्मा और प्रमाता का तादात्म्य होने से जीव का वाच्य अर्थ उत्पन्न होता है।

(६) प्रत्येक देह में बुद्धि भिन्न भिन्न है, इसलिए बुद्धिगत चिदाभास भी अनेक

होने से चिदाभासों के अविवेक से चिदात्मा भी अनेक की भाँति प्रतीत होता है।

(७) अज्ञान एक है और उसमें रहनेवाले चिदाभास का भेद नहीं है। लेकिन अज्ञान का कार्य-बुद्धि अनेक है।

(८) चिदाभास जड़ नहीं है और चेतन भी नहीं है। वह सिर्फ चेतन का अध्यास है इसलिए वह बुद्धिरूपी उपाधि के अधीन (हो ऐसा) प्रतीत होता है।

(९) चिदाभास अनिर्वचनीय और मिथ्या है।

(१०) शुद्ध चिदात्मा अव्यवहार्य है, किन्तु अज्ञान और अहंकार के द्वारा वह व्यवहार्य हो सकता है।

(११) अज्ञान और चिदात्मा का संबंध ही बंधन है और उनका वियोग ही मोक्ष है।

(१२) बंध और मोक्ष आभास के है, इसलिए इस मत में सिर्फ जहत लक्षणा की ही आवश्यकता रहती है। जहाँ आभास और चेतन दोनों मिलकर जीव का वाच्यार्थ हो वहाँ जहत–अजहत लक्षणा की जरुरत पड़ती है।

(१३) जहाँ आभास सहित अन्तःकरण जीव का विशेषण माना जाता है वहाँ आभास सहित अन्तःकरण विशिष्ट चेतन जीव है और आभास सहित उपहित चेतन साक्षी है।

८ : श्री पदम् पादाचार्य का बिंब-प्रतिबिंबवाद

(१) अज्ञान उपहित बिंब चैतन्य ईश्वर है।

(२) अज्ञान अनुपहित शुद्ध चैतन्य ब्रह्म है।

(३) अन्तःकरण और अन्तःकरण के संस्कार से अवच्छिन्न अज्ञान में प्रतिबिंबित चैतन्य जीव है।

(४) सृष्टिकाल में अज्ञान अन्तःकरण यानी बुद्धि से अवच्छिन्न होता है। सुषुप्ति से जागने पर भी ऐसी दशा होती है।

(५) प्रलयकाल में अन्तःकरण के यानी बुद्धि के संस्कार से अज्ञान अवच्छिन्न होता है। ऐसी दशा सुषुप्ति में भी होती है।

(६) अन्तःकरण और उसके संस्कार अनेक है, इसलिए अज्ञान घट आदि की नाईं अनेक हो जाता है यानी उसमें प्रतिबिंबित चेतन भी अनेक जैसे दिखते है।

(७) प्रतिबिंब बिंब से भिन्न नहीं है इसलिए प्रतिबिंब बिंब रूप से पारमार्थिक है।

(८) जिस उपाधि में प्रतिबिंब पड़ता है उस उपाधि का ऐसा स्वभाव होता है कि प्रतिबिंब में अपने दोष का आरोपण करता है, बिंब में नहीं।

(९) इस मत में भाग त्याग लक्षणा का स्वीकार नहीं है, अपितु सम्पूर्ण वाच्य भाग का त्याग है इसलिये सिर्फ जहत लक्षणा रहती है।

(१०) संक्षेप शारीरक के लेखक सर्वज्ञात्मक मुनि का मत है कि,

(अ) अज्ञान में प्रतिबिंबित चैतन्य ईश्वर है।

(ब) बुद्धि में प्रतिबिंबित चैतन्य जीव है।

(क) अज्ञान अनुपहित बिंब चैतन्य शुद्ध ब्रह्म है।

९ : श्री वाचस्पति मिश्र का अवच्छेदवाद

(१) अज्ञान का विषय चैतन्य ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

(२) अज्ञान का आश्रय चैतन्य जीव है।

(३) इस मत में अज्ञान अनेक होनेसे जीव भी अनेक है, इसलिये एक जीव का मोक्ष होने पर अन्य जीव का अज्ञान चालू रहता है।

(४) प्रत्येक जीव का प्रपंच भिन्न है।

(५) अज्ञान की उपाधि से संसार का उपादान कारण जीव है।

(६) रोज एक का एक जगत दिखने का कारण सादृश्यता है। अबाधित(बाध हुए बिना का) लम्बे समय का जगत का परिचयजगत की सत्यता की भ्रांति की दृढ़ता का कारण है, पर बाधित पदार्थ का लम्बे समय का परिचय, सत्यता की भ्रांति की दृढ़ता का कारण नहीं होता।

(७) प्रपंचसहित जीव की उपाधिरूप अज्ञान का अधिष्ठान ईश्वर होने से ईश्वर में कारणता का उपचार होता है।

(८) अथवा शुद्ध सत्त्वगुण सहित मायाविशिष्टचेतन को ईश्वर कहते है।

(९) मलिन सत्त्वगुण सहित अन्तःकरण का उपादान-ऐसी अविद्या के अंशविशिष्ट चेतन को जीव कहते है।

१० : वेदांत का मुख्य सिद्धांत : दृष्टि सृष्टि वाद अथवा एकजीववाद।

(१) अज्ञानरूप उपाधि से रहित शुद्ध चैतन्य ईश्वर है।

(२) अज्ञान उपहित चैतन्य जीव है।

(३) जीव अपने अज्ञान से जगत का उपादान कारण है और निमित्त कारण है।

(४) इस मत में सम्पूर्ण दृश्य प्रातिभासिक है।

(५) देह के भेद से जीव के भेद की भ्रांति होती है।

(६) अज्ञात प्रातिभासिक की सत्ता नहीं है।

(७) ज्ञात प्रतिभासिक की कल्पित सत्ता है।

(८) इस मत में माया और अविद्या एक होने से अविद्या एक है जीव भी एक है।

(९) सुखदुःख की भिन्न प्रकारसे जो उपलब्धि होती है वह अन्तःकरण के भेद से होती है, क्योंकि कर्ता-भोक्तापने की उपाधि अन्तःकरण है और अन्तःकरण अनेक है इसलिए एकजीववाद में सब देहों में क्रिया साम्य और भोग साम्य नहीं होता।

(१०) जगत की रचना ईश्वर करते नहीं, अपितु स्वप्न के हाथी और रथ आदि की भाँति जीव की आश्रित अविद्या जगत की कल्पना करती है।

(११) स्वगत चिदाभास के साथ अविद्या का तादात्म्य है, इसलिये उसका समस्त कार्य आभास के द्वारा चेतन से अनुगत है।

(१२) कर्तृत्व आदि सब धर्मों से विशिष्ट अन्तःकरण का आत्मा में अध्यास होने से (स्वप्न की नाईं) व्यावहारिक और प्रातिभासिक के भेद का पता नहीं चलता। जब ज्ञान से अध्यास दूर होता है तब (स्वप्न से जगने की नाईं) अन्तःकरण और उसके धर्मों का बाध होता है अथवा जीवन्मुक्त दशा में उसकी प्रतीति मात्र रहती है।

(१३) जैसे स्वप्न में दिखनेवाला पर्वत अणुमात्र भी देश को नहीं घेरता ऐसे ही करोड़ों कल्पित जगत भी किसी देश को नहीं घेरते। जैसे स्वप्न की घटनायें किसी काल को नहीं घेरती वैसे ही जाग्रत की घटनायें भी किसी काल को नहीं घेरती क्योंकि स्वप्न के पदार्थ को जिस तरह स्वसत्ता नहीं है वैसे जाग्रत के पदार्थों को भी स्वसत्ता नहीं है।

उपरोक्त चारों मत में अज्ञान ब्रह्म में दृश्यों का आरोप होने से ज्ञान होनेपर अज्ञान और उसके कार्य का बाध होता है, इसलिए जीव, जगत और ईश्वर के भेद का निषेध होता है और शेष केवल शुद्ध ब्रह्म रहता है। देश काल मिथ्या होने से ज्ञेय का अलग होना असंभवित है अतः ज्ञान ही ज्ञेयरूप प्रतीत होता है। जैसा स्वप्न में है वैसा जाग्रत में है। विशेष सामग्री के अभाव में जो विशेष ज्ञान होता है उसे भ्रांति कहते है।

वेदांत में आगे बढ़े हुए कुछ वेदांती कार्य- कारण भाव को नहीं मानते। अविद्या को जगत का कारण मानने में वह पहले उत्पन्न हुई होगी ऐसा मानना पड़ेगा और जगत को बाद में रखना पड़ेगा। किन्तु इसप्रकार का क्रम सच्चा नहीं है यह आज के विज्ञान(सायन्स) से सिद्ध हुआ है। अतः अविद्या जगत का कारण नहीं है। अविद्या और जगत समकालीन है, इसलिए जगत ही अविद्या और अविद्या ही जगत है। पिता और पुत्र पहले और बादमें नहीं होते, अपितु पुत्र होता है तब उसका पिता होता है।

उससे पहले उसके पिता को कोई पिता नहीं कहता, ऐसे ही अविद्या और जगत समकालीन है। जिस समय जिस दशा की बात चलती हो उस समय के प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय कैसे है इसकी जाँच करना चाहिये। उससे पहले की दशा के प्रमाता आदि (coordinates) भिन्न होते है।

देशकाल और वस्तु का परिच्छिन्नपना कैसे उत्पन्न होता है उसके लिये वेदांत में न्याय के बड़े ग्रंथ अद्वैतसिद्धि, चित्सुखी, खण्डनखंडखाद्य आदि है। और उसका संपूर्ण अभ्यास करने के लिये संस्कृत भाषा का और न्याय का ज्ञान जरूरी होने से विद्यार्थी को बारह साल लग जाते है। देशकाल और वस्तु की परिच्छिन्नता अनात्म पदार्थों में है और आत्मा में नहीं है उस विषय में दिया गया अच्छा खुलासा तत्त्वानुसंधान में निम्नलिखित है :

अत्यंताभाव का जो प्रतियोगीपना है उसका नाम देशपरिच्छेद है, जैसे कि घटत्वादि धर्म का पटादि में अत्यंताभाव रहता है। इस अत्यंताभाव का प्रतियोगीपना घटत्वादि धर्म में रहता है। यही घटत्वादि धर्म में देशपरिच्छेद है। और फिर प्रागभाव (उत्पत्ति के पहले अभाव) तथा प्रध्वंसाभाव (विनाश के बाद अभाव) का जो प्रतियोगीपना है उसका नाम कालपरिछेद है, जैसे कि घट का प्रागभाव अपनी उत्पत्ति से पहले अपने उपादान कारणरूप कपाल (मिट्टी) में रहता है। घट के खुद के नाश के बाद कपाल (मिट्टी) में उसका प्रध्वंसाभाव रहता है। और प्रागभाव एवम् प्रध्वंसाभाव का प्रतियोगीपना घट में रहता है। इस घट में काल परिच्छेद है। और अन्योन्याभाव (एक का दूसरे में अभाव) के प्रतियोगीपने का नाम वस्तुपरिच्छेद है, जैसे कि घट का पट से भेद रहता है। और पट का भी घट से भेद रहता है। इस भेदरूप अन्योन्याभाव का प्रतियोगी पना घटपट में है। इसका नाम घट एवम् पट आदि में वस्तु परिच्छेद है। इसप्रकार सब अनात्मपदार्थ तीन परिच्छेद वाले है। और ब्रह्म में तीनों परिच्छेद में से किसी भी प्रकार का परिच्छेद नहीं रहता। इससे सिद्ध होता है कि **आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यःमहतो महीयान** इत्यादि श्रुतिमें ब्रह्म को विभु अर्थात् व्यापक रूप से कहा है। और फिर इस विभु द्रव्य का किसी भी स्थानपर अत्यंताभाव नहीं होता, अतः ब्रह्म में देश परिच्छेद का संभव नहीं होता। **सत्यं ज्ञानमनंतम् ब्रह्म, न जायते म्रियते वा कदाचित्** इत्यादि श्रुति में ब्रह्म को उत्पत्ति तथा विनाश से रहित नित्य कहा गया है। और नित्य वस्तु का प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव नहीं होता, इसलिए ब्रह्म में कालपरिच्छेद की संभावना नहीं होती। स्वप्न के पदार्थ की नाई सम्पूर्ण जगत ब्रह्म में

आरोपित होने से मिथ्या है। आरोपित मिथ्या वस्तु अधिष्ठान से भिन्न सत्तावाली नहीं होती, अतः अधिष्ठान ब्रह्म ही सम्पूर्ण जगत के आत्मारूप है, इसलिये ब्रह्म में वस्तुपरिच्छेद की संभावना भी नहीं है। यहाँ इतना विशेष खुलासा करने की जरुरत है कि संपूर्ण जगत ब्रह्म में आरोपित होने से अनात्मा में भी देशकाल और वस्तु का परिच्छेद नहीं बनता, क्योंकि अनात्मा अध्यस्त है। यह बात वर्तमान के सापेक्षवाद वाले गणित से सिद्ध करके बताते है। वे अध्यस्त वस्तु को एक घटना अथवा इवेंट कहते है। एक ही इवेंट को देखनेवाले की भूमिका के अनुसार अनेक कल्पित देशकाल हो सकते है, अतः हर एक इवेंट कल्पित अथवा अध्यस्त बन जाता है। इसलिए यह सब अविद्या का खेल है। अद्वैतसिद्धि के विख्यात लेखक स्वामी श्री मधुसूदन सरस्वती अविद्या को भावरूप (अस्तित्ववान) मानते है। और श्री शंकराचार्य के बाद के कुछ अन्य लेखकों ने भी अविद्या को भावरूप मानने की भूल की है। यदि अविद्या भावरूप हो तो उसका अभाव नहीं हो सकता और बंधन की निवृत्ति नहीं हो सकती। इसलिए कोई कोई लेखक अविद्या को अभावप्रतियोगी मानते है यानी नहीं ऐसा नहीं परंतु है ऐसा भी नहीं कहते, क्योंकि ऐसा कहनेपर भावरूप हो जाता है। इस विषय में निम्नलिखित शंकराचार्य के भाष्य में स्पष्ट बताया गया है कि अविद्या भावरूप नहीं है :

(१) **कस्य पुनरयमप्रबोध इति चेत् यस्त्वं पृच्छसि तस्य त इति वदामः ।** अर्थात् अविद्या किसको लगी है ऐसा प्रश्न करते हो तो हम उत्तर देते है कि जो प्रश्न पूछता है उसको लगी हुई है। - (शांकर भाष्य ४-१-३)

(२) **अविद्याकामकर्मविनिर्मुक्तमेव तद्रूपं यत्सुषुप्त आत्मनो गृह्यते प्रत्यक्षतः** । अर्थात् सुषुप्ति में जो आत्मा का स्वरूप है वह अविद्या, काल और कर्म से मुक्त है - (बृह.भा.४-३-२२)

(३) **निरोधस्तहर्यर्थान्तरमिति चेत् न, मोक्षसाधनत्वेनानवगमात् ।** अर्थात् वृत्ति का निरोध करना भी आवश्यक है ऐसा कहते हो तो, नहीं (क्योंकि) मोक्ष के साधन में उसकी आवश्यकता नहीं। -(बृ.भा.१-४-७)

उसका अर्थ यह है कि जैसी वस्तु है उसका भान रखना यानी तत्त्व में सावधानी रखना यह ज्ञानी का ध्यान है।

(४) **नहि तत्त्वमसीत्यस्य वाक्यस्यार्थस्तत्त्वममृतो भविष्यसीत्येवं परिणेतुं शक्यः ।** अर्थात् 'वह तू है' इस वाक्य का ऐसा अर्थ नहीं हो सकता कि तू मरने के बाद ब्रह्म होगा। - (शं.भा.३-३-३२)

(५) **इहैव ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति न शरीरपातोत्तरकालम्।**

अर्थात् जीव ब्रह्म ही है इसलिये यहीं ब्रह्मभाव प्राप्त कर सकता है शरीर के छूटने के बाद ब्रह्म नहीं होना है। - (बृ.भा.४-४-६)

संक्षेप में देह के भेद से आत्मा का भेद नहीं होता। बचपन से कांतिलाल के अनेक शरीर हुए, ५ साल की उम्र का शरीर गया, १० साल की आयु का शरीर गया, और १५, २०, २५, ३० साल की आयु के शरीर गये तो भी कांतिलाल कहता है कि मैं कांतिलाल हूँ, तो फिर कांतिलाल और चुनीलाल के देहों में भी एक आत्मा है ऐसा समझना सरल है। और फिर आत्मा सब में एक होने से उसे ब्रह्म कहते है। लेकिन सोने के कई गहने पड़े हो तब सोना लाओ ऐसा कहने से व्यवहार नहीं चलेगा, इसलिए जैसे व्यवहार के लिए अंगूठी, कडा आदि नाम दिये जाते है ऐसे ही भिन्न भिन्न देशकाल की कल्पित उपाधि को लेकर कांतिलाल, चुनीलाल, आदि नाम व्यवहार के लिए रखे गये है। ऐसी देशकाल की उपाधि कहाँ से आई उसका स्पष्टीकरण इस पुस्तक में अनेक स्थानपर दिया गया है।

अनिर्वचनीय ख्याति में निम्नलिखित गलतियाँ मालूम पड़ती हैं।

(१) रज्जु-सर्प का दृष्टान्त उचित नहीं है उसमें सामने दिखनेवाली वस्तु का विचार है। सामने की वस्तु को रहने को जगह चाहिए अथवा इदंता चाहिए। इदंता भ्रांति है फिर भी उसका समावेश रज्जु और सर्प के सामान्य ज्ञान में किया है।

(२) अविद्या खुद विवर्त है इसलिये जगत अविद्या का परिणाम है ऐसा नहीं कह सकते।

(३) सुषुप्ति में कारण अविद्या है और जाग्रत और स्वप्न में कार्य अविद्या है ऐसा नहीं कह सकते।

ये तीनों अवस्थायें परस्पर संबंध वाली नहीं है, इसलिये उनमें कार्य-कारण भाव नहीं बनता।

(४) अध्यास का मूल 'कारण अविद्या' है यह सिद्धांत सच्चा नहीं है। अध्यास होने के बाद कारण का विचार रख सकते है। अध्यास से पहले कारण का विचार नहीं रख सकते। श्री शंकराचार्य कहते है कि अध्यास ही अविद्या है।

(५) सर्प अविद्या का कार्य है ऐसा नहीं कह सकते। कार्य कारण भाव में परिणाम वाद आ जाता है, इसलिए विवर्तवाद से भ्रांति का खुलासा करना चाहिये।

(६) ज्ञान होने के बाद लेशाविद्या रहे तो तत्त्वमसि महावाक्य झूठा सिद्ध होगा।

लेशाविद्या जायेगी तब सच्चा ज्ञान होता हो तो तत्त्वमसि के बदले 'तत्त्वम् भविष्यसि' ऐसा महावाक्य उत्पन्न होगा और वह गलत है।

(७) साक्षी सिर्फ देखने का काम करता है वह यदि न्याय देने लगे तो साक्षी नहीं रहेगा।

न्यायाधीश साक्षी नहीं हो सकता और साक्षी न्यायाधीश नहीं हो सकता। अतः जिसे साक्षी के रूप में रहना हो उसे किसी प्रकार का न्याय नहीं करना चाहिए। साक्षी साक्षी के रूप में रहे तो ही ब्रह्मरूप हो सकता है। साक्षी के सामने साक्ष्य रहे तो द्वैत होगा। उस समय साक्षी ब्रह्मरूप नहीं होगा। ब्रह्म से जगत भिन्न नहीं है और दोनों के बीच किसी प्रकार का संबंध नहीं है।

(८) उपाधि के भेद से साक्षी अनेक माने हुए है। यह भी ठीक नहीं है। साक्षी शुद्ध है और शुद्ध वस्तु अनेक नहीं हो सकती।

(९) उपादान कारण और निमित्त कारण का विचार शुरू करने से पहले काल सच्चा है ऐसा मानना पड़ेगा। काल सापेक्ष होने से मायिक कारण से व्यवहार का और प्रातिभासिक सत्ता का खुलासा हो सकता है। मायिक कारणवाद में भूत-भविष्य मायिक होते है। अतः नयी घटना में नयी शुरुआत होती है।

(१०) पूर्व पूर्व संस्कार उत्तर उत्तर संस्कार का कारण है ऐसा यदि मानते है तो परिणामवाद का स्वीकार करना पड़ेगा। इस तरह से विवर्तवाद सिद्ध नहीं होगा।

(११) स्वप्न में दिखनेवाले जीवों की जन्म तारीख अलग अलग नहीं होती। जाग्रत में भी ऐसा है।

(१२) वेदांत में रज्जु-सर्प के दृष्टांत से अधिक अच्छी प्रक्रिया तीन अवस्था की है।

(१३) वेदांत में ६ तत्त्व अनादि माने हुए है। उसे जीव, जगत, ब्रह्म, अविद्या, माया और संबंध कहते है। अद्वैत सिद्धि नामक ग्रन्थ में भी ६ अनादि माने हुए है। उसमें गौरव दोष आता है, क्योंकि सांख्य वाले दो अनादि मानते है और योग तीन अनादि मानता है। सांख्य और योग में लाघवगुण है, इसलिए वेदांतवाले सांख्य और योग का खण्डन नहीं कर सकते, फिर भी ब्रह्मसूत्र में सांख्य और योग का खण्डन किया हुआ है। संक्षेप में ६ अनादि का सिद्धांत सही नहीं है। वास्तव में जीव और जगत की एकसाथ प्रतीति होती है(भागवत ११-२२-३९) और इसलिए दोनों का काल (काल का आदि) मिल सकता है। जैसा स्वप्नमें है वैसा जाग्रत में है। इसतरह विवर्तवाद

सिद्ध होगा। कार्य कारण की प्रक्रिया का स्वीकार करना विवर्तवादी के लिए इष्ट नहीं है। वर्तमान सायन्स भी कहता है कि Causation is not continuous in unrelated systems.

११ : श्री रामानुजाचार्य का विशिष्ट अद्वैतवाद

वैष्णव सम्प्रदाय वाले कहते है कि जगत को स्थिति है, जगत झूठा नहीं है, जगत में व्यवस्था नजर आती है। उसमें जीव का प्रयोजन सिद्ध होता है। जगत में नियम है, उसमें थोड़ा समय चल सके ऐसी आकृतियाँ याने नाम और रूप भी है। ऐसे जगत को स्थिति देनेवाला महान तत्त्व जो है उसे विष्णु कहते है। माया विष्णु की शक्ति है। आकाश में जैसे अनेक नामरूप वाले पदार्थ आते है और जाते है वैसे अविचल परमात्मा के अंदर उनकी माया की शक्ति से अनेक नाम और रूप वाले पदार्थ आते है, थोड़ा समय रहते है और फिर लय होते है। और फिर जैसे आकाश से वे पदार्थ भिन्न नहीं है वैसे परमात्मा से माया और उसके कार्य भिन्न नहीं है, फिर भी परमात्मा में माया के कार्यों का असर नहीं होता। हमारा शरीर हमारे आत्मा से भिन्न नहीं है वैसे परमात्मा से जगत भिन्न नहीं है यानी जगत परमात्मा का शरीर है। और जैसे हमारे शरीर के धर्म से हमारा आत्मा बिगड़ता नहीं है वैसे ही परमात्मा की माया से परमात्मा के शरीर को कुछ नहीं होता। अतः जगत और जीव परमात्मा के शरीर के अंदर उसके विशेषण रूप है। यह श्री रामानुज संप्रदाय का मत है, अतः इस मत को विशिष्ट अद्वैत कहा जाता है। साधन अवस्था में सभी वैष्णवों के मतमें शुरुआत में दो सत्ता स्वीकारी हुई है। परमात्मा पारमार्थिक सत्ता में है और जीव व्यावहारिक सत्ता में है। जीव अपनी शक्ति से एक परमात्मा में स्थित जगत का ब्रह्म भाव से अनुभव नहीं कर सकता, अतः भगवान के अनुग्रह की उसको आवश्यकता रहती है। जब भगवान का अनुग्रह प्राप्त होता है तब भगवत्चैतन्य के सहयोग से जीव व्यावहारिक सत्ता को पारमार्थिक सत्ता में ला सकता है। भक्ति के साथ ज्ञान की आवश्यकता इस मत में मानी गई है। ज्ञान से मोक्ष होता है, लेकिन यह ज्ञान सिर्फ श्रवण से पूरा नहीं होना चाहिये, अपितु उपासनारूप होना चाहिये। अतः जीव को चाहिए कि प्रपत्ति (शरणागति) रखकर तैलधारावत् उपास्य देव का सतत स्मरण करना। यह स्मरण दर्शनरूप होता है। उससे सर्व कल्याण गुणमय श्रीपति की प्राप्ति होती है और निजानंद की लहरें मिलती है।

१२ : श्रीमद् वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्ग

इस सम्प्रदाय में भी माया को भगवान की एक शक्ति के रूप में मानी हुई है। जगत अज्ञान का कार्य नहीं है, अपितु भगवान ने अपनी शक्ति से बनाया हुआ है। जीव स्वभाव से दोषयुक्त है किन्तु भक्ति करके भगवान का अनुग्रह प्राप्त करे तो उसको मिलते है उसे पुष्टि कहते है। उसके लिए संसार के प्रवाह में पड़े हुए जीवों के लिए शास्त्रों के नियमानुसार मर्यादामार्ग स्वीकार करके आगे बढ़ना ठीक पड़ता है, इससे कुछ साधक मरजादी होते है। इस मार्ग में भागवत शास्त्र को मुख्य प्रमाण के रूप में माना जाता है, उसमें भी दशमस्कंध की विशिष्टता है। और उसमें जो रासलीला का प्रसंग है उसे अनुग्रह प्राप्त करने के साधन के रूप में अधिक उपयोगी माना जाता है। श्री शंकराचार्य ने व्यवहार को समझाने के लिए (कल्पित) माया को रखा उससे एक प्रकार का द्वैत हुआ ऐसा श्री वल्लभाचार्य मानते है। शुद्धाद्वैत के सिद्धांत के अनुसार ब्रह्म अपनी शक्ति से ही सबकुछ कर सकता है। ब्रह्म में विरुद्ध धर्म भी रह सकते है। : इसलिए माया जैसी कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है ऐसा इस मत में माना हुआ है। जीव भगवान की इच्छा से अग्नि की चिंगारी की नाईं अलग भी हो सकता है और भगवान की कृपा हो तो साथ में भी रह सकता है। जीव का मुख्य कर्तव्य गोपियों के जैसी शरणागति है । उसके फलस्वरूप अनुग्रह अवश्य होगा और आखिर में सर्वात्मभाव और आनंद आयेगा । इस मत में साधन दशा में जीव आरम्भ में व्यावहारिक सत्ता में है और अनुग्रह प्राप्त होने के बाद पारमार्थिक सत्ता में आता है। अनुग्रह होने के बाद जगत भी उसे पारमार्थिक सत्तावाला लगता है। वैष्णवधर्मों में प्रातिभासिक सत्ता का ठीक से विचार किसीने किया हो ऐसा मालूम नहीं पड़ता। हालांकि भागवत में स्वप्न के दृष्टान्त भी आते है, फिर भी वैष्णव सिर्फ एक अवस्था के अनुभव का विचार आगे रखकर, जीव को तुच्छ मानकर उसको भगवान की शरण रखने में कल्याण मानते है। ऐसा नहीं करे तो जीव में अहंकार आ जाएगा, यानी दैन्य इस मार्ग का प्रमुख साधन है, फिर भी इस मार्ग में निम्नलिखित तीन बातें अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता है :

१. भगवान में जो विरुद्ध-धर्माश्रय मानने में आता है उसे सापेक्षभाव से मानना चाहिये। जैसे कि भगवान कंस को मारने के लिए गये तब कंस को काल के रूप में दिखे। मल्लों को मल्लरूप में दिखे और योगियों को परम तत्त्व के रूप में दिखे। ऐसा श्लोक अघासुर के उद्धार के प्रकरण में भी आता है। यदि भगवान में निरपेक्षभाव से

विरुद्ध धर्म आश्रयत्व मानने में आये तो भगवान में अज्ञान और दुःख भी आये अथवा संसार का सुख सच्चा माना जायेगा, लेकिन वह ठीक नहीं है अतः सापेक्षभाव से विरुद्ध धर्माश्रयत्व मानना चाहिये।

२. अकेला दैन्य भाव सीखने से जीव अनेक बार विषयों के सामने दैन्य भाव रखना सीख लेता है। अतः इस मार्ग में भोग की प्रधानता आ गयी है। अतः इस मार्ग की शुद्धि के लिए भगवान के सामने दैन्य और विषयों से वैराग्य करना सीखना चाहिये।

३.भगवान शंकर का नाम लेने से अन्याश्रय दोष नहीं लगता किन्तु भक्ति को छोड़कर संसार का सुख अच्छा लगता है तो अन्याश्रय दोष लगता है।

उपरोक्त तीन बातों पर ठीक से ध्यान रहे तो इस मार्ग से भी माया को जीत सकते है। श्रीमद् वल्लभाचार्य ने आखिर के समय में संन्यास लिया था उतना ही नहीं वैष्णव धर्म के लगभग सभी आचार्य सन्यासी थे यह बात भी भूलने योग्य नहीं है।

१३ : श्री अरविंद का पूर्ण योग

यह योग भी कुछ अंश में वैष्णव मत से मिलता है। इस मार्ग में भी आरंभ में दो सत्ता मानने में आती है। श्री अरविन्द के 'आर्य' नामक मासिक में आरंभ में ही दो प्रकार की प्रकृति का वर्णन आता है। अर्थात् जीव साधन दशा में व्यावहारिक सत्ता में है और परमात्मा पारमार्थिक सत्ता में है। जीव को भगवान का अनुग्रह होगा तब जीव पारमार्थिक सत्ता में आता है। इस मार्ग में प्रातिभासिक सत्ता मानी हुई नहीं है और संन्यास की भी आवश्यकता नहीं मानी और स्वप्न के दृष्टांत भी नहीं आते। श्री अरविन्द का मानना है कि भगवान ऐसे कोई शराबी नहीं है कि उनको खराब जगत उत्पन्न करनेवाले खराब सपने में रहना पड़े। फिर भी जीव में अनेक दोष देखने को मिलते है उसका कारण समझाने के लिये उन्होंने निम्न लिखित नयी पद्धति समझायी है :

इस पृथ्वीपर हजारों वर्ष पहले सब अन्नमय कोष जैसा जड़ था। उसके बाद प्राणमय कोष के शरीर हुए। यानी मछली और पशुपक्षी उस समय थे। उनके शरीर में परिवर्तन होते हुए(डार्विन के उत्क्रांतिवाद की नाई) बंदर हुए और बाद में बिना पूँछ के बंदर हुए। उस समय सिर्फ अन्नमय कोष और प्राणमय कोष वाले शरीर ही थे। मन नामक तत्त्व अव्यक्त था। वह मन स्वाभाविक ढंग से जिस शरीर में कार्य कर सके ऐसा शरीर उस समय नहीं था। धीरे धीरे कुछ समय के बाद बिना पूँछ के शरीर में परिवर्तन

हुआ और उसमें मन का अवतरण हुआ। उन दोनों के मिश्रण से मनुष्य के शरीर हुए। मनुष्य शरीर में मन स्वाभाविक ढंग से कार्य कर सकता है। ऐसे ही श्री अरविंद मानते है कि मनुष्य शरीर अंतिम शरीर नही है । मनुष्य के शरीर में आत्मज्ञान होता है, लेकिन आत्मा का स्वरूप शरीर में स्वाभाविक ढंग से क्रियात्मक नहीं हो सकता । मनुष्य का शरीर मनके योग्य है, किन्तु मन से परे विज्ञानमय कोष है । उस कोष में जीव सहजता से रह सके तो जीव को अद्वैत और द्वैत दोनों का एकसाथ अनुभव रह सकता है। श्री अरविन्द कहते है कि भगवान को एक का बन्धन नहीं है और अनेक का बंधन भी नहीं है। विज्ञानमय तत्त्व जिस शरीर में सहजता से रह सके ऐसा कोई नया शरीर पृथ्वीपर आना चाहिए । उस शरीर में अद्वैत भाव से सभी क्रियाएं हो सकेगी। ऐसा शरीर प्राप्त करने के लिए प्राचीन काल में ऋषि मुनियों ने परिश्रम किया था लेकिन सफल नहीं हुए ऐसा श्री अरविंद का मानना है । सिर्फ एक श्वेताश्वतर उपनिषद में ऐसी बात आती है कि जब योगरूप अग्निवाला शरीर प्राप्त होता है तब वृद्धत्व, रोग या मृत्यु नहीं आते। किन्तु ऐसा शरीर पृथ्वी पर कभी आया होता तो अब के लोग भी उसे देख पाते। जैसे मनुष्य का शरीर इस पृथ्वीपर एकबार आने के बाद टिक गया ऐसे विज्ञानमय शरीर भी यदि आता तो टिक जाता। और ऐसे शरीर वाली जाति भी देखने में आती। ऐसा शरीर नहीं आने से मनुष्यजाति में से पशुता दूर नहीं हुई इसलिए लड़ाई-झगड़े हुआ करते है। किन्तु विज्ञानमय कोष के योग्य कोई नया शरीर ला सकते और विज्ञान* को क्रियात्मक बना सकते तो इस पृथ्वीपर एक देवजाति उत्पन्न कर सकते। (*यहाँ विज्ञान का अर्थ supermind समझना है। इस पुस्तक में अन्य स्थानपर विज्ञान शब्द आता है वहाँ उसका अर्थ सायन्स होता है।) ऐसी देवजाति के सहयोग से सब मनुष्यों के जीवन को प्रभावित कर सकते है और उससे समग्र पृथ्वी के सभी मनुष्यों के जीवन को आध्यात्मिक बना सकते है। उनके योगमार्ग में इस प्रकार से व्यक्ति की उन्नति एवम् समाज की उन्नति के साधन बताये हुए है। और श्री अरविन्द ने महर्षि दयानंद सरस्वती की नाईं वेदधर्म के कर्मकांड का भी नई पद्धति से अभ्यास किया है। उस कर्मकांड में श्री अरविंद नये प्रकार की योग साधना देख पाये है। वे कहते है कि मेरा योग आध्यात्मिक मार्ग का नया साहस है। और जैसे श्री दयानंद सरस्वती जीव, जगत और ईश्वर ऐसे तीन तत्त्व मानते है वैसे ही श्री अरविंद भी ये तीन तत्त्व मानते है। श्री शंकराचार्य मानते है कि जीव और जगत ब्रह्म के विवर्त है, सच्चा तत्त्व एक ही है। और ब्रह्म का अनुभव मनुष्य के शरीर में

स्वाभाविक (सहज) करने के लिये नये शरीर की जरुरत नहीं है, अपितु नये आश्रम की जरुरत है अर्थात् वानप्रस्थ और बादमें संन्यास आश्रम में आ सकें तो निष्ठा प्राप्त कर सकते है। जब आश्रम नहीं बदलते तब निष्ठा होने में देर लगती है। श्री अरविंद का पूर्णयोग अभी भी पूरा प्रसिद्ध नहीं हुआ इएलिए इस विषयपर अधिक कुछ नहीं कह सकते। श्री अरविंद की मान्यता के अनुसार शायद कोई नया शरीर इस पृथ्वीपर आनेवाला हो तो भी उसके लिए देशकाल चाहिये। वर्तमान सायन्सवाले कहते है कि नये देशकाल बनाने हो तो बना सकते है, लेकिन वह कोई सच्ची वस्तु नहीं है।

१४ : महात्मा गांधीजी का अनासक्तियोग

महात्मा गांधीजी मानते थे कि मनुष्य मात्र का मुख्य कर्तव्य भगवत् प्राप्ति है। उस प्राप्ति के लिए अनन्यभाव विकसित करना चाहिये। अनन्यभाव विकसित करने के लिए भय और इच्छा का त्याग करना चाहिये और ये छोड़ने के लिये सब में परमात्मा के दर्शन करके उनकी सेवा करनी चाहिये। सेवा ठीक से करने में आये तो अनन्यभाव सिद्ध हो सकता है। कुछ साधू संसार की इच्छा नहीं रखते, पर संसार से डरते है। यह भी एक प्रकार की अपूर्णता है। ऐसा महात्मा गांधी मानते थे। भगवान और जगत कोई भिन्न वस्तु नहीं है इसलिए जगत की सेवा भगवान की ही सेवा है। महात्मा गांधीजी पूर्णरूप से अनन्य भाव की सिद्धि नहीं कर पाये थे। इस मार्ग में संगदोष पर ध्यान रखनें में बड़ी कठिनाई हो सकती है। अनेक अज्ञानियों के बीच रहना, उनके रागद्वेष के झगड़े निपटाना और फिर अपनी दृष्टि में गुंडे भी भगवान का स्वरूप है ऐसी भावना सतत याद रखना ये बहुत कठिन कार्य है। यदि ऐसी भगवद्भावना समाज सेवक में नहीं रहे तो अपूर्ण सेवक का अपूर्ण समाज के साथ अपूर्ण संबंध होगा। और उनके आंदोलन का अधिक हिस्सा स्वराज प्राप्ति के लिये था। समाज और देश के लिए वह जरूरी कार्य है, लेकिन उतने कार्य से जीव स्वयं कौन है ? इस विषय को समझने का कार्य शेष रह जाता है, उस कार्य के लिये जितना समय चाहिये उतना समय भी समाज सेवक को नहीं मिलता। व्यवहार की असुविधाएं कैसे दूर हों, अनीति कैसे दूर हो ? असत्य कैसे दूर हो ऐसे विषय इस मार्ग में अधिक आते है और ये सब धर्म में जरूरी साधन माने गये है, फिर भी साधन लक्ष्य सहित होना चाहिये। लक्ष्य ठीक से नजर के सामने नहीं रहेगा तो कई लोग साधन को ही फल मान बैठते है। जैसे समाज को अनीति से निकाल कर नीति में लाने की जरुरत है ऐसे ही समाज को अज्ञान से निकालकर ज्ञान में लाने की भी जरुरत है। यदि समाज को ठीक से ज्ञान दिया न

जाय तो अज्ञानी मनुष्य अपने कर्तव्य समझने के बदले अधिकार के लिये लालायित रहते है । अपना कर्तव्य कितना है यह बात अज्ञानी मनुष्य ठीक से नहीं समझ सकता। और ज्ञान के दो प्रकार है। व्यवहार में जिसको सामान्य शिक्षा कहते है वह स्वराज्य के द्वारा अधिक लोगों को दे सकेंगे किन्तु आत्मज्ञान किसीको जबरदस्ती नहीं दे सकते । जिसको आत्मज्ञान की जिज्ञासा हो उसे ही दिया जा सकता है । उसके लिए अज्ञानी को ज्ञानी की सेवा करना चाहिये । गीता के चौथे अध्याय में भी यह बात स्पष्ट की हुई है। जब सच्चा ज्ञान चाहिए तब सेवा के प्रकार में बदलाव आ जाता है। ज्ञान जितना ऊंचा होगा उतने बहुत कम लोग उसका फायदा उठा सकते है। अतः जिनकी इच्छा अधिक लोगों का अधिक कल्याण करने की हो उन्हें समाज को व्यावहारिक लाभ मिले ऐसी सेवा करना चाहिये क्योंकि अधिकतर लोगों को व्यावहारिक लाभ चाहिये। इसलिए प्रथम जीवन का हेतु क्या है, उसमें कितना सुख है, उसके लिये कैसे पुरुषार्थ करने चाहिये यह बात जब तक स्पष्ट न हो जाय तब तक जीवन ठीक से नियमपूर्वक नहीं चल सकेगा। गरीबी दूर करने की आवश्यकता है, उसके साथ मनुष्य को उच्च विचार की सुविधा और समय देने की भी जरुरत है । अतः सेवा करनेवाले का स्वभाव कैसा है, सेवा किसप्रकार से होती है, उस सेवा से कौनसा हेतु साध्य करना है और उस सेवा से मनुष्यजीवन का, जगत का और ईश्वर का सच्चा रहस्य समझमें आता है कि नहीं उसको भी ध्यान में रखना चाहिये, अन्यथा जन्म मृत्यु के दुःख से छूट नहीं पायेंगे। महात्मा गांधीजी भीतर से ईश्वर की प्रेरणा पाकर फिर बाहर की सेवा में लगते थे। ऐसी प्रेरणा ना मिले तब इंतजार करते थे । ऐसा अन्य सेवक करते होंगे या नहीं यह नहीं कह सकते। यदि सब भगवान के स्वरूप है तो सेवा करनेवाला भी भगवान है। ऐसा ज्ञान सेवक में रहता है कि नहीं यह ध्यान में रखना चाहिये। महात्मा गांधीजी के मार्ग में प्रातिभासिक सत्ता का विचार नहीं है और स्वप्न के अनुभव की बात नहीं आती। उनके मत में जीव व्यावहारिक सत्ता में है और भगवान पारमार्थिक सत्ता में है। जीव भक्ति और सेवा करके भगवान को प्राप्त कर सकता है। सेवा के समय यदि सच्चा भाव रहे तो ध्यान का समय और सेवा का समय अलग अलग रखने की जरुरत नहीं है। ध्यान के समय कुछ लोग भगवान का स्मरण आसानी से कर सकते है पर ध्यान छोड़ने के बाद सबमें परमात्मा के दर्शन करने में अनेक लोगों को अनेक प्रकार की कठिनाई होती है। जिससे खुद को प्रेम हो उसमें भगवान को देखना यह सरल कार्य है किन्तु जिसका स्वभाव हमको पसंद नहीं

है ऐसे और जो गुंडे जैसे लोग जो समाज के संस्कार बिगाड़ते हो उनमें भगवान को देखना कठिन कार्य है। फिर भी जब तक ऐसा अनन्यभाव सिद्ध न हो तबतक भगवान का अनुग्रह नहीं होगा। जिस वस्तु को पाना हो उसके लिये जो मूल्य निश्चित किया गया हो वह मूल्य चुकाये बिना वह वस्तु नहीं मिलती। मनुष्य का जीवन अंतिम अवस्था नहीं है। अतः अनेक कठिनाईयों को पार करते हुए ही रास्ता निकल सकता है। अतः सच्चा लक्ष्य सतत नजरों के सामने रखकर साधना के रूप में सम्पूर्ण जीवन बिताने की जरुरत है। उसमें लोगों की वाहवाही से अपने को सिद्ध मान न बैठे यह भी देखते रहना चाहिए। कुछ लोग मानते है कि हमारे पास पैसे हो, बुद्धि हो, साधन हो, तो उनका दूसरों के उपयोग के लिये खर्च करना ही चाहिये। यह काम बहुत अच्छा है, लेकिन देते समय ऐसी भावना रहनी चाहिये कि वह सेव्य का है और उन्हें दिया जा रहा है और सेव्य को सेवक से बड़ा मानना चाहिये। ऐसी भावना सतत टिकना मुश्किल कार्य है, किन्तु उसके बदले कईयों के मनमें तुरंत ऐसी भावना आ जाती है कि मैं गरीब को मदद करता हूँ। साधन दशा में किसी भी ढंग से असंगभाव विकसित करने की आवश्यकता है अर्थात् कामी और क्रोधी मनुष्य से असंग रहने की जरुरत है। उससे अस्पृश्यता का सिद्धांत उत्पन्न हुआ है और फल की दशा में अर्थात् सिद्ध अवस्था में सब को प्रभुरूप देखने की जरुरत है, उससे हरिजन का सिद्धांत उत्पन्न हुआ है। वह सर्वात्मभाव है और भक्ति एवम् ज्ञान की निष्ठा का फल है। परसाधन अवस्था में सब में भगवान को देखने पर संपूर्ण सुख भगवान का सुख है ऐसी मान्यता दृढ़ हो जाती है और स्त्री को सुखी करने से अथवा मनुष्यों को विषय देकर सुखी करने से भी भगवान की सेवा होती है ऐसी गलती होने की संभावना रहती है।

जब महात्मा गांधीजी ने दक्षिण आफ्रिका में सत्याग्रह शुरू किया तब उन्होंने कहा था कि हम प्रह्लाद और सुधन्वा के वंशज है, इसलिये उनके जैसा सत्याग्रह करना चाहिये, लेकिन प्रह्लाद के सत्याग्रह में और महात्मा गांधी के सत्याग्रह में फर्क है। प्रह्लाद राज्य के विरोधी नहीं हुए थे अथवा उन्होंने सिर्फ एक ही बात पर विरोध किया था शिक्षा के विषय में, यानी जिस समय शिक्षक भेद का ज्ञान देते और जिस विद्या में मैं और अन्य ऐसा आये ऐसी विद्या प्रह्लाद पढ़ते नहीं थे। प्रह्लाद को धर्म, अर्थ और काम का ज्ञान देना ऐसी आज्ञा हिरण्यकशिपु ने शिक्षक को दी थी, किन्तु प्रह्लाद वह सीखते नहीं थे, प्रह्लाद कहते थे कि यह तो संसार की झंझट बढ़ानेवाला ज्ञान है। ऐसी शिक्षा तो रागद्वेषवाले और विषयों में आसक्त रहनेवालों के लिये है। महात्मा गांधीजी ये

तीनों ज्ञान सीखने की मना करते नहीं थे। और शिक्षा को छोड़कर अन्य विषय में प्रह्लाद ने राज्य का विरोध नहीं किया था। प्रह्लाद का लक्ष्य एक ही था और वह था सर्वत्र भगवान को देखना। महात्मा गांधीजी का लक्ष्य भी एक ही था किन्तु दोनों के साधन में अंतर था। देशकाल कल्पित है अथवा भेद प्रातिभासिक है, यह महात्मा गांधीजी नहीं मान सकते थे। जैसा जीवन हो वैसा ज्ञान हो जाता है।

और वर्तमान की समाज सेवा में सिर्फ मनुष्य के कल्याण की तरफ दृष्टि रहती है। ज्ञानी पुरुष पशुपक्षी और सूर्यचंद्र आदि सब को एक समाज के अंग मानते है और मनुष्य के ज्ञान को साधन बनाकर जीव, जगत और ईश्वर को ठीक तरह समझने का प्रयास करते है। स्वराज साधन है किन्तु कई बार उसको फल मान लिया जाता है। फल ईश्वरप्राप्ति के लक्ष्यवाला होना चाहिये। अन्य देशों के लोग भी साधन को फल मान लेते है।

१५ : श्री रमण महर्षि का ज्ञानयोग

श्री रमण महर्षि नामक एक संत पुरुष दक्षिण में तिरुवन्नमलई में हो गये है। वे सिर्फ एक सत्ता में मानते थे। किसीने उनसे पूछा कि महात्मा गांधीजी के लिये आपका क्या सन्देश है ? उन्होंने कहा कि जो सत्ता यहाँ काम करती है वह वहाँ काम कर रही है। श्री रमण महर्षि प्रातिभासिक सत्ता में भी नहीं मानते, सिर्फ एक पारमार्थिक सत्ता ब्रह्मसत्ता सर्वत्र व्याप्त है ऐसा मानते है। किसीने उनसे पूछा : भगवान ने ऐसे बेढंग जगत की रचना क्यों की ? उन्होंने उत्तर दिया कि तुम भगवान के पास जाकर उससे पूछो। दूसरे किसीने ऐसा ही प्रश्न किया तब उन्होंने कहा, कि जिसने जगत की रचना की है उसको जगत कैसे चलाना यह मालूम है। जगत का बोझ जगत की रचना करनेवाले पर है। दूसरे किसीने पूछा कि हमे सब को समानभाव वाले बनाने चाहिये, तब उन्होंने उत्तर दिया : 'सब को सो जाने दो तो समान हो जायेंगे।' यानी सब वासनायुक्त जाग्रत मनुष्य एक नहीं हो सकते, निद्रा की नाईं वासनारहित ब्रह्मज्ञान हो तो सब एक ही है। इसप्रकार से सिर्फ एक सत्ता की ही बात वे करते है। उनके अनुभव के अनुसार उनकी बात सच्ची है और शास्त्र अनुसार और अन्य महात्माओं के अनुभव से उनका अनुभव मिलता है। और कभी कभी श्री रमण महर्षि प्रातिभासिक सत्ता को भी मानते है और(रमण वाणी भाग-२) में कहते है, “जगत को मिथ्या माने बिना छुटकारा नहीं है। उसके बिना सत्य मिलेगा नहीं। जब तक जगत सत्य लगता रहेगा तब तक मनमें जगत के विचार आते रहेंगे। जो सिर्फ आभासरूप है उसको

सच्चा मानने से जो सच्चा है उसका अनुभव होगा नहीं। जब गलती से रस्सी में सर्प दिखे तब सर्प को सच्चा मानेंगे तो रस्सी का ज्ञान होगा नहीं। स्वप्न के समय जैसे स्वप्न की भूल समझमें नहीं आती, उसीतरह जाग्रत के व्यवहार के समय जाग्रत की माया की भूल समझमें नहीं आयेगी। जिस मन से जो जगत कल्पित होता है वह मन उस जगत को झूठा कैसे मान सकेगा ? जिस प्रमाण से जो वस्तु सिद्ध होती है उस प्रमाण से उस वस्तु की निवृत्ति नहीं होगी। यदि जगत सच्चा हो तो निद्रा में क्यों नहीं दिखता ? अतः मन के साथ जगत है और जैसा मन है वैसा जगत है। इस समय भी क्या जगत कहता है कि मैं सच्चा हूँ ? आप ही जगत को सच्चा कहते हो और जगत को सिद्ध करनेवाले तुम कौन हो ? उसका तुमको पता नहीं है।"

श्री रमण महर्षि ने वर्तमान के नये विज्ञान (सायन्स) की खोज की जानकारी प्राप्त की है और वह उनके ज्ञानयोग यानी वेदांत से मिलती जुलती है। उसकी कुछ हकीकत 'रमणवाणी' में दी हुई है इसी विषय पर उन्होंने 'सत् दर्शन चालीसी' में श्लोक १५ से १८ में भी लिखी हुई है और 'सत् दर्शन भाष्य' में भी श्लोक १५-१६ में लिखी हुई है। महर्षि का अनुभव है कि जहाँ दृष्टा और दृश्य का संबंध नहीं रहता वही सच्चा अनुभव है। अहंकार दिखनेभर को है, फिर भी जिसको जगत सच्चा लगता है उसको अहंकार भी सच्चा लगता है। अज्ञानी को जाग्रत अवस्था ही सच्ची लगती है, ज्ञानी को जो अबाधित रहता है वह तत्त्व ही सच्चा लगता है। वह तत्त्व तीनों अवस्थाओं में अबाधित रहता है। और श्री रमण महर्षि एक गुड़ के गणपति का दृष्टांत देकर ब्रह्मज्ञान को ठीक से समझाते है। एक मनुष्य को गणपति की पूजा करने की इच्छा हुई। उसके घर में गणपति की मूर्ति नहीं थी इसलिए उसने घरमें जितना गुड़ था वह लेकर गणपति की मूर्ति बनाई। फिर पूजा करते समय उस गणपति को नैवेद्य अर्पण करने का समय आया। गुड़ के गणपति के लिये कुछ मिठाई अर्पण करना चाहिए। किन्तु सारा गुड़ मूर्ति बनाने में ख़र्च हो गया था और दूसरी कोई चीज नहीं मिलने से उस मनुष्य ने उस गणपति में से ही थोड़ा गुड़ लेकर अर्पण किया, लेकिन ऐसा करनेपर गणपति पूजने योग्य नहीं रहे। ऐसे ही लोग पहले अपने को भगवान से और दूसरों से अलग मानते है और फिर भगवान से और दूसरों से एकता करना चाहते है इसलिये कठिनता बढ़ती है और सच्चा तत्त्व ठीक से समझमें नहीं आता क्योंकि भिन्न किये हुए भगवान पूजने योग्य नहीं रहते। श्री रमण महर्षि को अपना ज्ञान जगत में फ़ैलाने की इच्छा हुई नहीं फिर भी वह ज्ञान दूसरे लेखकों के द्वारा और उनकी पुस्तकों के माध्यम से जगत में

प्रसारित हो चुका है। उनका ज्ञान अजातवाद से मिलता जुलता है। अजातवाद के मुख्य आचार्य गौडपाद, वसिष्ठ, दत्तात्रय आदि है। इस मार्ग में जितना सीखने का है उससे अधिक भूलना है, अथवा मन को कुछ काम देना हो तो अपने मूल को खोजता रहे। इस तरह आत्मसाक्षात्कार होता है। जगत की घटनायें ऐसे ज्ञानी के लिए सच्ची नहीं है। घटनायें शरीर के जीवन के लिए बनती है, पर शरीर सच्चा नहीं है। ज्ञानी की दृष्टि में कोई अज्ञानी नहीं है और कोई पापी नहीं है, क्योंकि वस्तु एक है। यह सिद्धांत समझना कठिन है फिर भी सच्चा है।

१६ : भगवान ने ऐसा जगत बनाया किसलिये ? (राजा परीक्षित का शुकदेवजी को प्रश्न)

भगवान तो स्वभाव से समदर्शी है और सब प्राणियों के प्रिय मित्र है। तो वे विषम दृष्टि के पुरुषों की नाईं देवताओं के लाभ के लिये असुरों का वध क्यों कराते है ? वे स्वयं साक्षात् कल्याण स्वरूप है, इसलिये उनको देवताओं की ओर से कोई लाभ पाना नहीं है और निर्गुण होने से दैत्यों से किसी प्रकार का द्वेष अथवा उद्वेग नहीं है। फिर भी जगत में विषमता क्यों दिखती है ? (यानी देश देश के बीच लड़ाइयाँ क्यों चलती रहती है ?) ऐसा प्रश्न भागवत के सप्तम स्कंध के प्रारम्भ में राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से पूछा है। उसके उत्तर में शुकदेवजी कहते है कि वास्तवमें भगवान निर्गुण, अजन्मा, अव्यक्त और प्रकृति से परे है। फिरभी माया के गुण की दृष्टि से विचार करें तो उसमें बाध्य बाधक भाव जैसा मालूम पड़ता है। प्रकृति और पुरुष के अविवेक से निंदा, स्तुति, सत्कार और तिरस्कार के आश्रयभूत शरीर की रचना हुई है। शरीर के अभिमान से जीव में अहंता ममता रूप विषमता होती है और उससे मारना, मरना, निंदा आदि दुःख का अनुभव होता है। जिस देह में ऐसा अभिमान होता है उसके वध से प्राणियों का वध माना जाता है। ऐसा अभिमान जिस प्रकार से जीव में है, वैसा श्री हरी में नहीं है क्योंकि वे अद्वितीय है। अतः किसी भी तरह से भगवान में मन ऐसे जोड़ देना चाहिए कि उसके सिवाय दूसरा कुछ दिखे नहीं। भगवान के अंदर रागद्वेष नहीं है इसी कारण से उनको गाली देनेवाले शिशुपाल को सद्गति दी और हिरण्यकशिपु के राक्षस कुल में जन्में हुए प्रह्लाद का उद्धार किया था। जब हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद की भक्ति देखी तब उसको पूछा कि तेरी ऐसी बुद्धि कैसे हुई' तब उत्तर में प्रह्लाद कहते है, कि 'मैं और अन्य के भेदवाली बुद्धि मिथ्याबुद्धि है। जब भगवान का अनुग्रह होता है तब ऐसी बुद्धि नष्ट हो जाती है। भगवान तो आत्मलाभ से

परिपूर्ण है, उनको मनुष्यों की तरफ से पूजा की इच्छा नहीं है। जैसे दर्पण में कोई मुँह देखे, और उसमें दिखनेवाले प्रतिबिम्ब की शोभा बढ़ाने की किसीकी इच्छा हो तो बिंब रूप मुख्य मुँह का श्रृंगार करने से प्रतिबिंब को उसका लाभ मिल जाता है। वैसे ही जीव जो जो भाव भगवान को अर्पण करता है वह जीव को मिलते है।' प्रह्लाद भगवान की स्तुति में कहते है : 'आपमें अमुक मनुष्य उत्तम है और अमुक अधम है ऐसी बुद्धि नहीं है, क्योंकि आप सब प्राणियों के आत्मा हो। फिर भी आपकी कृपा में जो अंतर देखने में आता है उसका कारण यह है, कि कल्पवृक्ष की नाईं आपका अनुग्रह सेवा से प्राप्त होता है, उसमें जातिगत उच्चता अथवा नीचता कारण नहीं है। हे नाथ! इस संसार में सिर्फ आप ही हो। अतः यह मेरा है और यह दूसरे का है ऐसी बुद्धि करना ही माया है। जैसे कार्यरूप वृक्ष और कारणरूप बीज दोनों गंधतन्मात्रारूप है, वैसे ही संपूर्ण जगत आपका ही रूप है।' यह उत्तर यह बताता है कि माया की दृष्टि से माया प्रतीत होती है। ब्रह्मदृष्टि से ब्रह्म ही अनुभव में आता है। किसी एक जगह पर एक पेड़ पर कोई पक्षी कुछ बोल रहा था। वहाँ से एक फकीर पसार हुआ उसने कहा, कि यह पक्षी मानो कह रहा है, कि 'करीम तेरी कुदरत!' उसके बाद कोई पहलवान वहाँ से निकला तब उसके मनमें ऐसा संकल्प हुआ, कि 'यह पक्षी तो कह रहा है कि 'दंड, कुश्ती, कसरत।' उसके बाद कुछ देर बाद कोई रामभक्त वहाँ से निकला, तो उसने कहा, कि यह पक्षी कह रहा है कि 'राम, लक्ष्मण, दशरथ।' उसके बाद कोई पसारी दूसरे गाँव मसाले बेचने के लिये जाते हुए वहाँ से पसार हुआ तो वह कहने लगा कि 'यह पक्षी तो कह रहा है कि 'हल्दी, मिर्ची, अदरक।' उसके बाद कोई बुढ़िया वहाँ से पसार हुई उसने जाना कि यह पक्षी तो कह रहा है कि 'अट, पुणी, चमरख' आखिर में एक पिंजारा (रुई धुनकने वाला)वहाँ से निकला। उसने कहा कि यह पक्षी कहता है कि 'टें टें टचक!' इस प्रकार मनुष्य की वृत्ति के अनुसार अनेक अर्थ हो जाते है। रास्ते पर बैठे हुए मोची की नजर हर एक के जूते पर होती है और नाई की नजर सब की दाढ़ी पर होती है। पहले धर्मी का अध्यास होता है, फिर धर्म का अध्यास होता है। जैसे रज्जु का निश्चय नहीं हुआ हो तो उसमें भ्रांति होने की संभावना है, वैसे ही जगत क्या है उसका निश्चय नहीं हुआ हो तब तक अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ हुआ करती है। जैसे एक ही बिस्तर पर सोये हुए दो मनुष्यों में से एक को महाभयंकर गर्जना सुनने में आती है, परंतु उसके ही पास में सोये हुए को कुछ सुनाई नहीं पड़ता, ऐसे ही यह दृश्य जगत अज्ञानी की दृष्टि में सत्य दिखता है, पर ज्ञानी की दृष्टि में किसी भी प्रकार का

संकल्प नहीं होने से वह (जगत) नहीं स्फुरता। एक मनुष्य जंगल में पेड़ के नीचे कपड़ा ओढ़कर सोया था, वहाँ से कोई चोर निकला, उसने अनुमान लगाया कि यह कोई चोर पड़ा होगा। वहाँ से कोई शराबी निकला उसने जाना कि कोई शराबी यहाँ पड़ा होगा, फिर कोई साधू वहाँ से निकला उसने जाना कि कोई साधू यहाँ पर सोया होगा। इन सब का तत्त्व देखें तो सामने जो भी वस्तु थी उसमें देखनेवाले की दृष्टि मिल जाने से सापेक्षता उत्पन्न हुई थी। यह विषय तीसरे प्रकरण में थोड़ा समझाया है और अधिक इसके बाद के प्रकरण में समझाया जाएगा। सापेक्षवाद गणित से सिद्ध हुआ है। धर्म के विषय में किसी किसी को मत भेद हो सकता है, किन्तु जब माया का स्वरूप गणित से समझाया जाय तब कोई मत भेद नहीं रहता, क्योंकि गणित के सिद्धांत हमेशा सब देशों में सबको मानने पड़ते है। उपनिषद आदि प्रमाणभूत शास्त्रों में कहा है कि जीव ब्रह्मरूप है। फिर भी जीव को उस बात का पता नहीं चलता, इसलिये कुछ न कुछ गलती किसी भी स्थान में है। उस गलती का स्वरूप क्या है और उसको दूर कैसे कर सकते है उसके लिये हमारे देश के ऋषि मुनियों ने शास्त्रों में अनेकविध उपाय बताये हैं। और उसमें वर्तमान समय में पश्चिम के देशों में जो सापेक्षवाद की और तरंगवाद की खोज हुई है, वह भी मददरूप होती है। यह बात कुछ अंशों में आगे के प्रकरणों में बतलायी गयी है। अब फिर से शास्त्रमें बताये हुये माया के स्वरूप का विचार करने के बाद फिर से पश्चिम की उस नई खोज के विषय में विचार किया जायेगा। माया का विषय कठिन होनेसे एक ही बात अलग अलग ढंग से कहने से अधिक स्पष्ट होती जाती है। और यदि पढ़नेवाले को गलती का स्वरूप मालूम पड़े तो उस गलती को दूर करना आसान हो जाता है। योगवासिष्ठ के ग्रन्थ में जो पुनरावृत्ति देखने में आती है उसका भी यही कारण है। ब्रह्मसूत्र को उत्तरमीमांसा कहते है। उसमें अंतिम विचार आता है, इसलिये उसको वेदांतसूत्र भी कहते है। उसपर शंकराचार्य ने जो टीका लिखी है उसके आरंभिक खंड में भूल का स्वरूप अथवा अध्यास का स्वरूप निम्नलिखित प्रकार से बतलाया गया है : अंधकार और प्रकाश के समान विरुद्ध धर्मवाले 'तू' और 'मैं' ऐसी प्रतीति के योग्य विषय और विषयी की एकता होना युक्त नहीं है। (जैसे उल्लू को दिन में अंधकार दिखे तो उस अंधकार से उल्लू का सच्चा संबंध नहीं होता) ऐसा सिद्धांत होने से ऐसी भूल से उत्पन्न होनेवाले धर्मों की भी एकता नहीं बन सकती। (यानी यदि सीप में रूपा न हो तो उसको लेने की क्रिया भी सच्ची नहीं हो सकती) इससे सिद्ध होता है कि 'मैं' ऐसी

प्रतीति के योग्य जो चैतन्यरूप आत्मा विषयी है उसमें 'तू' ऐसी प्रतीति के योग्य जो विषय(देह, इन्द्रिय आदि जो अनात्म वस्तु)है उसका और उसके धर्मों का एकीकरण पहली गलती, और उससे विपरीत विषय में अथवा देह में आत्मबुद्धि यह दूसरी गलती, ऐसी दो गलती वास्तव में बननी नहीं चाहिये, क्योंकि एक जड़ है और दूसरा चेतन है। फिर भी इनका परस्पर भेद जो समझ नहीं सकते वह अन्योन्य में अन्योन्य के स्वरूप का और उनके धर्म का अध्यास करकेसच्चा और झूठा मिलाकर देह है वह 'मैं' और यह 'मेरा' ऐसे मिथ्याज्ञान के निमित्त वाला यह स्वभावसिद्ध लोकव्यवहार कर रहे है। इस भूल का स्वरूप निम्नलिखित भिन्न भिन्न विचारक भिन्न भिन्न प्रकार से बतलाते है :

१. यह भूल स्मृतिरुप है यानी पहले देखा हुआ पदार्थ अन्य स्थानपर और अन्य काल में नहीं होते हुए भी वहाँ देखना। रूपा देखने के स्थानपर रूपा है, सीप नहीं है, अतः अयोग्य स्थान है और सीप में रूपा का अत्यंत अभाव है, फिर भी वहाँ रूपा हो ऐसी भूल हो जाती है।

२. कोई कहता है कि अन्य में अन्य धर्म का आरोप करना भूल है।

३. जिसमें जिसका अध्यास होता है उसमें उसका भेद नहीं मालूम पड़ता। यह भूल है।

४. कोई कहता है कि जिसमें जिसका अध्यास होता है उसमें विरुद्ध धर्मवाले भाव की कल्पना का नाम भूल है।

उपरोक्त सब मतों में एक में दूसरे के धर्म की प्रतीति होना, यह लक्षण समान रहता है। लोकव्यवहार में भी ऐसा अनुभव होता है कि सीप रूपा की नाईं दिखती है, एक चंद्र दो चंद्र की नाईं दिखता है। इस बात पर किसीको शंका हो सकती है कि जो आत्मा किसीका विषय नहीं होता, ऐसी वस्तु में विषय और उसके धर्म का अध्यास कैसे हो सकता है ? जो वस्तु हमारी आँखों के सामने विषयरूप से हो उसमें दूसरी वस्तु का अध्यास हो सकता है। आत्मा तो ऐसा विषय नहीं है, उसके समाधान में कहते है कि यह आत्मा अत्यंत अविषय नहीं है क्योंकि वह अहम् प्रत्यय का विषय है, स्वप्रकाश है और प्रसिद्ध है। और पहले से विद्यमान वस्तु में ही अध्यास हो ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि (इन्द्रिय से ग्रहण नहीं होने वाले) अप्रत्यक्ष आकाश में भी अविवेकी पुरुष छाया का अथवा मैलेपन का या रंग का अध्यास करते है। इसलिए आत्मा में अनात्मा का अध्यास हो सकता है। ऐसे अध्यास को पंडितजन अविद्या

मानते है, और उसका ठीक विवेक जिस ज्ञान से होता है और वस्तु जैसी हो वैसी मालूम पड़े उस ज्ञान को विद्या कहते है। जिसमें जिसका अध्यास होता है उस अध्यस्त के गुण या दोष के साथ अधिष्ठान का कोई संबंध नहीं होता। अविद्या (यानी आत्मा और अनात्म का परस्पर अध्यास) को निमित्त बनाकर लौकिक और वैदिक प्रमाण-प्रमेय का व्यवहार चलता है और सब विधि-निषेधवाले और मोक्षविषयक शास्त्रों की प्रवृत्ति चलती है। इस बात पर कोई ऐसी शंका करते है कि यदि आत्मा में अविद्या हो तो उसको विषय करनेवाले प्रत्यक्ष प्रमाण और शास्त्रों की प्रमाणता कैसे रहेगी ? उसके उत्तर में कहते है कि देह, इन्द्रिय आदि में जिसे मैं और मेरापन नहीं है ऐसा पुरुष प्रमाता नहीं हो सकता, और जहाँ प्रमाता उत्पन्न न हो वहाँ प्रमाण की प्रवृत्ति भी नहीं बनती। अतः इन्द्रिय आदि का ग्रहण हुए बिना प्रत्यक्ष आदि का व्यवहार संभव नहीं है, एवम् अधिष्ठान के बिना इन्द्रियों से ग्रहण किये हुए विषय घटपट आदि का संभव नहीं है। जिस विषय में अध्यास न हो ऐसे किसी शरीर से व्यवहार नहीं हो सकता और उपरोक्त अध्यास (भूल) न हो तो असंग आत्मा प्रमाता नहीं बन सकता, और प्रमाता के बिना प्रमाण की प्रवृत्ति नहीं होती। अतः प्रत्यक्ष आदि प्रमाण और शास्त्र का आश्रय अविद्यावाला पुरुष ही है। इसके अलावा पशु आदि के व्यवहार में और ऐसे पुरुष के व्यवहार में व्यवहार काल में कोई फर्क नहीं मालूम पड़ता, इससे भी ऐसा सिद्ध होता है कि प्रमाण और शास्त्र का आश्रय अविद्वान ही है। पशु प्रतिकूल शब्द सुनकर निवृत्त हो जाता है और अनुकूल शब्द सुनकर प्रवृत्त होता है। कोई पुरुष हाथ में दंड लेकर पशु को मारने जायेगा तो पशु भागता है और हाथमें घास देखे तो सन्मुख आता है। इस प्रकार विवेकी पुरुष भी क्रूर आदमी के हाथ में खंजर देखकर चिल्लाकर उससे दूर भागता है। और कोई प्रेम से बुलाता है तो उसके पास जाता है। अतः मनुष्य का प्रमाण प्रमेय व्यवहार भी पशु आदि के समान रहता है। पशु आदि का प्रत्यक्ष व्यवहार अविवेक पूर्वक है यह बात विख्यात है। पशु आदि के जैसी समानता विवेकी पुरुषों में भी प्रत्यक्ष आदि व्यवहार काल में प्रतीत होती है। शास्त्र के व्यवहार में तो परलोक के साथ आत्मा का संबंध जाने बिना विवेकी पुरुष का अधिकार नहीं होता, जिस आत्मा में भूख-प्यास के धर्म वास्तविक नहीं है, जिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय आदि का भेद नहीं है ऐसे असंसारी आत्मा का कर्म में अधिकार नहीं है। अतः आत्मज्ञान होने से पहले जो शास्त्र की प्रवृत्ति मानने में आती है वह अविद्या वालों के लिये है, जैसे कि ब्राह्मणों को यज्ञ करना चाहिये, ऐसे शास्त्रवचन आत्मा में भिन्न भिन्न

वर्ण, आश्रम, आयु, अवस्था आदि का आरोप करके प्रवृत्ति कराता है। जिसमें जो नहीं है उसमें उसे मानना ऐसी बुद्धि का नाम अध्यास है। यह बात आगे बताई है। ऐसे अध्यास में निम्नलिखित प्रकार बनते है :

१. पुत्र स्त्री आदि पूर्ण सुखी हो तो मैं सुखी हूँ, और वे अपूर्ण हो तो मैं अपूर्ण हूँ, ऐसा बाहर के पदार्थों के धर्मों का स्व में अध्यास होता है।

२. आत्मा में देह का अध्यास करके मनुष्य कहते है 'मैं बड़ा हूँ, दुबला हूँ, रूपवान हूँ, खड़ा हूँ, जाता हूँ, दौड़ता हूँ। '

३. और इन्द्रियों के धर्मों का अध्यास करके कहता है कि 'मैं गूंगा हूँ, मैं काना हूँ, मैं बहरा हूँ, मैं अंधा हूँ। '

४. इसतरह काम, संकल्प, संशय, निश्चय आदि अन्तःकरण के धर्मों का आत्मा में अध्यास करता है।

५. और मैं हूँ ऐसा ज्ञान उत्पन्न करनेवाले अन्तःकरण का याने अंतःकरण की सभी वृत्तियों का साक्षी आत्मा में अध्यास होता है।

६. इस से विपरीत वह सर्व साक्षी आत्मा का अंतःकरण आदि में अध्यास करता है।

इस तरह अनंत अनादि आत्मा में कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि उत्पन्न करनेवाला अध्यास या भूल सब लोगों के प्रत्यक्ष अनुभव में है।

ऐसे अनर्थ के हेतुभूत अध्यास का मूल सहित नाश करनेके लिए एवं ब्रह्म और आत्मा की एकता का ज्ञान उत्पन्न करने के लिए सारे वेदान्त शास्त्रों का प्रारम्भ हुआ है।

उपरोक्त विषय में जहाँ प्रमाण शब्द आता है वहाँ उसका अर्थ नाप या measure समझना है। उस नाप का या माया का जो उपयोग करता है उसे प्रमाता कहते है। यह माया दो प्रकार की है। एक है गुणदोषवाली माया और दूसरी है देशकालवाली माया। दोनों का मूल ऊपर बताया हुआ अध्यास है। जहाँ 'मैं' और 'तू' ऐसी वृत्ति आती है वहाँ देश का अध्यास होता है और स्मृति अथवा स्मरण से काल का अध्यास होता है। दोनों अध्यास एक साथ होते है ये भी अब नए विज्ञानवाले (सायंस वाले) नए ढंग से समझा सकते है। ये बात आगे के प्रकरणों में है।

ॐ ॐ

६: चतुर्थ परिमाण

काल की भूल कैसे होती है यह बात तीसरे प्रकरण के तीसरे दृष्टांत में विज्ञान की रीति से पृथ्वी और सूर्य के दृष्टांत से समझायी गई है। उस में सूर्यपर स्थित मनुष्य अपनी घड़ी सच्ची मानता है और पृथ्वी पर स्थित मनुष्य अपनी घड़ी कैसे सच्ची मानता है यह समझाया गया है, फिर भी उन दोनों घड़ियों में फर्क है।

प्रकाश की गति एक सेकण्ड में लगभग १, ८६, ००० मील की है। तद अनुसार प्रकाश के वर्ष की गिनती होती है। अब ऐसा मानलो कि 'अ' और 'क' नामके दो ग्रह है। उनके बीच प्रकाश के चार वर्ष (४ प्रकाशवर्ष) जितना अंतर है। और मानलो कि 'अ' नामक ग्रह हमारी पृथ्वी से १० प्रकाशवर्ष दूर है। अब हम दूरबीन से देखे और 'अ' नामक ग्रह पर एक घटना घटे तो वह हमें वर्तमानकाल में लगती है, फिर भी वह घटना 'अ' नामक ग्रह पर १० वर्ष पहले घटी थी। और 'क' नामक ग्रह पर रहनेवाले को वह घटना ६ वर्ष पहले घटी हुई दिखेगी। जो घटना (इवेन्ट) 'अ' नामक ग्रह पर ४ साल पहले हो गई है वह 'क' ग्रह के मनुष्य को वर्तमानकाल में मालूम पड़ती है, और हमको ६ साल बाद भविष्यमें लगती है, अतः भूत, भविष्य या वर्तमान जैसा कुछ नहीं रहता। कौन सा मनुष्य किस स्थान से किस घटना को देखता है उसपर सम्पूर्ण आधार है।

ऐसी घटना में देशकाल बदल जाते है इसलिये उसको चतुर्थ परिमाण कहते है यह बात निम्नलिखित दृष्टांतों से स्पष्ट होगी।

दृष्टांत : १ : क्रिकेट का खेल

क्रिकेट के खेल में कोई खेलनेवाला स्थिर नहीं है अतः कौनसा खिलाड़ी अधिक कुशलता दिखाता है, उसका आधार उसकी शक्ति और गति पर है। प्रत्येक क्षण में खेलनेवाले की शक्ति और गति में परिवर्तन होता है। जैसे तीन परिमाण वाले जगत में ऊंचाई, लम्बाई और चौड़ाई होती है और वे तीनों बदल सकती है वैसे चार परिमाण वाले जगत में ४ नाप होते है और उनमें परिवर्तन होता है।

(१) आगे पीछे (२) ऊपर नीचे (३) दायाँ बायाँ और (४) जल्दी धीरे।

क्रिकेट के खेल में इन चारों नाप का अच्छा अनुभव देखनेवाले को मिलता है इसलिये यह खेल देखने में कईयों को रस आता है। प्रत्येक मनुष्य कितने रन बना पायेगा यह निश्चित नहीं होता। कितने समय में ओवर पूरी होगी यह भी मालूम नहीं

होता। आगेपीछे का क्षेत्र बदल जाता है। खेल में जल्दी या विलम्ब भी हो जाता है। उस खेल का फोटो लेंगे तो प्रत्येक मिनट का अलग आता है। ऐसी घटना को चतुर्थ परिमाण कहते है। ऐसे प्रसंग में जो दिखता है वह कोई वस्तु नहीं है, अपितु घटना है।

दृष्टांत : २

मुंबई से अहमदाबाद कितना दूर है ? कोई कहता है कि १० घंटे लगते है, यह मेल ट्रेन के पैसेंजरों का उत्तर है। लोकल ट्रेन में अधिक समय लगेगा, मोटर में अधिक समय लगेगा, बैलगाड़ी में जाये तो और अधिक समय लगेगा और विमान में २ घण्टे लगेंगे। जिस प्रकार का साधन उपयोग में लिया जाय उसके अनुसार घण्टे बदलते है। और यदि मार्ग में विघ्न आये तो समय में अंतर पड़ जाता है, अथवा वडोदरा तक ट्रेन से जाकर फिर विमान से जाये तो भी समय में अंतर पड़ जायेगा, इससे वह भी चार परिमाण वाला जगत है। जहाँ जहाँ गति होती है वहाँ चार परिमाण उत्पन्न होते है। हमारी पृथ्वी सूर्य के आसपास ट्रेन की तरह एक सेकण्ड में १८ मिल घूमती है। इसलिये हम सब का जीवन चार परिमाण वाला है। पत्थर का जीवन भी चार परिमाण वाला है। एक सेकण्ड में पत्थर जहाँ पड़ा था वहाँ से दूसरी सेकण्ड में १८ मिल दूर जाता है। (क्योंकि पृथ्वी घूमती है) हमको उस बात का पता नहीं चलता।

दृष्टांत : ३

एक परिमाण वाला जगत रेखा से चित्रित कर सकते है। दो परिमाण वाला जगत बनाना हो तो (L : एल) इस प्रकार बनाना चाहिये। तीन परिमाण वाला जगत दिखाना हो तो इस तरह दिखा सकते है। किन्तु चार परिमाण वाला जगत बताना हो तो कैसा चित्र बनाना ? उसके लिए कुछ प्रयास हुए है। जिसमें काल की रेखा भी समाविष्ट हो सके उसे चार परिमाण वाला कहा जाता है।
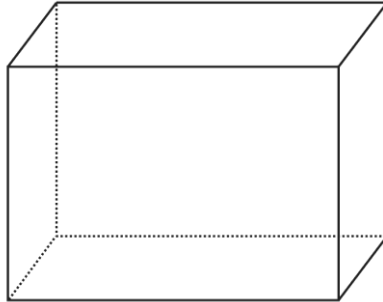
उसके लिए नीचे के पाँच चित्र बन सकते है :

प्रथम आकृति में एक बेलनाकार जैसा है। उसे तीन परिमाण कहते है उसमें बीच में जो बिंदु (...)वाली रेखा है वह काल का चतुर्थ परिमाण है। बेलन के ऊपर हम हाथ घुमाये और ऊपर से नीचे लाये तो उसमें काल भी समाविष्ट हो जायेगा। किन्तु समय कभी कम होता हो ऐसा चित्र बनाना हो तो
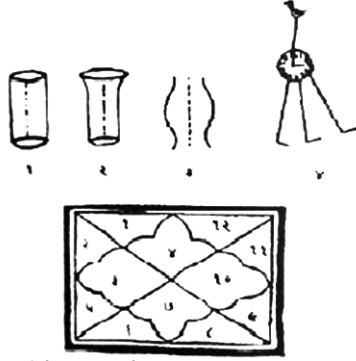
दूसरा चित्र देखे, अथवा किसी कार्य में पहले अधिक समय लगे और बादमें कम समय लगे तो तीसरे चित्र जैसा होगा। अमेरिका में अभी एक पुस्तक इस विषय पर प्रसिद्ध हुआ है, उसमें चौथे चित्र के अनुसार कवर के ऊपर चित्र रखकर एक पक्षी बताया हुआ है और बीच में एक घड़ी रखी हुई है, यह चित्र अधिक अच्छा है, उसमें भी काल एक परिमाण के रूप में बताया है यानी हर एक घटना के साथ काल उत्पन्न होता है।

हमारे देश में चार परिमाण बनाने के लिए कोई ज्योतिषी किसी के जन्माक्षर निकालते समय जो कुंडली बनाता है उसमें वह मनुष्य के ग्रहों की दशा ठीक से दिखाता है और उसमें उसके काल का भी पता चलता है। जिस स्थान पर वह मनुष्य जन्म लेता है उस स्थान का काल पहले निश्चित करके फिर जन्मकुंडली बनाई जाती है। उसके आधार पर उस मनुष्य का काल निश्चित होता है। उसका काल माने उसका अपना काल, और जब वह मरता है तब कहा जाता है कि उसका काल आ गया। इस प्रकार काल कोई सच्ची वस्तु नहीं है, अपितु प्रत्येक क्षण नया काल उत्पन्न होता है। वह मनुष्य यदि ग्रहशांति करता है तो उसकी कुंडली में परिवर्तन भी हो सकता है।

वर्तमान विज्ञान वाले तो कहते है कि काल कोई सच्ची वस्तु नहीं है, अतः प्रारब्ध में भी परिवर्तन हो सकता है। जो आत्मज्ञान पाकर देह का अभिमान छोड़ सकते है उनको ज्योतिषी की कुंडली का हिसाब लागू नहीं हो सकता।

दृष्टांत : ४

कोई बड़ी स्टीमर हो तो उस में टेनिस खेलने की भी सुविधा होती है। स्टीमर गतिमान होने से वहाँ चार परिमाण वाली घटना है और उसमें जो खेल खेला जाता है वह भी चार परिमाण वाली घटना है। स्टीमर चलती है, इसलिए खेल में जो गेंद फेंकी जाती है उस पर स्टीमर की गति का असर नहीं होता क्योंकि स्टीमर की सभी घटनाओं पर उस गति का असर होता है इसलिये खेल के लिये स्टीमर स्थिर हो ऐसा लगता है। हमारी पृथ्वी स्टीमर से कई गुना अधिक तेजी से घूमती है, फिर भी हमको उसका असर नहीं होता क्योंकि पृथ्वी के सभी पदार्थों को वह गति लागू होती है। जब सब घटनाओँ को गति लागू होती हो तब हमारे देशकाल नये संयोगों पर आधार रखते है। हमारे सिर में जू हो और हम बाहर रास्ते पर घूम रहे हो तो उस जू को हमारी गति का कोई असर नहीं होता। मनुष्य को चलती ट्रेन से नीचे उतरना हो तो इंजिन की दिशा में मुँह रखकर सावधानी से अपने देशकाल बदलकर उतरना चाहिये अन्यथा अकस्मात होने की संभावना है। ऐसे ही जिस मनुष्य को नई दशा में अथवा ब्रह्मदशा में आना हो उसे भी धीरे धीरे अपना जीवन बदलकर ब्रह्मदशा के योग्य बनाना चाहिये। इस हेतु से ही गृहस्थाश्रम के बाद वानप्रस्थाश्रम और संन्यास आश्रम की व्यवस्था है। जो लोग गृहस्थाश्रम में पुरानी आदत के अनुसार रहकर तुरंत ब्रह्मदशा प्राप्त करनेकी इच्छा करते है उनको अनेक बार कठिनाइयाँ आती है अथवा फिर संसार में गिरने की संभावना रहती है।

दृष्टांत : ५

जहाँ कोई घटना नहीं है वहाँ कोई काल उत्पन्न नहीं होता। नींद में कोई घटना नहीं घटती तो नींद में कितना समय बित गया उसका पता नहीं चलता। रात्रि को ट्रेन में जगते है तब तक काल का पता चलता है। ट्रेन में सो जाने के बाद कितने स्टेशन आये, कितने पेसेंजर बैठे, कितने उतरे, गार्ड की और ड्राईवर की बदली कहाँ हुई आदि घटनायें घटती है, लेकिन मालूम नहीं पड़ता, जगने के बाद जैसा स्थान का संबंध तदनुसार काल प्रतीत होता है। जाग्रत में भी जगत में जो घटनायें हम नहीं जानते वे हमारे लिये नहीं बनती। ब्रह्मा जगत की सिर्फ उत्पत्ति ही करते है, उनको

स्थिति का पता नहीं है। विष्णु स्थिति देते है उनको उत्पत्ति से कोई संबंध नहीं है, और रूद्र संहार करते है। जो जिस कार्य को करता है उसे अपने कार्य जितना परिमाण रहता है। फिर भी इन तीनों में काल का हिस्सा होने से उन सब का जीवन चार परिमाण वाला है। इसलिये ब्रह्मा को चार मुख है। ऐसा कहा जाता है, विष्णु को चार हाथ है ऐसा बताया जाता है और शिव ज्ञानस्वरूप होने से ॐ कार के चार पाद के वर्णन में और चार अवस्था के वर्णन में उसका वर्णन आ जाता है। सनकादि ऋषि भी ४ थे वे साथ साथ घूमते थे और बड़े नहीं होते थे। द्वारका के निवासी भी ४ हाथ वाले थे ऐसा भागवत में लिखा है। इस प्रकार ४ परिमाण की खूब महिमा हमारे शास्त्रों में मिलती है।

दृष्टांत :६

न्यूटन के समय में जगत तीन परिमाण वाला माना जाता था। उस समय ऐसा माना जाता था कि जब किसी पेड़ पर से फल पृथ्वी पर गिरता है तब उसका कारण पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण है। पर वर्त्तमान में जो खोज हुई है उसके अनुसार ऐसा बताया जाता है कि उस समय स्थान ऐसा बन जाता है इसलिए ऐसा दिखता है। और एक दृष्टांत लेकर इस बात को समझने का प्रयास करेंगे तो जब कोई लिफ्ट में ऊपर की तरफ जाता हो और उसके हाथ में कोई फल हो

और वह गिरे तो लिफ्ट में ही गिरता है। उसकी दृष्टि में फल नीचे गिरा किन्तु जो व्यक्ति जमीनपर खड़ा है उसकी दृष्टि से वह फल ऊपर जाता है क्योंकि सारी लिफ्ट

ऊपर जाती है अथवा अधिक सूक्ष्मता से देखा जाय तो जितने समय में फल हाथ से लिफ्ट के पटिये पर गिरता है उतने समय में पटिया ऊपर जाता है, अतः फल पटिये को मिलने जाता है ऐसा कहने की अपेक्षा पटिया फल को मिलने जाता है ऐसा भी कह सकते है।

दृष्टांत : ७

कोई मनुष्य गाड़ी चलाता हो उस समय उसे अपने आपको गाड़ी के जितना समझना चाहिए। अगर वह अपने को छोटा मानकर छोटे मार्ग से निकलने का प्रयास करे तो निकल नहीं सकता। और हर समय गाड़ी की गति में परिवर्तन करना पड़ता है। अतः गाड़ी चतुर्थ परिमाण का एक उदाहरण है।

दृष्टांत : ८

मानलो कि आप किसी मेल ट्रेन में मुम्बई से कलकत्ता तक यात्रा करते हो। वहाँ आपने डाइनिंग कार में अर्थात् ट्रेन में जुड़े हुए रसोई के डिब्बे में सुबह चाय पी और उसी डिब्बे में दोपहर को भोजन किया ये दोनों घटनायें अलग अलग समय पर किन्तु एक ही

डिब्बे में एक ही स्थान पर घटी है। फिर भी जमीनपर स्थित स्टेशन मास्टर की दृष्टि से चाय पीने के समय आप कल्याण स्टेशन पर थे और भोजन करते समय भुसावल स्टेशन पर थे। इसका अर्थ यह है कि एक स्थान पर अलग अलग समय में जो घटनायें घटी हो उन में दूसरी दृष्टि से देखने से भिन्न भिन्न स्थान का भेद देखने में आता है। वास्तवमें सब घटनाओं में देशकाल एक साथ रहते है। पर देश और काल का भेद मनुष्य अपने स्थान के अनुसार और अपने काल के अनुसार नये नये डिब्बे में नये नये ढंग से करता है। यह हमारा शरीर एक डिब्बा है, हर एक शरीर की गति अलग अलग होने से हर एक व्यक्ति अपने लिए कल्पित देशकाल बनाता है। मुसलमान पाकिस्तान के लिए भाव रखते हैं और हिंदी को हिंदुस्तान के लिए भाव है, लेकिन एक हिन्दू मर गया अथवा एक मुसलमान मर गया उसके बाद उसका देश कौनसा ?

पोलैंड के राज्य के लिए दो-तीन लड़ाईयाँ हुई, पर १०० वर्ष पहले पोलैंड कैसा था, ५० वर्ष पहले कैसा था, अभी कितना और कैसा है और १०० साल बाद उसका क्या होगा ?

सापेक्षवाद वाले कहते है कि :

एक सर्ग में दो घटनाओं में जो देशकाल का अंतर हो वह दूसरे सर्ग में उन्हीं दो घटनाओं के बीच दूसरे प्रकार के देशकाल का अंतर बन जाता है। मानो काल कोई स्वतंत्र वस्तु हो ऐसा साधारण व्यवहार में माना जाता है। किन्तु जहाँ अधिक गति हो और दो जगह के बीच अधिक अंतर हो वहाँ देशकाल का परिवर्तन देखनेवाले के देशकाल के अनुसार मालूम पड़ते है। शास्त्र की भाषा में कहा जाय तो देखनेवाले के देशकाल उसकी दृष्टि में यानी उसके नाप में आते है और उस नाप अथवा प्रमाण के अनुसार दृश्य में देशकाल हो ऐसा मान लिया जाता है।

दृष्टांत : ९

हम व्यवहार में भी कई बार पूछते है कि स्टेशन कितना दूर है तो कोई कहता है कि १५ मिनट में पहुँच सकते है, दूसरे ने कहा मेरी गाड़ी लेकर जाओ तो दो मिनट जितना ही दूर मानोगे तो चलेगा। ऐसे ही कोई काम करना हो तो एक मनुष्य कहता है कि मैं ५ घंटे में तैयार करके दूँगा तब दूसरे ने कहा मैं तीन घंटे में तैयार कर दूँगा। इसलिये देश और काल कोई सच्ची वस्तु नहीं है और वे हर एक घटना से जुड़े हुए जीव अथवा प्रमाता की दशा के साथ उत्पन्न होते है। इसलिये जिस इतिहास और भूगोल को लोग सच्चे मान बैठे है वे सब झूठे है ऐसा नये सायन्स वाले गणित से सिद्ध कर सकते है।

दृष्टांत : १०

प्रकाश भी जैसी उसके जाने की जगह हो उसके अनुसार फैलता है और मुड़ जाता है। यह बात रेडियो चलाने वाले ठीक से समझ सकते है। जिस पदार्थ से प्रकाश निकलता है उसकी गति का उस प्रकाश के साथ संबंध नहीं है। जैसे कोई स्टीमर समुद्र में चलती हो और नई लहरें उत्पन्न करे तब उन लहरों की गति का स्टीमर की गति से कोई संबंध नहीं है उसी तरह कोई गतिमान बत्ती के द्वारा प्रकाश दूसरे पदार्थ की ओर डाला जाय तब भी प्रकाश की गति अपने हिसाब से काम करती है। यानी प्रकाश की गति एक सेकण्ड में १, ८६, ००० मिल है पर प्रकाश को मुड़ना पड़े तो उस समय के सेकंड के अनुसार उस स्थानपर नये देशकाल उत्पन्न होते है।

दृष्टांत : ११

आकाश कैसे मुड़ जाता है उसको समझने के लिये मानो एक अत्यंत मुलायम रुई का तकिया है। उसके बीच एक सीसे का गोला रखा जाय तो बीच के स्थानपर खड्डे जैसा हो जाता है और तकिये में पहले जो जगह ऊपर उठी हुई थी, गोला रखने के बाद खड्डे जैसी हो जाती है। अब उठे हुये तकिये के छौर पर छोटी छोटी गोलियाँ रखें तो तकिये के स्थान के मुड़ जाने से लुढ़कते हुए अपने आप बीच में इकट्ठी होती है। उसकी गति के लिये अन्य कोई शक्ति की जरुरत नहीं पड़ती, और सीसे का वजनदार गोला तकिये पर न रखा हो तो तकिया ऊपर उठा हुआ होने से गोलियाँ बाहर गिर जाती है। हमारी पृथ्वी सूर्य के आसपास घूमती है, उसका कारण गुरुत्वाकर्षण है। ऐसा न्यूटन के समय में माना जाता था किन्तु प्रो.आइंस्टाइन ने गणित से सिद्ध किया है कि पृथ्वी घूमती है उसका कारण यह है कि वहाँ आकाश ही उस प्रकार का गोल (वृत्ताकार) बन जाता है कि पृथ्वी को सहज में (वक्र) गति मिलती है। उपरोक्त दृष्टांत में जैसे छोटी छोटी गोलियाँ जगह की वक्रता के अनुसार लुढ़कती है ऐसा ही पृथ्वी के विषय में भी बनता है। न्यूटन ने कहा कि पृथ्वी सपाट आकाश में गोल घूमती है आईन्स्टाईन कहते है कि पृथ्वी गोल आकाश में सीधी घूमती है।

दृष्टांत : १२

उपरोक्त दृष्टांत के अनुसार किसी पदार्थ की उपस्थिति से जगह गोल बनने से प्रकाश भी वैसे स्थानपर गोल हो जाता है (मुड़ जाता है)। दृष्टांत के तौर पर ईस.१९१९ प्रो.आईन्स्टाईन ने कहा था कि हमको आकाश में जहाँ तारे दिखते है वे वहाँ नहीं है, अपितु जहाँ नहीं है वहाँ दिखते है। उसका कारण यह है कि तारे सूर्य से बहुत दूर है और तारों का तेज यहाँ आता है तो वह सूर्य के पास से गुजरते समय आकाश की वक्रता की वजह से इतना मुड़ जाता है कि हमें वस्तु की सच्ची जगह मालूम नहीं पड़ती। यह बात नीचे दी हुई आकृति से समझमें आयेगी।
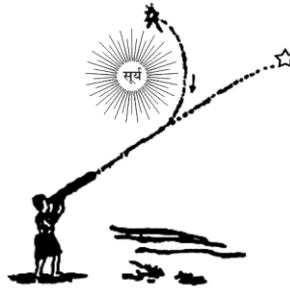
ऊपर के चित्र में वास्तव में तारा 'अ' के स्थानपर है पर उस का प्रकाश सूर्य के पास आनेपर वक्र हो जाने से 'क' के स्थानपर तारा दिखता है। यह बात सिद्ध करने के लिये ईस.१९१९ में जब सम्पूर्ण सूर्यग्रहण हुआ था तब तारों के फोटो लिए गये थे और फोटो में तारे 'अ' के स्थान पर दिखे थे।

अतः जहाँ तारे है वहाँ नहीं दिखते और जहाँ नहीं है वहाँ दिखते है। यह बहुत विचित्र बात है पर सच्ची है। आइंस्टाइन का कहना है कि जहाँ पदार्थ है वहाँ नये प्रकार का गुरुत्वाकर्षण उत्पन्न होता है। वहाँ आकाश वक्र रहता है (Curvature of space) और वहाँ प्रकाश भी वक्र हो जाता है। रेडियो सुनने के लिये हम हमारे घर के ऊपर एरिअल लगाकर उसमें बिजली देते है तब वहाँ एक प्रकार का आकर्षण उत्पन्न होता है। उस समय आकाश में स्थित प्रकाश की तरंगें उस आकर्षण के अनुसार वक्र होकर घर के रेडियो में प्रविष्ट होती है। यदि दूसरी प्रकार की वेव-लेन्थ रखी जाय तो दूसरे प्रकार का आकर्षण उत्पन्न होता है और उसमें दूसरे प्रकार की प्रकाश की तरंगें आ सकती है। गति के अनुसार पदार्थ में भी परिवर्तन होता है यह बात रेडियो के संगीत में अलग अलग आवाज से भी समझ में आयेगी। जहाँ जैसा आकर्षण होगा वहाँ प्रकाश को उस ढंग से बंधे रहना पड़ता। ऐसे ही एक कुटुंब में जिस प्रकार का आकर्षण होगा वहाँ वैसे जीव को भी बंधे रहना पड़ता है। उसको छूटना हो तो अपनी मनोदशा बदलनी चाहिये अथवा अपनी परिस्थितियाँ बदलनी चाहिये।

दृष्टांत : १३

सापेक्षवाद के विषय पर पश्चिम में कई पुस्तकें प्रसिद्ध हुई है। उसमें देशकाल का नया गणित आता है, किन्तु उसको समझने में साधारण मनुष्य को बहुत कठिनाई होती है। इसलिये कुछ लेखक गणित के बिना सापेक्षवाद समझाने का प्रयास करते है। ऐसे लेखकों में 'गामो' नामक एक लेखक निम्नलिखित एक विनोदी दृष्टांत देता है :

एक स्टेशनपर एक ट्रेन दूर देश से आई और उसमें से ४० वर्ष की आयु का एक आदमी उतरा। उसको मिलने स्टेशन पर एक ८० साल की वृद्धा आई थी। उस वृद्धा ने उस ४० वर्ष के आदमी को कहा कि कैसे हो दादाजी (पिता के पिता) आनंद में तो हो ? पास में खड़े हुए एक व्यक्ति ने उन दादाजी से पूछा कि 'आपको दादाजी कहकर क्यों बुलाया ?' उसके उत्तर में उस ४० साल की आयु के आदमी ने कहा कि 'मेरा धंधा ऐसा है कि मुझे नियमित यात्रा करनी पड़ती है जिसको ज्यादा यात्रा करनी पड़ती है वह जल्दी बूढ़ा नहीं होता और मेरी ८० साल की बेटी की बेटी एक स्थानपर रहती

है इसलिये वह बूढ़ी दिखती है। मैं इसे मिलने आया हूँ। ' प्रश्न पूछनेवाले व्यक्ति को लगा कि सापेक्षवाद के सिद्धांत के अनुसार काल की निश्चितता नहीं होने से ४० साल की आयु का मनुष्य ८० साल की आयु के व्यक्ति को बूढ़ा (उस से बड़ा) लग सकता है और ४० साल के मनुष्य की दृष्टि में ८० साल का वृद्ध जवान (उस से छोटा) लगे उसमें आश्चर्य जैसा नहीं है।

यह बात अधिक स्पष्टता से समझने के लिये मान लो कि पृथ्वी सूर्य के इर्दगिर्द २४ घण्टे में एक चक्कर काटती है यानी एक घण्टे में लगभग १००० मिल घूमती है इससे रात्रि और दिन होते है। अब कोई मनुष्य विमान में बैठकर पूर्व से पश्चिम की ओर प्रति घण्टे १००० मिल की गति से यात्रा करता हो तो अगर जब वह मुंबई से निकला तब दोपहर के १२ बजे हो तो लन्दन पहुँचे तब भी दोपहर के १२ बजे होगे। अतः गति करनेवाले का दिन जैसे का तैसा रहता है। मुंबई के लोग कि जो सूर्य की गति के साथ गति नहीं करते है इसलिये उनकी शाम हो जाती है। इस प्रकार जो वृद्धा एक ही स्थानपर रहती थी वह ८० साल की हो गई और उसके बाप का बाप घूमता रहने से ४० साल का रहता है यह उस विनोदी दृष्टांत से समझ में आ सकता है।

स्वप्न में हम कोई ८० साल के मनुष्य को देखकर मानते है कि उसको ८० साल हुए होंगे। वास्तवमें उसको एक मिनट हुई होती है। सिनेमा में भी हम ८० साल के व्यक्ति को ८० साल हुए होंगे ऐसा मानते है फिर भी उसे पर्दे पर आये एक सेकण्ड हुई होती है, और जाग्रत दशामें हम जिस मनुष्य का ८० साल का शरीर देखकर ८० साल का होगा ऐसा मानते है वह शरीर भी कल नहीं था। उस शरीर को तैयार हुए बहुत कम समय हुआ होता है यानी सुबह का शरीर भी शाम को नहीं होता इतनी तेजी से से शरीर बदलता है किन्तु हमें उसका पता नहीं चलता।

यह बात निम्नलिखित दृष्टांन्त से भी समझ में आयेगी। मानलो कि नेपोलियन को हुए लगभग १५० साल हुए। कुछ तारे हमारी पृथ्वी से इतने दूर है कि (प्रकाश की गति एक सेकण्ड में १, ८६, ००० मील की गति के अनुसार) प्रकाश को वहाँ पहुँचने में १५० वर्ष लगते है। इसलिए किसी युक्ति से यदि हम उस तारे पर जा सके तो आज हम नेपोलियन को युवा अवस्था में युद्ध के मैदान में घूमता हुआ देख सकते है। अतः इस दृष्टिकोण से गतिशील वस्तु को शीघ्र वृद्धत्व नहीं आता।

दृष्टांत : १४

देशकाल के लिए एक दृष्टांत समझने जैसा है। जैसे किसीको थोड़ा चलने की

आदत हो और उसे चार मील दूर दूसरे गाँव जाना हो, तो तीन मील चलने के बाद उसे थकान लगती है और थकान लगने के बाद उसको मार्ग अधिक लंबा लगता है एवम् वह कब पूरा होगा ऐसी मनमें गिनती करता है। पहले ३ मील की अपेक्षा आखरी के १ मील में देश और काल दोनों बदल जाते है अतः मार्ग कोई पदार्थ नहीं है अपितु एक घटना है यानी इवेंट है।

किसी स्टीमर में कोई यात्री यात्रा करता हो और उसका रुमाल समुद्र में गिर जाय तो उस रुमाल की स्थिति हर एक क्षण घूमती रहती है। क्योंकि समुद्र की जगह ही ऐसी है। इसी तरह हमारे जगत में स्थान और काल समान नहीं है। कोई कहता है कि आज मेरा समय नहीं जा रहा था और कोई कहता है कि आज मेरा समय बहुत जल्दी चला गया।

दृष्टांत : १५

देशकाल की विचित्रता का एक अच्छा निम्नलिखित दृष्टांत माण्डूक्य उपनिषद की कारिका पर श्री शंकराचार्य की टिका में मिलता है :

वैतथ्य प्रकरण : कारिका १२

स्वयंप्रकाश आत्मा अपनी माया से स्वयं देशकाल की कल्पना करता है और अपने कल्पित भेद को जानता है, यह वेदांत का निश्चय है। और (कारिका १३) आत्मा अपने अन्तःकरण में (वासना रूप से) स्थित दूसरे (लौकिक) भावों को अलग करता है एवम् वृत्ति को बाहर जाने देकर पृथ्वी आदि नियत और अन्य शब्द आदि अनियत पदार्थों कि कल्पना करता है। अनियत पदार्थ अर्थात् मनोरथ आदि कल्पना के काल में रहते हो ऐसा प्रतीत होता है और पृथ्वी आदि नियत हो ऐसा प्रतीत होता है, अर्थात् कल्पना नहीं हो तब भी रहते है ऐसा मालूम पड़ता है। इन दोनों की कल्पना आत्मा करता है।

मनुष्य जब बहिर्मुख होता है तब बाह्य पदार्थों को व्यवहार के योग्य कल्पता है और अंतर्मुख होकर मनोरथ आदि को व्यवहार के अयोग्य कल्पकर पुनः बाहर वृत्ति जाने से व्यवहार के योग्य कल्पता है। जैसे किसी कुम्हार को घड़ा बनाना हो तब व्यवहार के लायक बुद्धि में पहले उसकी कल्पना करके फिर उस घड़े को नामरूप वाला बनाता है, वैसे ही आत्मा मायारूपी अपने चित्त में नामरूप का अव्यक्तरूप से चिंतन करके उनको कैसा बनाना उसका विचार कर फिर बाहर अपना कार्य शुरू करता है, फिर भी वह सब कल्पित है। उस पर कोई वादी ऐसी शंका करता है कि जो

कल्पित पदार्थ है, वे सब स्वप्न में कल्पना के काल से भिन्न काल में नहीं रहते और जाग्रत के पदार्थ तो अन्य काल में भी मालूम पड़ते है, इसलिये वे मिथ्या नहीं है। अर्थात् जगत तो जैसा का तैसा नियति के अनुसार चलता रहता है उसके जवाब में सिद्धान्ती कहता है कि जो पदार्थ कल्पना के काल में रहते है और मनमें रहते है वे और जिस प्रत्यभिज्ञा से दूसरे दिन वही का वही जगत दिखता है और जो बाह्य व्यवहार के योग्य है वह सब कल्पित है और मिथ्या है। दूसरे दिन वही का वही जगत दिखता है उसमें और मन से जो कल्पना होती है उसमें अंतर नहीं है यह बात नीचे दिए हुए दृष्टांत से स्पष्ट हो सकती है।

देवदत्त नामक एक मनुष्य किसी ग्वाले के पास दूध लेने गया। उस ग्वाले ने गाय दुही नहीं थी इसलिये उसने देवदत्त से कहा कि तू थोड़ी देर बैठ तब तक मैं गाय को दुहता हूँ। देवदत्त ने उसको उत्तर दिया, कि तू दुह ले तब तक मैं बैठा हूँ। यहाँ दोनों काल कल्पित (उस घटना के साथ) उत्पन्न होते है। यानी वहाँ घड़ी के अनुसार नियत काल नहीं है। उस दिन गाय के थन में कम दूध होगा तो कम समय लगेगा, अधिक दूध होगा तो अधिक समय लगेगा अथवा उस दिन नया दुहने वाला आया हो तो अधिक समय लगे अथवा बछड़ा ज्यादा दूध पी ले तो भी समय में अंतर पड़ जायेगा। और देवदत्त भी इन्तजार में बैठा हो तो वह भी अमुक मिनट निश्चित करके नहीं बैठा। उसको बाहर जाकर बीड़ी पीने की इच्छा हुई और दुहनेवाले को कहे, कि मैं बाहर बीड़ी पीकर थोड़ी देर में आता हूँ अथवा उसे दूसरा कोई काम आ जाय अथवा तो उसको बिच्छु काटे तो उसके बैठने के समय में भी अंतर पड़ जाय। यहाँ एक के काल से अन्य के काल का परिच्छेद होता है, फिर भी दोनों के काल कृत्रिम है, अर्थात् घटना के साथ उत्पन्न होते है अथवा विज्ञान की दृष्टि से कहें तो इवेंट के साथ उत्पन्न होते है और हर एक क्षण काल बदलता है। स्वप्न में भी मन के अंदर का काल और बाहर की वस्तु का काल ऐसे दो काल का अनुभव होता है। वे जैसे झूठे है वैसे जाग्रत में भी ऐसे दो काल झूठे है। उन दोनों काल में कोई विशेषता नहीं है यानी दोनों झूठे है। जाग्रत के काल कैसे झूठे है यह बात वर्तमान विज्ञान (सायन्स) स्पष्ट कर देता है, उसकी कुछ हकीकत ऊपर दी गयी है। उसका कारण यह है कि जैसा ज्ञान वैसा ज्ञेय स्वप्नमें उत्पन्न होता है और जाग्रत में भी जैसा ज्ञान वैसा ज्ञेय उत्पन्न होता है, फिर हेतु के ज्ञान के अनुरूप फल का ज्ञान और फल के ज्ञान के अनुरूप हेतु का ज्ञान, इस प्रकार निमित्त नैमित्तिक अनेक प्रकार की भावनायें उत्पन्न होती है। प्रथम

भोजन का ज्ञान उत्पन्न होता है फिर तृप्ति का ज्ञान उत्पन्न होता है और तृप्ति का ज्ञान भूख के समय भोजन की इच्छा उत्पन्न करता है। फिर दूसरे दिन उसके अनुसार भोजन के साधन का ज्ञान होता है और वह साधन एकत्र करता है। इस तरह हेतु और हेतुमान की कल्पना का क्रम चलता है। जबतक रज्जु का ज्ञान पक्का नहीं हुआ तब तक सर्प, दंड, धारा, माला आदि के विकल्प रहते है, वैसे ही जब तक ब्रह्मज्ञान ठीकसे नहीं हुआ तब तक ब्रह्म में भी अनेक कल्पनायें होती रहती है। जैसे देवदत्त की ऊँगली में देवदत्त को सर्पबुद्धि नहीं होती, क्योंकि उसका निश्चय हो गया है, ऐसे ही ब्रह्म का निश्चय होने से उसमें पुनः जगत की बुद्धि नहीं होती। संपूर्ण जगत अविद्या से कल्पित होने से ज्ञान होनेपर सिर्फ अद्वैत ही शेष रहता है। फिर भी शरीर के प्रारब्ध के भोग जितना प्रातिभासिक जगत जब तक शरीर है तब तक दिखता रहेगा।

काल में नानात्व यानी अनेकता होने से स्वातंत्र्य नहीं है। यदि काल एक हो तो मुहूर्त आदि का व्यवहार बनेगा नहीं। उदयकाल, अस्तकाल, मध्याह्नकाल ऐसे काल के भाग हो जाते है। इसलिए द्वैत का अनुभव होता है। द्वैत में किसीको सुख नहीं मालूम पड़ता। द्वैत का भान ब्रह्म के आनंद को अवरुद्ध करता है। द्वैत का कारण मन है। गहरी नींद में मन नही तो द्वैत भी नहीं है। जाग्रत में और समाधि में मन का लय होता है तो जगत का भी लय होता है।

उपरोक्त कथन अनुसार शास्त्र के आधार से भी देशकाल झूठे सिद्ध होते है। नाटक में जैसे झूठे देशकाल से व्यवहार चलता है वैसे ही जाग्रत व्यवहार में भी झूठे देशकाल से व्यवहार चलता है। संगीत में भी हर एक संगीत के राग के अनुरूप अमुक समय आवाज में आरोह अवरोह करना पड़ता है। दूसरे राग का गीत शुरू हो तब फिरसे आलाप प्रलाप के काल में अंतर आ जाता है। इस प्रकार से काल के हिस्से (टुकड़े) करनेवाली हमारी घड़ी को अंग्रेजी में टाइमपीस कहते है।

दिशा भी सच्ची वस्तु नहीं है। पूरी पृथ्वी को उत्तर दिशा या दक्षिण दिशा जैसा नहीं है। सिर्फ पृथ्वीपर हम देहभाव से एक स्थान ग्रहण करते है तब उत्तर दक्षिण जैसा होता है। रात्रि में कई बार उत्तर-दक्षिण का पता नहीं चलता। समुद्र की गहराई में घूमनेवाली मछलियों को दिशा का पता नहीं होता और ऊपर नीचे का भी पता नहीं है।

किसीने शराब पी हो तब नशे की दशा का जगत भिन्न प्रकार का हो जाता है। नशा उतरनेपर उस दशा का जगत नहीं रहता। उसी प्रकार मनुष्य का भाव रखे तो

मनुष्य का जगत सच्चा लगता है और मनुष्य मर जाये तो मनुष्य का जगत उसके लिये नहीं है। कबीर साहेब भी कहते है कि 'आप मुए पीछे डूबे गई दुनिया'।

इससे सिद्ध होता है कि ऐसी कोई निश्चित जगह नहीं है कि जिसमें किसीने हमारा जगत रखा हो और ऐसा कोई निश्चित काल नहीं है कि जिसके आधारपर हमारा जगत चल रहा हो। प्रत्येक घटना के समय कल्पित देशकाल उत्पन्न होते है। उस घटना के समय देशकाल उत्पन्न होते है इसलिये उसको कृत्रिम कहे जाते है। कोई कहे कि मैं मुंबई एक साल पहले गया था और अहमदाबाद दो साल पहले गया था। दूसरा कोई कहता है कि मैं मुम्बई चार साल पहले गया था और अहमदाबाद ६ महीने पहले गया था। इस बातचीत से मालूम पड़ता है कि काल दृष्टा दृश्य के संबंध से उत्पन्न होता है। इस प्रकार काल सापेक्ष होने से भूतकाल में से भविष्य नहीं होता। भूतकाल और भविष्य दोनों सापेक्ष है। यह बात राजा की सवारी के दृष्टांत : ८ (पृष्ठ क्रमांक 91) से समझायी हुई है।

एक बार कोई यूरोपियन किसी हिन्दू के घर अतिथि हुआ। उस समय उस हिन्दू गृहस्थ ने यूरोपियन अतिथि को भोजन करते समय आलू के पकौड़े दिये। उस यूरोपियन ने उसमें से पकौडा उठाया और सोचा कि इसमें आलू की कतरी कैसे डाली होगी, क्योंकि उसमें कोई छेद दिख नहीं रहा था, अथवा पहले आटा तैयार किया होगा अथवा पहले आलू की कतरी तैयार की होगी। फिर हिन्दू गृहस्थ ने उसको पकौड़े बनाने की रीति बतायी और कहा कि आटा और आलू की कतरी एकसाथ तली जाती है इससे ऐसा होता है। उसमें पहले और बादमें जैसा कुछ नहीं है ऐसे ही जीव और उसका जगत समकालीन होते है। जब नींद में जीवभाव नहीं रहता तब जगत भी नहीं रहता। अतः माया के स्वरूप का सार निकाले तो निम्नलिखित माया के स्वरूप को संक्षेप में समझ सकते है:

१. जो झूठी है २. सच्चे जैसी दिखती है ३. उससे व्यवहार होता है ४. अन्य दशा में उसका बाध होता है और ५. बाध होता है इसलिये माया झूठी है। अतः हमारा जीवन सुधारना हो तो :

१. मन सुधारना अथवा २. परिस्थितियाँ सुधारना

राजद्वारी मनुष्य और समाजसेवक परिस्थिति सुधारने का परिश्रम करते है। विवेकी पुरुष और साधू मन को सुधारने का परिश्रम करते है। परिस्थितियाँ सुधारने के लिये पुरुषार्थ की जरुरत है और मनको सुधारने के लिये भी पुरुषार्थ की जरुरत

है। परिस्थिति सुधारने के लिये अनेक लोगों के मन सुधारने पड़ते है और अपना मन सुधारने के लिये एक मनुष्य का जीवन ठीक करना पड़ता है। मन सुधरे तो भी जगत में कोई गलती दिखेगी नहीं किन्तु जगत ब्रह्मरूप लगेगा। जगत के विषय में हम जो ज्ञान प्राप्त करते है वह जिस साधन से प्राप्त करते है वह हमारा मन है। इसलिये मनको ठीक किये बिना जगत ठीक हो नहीं सकता। यह मन कैसी गलती करता है उसकी हकीकत प्रकरण के अंत में अध्यास की समझ के साथ दी गयी है। जो लोग सिर्फ संयोगों का विचार करते हैं और मनुष्य का ज्ञान ठीक करने का विचार नहीं करते वे गलती करते है।

नये विज्ञान वाले कहते है कि जहाँ किसी भी प्रकार का आकर्षण है और रागद्वेष है वहाँ संयोगों को बदल नहीं सकते।

दृष्टांत के रूप में पाकिस्तान का नाम कुछ समय पहले कोई जानता नहीं था। अब एक प्रकार का नया नाम उत्पन्न हुआ। पाकिस्तान को लेने के लिये जो मुसलमान दंगे करके मर गये है उनका मरने के बाद कौनसा देश और कौनसा काल रहा होगा यह कोई नहीं बता सकता। जन्म से पहले भी कोई मनुष्य हिन्दू या मुसलमान न था। और पाकिस्तान का सच्चा शब्द पाक है, उसका अर्थ पवित्रता होता है अतः पाकिस्तान का सच्चा अर्थ पवित्र हृदय वाले लोगों को रहने का स्थान, किन्तु ऐसा सीधा अर्थ करने की अपेक्षा अमुक राज्यों को पाकिस्तान में मानने का आग्रह किया जाता है। और इसके अनुसार मनुष्य का सच्चा देश कौनसा यह निश्चित नहीं हो सकता और जहाँ देश निश्चित न हो वहाँ काल निश्चित नहीं हो सकता। अतः हमारे इतिहास और भूगोल का कोई ठिकाना नहीं है। जहाँ रागद्वेष हो वहाँ मनुष्य के जीवन का सच्चा हेतु क्या है यह जानने में नहीं आता। इसलिए यदि सत्य जानना हो तो इतिहास और भूगोल भूलने चाहिये, और प्रत्येक घटना प्रत्येक मनुष्य अथवा प्रत्येक जीव को कैसे असर करती है उसकी और ध्यान देना चाहिये।

पाँच इन्द्रियों से हमको जितना जगत दिखता है उतना सच्चा नहीं है। बरट्रांड रसेल कहते है कि जैसा स्वप्न का जगत है वैसा ही जाग्रत का जगत है।

पाँचवे प्रकरण के अंत में बताया उसके अनुसार 'मैं' और 'तू' के भेद झूठे है। 'तू' और 'वह' 'मैं' के बिना नहीं होते इसलिये मैं को ठीक करना चाहिये। मैं जब ठीक होता है तभी वह ब्रह्मरूप होता है। तब 'तू' और 'वह' नहीं रहते। उसको सहज आत्मा की स्थिति कहते है। वह नित्य ज्ञानस्वरूप और आनंदस्वरूप है। इसलिये मैं की खोज

वास्तव में आत्मा की खोज है। 'मैं' सर्व व्यापक होता है तब स्थान अथवा देश का भेद नहीं रहता। उसके साथ काल का भेद भी नहीं रहता। जब भूतकाल की घटना घट रही थी तब वह वर्तमान थी। भविष्य की घटना बनेगी तब वर्तमानकाल होगा। इस दृष्टि से देखनेपर हमेशा वर्तमानकाल रहता है। उसके हिस्से नहीं होते। मन भूत-भविष्य के विचार से भूत-भविष्य उत्पन्न करता है। अतः वर्तमानकाल समझे बिना भूत और भविष्य की बातें करना व्यर्थ है, मनको काल के साथ संबंध है, काल कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है, काल सापेक्ष है यह बात उपरोक्त अनेक दृष्टांतों से समझायी हुई है। प्रेम में समय शीघ्र बीत जाता है, दुःख में समय बीतने में देर लगती है। ऐसे ही देह के अभिमान के बिना स्थान के भेद नहीं बनते। जगत में कोई भी परिवर्तन या गति अथवा क्रिया देखनेमें आये तो वह देश और काल के बिना नहीं बन सकते, और देश और काल सापेक्ष होने से क्रिया और गति भी सापेक्ष है।

जैसे सोया हुआ मनुष्य अपने स्वप्न के विनाशीपने को कर्मों के प्रतिबंध के कारण नहीं जानता ऐसे ही ब्रह्मा आदि भी इस जगतरूपी स्वप्न को कर्म के प्रतिबंध के कारण शीघ्र विनाशी नहीं जानते। जैसे प्रत्येक प्राणीको दिखने में आनेवाली स्वप्न संबंधी सृष्टि निमेषमात्र होने पर भी दीर्घकाल की लगती है ऐसे ही ब्रह्मा को दिखने में आनेवाली यह समष्टि सृष्टि निमेषमात्र होने पर भी दीर्घकालीन लगती है। पृथ्वी आदि की बारबार प्रतीति होना ये ही पृथ्वी का कारणरूप है।

दृष्टांत : १६

साधारण व्यवहार में नीचे दिये गये चित्र के अनुसार तीन प्रकार का संबंध बनता है।
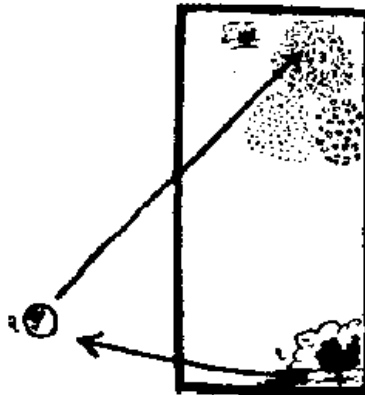
एक मनुष्य २ नंबर के पास खड़ा है। वह १ नंबर के पास एक वस्तु को देखता है। यहाँ दृष्टा और दृश्य का संबंध हुआ। फिर वह अपनी मान्यता के अनुसार उस वस्तु को मन से समझकर अपने से अलग ३ नंबर के पास रखता है। इस अनुभव में तीन प्रकार का संबंध है।

अब सापेक्षवाद की नई खोज होने के बाद सिर्फ ज्ञाता, ज्ञेय का इकट्ठा संबंध नीचे की आकृति के अनुसार रहता है।
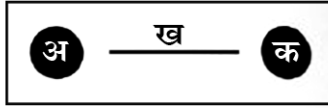
यहाँ 'अ' दृष्टा है, 'क' दृश्य है और 'ख' दर्शन की वृत्ति है, लेकिन ये सब एक क्षेत्र के अंदर है। जैसा स्वप्न में है वैसा जाग्रत में है उसको नये सायन्स वाले फिल्ड कहते है। उस फिल्ड (क्षेत्र) के देशकाल देखनेवाले के ज्ञान के अनुसार अनेक प्रकार से बदल सकते है। इसलिए स्वप्न में जैसे अज्ञान का खेल है अथवा विपरीत ज्ञान का खेल है वैसे ही जाग्रत में है। प्रथम चित्र में सामने जो भी कुछ अलग दिखता है वह कोई वस्तु है। दूसरे चित्र में सब मिलाकर एक घटना है। स्वप्न में जो भी वस्तु सामने दिखती है, वह जगने के बाद वस्तु नहीं रहती, अपितु एक कल्पित घटना थी ऐसा मालूम पड़ता है। जाग्रत में भी ऐसा ही है। ऐसा सापेक्षवाद के सायन्स वाले अब गणित से सिद्ध करके बताते है।

दृष्टांत : १७

भगवान के कुछ चित्रों में और महात्मा पुरुषों के फोटो में मुख के इर्दगिर्द एक गोलाकार प्रकाश पुंज बनाया जाता है। वह चतुर्थ परिमाण का चिह्न है अर्थात् जीव और जगत की रचना मूल प्रकाश से हुई है। वह प्रकाश माया में अथवा सीमा में आता है तब उसमें से शरीर होता है। शरीर के अभिमान से तीन परिमाण प्रतीत होते है, किन्तु वास्तवमें सब चार चार परिमाण वाला है और वह सापेक्ष अथवा प्रातिभासिक है।

दृष्टांत : १८

एक मनुष्य को रात्रि में तीन स्वप्न आये वे पूरे हुए तब रात्रि के दो बजे का दूसरा

डंका (टंकार) बजते हुए उसने सुना था, और जब दो बजे का पहला डंका बजा तब वह जग रहा था। उसको अचानक स्वप्न आ गया और झपकी आ गई तो दो टंकार के बीच के समय में उसको तीन स्वप्न आये। जाग्रत के सामान्य काल के अनुसार यह असंभव है। स्वप्न में नया काल उत्पन्न होता है और नया देश उत्पन्न होता है। जाग्रत में मनोरथ के समय ऐसा हो सकता है। और भी कुछ जाग्रत के दृष्टांत इस पुस्तक में दिये हुए है।

ॐ ॐ
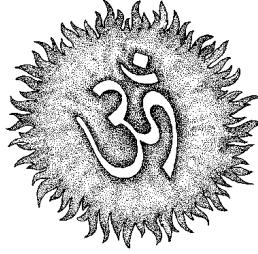
७ : सापेक्षवाद का मूल

(Theory of relativity)

प्रो.आईन्स्टाईन का सापेक्षवाद आरंभ होने से पहले पश्चिम के देशों में जगत की रचना के विषय में न्यूटन का सिद्धांत मान्य हुआ था । उसके कुछ मूल तत्त्व निम्नलिखित थे :

(१) प्रकाश एक जड़ वस्तु है।

(२) स्वतंत्र कालमें और स्वतंत्र स्थानमें सब वस्तुयें गति करती है।

(३) मनुष्य किसी भी वस्तु को अलग देखकर वह कैसी है उसका विचार कर सकता है।

(४) अतः जगत की एक समय की स्थिति को जान सकें तो जगत का भविष्य भी जान सकते है।

(५) पृथ्वी सूर्य के आसपास घूमती है उसका कारण गुरुत्वाकर्षण है । इस सिद्धांत का परिणाम ये आया कि लोग ऐसा मानने लगे कि मनुष्य का जन्म हुआ उससे पहले जगत था। और मनुष्य के मरने के बाद भी जगत चलता रहेगा। कुछ लोग मर गये ऐसा हम लोग जानते है और उनके पीछे जगत भी चलता रहता है, यह भी हम जानते है, फिर भी हमारा यह ज्ञान सच्चा है कि नहीं उसका प्रमाण क्या ? इस विषय पर ईस.१९०५ से पहले पश्चिम के देशों में किसीने विचार किया नहीं था।

ईस.१९०५ में प्रो.आइन्स्टाइन ने सापेक्षवाद की खोज की उससे मनुष्यों को ऐसा लगने लगा कि देखनेवाला स्वयं ही अपने जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय करता है। कोई भी देखनेवाला (observer) किसी भी वस्तु को अपने से अलग देख नहीं सकता। इसलिये जगत, जगत को देखने का साधन और देखनेवाला इन तीनों का विचार एकसाथ करना चाहिये।

प्रो.आईन्स्टाईन का सापेक्षवाद शुरू होने से पहले जो वस्तु गतिमान हो उसका गणित सच्चा माना जाता था। आईन्स्टाईन ने उस गणित में अनेक गलतियाँ दिखाई है। निम्नलिखित कुछ दृष्टान्तों से यह बात अधिक स्पष्ट हो सकती है।

दृष्टांत : १ : नदी का प्रवाह

मानलो कोई एक नदी १२ मील लंबी हो। उसके प्रवाह की गति एक घण्टे में दो मील की हो । उसमें किसीको तैरने की इच्छा हुई अथवा नाव में बैठकर घूमने की

इच्छा हुई और उसकी गति घण्टे में ४ मील की है। उसका हिसाब लगाने पर सामने किनारे जाकर वापस आने में उस मनुष्य को जितना समय लगता है उसकी अपेक्षा नदी के प्रवाह के विरुद्ध की दिशा में जाकर वापस आने में उसको अधिक समय लगता है। नीचे दी हुई हकीकत से यह बात समझ में आयेगी :
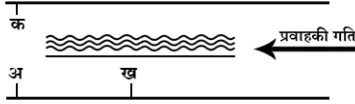
ऊपर का चित्र एक नदी का है। उसके प्रवाह की गति बायीं ओर है। हमे यह निश्चित करना है कि एक मनुष्य को 'अ' से 'क' तक जाकर वापस आने में कितना समय लगेगा और 'अ' से 'ख' तक जाकर वापस आने में कितना समय लगेगा। 'अ' से 'क' का अंतर और 'अ' से 'ख' का अंतर समान है। जो लोग गणित जानते है वे कह सकते है कि उसमें समय का अंतर पड़ जायेगा। 'अ' से 'क' तक जाकर वापस आने में जितना समय लगता है उसकी अपेक्षा 'अ' से 'ख' तक जाकर वापस आने में अधिक समय लगेगा। 'अ' से 'क' तक की गति और वापस आने की गति का काल बराबर होगा ऐसा तुरंत समझमें आ सकता है। क्योंकि दोनों समय प्रवाह का एक जैसा दबाव उसके अनुभव में आता है। किन्तु 'अ' से 'ख' तक जाकर वापस आने में अधिक समय कैसे लगता है यह जानने में अधिक बुद्धि चलाने की जरुरत है।

मानलो कि प्रथम दृष्टांत के अनुसार नदी की लंबाई १२ मील की है। नदी का प्रवाह एक घण्टे में दो मील की है और तैरनेवाले की गति घण्टे में ४ मील की है, तो पानी के सामने के प्रवाह में जाते हुए तैरनेवाले की गति घण्टे की दो मिल की हो जायेगी और उसको ६ घण्टे लगेंगे। वापस लौटते समय तैरनेवाले को नदी की गति के प्रवाह का लाभ मिलेगा इसलिये वह एक घण्टे में ६ मिल पार कर पायेगा। इस तरह वापस आते समय उसको २ घण्टे लगेंगे यानी कुल मिलाकर ८ घण्टे लगेंगे।

किन्तु उस पार जाकर वापस आना हो तो आने और जाने में उसको समय बराबर लगता है। उस पार तक का अंतर १२ मील रखा गया है, उतना चौड़ा नदी का पट्ट होता नहीं है, किन्तु समझाने के लिये माना है। संक्षेप में नदी में प्रवाह की गति के कारण काल में अंतर आ जाता है। यह बात गणित जानने वाले सब समझ सकते है।

दृष्टांत : २ : माईकलसन और मोर्ले का प्रयोग

उपरोक्त दृष्टांत में नदी के प्रवाह की गति को प्रकाश की गति पर लागू कर के आकाश में पृथ्वी की गति कितनी है उसको जानने के लिये निम्नलिखित प्रयोग हुआ था :

सायन्स में ऐसा माना गया है कि प्रकाश की गति एक सेकंड में १, ८६, ००० मील की है।

और प्रकाश सीधी रेखा में नहीं जाता, अपितु तरंग के रूपमें यानी इसप्रकार ~~~ गति करता है।

और प्रकाश को एकस्थान से दूसरे स्थानपर जाने के लिये कोई माध्यम (मीडियम) चाहिए उसका नाम आकाश अथवा ईथर रखा।

फिर गतिमान बिजली और बिना गति की बिजली ईथर से पसार की तब ईथर में कोई बदलाव देखने में नहीं आया, किन्तु उस विषय में कुछ लोगों को शंका रही, इसलिये पृथ्वी का, ईथर का और प्रकाश का परस्पर संबंध कैसा है यह जानने के लिये ईस.१८८१ में दो वैज्ञानिकों ने निम्नलिखित प्रयोग किया था। वह प्रयोग पुनः ईस.१८८७ में भी किया गया। उनका मानना ऐसा था कि हमारी पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की तरफ घूमती है, इसलिये यदि दो प्रकाश की किरणें समकोण में भेजी जाय तो उनकी गति में अंतर आना चाहिये यानी कि एक किरण उत्तर-दक्षिण जाय और दूसरी पूर्व-पश्चिम जाय तो दोनों बीच में जहाँ मिलती है वहाँ कुछ परिवर्तन होना चाहिये। इस परिवर्तन को जानने के लिये नीचे दिया हुआ एक टेबल बनाया गया:
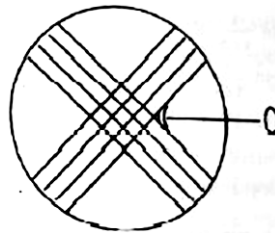
ऊपर बताया हुआ टेबल गोल था उसमें हर दिशा में चार चार आईने रखे हुए थे। यानी कुल १६ आईने थे। और एक सत्रहवां आईना बीच में इस प्रकार रखा था कि उसमें प्रकाश डाला जाय तो उससे सभी आईनों में प्रकाश के किरण आ सके।

इस यंत्र का वजन १९०० सेर था। उस टेबल को आसानी से घुमा सके इसलिये उसके नीचे ८०० सेर पारद रखा हुआ था। टेबल की लंबाई १४ फुट थी।

अब बाहरी भाग से एक बिजली की बत्ती से प्रकाश के किरण बीच के आइने में भेजे गये। उसमें से प्रकाश के किरण निकलकर आगे पीछे सभी आईनों में पड़े थे।

ऊपर बताये अनुसार प्रकाश की गति एक सेकण्ड में १, ८६, ००० मील होने से और पृथ्वी की गति लगभग १००० मिल होने से, प्रकाश के किरण को पश्चिम से पूर्व की ओर जाने में १, ८७, ००० की गति मिलेगी और पूर्व से पश्चिम की ओर जाने में १, ८५, ००० की गति मिलेगी। दोनों की गति का हिसाब मिलायेंगे तो कुछ इस प्रकार का होगा :

जाते समय

१/१८७ सेकण्ड= ०.००५३४७५९४ सेकण्ड

वापसी के समय

१/१८५ सेकण्ड = ०.००५४०५४०६ सेकण्ड

कुल समय = ०.०१०७५३००० सेकण्ड

यदि पृथ्वी आकाश में अथवा ईथर में चलती न होती तो कुल समय इस प्रकार लगता

कुल समय=

२/१८६ सेकंड = ०.०१०७५२६९० सेकण्ड

इससे मालूम पड़ेगा कि जाते समय प्रकाश को पृथ्वी की गति का जो लाभ मिला उतना ही गैर लाभ वापस आते समय नहीं हुआ। उपरोक्त नदी के दृष्टांत की नाईं दोनों में कुछ अंतर पड़ जाता है। यह अंतर कितना है यह जानने के लिये ऊपर का प्रयोग किया गया था। किन्तु कुछ परिवर्तन देखने को नहीं मिला। उनका मानना था कि यदि सचमुच में अंतर पड़ता हो तो टेबल के बीच में तेज के स्वभाव के अनुसार काली पट्टीयाँ (व्यतिकरण के कारण) पड़ जानी चाहिये। किन्तु ऐसी पट्टीयाँ देखने में नहीं आयी इससे सायन्सवाले बहुत चिंतित हो गये और प्रकाश में विकार क्यों नहीं हुआ ये उनको मालूम नहीं पड़ा।

इस प्रयोग से निन्मलिखित दो सिद्धांत प्रो.आईन्स्टाईन ने ईस.१९०५ में निश्चित करके दिये :

(१) पृथ्वी की गति आकाश में कितनी है और उस गति से उत्पन्न होनेवाला वायु-प्रकाश का परिवर्तन पृथ्वीपर रहकर जान नहीं पायेंगे।

(२) प्रकाश की गति (स्वतंत्र ढंग से) एक जैसी रहती है यानी प्रकाश उत्पन्न करनेवाला पदार्थ स्थिर हो अथवा गतिमान हो उससे प्रकाश की गति का कोई संबंध नहीं है। इस दृष्टांत के अनुसार हमें पृथ्वीपर रहकर पृथ्वी घूमती हुई नहीं लगती।

दृष्टांत : ३

एक मनुष्य अपने हाथ में से पृथ्वी पर एक कंकड अथवा गोला फेंकता है। हमको वह सीधा गिरता हुआ दिखता है, किन्तु पृथ्वी से अलग रहकर सूर्य पर रहकर कोई मनुष्य दूरबीन से उस घटना को देखे तो वह कंकड अथवा गोला तिरछा गिरा हो ऐसा दिखेगा, क्योंकि उसको गिरने में जितना समय लगता है उतने समय में पृथ्वी थोड़ी आगे खिसक जाती है। किन्तु पृथ्वीपर का मनुष्य पृथ्वी के साथ घूमता है। इसलिए उसको उस बात का पता नहीं चलता।

दृष्टांत : ४

मानलो कि एक गाँव में एक टावर है। उसमें एक मनुष्य को दोपहर के १२ बजे उस टावर के पास से १२ टंकार की ध्वनि सुनने में आती है। दूसरे दिन भी वह मनुष्य टावर के पास १२ बजे जाए तो उसे उसे स्थान पर १२ टंकार की ध्वनि सुनाई देगी किन्तु यह बात बिलकुल सच्ची नहीं है। यदि प्रथम दिन वह मनुष्य टंकार सुनकर पृथ्वी से अलग होकर (सूर्यके स्थान से) देखे तो दूसरे दिन के १२ बजने तक पृथ्वी सूर्य के आसपास एक सेकण्ड में १८ मिल दूर जाती है इस वजह से दूसरे दिन पहले दिन जहाँ पृथ्वी पर टावर था वहाँ से लगभग १५ लाख मिल दूर टावर दिखेगा, किन्तु पृथ्वीपर के मनुष्य को इस अंतर का पता नहीं चलता। उसको ऐसा लगता है कि टावर रोज एक ही स्थान पर टंकार ध्वनि करता है। इस प्रकार स्थान अथवा देश की सापेक्षता उत्पन्न होती है। इससे ऐसा सिद्ध हो सकता है जिस प्रमाण अथवा नाप से जो वस्तु ठीक से जानने में आये उस प्रमाण से अथवा उस नाप से वह वस्तु ठीक से जानने में आयेगी, किन्तु वही वस्तु दूसरे नाप से अलग प्रकार की लगेगी। अतः वर्तमान का विज्ञान (सायन्स) कहता है कि हमारा नाप ठीक है कि नहीं उस बात की जाँच करो। बरट्रान्ड रसेल कहते है कि :

देश और काल के नाप वस्तुमें नहीं है, अपितु वस्तु और हमारे बीच का जो संबंध है उसमें से उत्पन्न होते है। उपरोक्त सिद्धांत के अनुसार अब मुंबई से

अहमदाबाद कितना दूर है यह देखेंगे। ट्रेन में जानेवाला कहेगा कि ३०६ मील और १२ घण्टे का अंतर है। सूर्यपर कोई देखनेवाला हो तो वह कहेगा कि ७, ५०, ००० मिल दूर है क्योंकि १२ घण्टे में पृथ्वी इतनी घूमती है। और ट्रेन में मक्खी हो तो वह कहेगी कि अहमदाबाद में जो डिब्बा था उसी डिब्बे में मक्खी खुद मुंबई में है, इसलिए अहमदाबाद और मुंबई में अंतर नहीं है। अथवा पेसेंजर के पेट में कोई छोटा कृमि हो तो उसको भी अहमदाबाद और मुंबई में अंतर नहीं लगेगा। इस सिद्धांत को नये गणित में देशकाल का अंतर कहते है अथवा दो घटनाओं के बीच का अंतर कहते है।

दृष्टांत : ५

और स्थान के अनुसार काल भी बदल जाता हैं। दो स्टेशन के बीच में जमीन ऊँची नीची हो तो ट्रेन चलाने वाले को हर एक दिशामें अलग टाइम देना पड़ता है। मान लो एक ट्रेन

'अ'___________'क'

'अ' से 'क' तक जाती है, तो उन दोनों के बीच जमीन ढलान वाली होने से जाते समय उसको कम समय लगता है और वापस आते समय अधिक समय लगता है। उसमें अन्य किसी गुरुत्त्वाकर्षण की जरुरत नहीं पड़ती । ऐसे ही पृथ्वी सूर्य के आसपास घूमती है अथवा दूसरे कोई मंगल, शुक्र अथवा शनि जैसे ग्रह सूर्य के आसपास घूमते हैं उसमें गुरुत्त्वाकर्षण की जरुरत नहीं पड़ती। अपितु वहाँ स्थान ही ऐसा है कि वहाँ वह ऐसे ही घूमती रहे। जैसे नदी का पानी बहते हुए समुद्र में जाता है। उसका कारण समुद्र का आकर्षण नहीं है, अपितु नदी और समुद्र के बीच का स्थान ही ऐसा है कि नदी को नीचे बहना ही पड़ता है। उसी प्रकार प्रकाश का मार्ग भी स्थान की ऊंचाई-निचाई के अनुसार मुड़ जाता है। आइन्स्टाइन कहते है कि :

प्रकाश के मार्ग का आधार जैसा स्थान होता है उसपर रहता है। यह बात प्रकरण ६ में (दृष्टांत:११) में दिए हुए तारे के वक्रीभूत तेज से भी समझ सकते हैं। जहाँ कोई भी पदार्थ हो वहाँ उस पदार्थ की उपस्थिति से एक प्रकार का नया क्षेत्र बनता है और वहाँ गुरुत्त्वाकर्षण जैसा बन जाता है। रेडियो का उपयोग करनेवाले यह बात तुरंत समझ सकेंगे। क्योंकि प्रकाश वक्रीभूत होकर जहाँ रेडियो रखा हो वहाँ चला जाता है।

दृष्टांत : ६

कोई एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को घंटे के ६० मील की गति से यानी एक मिनट

में १ मील की गति से गेंद देगा तो दूसरा मनुष्य उस गेंद को नहीं पकड़ पायेगा। अब ऐसा मानलो कि दोनों मनुष्य एक ट्रेन में बैठे हैं। वह ट्रेन एक मिनट में एक मील की गति से चलती है और ट्रेन में प्रथम मनुष्य दूसरे को धीरे से गेंद दे तो उस गेंद को दूसरा मनुष्य पकड़ सकता है। इस घटना में भी गेंद की गति एक मिनट में एक मील की है। फिर भी दोनों मनुष्य ट्रेन के साथ उतनी गति से जा रहे हैं इसलिये पहले मनुष्य की दी हुई गेंद दूसरा मनुष्य आसानी से ले सकता है। बरट्रान्ड रसेल कहते हैं :

दो घटना के बीच जो संबंध है उससे देशकाल का संबंध बनता है। हमसे गलती यह होती है कि हम जो देखते हैं उसको सच्चा जगत मानते हैं। तत्त्वदृष्टि से देखे तो हमको जो जगत दिखता है वह जगत नहीं है क्योंकि उसमें झूठे देशकाल की भ्रांति मिल जाती है।

दृष्टांत : ७

किसी स्टेशन में एक ट्रेन प्रवेश कर रही हो और उस समय दूसरी ट्रेन वहाँ खड़ी हो तो चलनेवाली ट्रेन के पेसेंजरों को कई बार दूसरी ट्रेन चलती हुई प्रतीत होती है। पृथ्वी चलती है फिरभी सूर्य चलता हो ऐसा तो सब की दृष्टि में मालूम पड़ता है। सापेक्षवाद के सिद्धांत के अनुसार सब नाप देखनेवाले के देशकाल के अनुसार उत्पन्न होते हैं। और जितने देशकाल है उतने नाप हैं। यानी जितनी घटनायें है उतने नाप हैं। उसीको माया कहते हैं। शुकदेवजी राजा परीक्षित को भागवत के दूसरे स्कन्ध में (२-९-२) कहते हैं कि माया अनेक रूपवाली होने से मानो ब्रह्म भी अनेकरूप वाला हो ऐसा दिखता है।

दृष्टांत : ८

वर्तमान के सापेक्षवाद के सायन्स के अनुसार हम जो कुछ भी देखते हैं वह कोई वस्तु नहीं है, अपितु घटना है। और घटना अर्थात् एक स्थान में एक समय पर बना हुआ प्रसंग। इसलिये ऐसी घटना को नापने के लिये बीजगणित में x, y, z और t -इन चार अक्षरों का उपयोग किया जाता है। उसमें टी (t) का अर्थ टाइम अथवा समय होता है। कुछ बावड़ियों (कुएँ) पर पानी निकालने के लिये नीचे के चित्र अनुसार लकड़ी का एक चौकठ रखा होता है। उसकी धुरी पर उसको घुमा सकते हैं और उससे रस्सी घूमती है और पानी निकाल सकते हैं। जब वह गराड़ी स्थिर हो तब लकड़े के चारों टुकड़े समकोण में होते हैं और जब घूमती हो तब 'अ' 'क' 'ख'और 'ग' के अनुसार उसकी जगह बदलती है। हर एक समय उसमें परिवर्तन होता रहता है।

क्योंकि जब वह वस्तु गति में होती है तब कौनसी सेकण्ड में किस प्रकार के कोण उसमें उत्पन्न होते हैं इसे अब गणित से गिन सकते है। उसको देशकाल का नाप कहते हैं। ऐसी प्रत्येक घटना के बीच कितना अंतर है उसको भी अब नाप सकते हैं। अतः यद्यपि देशकाल समान रहते नहीं तथापि उन दोनों का square root (वर्ग मूल) समान रहता है।

दृष्टांत : ९

एक ट्रेन गतिमान है और एक खड़ी है। उसकी आकृति ऐसे बना सकते है :

अ प क

ख ग घ
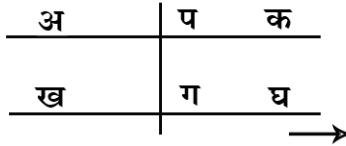
मानलो कि अ.......क ट्रेन खड़ी है।

ख.......घ ट्रेन दाहिनी ओर गति कर रही है और दोनों ट्रेन में बीच में पैसेंजर बैठे हैं। अब एक ही समय पर अ......क के पास और ख......घ के पास बिजली के दो धमाके होते हैं। पहली ट्रेन का पेसेंजर बीच में होने से दोनों धमाके एकसाथ एक ही सेकण्ड में सुन सकता है। और दूसरी ट्रेन चलती होने से उसमें बैठे हुए पेसेंजर को घ के पास का धमाका पहले सुनाई देता है। और ख के पास का धमाका बादमें सुनाई देता है। दोनों की बात सच्ची है फिर भी जिस घटना में प्रथम रीत के अनुसार समकाल लगता है उसमें दूसरी रीति के नाप से क्रम आ जाता है। यह सिद्धांत

ब्रह्मज्ञान में लगाये तो एक मनुष्य को ब्रह्म में सब समकाल लगता है और दूसरे मनुष्य को ब्रह्म में क्रम अथवा परिणाम मालूम पड़े और वे दोनों सच्चे हैं ऐसा भी मान सकते हैं। इसलिये क्रमपना (अनुक्रम) अथवा युगपतपना सापेक्ष है।

दृष्टांत : १०

कहा जाता है कि स्वर्ग के सभी जीवों को इंद्र की नाई १००० आँखें होती हैं। वहाँ के देशकाल भी अलग होते हैं। इसलिये वहाँ की रचना हमारे देशकाल से मिलेगी नहीं। इन सभी परिवर्तनों से छूटना हो तो जो ब्रह्मदशा पूर्ण और व्यापक है और जहाँ देशकाल नहीं है उस दशा में आने का प्रयास करना चाहिये। जीव की वर्तमान दशा नित्य नहीं है और सबके संबंध भी नित्य नहीं है। भोजन करना हो तो हमारे मित्रों को कहेंगे कि चलो साथ में बैठकर भोजन करते हैं। लेकिन मरना हो तो ऐसा नहीं कह सकते कि चलो एक साथ मिलकर मरते हैं!

दृष्टांत : ११

बरसात के समय जब आकाश में बादल टकराते हैं तब वहाँ बिजली की चमक और बादलों की गड़गड़ाहट एकसाथ होते हैं लेकिन पृथ्वीपर से हम देखते हैं तो बिजली का चमकना पहले दिखता है और बादलों की गड़गड़ाहट बादमें सुनाई पड़ती है। उसका कारण यह है कि प्रकाश की गति में और ध्वनि की गति में अंतर रहता है। इसलिये आँख अपने विषय को शीघ्र पकड़ती है और कान को अपना विषय पकड़ने में देर लगती है।

एक स्थानपर जो दो घटनायें समकाल में रहती हैं उनमें स्थान के भेद से क्रम आ जाता है। युशेन्को नामक अमेरिकन लेखक लिखता है कि, एक ही घटना को अनेक देखनेवाले हो तो जितने देखनेवाले हो उतनी घटनायें दिखती हैं। हर एक घटना के देशकाल भिन्न होते हैं। वह देशकाल घटना में नहीं है, अपितु देखनेवाले का घटना से जो संबंध है उसमें से उत्पन्न होते हैं।

श्रीमद् भागवत में कपिल आख्यान में भी कहा है कि-

यथेन्द्रियैः पृथगद्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः।
एको नानेयते तद्वद्भगवान् शास्त्रवर्त्मभिः।।

अर्थात् जैसे रूप रस गंध आदि अनेक गुणों के आश्रयवाला पदार्थ भिन्न भिन्न इन्द्रियों से अनेक प्रकार का प्रतीत होता है। ऐसे ही शास्त्रों में भिन्न भिन्न मार्ग के द्वारा एक ही भगवान का अनेक प्रकार से वर्णन होता है। इसलिये जो कुछ साधारण

दृष्टि से देखने में आता है वह सब घटना है यानी इवेंट है।

दृष्टांत : १२

उपरोक्त दृष्टांत के जैसा ही दृष्टांत तोप की आवाज का है। जब हम दूर से किसी तोप को फूटते हुए देखते हैं तब तोप की चमक पहले दिखती है और तोप की आवाज बादमें सुनाई देती है। ऐसे ही कोई मनुष्य नदी किनारे कपड़े धो रहा हो तब उसको कपड़े पर लकड़े का मोटा डंडा पड़ता है तब आवाज सुनाई देती है और दूर खड़ा हुआ कोई मनुष्य इस घटना को देखे तो जब डंडा धोनेवाले के कंधे तक आता है तब उसको आवाज सुनाई पड़ती है। ऐसे अंतर का कारण सिर्फ देशकाल का भेद है। यदि दूर खड़ा हुआ मनुष्य कपड़े धोनेवाले के पास जाकर खड़ा रहे तो उसको भी कपड़े धोनेवाले जैसा अनुभव होगा। अतः हर एक देखनेवाले का जगत अलग प्रकार का रहता है, फिर भी मानो सबको एक जैसा जगत दिखता हो ऐसा मान लिया जाता है। युशेन्को नामक लेखक लिखता है कि :

हर एक दर्शन विचित्र प्रकार से अनुभव में आता है। जिस मनुष्य को जो दिखता है उस दर्शन में दूसरा देखनेवाला हिस्सा नहीं ले सकता। और जब तक देखनेवाला आयेगा नहीं तब तक कोई घटना घटती नहीं है और कोई प्रकृति का अनुभव नहीं होता। पुरुष स्त्री को जैसा लगता है वैसा पुरुष को पुरुष नहीं लगता। पुरुष को स्त्री जैसी लगती है वैसी स्त्री को स्त्री नहीं लगती। अतः दोनों अलग जगत में रहते हैं। पर किसी भी प्रकार से दोनों का एक जैसा जगत हो ऐसा बना लेते हैं। फिरभी विवाह के समय जैसा स्त्री-पुरुष का स्वभाव हो वैसा विवाह के बाद रहता नहीं है। पहले दिन शायद वर को ऐसा मालूम पड़े कि उसकी स्त्री ब्रह्माजी ने अमृत से बनायी होगी, लेकिन बादमें उसको लगता है कि यह तो हाड़ मांस और चमड़ी की बनी है।

काल में भी इस तरह अंतर पड़ जाता है। अधिक सुखमें भी काल का पता नहीं चलता और जब सुख कम हो और दुःख आये तब समय नहीं जाता। इसलिये समय पसार करने के साधन का आश्रय लेना पड़ता है।

दृष्टांत : १३

सापेक्षवाद में कुछ गलती है तो यह है कि प्रकाश की गति एक सेकण्ड में १, ८६, ००० मील गिनने में आती है। वास्तवमें काल घटना से उत्पन्न होता है। अतः पहले से किसी नियति में निश्चित करके फिर घटना का नाप निकालना ठीक नहीं है। जैसे कि :

कोई मनुष्य ब्रह्मा के पास गया और ब्रह्मा से कहा कि 'आपकी आयु बहुत लम्बी है तो मुझे उसमें से १५ मिनट मुझे दो तो भी मुझे संतोष होगा।' ब्रह्माजी ने कहा कि, 'तू एक क्षण रुक, अभी देता हूँ।' लेकिन ब्रह्माजी की क्षण उस मनुष्य के १०० साल जितनी लंबी थी और १०० साल तक वह मनुष्य रुक नहीं पाया। उसके लिये ब्रह्मा की एक क्षण रुकना असंभव था।

ऐसे ही प्रकाश की गति एक सेकंड में १, ८६, ००० मील की मानने के बदले पहले किसकी सेकंड(क्षण) कितनी बड़ी है यह निश्चित करना चाहिये। इस विषयपर हमारी कॉलेजों में सिखाये जानेवाले सापेक्षवाद के प्राध्यापकों को ध्यान देना चाहिये, क्योंकि वे सब प्रकाश की गति एक सेकण्ड में १, ८६, ००० मील की मानकर ही हिसाब लगाते हैं।

हर एक व्यक्तिगत घटना में व्यक्तिगत संयोग होते है। उसमें उस घटना के योग्य देशकाल रहते हैं। दूसरी घटनामें दूसरा दृष्टा और दूसरे देशकाल रहते हैं। यानी हर एक घटना को उस समय की दृष्टि से नापना चाहिये। इस दृष्टि से देखे तो उस समय घटना में अमुक प्रकार का काल और अमुक प्रकार की जगह भी उत्पन्न होते हैं। संक्षेप में जैसे एक पूरे थान में से कोट या कुर्ता नही बनता, ऐसे ही एक अखंड ब्रह्म में कुछ नहीं बनता, लेकिन अलग अलग जगत बनाना हो तो पहले देशकाल के भेद बनाने चाहिये। लेकिन देशकाल के भेद बनाये कौन ? वर्तमान विज्ञान (सायन्स) कहता है कि लंबाई, गति, शक्ति, वजन, काल सब सापेक्ष है, वह ब्रह्म में नहीं है और जगत में भी नहीं है, अपितु दोनों के संबंध में है और संबंध के लिये कोई देखनेवाला चाहिये। चाचा नहीं हो तो भतीजा नहीं हो सकता। अतः जो मनुष्य संबंध का प्रश्न पूछता है उसकी वृत्ति में ही उसका उत्तर समाविष्ट है।

दृष्टांत : १४

नया वर्ष शुरू होता है तब कुछ लोग पुरानी दिनांक गलती से लिख देते हैं। ईस.१९६० शुरू होने के बावजूद कुछ लोग थोड़े दिन तक ईस.१९५९ लिखते हैं। जैसे जहाज से उतरने के बाद कुछ समय तक जमीन घूमती हुई मालूम पड़ती है ऐसा ही काल के संबंध में बनता है। हम ऐसी आदत से बंध गये हैं कि २४ घण्टे का दिन होना चाहिये, ३० दिन का महीना होना चाहिये और १२ महीनों का वर्ष होना चाहिये, पर स्वप्न में २४ घण्टे का दिन नहीं होता। राजा हरिश्चंद्र ने स्वप्न में १२ वर्ष राज्य किया था।

जिस घटना के साथ जो देखनेवाला हो उसके देशकाल नियत हो ऐसा मालूम पड़ता है। पर भिन्न भिन्न स्थानपर घटनेवाली घटनाओं का काल समान नहीं होता। इसलिये सायन्स में देश और काल ऐसे दो तत्त्वों के बदले अब देशकाल ऐसे एक तत्त्व को एकसाथ विचार में लिया जाता है। हमारे जगत के लिये जो काल लगता है वह हकीकत में मनुष्य का लोकल टाइम है। वह सर्व साधारण टाइम नहीं हो सकता। मुंबई से लन्दन जानेवाली स्टीमर की घड़ी में बदलाव नहीं किया जायेगा तो, व्यवहार में बहुत गड़बड़ हो सकती है। ऐसे ही हमारी जीवन रूपी स्टीमर छोटी आयु से बड़ी आयु की ओर चल रही है। उसमें संयोगों के अनुसार देशकाल का परिवर्तन होता रहता है। जिन वृद्धों को फिर से युवा होने की इच्छा हो उन्हें पुनः जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

किसी एक समान काल के जैसा जगत में नहीं है, लेकिन हम समान काल जैसा करना चाहते हैं। हमारा आत्मा नित्य है, इसलिये हमेशा हम रहें तो ठीक - ऐसे विचार से भूतकाल और भविष्य काल का विचार करते हैं। लेकिन उस नित्यता को माया में लेने जाते हैं इसलिये वह नित्यता नहीं मिलती। जो आत्मा नित्य रहता है, उसमें वृत्ति स्थिर हो तो नित्यवस्तु का अनुभव चालू रह सकता है। माया में जो देशकाल प्रतीत होते हैं वह एक प्रकार का परिमाण है। दरजी को कोई कपड़ा बनाना हो अथवा मोची को किसीके जूते बनाने हो तो उस मनुष्य का नाप लेना पड़ेगा। ऐसा नाप लगभग सभी मनुष्यों का अलग अलग होता है। जो काम करना हो उसके लिये जिस नाप की जरुरत हो वैसा नाप लेना पड़ता है। वह माया है। श्रीकृष्ण भगवान को भी जब अवतार लेने की इच्छा हुई तब उन्होंने प्रथम माया को बुलाया और कहा कि 'बलरामजी के रूप में जो मेरा अंश देवकी के उदर में है उसको लेकर गोकुल में रोहिणी के वहाँ रखकर आ और तू गोकुल में यशोदाजी के यहाँ जन्म ग्रहण कर। फिर देवकी के घर मैं जन्म लूँगा तब वसुदेवजी मुझे यशोदा के वहाँ छोड़कर आयेंगे और तुझे मथुरा ले जायेंगे, लेकिन कंस तुझे नहीं मार सकेगा। ' और ऐसा हुआ कि कंस ने माया को मारने का प्रयास किया कि तुरंत कंस के हाथ से छटक गयी और आकाश में उड़ी और वहाँ स्थित होकर कंस को कहा कि-' तेरा शत्रु तो गोकुल में जन्म ले चुका है। ' इस कथा में कंस द्वैत अथवा भेदबुद्धि का स्वरूप है। ऐसी बुद्धि तो माया को बढ़ाती है।

जैसे मनुष्य के साथ उसका नाप रहता है। वैसे ही काल भी एक परिमाण अथवा

नाप यानी डायमेंशन होनेसे माया की दृष्टि के साथ ही रहता है। जैसे किसी वस्तु को देखने पर लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई मालूम पड़ती है। ऐसे ही हमने किस समय वस्तु देखी और कैसे देह से उसको नापा वह नाप भी उसके साथ ही रहता है। जब हमारी देह बड़ी होती है तब घर के कमरे छोटे लगते हैं। इसलिये कौनसे समय कौनसे स्थान पर घटना घटती है उसपर पूरा आधार है। प्रो.आईन्स्टाईन के सापेक्षवाद की खोज होने के बाद सिद्ध हुआ है कि जैसे कोई दृश्य वस्तु दृष्टा से भिन्न नहीं है उसी प्रकार कोई काल दृष्टा से भिन्न नहीं है। ऐसी कोई निश्चित जगह नहीं है कि जहाँ से गति नाप सके और ऐसा कोई निश्चित काल नहीं है कि जिससे सच्चा काल नाप सके। स्थान और काल घटना के साथ रहते हैं।

दृष्टांत : १५

उपरोक्त दृष्टान्तों से मालूम पड़ता है कि देशकाल सापेक्ष है। गति का आधार भी देशकाल पर होने से गति भी सापेक्ष हो जाती है। यह बात निम्नलिखित दृष्टांत से ठीक समझमें आयेगी। मानलो की एक ट्रेन घण्टे में ६० मील गति से चलती है। उसके डिब्बे इस प्रकार के हैं कि बीच में दरवाजे होनेसे टिकट की जाँच करनेवाले को अंतिम डिब्बे से प्रथम डिब्बे में जाना हो तो जा सकता है। अब मानलो कि चलती हुई ट्रेन में कोई टिकट जाँचनेवाला पेसेंजरों की टिकट जाँचने के लिये इंजिन की दिशामें ट्रेन के डिब्बे में घण्टे के ५ मील की गति से जाता है। तो ऐसी स्थिति में जमीनपर के स्टेशन मास्टर की दृष्टि से वह मनुष्य ६५ मील की गति से जाता हुआ मालूम पड़ता है। पर उस मनुष्य को अपनी सिर्फ ५ मील की गति हो ऐसा मालूम पड़ता है।

ऐसे ही कोई मनुष्य सूर्यपर से देखे तो पृथ्वी के मनुष्य सूर्य के आसपास एक सेकण्ड में १८ मील की गति से घूमते है, लेकीन हम पृथ्वीपर घण्टे के ३ मील की गति से घूमते हो अथवा गाड़ी में बैठकर घण्टे के ४० मील की गति से घूम रहे हो, अथवा विमान में बैठकर घण्टे के १५० मील की गति से घूमते हैं अथवा पृथ्वी पर स्थिर बैठे हो तो भी पृथ्वी हमको लेकर घूमती है। इस अंतिम घटना में एक दृष्टि (अपेक्षा) से हमारे शरीर को गति है और दूसरी दृष्टि (अपेक्षा) से गति नहीं है। गति देखना हो तो जिस वस्तु पर हम हैं उससे पृथक होकर देख सकते हैं। ऐसे ही हमारा संबंध ब्रह्म से होगा अथवा जीव ब्रह्मीभूत होगा तब उसको ब्रह्म में गति मालूम नहीं पड़ेगी। जब जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न माने तब उसको गति वाला ब्रह्म मालूम पड़ेगा। भगवान के सगुण और निर्गुण स्वरूप को समझने में भी यह दृष्टांत काम आ

सकता है। ब्रह्म नित्य वस्तु होने से उस दशामें सब एक साथ बनता है, उस दशामें भूत, भविष्य या वर्तमान जैसा कुछ नहीं है, इसलिये वह अनादि अनंत कहलाता है। व्यवहार में किसी भी क्षण को सच्ची के रूपमें पकड़ने जाये तो सापेक्ष बन जाती है, इसलिये हर एक क्षण कल्पित है। फिर जैसी कल्पना वैसे कल्प होते हैं। इस प्रकार ब्राह्म कल्प, पाद्म कल्प, वाराह कल्प की कल्पना हुई है। ब्रह्मा से काल की गिनती करे तो ब्राह्म कल्प का विचार आता है, ब्रह्मा से पहले कमल था तब से गिनती करे तो पाद्म कल्प का विचार आता है और वराह भगवान ने जल से पृथ्वी निकाली तब से गिनती करे तो वाराह कल्प का विचार आयेगा। सापेक्षवाद के सायन्स वाले को पूछेंगे तो एक ही उत्तर आयेगा 'देखनेवाले को लाओ वह कहाँ खड़ा है और कब खड़ा है उसको जानने के बाद उसके जगत का विचार हो सकता है। '

दृष्टांत : १६

हमारे व्यवहार में देखा जाय तो जब ट्रेन चलती है तब स्टेशन नहीं चलते, लेकिन सूर्य से कोई देखे तो ट्रेन भी चलती दिखेगी और स्टेशन भी चलते हुए दिखेंगे। जैसे ट्रेन के डिब्बे में मक्खी उड़ती हो तो मक्खी को डिब्बा स्थिर लगेगा, लेकिन स्टेशनपर से कोई चलती हुई ट्रेन को देखे तो डिब्बा और मक्खी दोनों चलते हुए मालूम पड़ते हैं। मक्खी स्वयं मक्खी से मरकर मनुष्य बने तो उसकी दृष्टि में नये प्रकार का जगत दिखने में आयेगा। हर एक जीव के ज्ञान की जैसी दशा है वैसी ही दशा उस जीव के जगत की है। मनुष्य के जगत में भी ऐसा ही है। ऐसे ही जाग्रत में भी हमारे ज्ञान की जैसी दशा है वैसी दशा हमारे जगत की है। हमारा ज्ञान हमारे जगत को सिद्ध करता है। इसलिये उस ज्ञान से वह जगत झूठा नहीं लगेगा, पर मानलो कि कोई मनुष्य मरकर अपने ही घर में गाय हुआ। उसमें दोनों ज्ञान रखने का सामर्थ्य आये तो उसकी क्या दशा होगी ! अधिकतर ऐसा नहीं बनता। स्वप्न में जाने के बाद जाग्रत का जगत याद आता नहीं, लेकिन जाग्रत में जगने के बाद स्वप्न याद आता है। उसका कारण यह है कि जाग्रत में जगने के बाद स्वप्न को याद करते हैं। स्वप्न में भी यदि याद करने बैठे तो जाग्रत भी शायद याद आ सकता है। कहीं भगवान की मूर्ति गाड़कर रखी हो वह कोई भक्त को स्वप्न में दिखती है और बादमें यह बात सच्ची सिद्ध होती है, पर स्वप्न स्वप्न के समय जाग्रत जैसा है। उस समय वह स्वप्न नहीं है। हम जगने के बाद उस घटना को स्वप्न कहते हैं। ऐसे ही जाग्रत अवस्था की दशा में जाग्रत दशा झूठी नहीं लगेगी लेकिन ब्रह्मदशा में जाग्रत भी स्वप्न जैसा लगेगा। कई लोगों को ऐसा

अनुभव रहता है कि अनुभवकाल में जो दिखता है उसकी ओर ही लक्ष्य रहता है और वह अनुभव कौनसी दृष्टि से लिया अथवा किस भाव से लिया अथवा कैसे प्रमाण से लिया उस ओर लक्ष्य नहीं रहता। मोर्टमर टोबे नामक लेखक लिखता है कि :

जो वस्तु हमको दिखती है उसके बारे में हम विचार करते हैं। लेकिन हमारे विचार में हमारी भावना मिल जाती है। इसलिये वस्तु जैसी है वैसी जानने में नहीं आती।

दृष्टांत : १७

न्यूटन के समय में ऐसा सिद्धांत निश्चित हुआ था कि पेड़ पर से फल पृथ्वी पर गिरता है उसका कारण पृथ्वी का गुरुत्त्वाकर्षण है। वह आकर्षण पेड़ के फल को पृथ्वी की ओर खींचता है। प्रो.आइंस्टाइन कहते हैं कि उसका कारण गुरुत्त्वाकर्षण मानने की जरुरत नहीं है, पर वहाँ जगह ही ऐसी है। मान लो कि स्विटझरलेंड जैसे देश में आल्प्स जैसे बर्फ के ऊँचे पर्वतपर शीघ्र चढ़ने के लिये रेल्वे के डिब्बे जैसा एक डिब्बा होता है। और उस डिब्बे को बिजली की रस्सी से ऊपर खिंचा जाता है। मानलो कि वह डिब्बा बड़ा है और उसमें टेबल पर कोई आदमी खाने बैठा। उसका नौकर उसे तश्तरी में खाना परोसने के लिये आया और उस नौकर के हाथ से तश्तरी गिर गयी, और उस डिब्बे के नीचे के पटिये पर पड़ी। उसका कारण क्या ? जितने क्षण में तश्तरी हाथ से नीचे गिरती है उतनी क्षण में डिब्बा ऊपर जा रहा था, इससे ऐसा भी कह सकते हैं कि डिब्बे का नीचे का पटिया तश्तरी को मिलने जा रहा था। ऐसा बाहर से देखने वाले मनुष्य को निश्चयपूर्वक लग सकता है, लेकिन डिब्बे के नौकर को ऐसा ही लगेगा कि तश्तरी नीचे के पटिये पर गिर गयी। दोनों देखनेवालों के मत सच्चे हैं, फिर भी जो मनुष्य बाहर से डिब्बे को ऊँचे जाते हुए देखकर जो मत व्यक्त करता है वह अधिक सच्चा है। इसी प्रकार हमारे जीवन में कोई भूल चली आ रही हो उसमें दूसरे मनुष्य अलग रहकर जो भूल पकड़ सकते हैं, वह कई बार सच्ची होती है और हमको हमारे नाप से हमारी गलती का पता नहीं चलता। पर सभी विषयों में मानो 'मैं ही बुद्धिमान हूँ' ऐसा अभिमान उत्पन्न होता है। किसी विषय में दोनों मनुष्य अपनी अपनी दृष्टि से सच्चे होते हैं। फिर भी परम सत्य की ओर मुड़ने के लिये सापेक्षबुद्धि का त्याग करने की जरुरत पड़ती है।

दृष्टांत : १८

गति के साथ एक नये प्रकार की शक्ति भी उत्पन्न होती है। हम पानी का लोटा

भरकर उसको ऊपर नीचे गोलाई में जोर से घुमाते हैं तब लोटा उल्टा होता है, फिरभी उसमें से पानी नही गिरता। उस समय उस घटना में पानी में नए प्रकार की शक्ति उत्पन्न होती है। सर्कस में भी कुछ ऐसे मोटर सायकिल के खेल दिखाये जाते हैं कि एक मनुष्य मोटर बाइक पर बैठकर गोल पटीये पर एक चक्कर लेता है। उस समय एक क्षण में जब ऊपर आता है तब बाइक और मनुष्य दोनों उलटे दिखते हैं। फिर भी गिरते नहीं है। उसका कारण यह है कि उस समय नये प्रकार का आकर्षण उस गति के साथ उत्पन्न होता है। अब विमान वाले भी आकाशमें ऐसा खेल दिखा सकते हैं। संक्षेप में स्थानधर्म के अनुसार नये प्रकार की शक्ति उत्पन्न होती है। इस दृष्टांत को ब्रह्मज्ञान में लगाये तो मालूम पड़ेगा कि ब्रह्मभाव से हमारा आत्मा सर्वव्यापक है और वह इतना सूक्ष्म है कि आकाश में उड़ जाना चाहिये, फिर भी हम जमीन पर चल सकते है। यह बड़ा चमत्कार है, लेकिन मनुष्य के बीच रहकर वह आत्मा मनुष्य जैसा बन गया है इसलिये उसको इस चमत्कार का पता नहीं चलता और फिर ब्रह्मरूप होने का प्रयत्न करता है, यह तो उससे भी बड़ा चमत्कार है। अतः हम किस स्थानपर कैसे घूमते है इस बात पर पूरा आधार है।

सापेक्षवाद के सिद्धांतवाले लिखते है कि :

जो दृष्टा अपने देशकाल के प्रमाण के अनुसार अपना जगत देखता है उस प्रमाण से वह उचित लगता है, लेकिन जब अपने प्रमाण से दूसरे का जगत तौलने बैठता है तब अनेक भूलें होती है। इसी कारण से समाज के जीवन में समान व्यवस्था नहीं हो सकती। इसलिये हर एक समय समाज के लिये नया उपाय करना पड़ता है। क्योंकि पुराने उपाय नई परिस्थिति में काम नहीं आते।

यह सिद्धांत बताता है कि हमारा आत्मा स्वतंत्र होने से कोई भविष्य अथवा प्रारब्ध निश्चित नहीं है। हम हमारा जीवन जैसा बनाना चाहे वैसा बन सकता है, लेकिन जहाँ कुछ आकर्षण जैसा हो वहाँ जीवन को बदल नहीं सकते। अतः हमारे संसार को सुधारना हो तो सम्पूर्ण वैराग्य की आवश्यकता है। जो मनुष्य कहीं राग से किसी जगह बंधा रहता है उसका जीवन उत्तम गति प्राप्त नहीं कर सकता। उल्लू को दिन में अंधेरा दिखता है। उसको खुद को अंधेरा पसंद हो तो वह रौशनी नहीं देख सकेगा। उसको अपने अंधेरे से वैराग्य हो और उल्लू मनुष्य के साथ रहकर मनुष्य के जैसी दृष्टि प्राप्त कर सके तो रौशनी देख पायेगा। ऐसे ही जिस मनुष्य को अपने जीवन में आसक्ति है वह अपने जीवन की गलतियाँ देख नहीं पायेगा उसको अपने जीवन से

वैराग्य होना चाहिये और उसे आगे बढ़े हुए आत्मज्ञानी पुरुषों के सत्संग में रहना चाहिये।

दृष्टांत : १९

कोई लड़का एक छोर से जलता हुआ लकड़ा घुमा रहा हो तब वह गोल दिखता है। वास्तव में वह सीधा होता है। घूमाते समय वह गोलधर्म उस जलती हुई लकड़ी में बाहर कहीं से नहीं आता और उसको स्थिर रखे तब गति के समय का धर्म अन्य कोई स्थान में नहीं चला जाता। यह गोल धर्म गति के समय उत्पन्न होता है और स्थिति के समय नहीं रहता। जिस धर्म का दूसरी अवस्था में बाध होता है वह वस्तु का धर्म नहीं है, ऐसे ही जब मनुष्य का आत्मा माया के द्वारा क्रियात्मक बनता है तब जो धर्म उत्पन्न होता है, उसका अभाव समाधि में होता है, निद्रा में होता है और मूर्छा में भी होता है इसलिये वह आत्मा का धर्म नहीं है। सर जेम्स जीन्स कहते हैं कि : हम जब सूर्य को देखते हैं तब सूर्य जैसा है वैसा नहीं दिखता। उस दृष्टि में घटना है। ऐसे ही जब हम कुर्सी को देखते हैं तब भी वह जैसी है वैसी नहीं दिखती। रात्रि के अँधेरे में कुर्सी नहीं दिखती और बत्ती से प्रकाश डालनेपर दिखती है। उस समय बत्ती का प्रकाश कुर्सी पर होकर हमारी आँख में आता है। इससे हम बिजली का प्रकाश देखते हैं, कुर्सी को नहीं देखते। हर एक दृष्टि में रूप, प्रकाश और आँख ऐसे तीन की जरुरत पड़ती है। इस प्रकार अब जगत में कोई पदार्थ नहीं है, अपितु सब घटनायें है।

दृष्टांत : २०

किसी कुम्हार का चाक एक तरफ घूमता हो और उसके उपर चींटियाँ दूसरी तरफ घूमती हो तो उसमें दायें बायें का या जल्दी - धीरे का निश्चित नाप रहता नहीं। हर एक क्षण वहाँ नया नाप गति के अनुसार उत्पन्न होता है। इसलिये कुम्हार जो देखता है वह भी घटना है और चींटियाँ जो देखती है वह भी घटना है। ऐसे ही किसी चलती हुई ट्रेन में भोजन के डिब्बे में कोई मनुष्य भोजन कर रहा हो और एक मनुष्य परोस रहा हो, डिब्बा दक्षिण की ओर जा रहा हो और परोसने वाला उत्तर की तरफ जा रहा हो फिर भी स्टेशन पर के मनुष्यों को उलटा जाता मालूम पड़ेगा। घटना का नाप गति के समय और गति के अनुसार उत्पन्न होता है ऐसी स्थिति में सब गतियों में सच्ची गति कौन सी ? यह बात सिर्फ सत्संगीयों के सत्संग से मालूम पड़ती है। वहाँ सभी को भगवान की तरफ ले जाने का भाव रहता है, वह सच्ची गति है और सच्चा पुरुषार्थ है। नाटक (सिनेमा) में बहुत कुछ बनता है लेकिन कोई घटना पूर्ण नहीं है,

पूरा नाटक एक साथ समझने का प्रयास करेंगे तब उसका पता चलता है। संगीत के स्वरों में भी हर एक क्षण का स्वर पूर्ण नहीं है लेकिन पूरा संगीत पूर्ण है, ऐसे ही जब ब्रह्मभाव से हम एक समयपर पूर्ण देखने की आदत बनायेंगे तब सच्ची दशा उत्पन्न होगी । ब्रह्म में घटनाओं के क्रम नहीं है । वहाँ सब कुछ समकालीन है यानी वर्तमानकाल में है। पूर्ण दृष्टि प्राप्त करना हो तो उस प्रकार की आदत बनानी चाहिये।

दृष्टांत : २१

कोई विमान जब जमीनपर उतरता है तब उसमें बैठे हुए पैसेंजरों को जमीन ऊपर आती हुई प्रतीत होती है। जैसे तीव्र गति से चलती हुई ट्रेन के अंदर से देखते हैं तब रास्ते पर के पेड़ चल रहे हो ऐसा दिखता है और जैसे चलते हुए सामुद्रिक जहाज में बैठे हुए पेसेंजरों को किनारे के पेड़ चलते हुए नजर आते हैं वैसा विमान की यात्रा में भी बनता है । लेकिन नियमित ऐसी यात्रा करने की आदत बन जाने के बाद वैसी भावना नहीं होती । प्रथम बार जिसको झूले पर बैठने से चक्कर आते हो उसको बारबार झूले पर बैठने से आदत बन जाती है। छोटे बच्चे को झूले में झूलने की आदत बन जाती है, पर बादमें वह आदत बदल जाती है। छोटे बच्चों को कई बार लगता है कि उनकी माँ गोद में उठाये तो अच्छा, लेकिन चलने की आदत बन जाती है तो नई आदत एक प्रकार की नई प्रकृति बन जाती है। बरट्रान्ड रसेल कहते हैं कि 'हर एक प्रकार की आदत से हर एक का स्वप्न बनता है। स्वप्न के जगत में और जाग्रत के जगत में कोई भेद नहीं है। '

दृष्टांत : २२

ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन से वातावरण में प्रसारित की जानेवाली प्रकाश की तरंगें जिस घर के आगे एरियल हो वहाँ मुड़ जाती है। क्योंकि वहाँ जगत ही ऐसा है, यह समझना अब सरल हुआ है। ऐसे ही मानलो कि किसी स्थानपर कोई स्त्री बैठी है। उसके पास एक कुतिया, एक गधी और एक बिल्ली बैठी है। उनके साथ इसी प्रकार मानो एक पुरुष, कुत्ता, गधा और बिलाव बैठे हैं। भगवान की दृष्टि में प्रथम चारों स्त्री हैं। और सामने बैठे हुए चारों पुरुष हैं, फिर भी उन आठ जीवों की आँखों से जो प्रकाश निकलता है, उसमें कुछ अंशमें रागद्वेष है। दृष्टांत के तौर पर कुत्ते को मनुष्य की रूपवान स्त्री उपयोगी नहीं है। वह कुतिया की ओर प्रेम करने जाता है और समय मिला तो बिल्ली को मारने जाता है। पुरुष को प्रेम करना हो तो कुतिया, बिल्ली या गधी काम नहीं आती। गधे को बिल्ली काम नहीं आती। इस प्रकार बीच में जहाँ रिक्त

जगह है वहाँ भी उन आठों की उपस्थिति से भिन्न भिन्न प्रकार का गुरुत्त्वाकर्षण उत्पन्न होता है। रास्ते पर बैठा हुआ मोची सिर्फ हर एक मनुष्य के जूते ही देखता है, रास्तेपर चलता हुआ नाई सभी की सिर्फ दाढ़ी ही देखता है। इसलिए हम जिसको रिक्त जगह कहते हैं वह वास्तवमें रिक्त नहीं है। हमारे घर के ऊपर के आकाशमें हजारों रेडियो की तरंगें मौजूद होती है। उसमें से जैसी वेवलेंथ रखते हैं उस प्रकार का संगीत रेडियो पकड़ता है। जहाँ जैसा आकर्षण और जैसा देखनेवाला उस प्रकार का जगत बन जाता है। अब नये गणित से ऐसे आकर्षक देशकाल का हिसाब भी निकल सकता है। क्योंकि देशकाल हर एक घटना के साथ रहते हैं। आइंस्टाईन कहते हैं कि वस्तु के बिना जगह बन नहीं सकती और घटना के बिना काल बन नहीं सकता। इस प्रकार देश और काल दोनों साथ रहते हैं और दोनों दृष्टा की भूमिका के अनुसार बदलते हैं। यह सापेक्षवाद का अचल सिद्धांत वर्तमान जगत के सामने रखा हुआ है और कईयों को उससे आश्चर्य हुआ है। आगे बताये अनुसार सापेक्षवाद में कुछ गलती हो तो यह है कि उसमें प्रकाश की गति एक सेकण्ड में (लगभग) १, ८६, ००० मील मानी गयी है और वह हमेशा समान (uniform) रहती है। लेकिन यदि काल सापेक्ष है तो पहले से कोई गति निश्चित करने की जरुरत नहीं है। जो घटना घटती है उसके आधार पर देशकाल बनते हैं। तो तेज की गति पहले से निश्चित करने की जरुरत नहीं है। जो घटना घटती है उसके आधार पर देशकाल बने तो प्रकाश की गति प्रमाण (measure) है और प्रमाता (observer) के बिना प्रमाण नहीं बनेगा, इसलिये प्रमाण को और प्रमाता को नियति (determinism) में नहीं रख सकते। इंग्लॅण्ड के वर्तमान समय के प्रोफेसर मिलन का यह मत है और उचित है। अतः वेदांत का मायावाद और आइंस्टाइन का सापेक्षवाद दोनों को एकत्र करके सत्य समझने का प्रयास करेंगे तो सत्य वस्तु की पहचान सरलता से हो सकती है। जब ऐसा निश्चय हो जायेगा कि देश और काल सापेक्ष हैं और अन्य दशामें इनका बाध होता है, तब निम्नलिखित कुछ निश्चय हो जायेंगे।

१. जन्म मृत्यु झूठे लगेंगे। जन्म के समय हमें जन्म का पता नहीं था और मरा हुआ मनुष्य मृत्यु के विषय में कुछ कहता नहीं है।

२. इतिहास-भूगोल झूठे हो जायेंगे।

३. न्यूसपेपर पढ़ना अच्छा नहीं लगेगा।

४. जगत की उत्पत्ति झूठी सिद्ध होगी।

५. Politics में यानी राजनीति की बातों में लोगों को रुचि नहीं रहेगी। क्योंकि सब घटनाओं का कारण देखनेवाले के ज्ञान की अवस्था में है। जैसा स्वप्न में है वैसा ही जाग्रत में है।

ॐ ॐ

८. अणु की शक्ति अथवा कल्कि का घोड़ा

श्रीमद् भागवत के बारहवें स्कंध के दूसरे अध्याय में कलियुग में कैसा दोष उत्पन्न होगा उसका वर्णन आता है। और वहाँ यह भी कहा है कि जब कलियुग की प्रवृत्ति असह्य हो जायेगी तब कलियुग की समाप्ति का समय आयेगा तब भगवान धर्म की रक्षा हेतु सत्त्वगुण से युक्त होकर अवतार धारण करेंगे। कलियुग के मध्य में भगवान् का अवतार होगा नहीं यह बात प्रह्लाद की स्तुति में ७ वें स्कंध में आती है। अर्थात् कलियुग का अंत आने से पहले भगवान गुप्त ढंग से काम करेंगे, यानी जो साधुवृत्ति के मनुष्य होंगे उनकी गुप्त ढंग से रक्षा होगी और आसुरी प्रकृति के मनुष्यों का नाश होगा। फिर भी वर्तमान समय में जो प्रजा शांत होकर व्यवहार कर रही है उसका नाश हो रहा है। ऐसा साधारण दृष्टि से दिखता है। वर्तमान शिक्षा ही ऐसी है कि अनेक लोग भगवान से विमुख रहते हैं। और उससे समाज में भय और इच्छा बढ़ रहे हैं।

और भागवत में यह भी कहा है कि जब कल्कि भगवान जन्म लेंगे तब देवदत्त नामक अति वेगशाली घोड़े पर चढ़कर दुष्टों का संहार करेंगे और राजा के रूप में छिपे करोड़ों असुरों का संहार करेंगे। (१२-२-२०) यहाँ घोड़े का नाम देवदत्त दिया गया है। उसका अर्थ समाधि भाषा में करें तो देव यानी प्रकाश और दत्त अर्थात् मिला हुआ अर्थात् प्रकाश से मिला हुआ घोड़ा।

ऐसे घोड़े का प्रकार वर्तमान समय में देखने जाये तो परमाणुबम के रूप में मिल सकता है। वह परमाणु की शक्ति से बनाया जाता है। जड़ वस्तु के एक परमाणु में से अनंत शक्ति कैसे निकल सकती है। उसका पहला गणित ईस.१९०५ में प्रो.आइंस्टाइन ने तैयार किया था। उसके बाद उसपर अनेक प्रयोग हुए और आखिर

में ईस.१९४५ में उस शक्ति को प्राप्त करने के उपाय अमेरिका को मिले। फिर भी अब ऐसे बम सब देश बना सकेंगे ऐसा मालुम पड़ता है। न्यूयॉर्क से दिनांक - १८-११-४५ के रूटर के टेलीग्राम के सन्देश में निम्नलिखित हकीकत प्रसिद्ध हुई है :

विश्व विख्यात वैज्ञानिक प्रो.आल्बर्ट आइंस्टाइन और कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने एक निम्नलिखित संयुक्त निवेदन प्रसिद्ध किया है।

१. अब कम लागत में अनेक परमाणु बम तैयार हो सकते हैं और अधिकाधिक विनाशक बम तैयार हो सकते हैं।

२. परमाणु बम से बचने का कोई भी लश्करी साधन है ही नहीं और तैयार होने की संभावना भी नहीं है।

३. परमाणु बम बनाने की पद्धति अमेरिका भले ही गुप्त रखे, लेकिन दूसरे देश अपने आप यह पद्धति खोज निकालेंगे ऐसी संभावना है।

४. परमाणु बम की लड़ाइयों से बचने की तैयारी करना व्यर्थ है। और ऐसे प्रयास सब प्रकार की सामाजिक व्यवस्था का विनाश ही करेंगे।

५. यदि युद्ध की शुरुआत होगी तो परमाणु बम का ही उपयोग होगा और फलतः हमारी संस्कृति का निश्चित ही सर्वनाश होगा।

६. परमाणुशक्ति पर अंतर्राष्ट्रीय अंकुश और विश्व में से युद्ध की संभावना को मिटानेके सिवाय इस भयंकर खतरे से बचने का कोई इलाज नहीं है।

परमाणु बम के विशेषज्ञ और बर्मिंगहाम यूनिवर्सिटी के विज्ञान के प्रोफ़ेसर ओलिफ़न्ट भी कहते हैं कि वैज्ञानिकों ने एक ऐसा परमाणु बम खोजा है कि वह जापान पर फेंके हुए परमाणुबम से ६०० गुना अधिक भयंकर है। (संदेश दि.१६-१-४७)

ऐसे परमाणु बम जड़ वस्तु में से उत्पन्न होनेवाले प्रकाश से बनाये जाते हैं : इसलिये भागवत में जिसको देवदत्त नामक तेजस्वी घोड़ा कहा गया है उससे यह हकीकत मिलती जुलती है। और यदि अलग अलग देशों के बीच लड़ाईयों को रोकना हो तो प्रेम बढ़ानेवाली शिक्षा देना चाहिये, लेकिन सब देशों में आबादी बढ़ती जा रही है। और नये जन्मे हुए मनुष्यों को अधिकतर ज्ञान न्यूसपेपर, रेडियो और सिनेमा से मिलता है। इन सब में अद्वैत की भावना अथवा आत्मज्ञान की बातें नहीं आती इससे तीसरा विश्वयुद्ध होनेकी संभावना है। इस प्रकार यदि बारबार युद्ध आया करेंगे तो प्रजा की क्या दशा होगी उस संदर्भ में भागवत में ऐसा वर्णन मिलता है कि अंतिम युद्ध में कल्कि भगवान स्वयं आयेंगे, वे असुरों का नाश करेंगे और उसके बाद उनके अंग में

लगाये हुए अंगराग की पवित्र सुगंध निकलेगी। वह सुगंध वायु में फैलेगी और वायु से प्रजा के श्वास में जायेगी तब प्रजा के चित्त निर्मल होंगे और ऐसे शरीर के द्वारा जो भावि प्रजा उत्पन्न होगी उनके शरीर बड़े, विशाल और सत्त्वगुणी होंगे। उस समय सत्ययुग का आरंभ होगा। जिस समय चंद्र, सूर्य और पुष्य नक्षत्र के बृहस्पति-ये तीनों ग्रह एक राशि में आयेंगे तब सत्ययुग का आरंभ होगा। (१२-२-२४)

उपरोक्त भागवत की बात सच्ची हो अथवा न हो, तो भी वर्तमान समय में सब देशों में बहुत विषम काल उत्पन्न हुआ है। गुप्त रीति से भयंकर लड़ाईयों की तैयारियाँ हो रही हैं। साधु पुरुषों की कोई कीमत नहीं है और शिक्षा को कैसे सुधारना ये किसीको सूझता नहीं है। जिन विद्वानों के मनमें अच्छे विचार आते हैं उनके पास सत्ता नहीं है और जिनके पास सत्ता है उनके मन में उन्नत विचार आते नहीं और टिकते नहीं। इसलिये अब हर एक देशमें परमाणु में से शक्ति कैसे प्राप्त करना और उसका उपयोग युद्ध के समय कैसे करना उसकी खोज चल रही है।

छोटे से छोटी वस्तु में ऐसी शक्ति किस तरह छुपी है और उसका कैसे उपयोग किया जा सकता हैं उसकी कुछ हकीकत इस प्रकरण में दी गयी है। वह दृश्य की माया है। वह हमारे ज्ञान को कैसे असर करती है यह इसके बाद के प्रकरण ९ और १० में बताया गया है। इस प्रकरण में परमाणु के जत्थे की बात आती है। इसके बाद के प्रकरण ९ और १० में परमाणु को देखनेवाले को परमाणु कैसा लगता है उसका विचार किया हुआ है। पहले के प्रकरणों में जो सापेक्षवाद की खोज की हकीकत दी हुई है वह बड़ी घटनायें समझने में उपयोगी है। आगे जो हकीकत आयेगी वह भगवान की माया सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु में कैसी माया है यह समझने में उपयोगी होगी।

रसायण शास्त्र में अब तक ९२ प्रकार के पदार्थ (elements) खोजे गये हैं। उन सब पदार्थों में अमुक प्रकार के परमाणु (एटम) होते हैं, जैसे कि पानीके एक अणु में दो परमाणु हाइड्रोजन के हैं और एक परमाणु ऑक्सीजन का है। लोहे के एक परमाणु में २६ इलेक्ट्रोन है। चाँदी के एक परमाणु में ४७ इलेक्ट्रोन, सुवर्ण के एक परमाणु में ७९, पारद के एक परमाणु में ८०, रेडियम के एक परमाणु में ८८ और यूरेनियम के एक परमाणु में ९२ इलेक्ट्रोन होते हैं।

१९ वीं सदी तक सायन्स की खोज परमाणु के बाह्य दिखावे तक हुई थी, पर परमाणु (एटम) के अंदर क्या है यह बात समझमें नहीं आयी थी।

२० वीं सदी में साइक्लोट्रॉन की मदद से और एक्सरे के किरणों की मदद से

परमाणु के विखंडन की क्रिया की खोज हुई, इतना ही नहीं, अपितु एक प्रकार के परमाणु से दूसरे प्रकार के परमाणु बनाने की शक्ति भी प्राप्त हुई । ईस.१९११ में रुधरफर्ड नामक एक वैज्ञानिक ने ऐसी खोज की कि हर एक एटम एक प्रकार की सूर्यमाला है यानी एक मध्यस्थ प्रोटोन (proton) के आसपास दूसरे इलेक्ट्रोन गोलाकार में तेज रफ़्तार से घूमते रहते हैं। वह रचना कैसी है उसका चित्र नीचे दिया हुआ है :
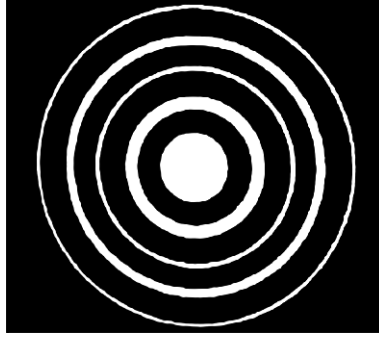
उपर के चित्र में मध्यमें जो पार्टिकल है उसको प्रोट्रोन कहते हैं। और आसपास गोलाकार में जो पार्टिकल घूमता है उसे इलेक्ट्रोन कहते हैं। पूरे एटम को हमारी भाषा में परमाणु कहेंगे तो उसके अंदर के इलेक्ट्रोन को विद्युत कण कह सकते हैं।

इतनी खोज के बावजूद भी एटम के इलेक्ट्रोन को अलग करने में बहुत कठिनाई हो रही थी। रुधरफर्ड ने उस समय ये कहा था कि एक एटम के मध्य भाग को अलग करने में उसको १० लाख रेडियम के परमाणु का उपयोग करना पड़ा था। उसके बाद प्रो.फर्मी नामक वैज्ञानिक ने एक नये प्रकार का कम गति वाला पार्टिकल खोज लिया और उसकी मदद से दूसरे एटम के इलेक्ट्रोन अलग कर सकते थे । यह खोज यूरेनियम के इलेक्ट्रोन को अलग करने में उपयोगी हुई और उसमें से परमाणु बम का जन्म हुआ।

एटम के मध्य भाग में प्रोटोन होते हैं। उसका वजन इलेक्ट्रोन से १८३६ गुना अधिक होता है, फिर भी प्रोटोन का कद अत्यन्त लघु होता है। और उन सब के बीच रिक्त जगह होती है उसमें भी बहुत अंतर रहता है। एटम के भीतर इलेक्ट्रोन आदि की जो गति पायी जाती है उससे सायन्सवालों को लगता है कि हमारे जगत में कोई वस्तु

स्थिर नहीं है।

प्रोटोन के आसपास अनेक इलेक्ट्रोन घूमते हैं तब उन इलेक्ट्रोन का दबाव प्रोटोन पर होता है। यह दबाव यदि कोई युक्ति से कम हो तो प्रोटोन में सहज गति प्राप्त होती है। ऐसा दबाव कम करने की युक्तियाँ सायन्स वालों को हाथ लगी हैं।

जगत में जितने भी पदार्थ हैं वे सब भिन्न भिन्न अणु और परमाणु की रचना से बने हुए हैं। इस मत को हमारे शास्त्रों में कणाद का वैशेषिक मत कहते हैं। काँच के किसी टुकड़े को रेशम के रुमाल से घिसने पर उस काँच में बिजली उत्पन्न होती है। उस समय काँच के इलेक्ट्रोन कम होते हैं और रेशम के इलेक्ट्रोन बढ़ते हैं। इस प्रकार इलेक्ट्रोन में परिवर्तन हुआ करता है।

अमुक निश्चित मर्यादा की वेवलेंग्थ (400-700 nanometer) के प्रकाश के photons और तरंगों को मनुष्य की आँख ग्रहण कर सकती है। सब प्रकार की तरंगों को मनुष्य की आँख ग्रहण नहीं कर सकती। अतः आँख एक प्रकार का रेडियो रिसीवर है।

ईस.१९०० में प्रो.प्लान्क नामक वैज्ञानिक ने यह खोज की कि प्रकाश के भी इलेक्ट्रोन बन सकते हैं। उसके बाद खोज हुई कि जब प्रकाश के तरंग की लंबाई (वेव-लेंथ) कम हो तब उसमें अधिक शक्ति होती है और ज्यादा हो तब उसमें शक्ति कम होती है। यह बात वर्त्तमान में रेडियो का उपयोग करनेवाले भी समझ सकते हैं। प्रकाश के इलेक्ट्रोन की खोज होने के बाद एटमबम बनाने में अधिक सुविधा हुई। उन इलेक्ट्रोन की न्यूनतम शक्ति के जत्थे का नाम क्वांटा रखा गया। और सब क्वांटा का कद समान भी नहीं है, लेकिन जैसी प्रकाश की गति उसके अनुसार उसमें परिवर्तन होता है। जितनी गति (frequency) अधिक और वेव-लेंथ कम उतनी इलेक्ट्रोन की संख्या अधिक। उस हिसाब से साधारण प्रकाश के इलेक्ट्रोन की अपेक्षा एक्स-रे के इलेक्ट्रोन में अधिक शक्ति होती है। उस शक्ति को सेकण्ड से गुणा करनेपर जो अचलांक (तत्त्व) बनता है उसको एच (Planck’s constant) कहते हैं।

ईस.१९१३ में बोहर नामक वैज्ञानिकने ये सिद्ध किया कि जब परमाणु के भीतर का कोई ईलेक्ट्रोन अपनी (orbit) में से खिसककर बड़ी या छोटी कक्षा में आये तब उस परमाणु में से शक्ति निकलती है। उसके बाद श्रोडिंजर नामक वैज्ञानिक ने ऐसी खोज की कि जिनको इलेक्ट्रोन कहे जाते थे वे वास्तव में प्रकाश की लहरें या तरंगें थी। वे जिस स्थानपर घूमते हो वहाँ एक प्रकार का आकर्षक प्राणमय क्षेत्र बनता है।

बोहर के मत में जिस इलेक्ट्रोन को एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जाता है ऐसा कहा जाता था उसको श्रोडिंजर ने ऐसा कहा क़ि एक प्रकार के प्राण की गति में से दूसरे प्रकार की प्राण की गति उस समय होती है। ईस.१९०५ में प्रो.आइंस्टाइन ने ऐसा समीकरण (equation) बनाया था कि जड़ पदार्थ में से शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं। उसका प्रमाण निश्चित किया गया था। उस विषयक प्रयोग हुए और ईस.१९३२ में यह काम यंत्र से किया गया। यह सिद्धान्त बहुत क्रांतिकारी था। इसका अर्थ यह हुआ कि किसीभी चीज के छोटे से छोटे कण का कार्य- शक्ति में रूपांतर हो सकता है, यानी एक शेर (५०० ग्राम) वजन के पदार्थ को शक्ति में रूपांतरित किया जाय तो अरबों टन कोयले जलाकर जितनी गर्मी प्राप्त हो उतनी गर्मी पैदा हो सकती है।

उसके बाद यूरेनियम के एटम को तोड़ने के प्रयास किये गये। उसमें अनेक इलेक्टोन होने के कारण उसमें से बहुत शक्ति प्राप्त होगी ऐसा निश्चित हुआ। यह प्रयोग ईस.१९३९ में हुआ था। उसके बाद ईस.१९४५ के जुलाई में यूरेनियम की धातु में से पहला एटम बम बनाकर उसका प्रयोग मेक्सिको के जंगल में किया गया था। वह बम फूटा तब उसके धुंए के बादल ४०,००० फुट ऊपर गये थे। और जिस लोहे के टावर से वह फेंका गया था वह चूर चूर हो गया था। उसका असर कुछ अंश में १६० मील तक हुआ था।

ऐसा दूसरा बम जापान में हिरोशिमा शहर पर फेंका गया था। उस समय रास्ते पर चलते हुए लोग भी जिन्दा जल गये थे। और जो मकानों में थे वे मकान गिर जाने से दबकर मर गये थे। उस समय १,००,००० लोग मर गये थे। तीसरा ऐसा बम भी पिछले युद्ध के समय जापान के शहर नागासाकी पर फेंका गया था और उसके बाद ८ दिन में जापान अमेरिका की शरण हुआ था।

एटम अथवा परमाणु से इतनी शक्ति मिल पायी वह उसमें घूमनेवाले इलेक्ट्रोन से मिली, लेकिन एटम के नाभिक में (न्यूक्लियस में) क्या है उस के बारेमें लोग अभी ज्यादा जानकारी नहीं पा सके। उसका थोड़ा खुलासा इसके बाद के प्रकरण ९ और १० में दिया गया है।

जैसे पदार्थ में से प्रकाश शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं वैसे प्रकाश में से पदार्थ बनाने का यंत्र भी बना हुआ है। उस यंत्र को बेटाट्रोन कहते हैं। यह यंत्र प्रकाश की ऐसी मजबूत किरणें पैदा करता है कि जिससे १२ इंच मोटी फौलाद की पट्टी के आरपार ये किरणें पसार हो जाती है। पानी साधारणतया प्रवाही रूप में होता है। पर

बर्फ अथवा बाष्प के रूप में रूपांतरित कर सकते हैं। पानी को बाहर से गर्मी देकर अथवा पानी से गर्मी दूर करके पानी का स्वरूप बदलना सरल है। और वह समझमें आये ऐसा है। लेकिन प्रकाश के रूप में स्थित शुद्ध शक्ति का बाष्प या बर्फ के जैसे जड़ स्वरूप में रूपांतरण हो सके यह ख्याल अधिकतर लोगों को नया और आश्चर्यकारक लगेगा।

आकाश, वायु, प्रकाश, पानी और पृथ्वी ऐसा क्रम लिया जाय तो प्रकाश के ऊपर पानी पसार करके पृथ्वी तत्त्व निकाल सकते हैं। कहा जाता है कि अणुबम ऐसे बनाया गया था।

इस महत्त्वपूर्ण तत्त्व (खोज) को विकसित करके किसी पदार्थ में से बर्फ या पानी प्राप्त करने में मनुष्य समर्थ होगा ऐसी संभावना दिखाई पड़ती है, अर्थात् किसी भी चीज से मनुष्य को अपनी मनपसंद वस्तु प्राप्त करने का तत्त्व यंत्र द्वारा प्राप्त हो सकेगा।

यदि ऐसी खोज हो पायेगी तो मनुष्य अपनी मर्जी से बारिश भी ला सकेगा। वर्तमान समय में बारीश के लिये यज्ञ करने पड़ते हैं। उस यज्ञ की गर्मी के असर से और उसमें आहूत किये हुए घी, अनाज आदि पदार्थों से अलग हुए इलेक्ट्रोन की मदद से शायद हवा पर ऐसा असर होता होगा कि जिससे पानी के बादल बने और बारिश आये, लेकिन यज्ञ ठीक विधिपूर्वक होने चाहिये। वर्तमान सायन्सवालों को परमाणु के स्वभाव को बदलने की विधि अथवा नियम हाथ लगे हैं।

जिस यंत्र से परमाणु की शक्ति अलग की जाती है उससे विपरीत क्रिया बेटाट्रोन यंत्र से होती है। अर्थात् अलग हुई शक्ति का एकीकरण (fusion) होता है, अथवा जैसे एटम की शक्ति मनुष्य और नगर को जलाने में काम आयी ऐसे ही इस शक्ति से शायद हवा को ऐसे बदल सकते हैं कि उसमें से ऐसी सुगंध आये कि जो मनुष्य उसे के श्वास ले उसका शरीर मजबूत हो जाए।

हमारे शास्त्रों में उसका कैसा उपयोग होता है इसका अंदाज लगायें तो मूर्तिपूजा के समय जलाये जानेवाले घी के दिये के प्रकाश से और घंट की आवाज से जड़ मूर्ति के इलेक्ट्रोन अलग होते हैं, और यज्ञ के समय जो आहुति यज्ञकुंड में दी जाती है उससे जो हवा शुद्ध होती है वह जिसके श्वास से भीतर जाती है उसके शरीर भी स्वस्थ होते हैं।

मूर्तिपूजा

तंत्रमार्ग शक्ति की साधना का मार्ग है। वह धार्मिक पद्धति से जीव की शक्ति का विकास करनेका और मूर्ति का चैतन्य प्रकट करने का मार्ग है। उसमें नाद, बिंदु और कला ऐसे तीन भाग किये हुए हैं। नाद को एटम के अंदर का मध्यभाग प्रोटोन अथवा नाभिक कह सकते हैं। वह क्या वस्तु है यह अबतक ठीक से जानने में नहीं आया है। नाद में से एटम के भीतर के कण की शक्ति बनती है। उस शक्ति को बिंदु कहते हैं। उसको वर्तमान सायन्स वाले इलेक्ट्रोन कहते हैं। उस इलेक्ट्रोन को अलग करने से जो शक्ति प्राप्त होती है उसको कला कहते हैं। ॐकार के ऊपर भी बिंदु रखा जाता है। इस्लाम धर्म में ँ ऐसा चिह्न किया जाता है। उसमें भी बिंदु रखा जाता है। ऊपर बताये अनुसार हर एक एटम उसके अंदर के इलेक्ट्रोन का बना हुआ होने से हर एक जड़ वस्तु में भी तेज अथवा प्रकाश निहित है। उसे तंत्रमार्ग में प्राणशक्ति कहते हैं। इसलिये जिसकी इच्छा मूर्ति की पूजा करने की हो वह अपनी मनपसंद मूर्ति लेकर प्रथम मन्त्र के द्वारा प्राणप्रतिष्ठा करवाये तो जिसको प्रो.श्रोडिंजर प्राणमय शक्ति कहते हैं - ऐसी दशा उत्पन्न हो। मन्त्र नाद है। उस नाद से मूर्ति में नया बिंदु (नया एटम) बनता है। अब भी एटम में परिवर्तन करना हो तब दूसरे तेजस्वी एटम के प्रोटोन की शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। सामान्यतः पत्थर का प्राण नीचे की ओर गति करनेवाला होता है ऐसा तंत्र शास्त्र में कहा गया है। लेकिन उसकी प्राणप्रतिष्ठा हो तब उस प्राण में नया चैतन्य आता है। और प्राण उर्ध्वगामी होते हैं। मूर्ति में जड़त्त्व आरोपित है। जब उसकी पूजा षोडशोपचार से की जाती है तब उसमें से जड़त्त्व दूर होता है और वहाँ नए प्रकार का तेज प्रकट होता है। फिर जैसे रेडियो के तेज में कोई भी वेव-लेंथ रखकर जो चाहे वह सुन सकते हैं और अब टेलिविझन से रूप भी देख सकते हैं। ऐसे ही मूर्ति के तेज में जो रूप देखने की भक्त की इच्छा हो उस रूप को भक्त देख सकता है, अथवा मूर्ति से बात भी हो सकती है। पर उसका आधार पुजारी की भावना पर है। इसलिये शास्त्र में लिखा है कि शिव होकर शिव की पूजा करो। श्री रामकृष्ण परमहंस काली की मूर्ति के साथ बात भी कर सकते थे।

मूर्तिपूजा के समय होनेवाली आरती के समय घी का दीया गोलगोल घुमाया जाता है। और वह आरती नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे बारबार लायी जाती है।

उस समय मूर्ति के परमाणु के इलेक्ट्रोन का प्रकाश उस दिये में आता है और फिर उस आरती का प्रकाश हाथ से हम अपनी तरफ लेते हैं। कहीं कहीं मूर्ति के पास दीपक अखंड जलता हुआ रखा जाता है। इस तरह से भी मूर्ति के तेज को उस दिये में ला सकते है। पूजा के समय दिया करना और घण्ट बजाना यह बात विशेष उपयोगी है, क्योंकि मूर्ति जड़ नहीं है, अपितु इलेक्ट्रोन के तेज की बनी होती है। वह तेज भी जड़ नहीं है यह बात इसके बाद के प्रकरणों में समझायी जायेगी। नडियाद में संतराम महाराज की समाधिके आगे लगभग १०० वर्षो से अखंड दीया जलता हुआ रखा गया है।

पूजा के समय मन्त्र का जप करने की भी विधि है। शब्द को रूप के साथ संबंध है। हम गाय का नाम रखे और फिर उस गाय को उस नाम से बुलाये तो वही गाय पास आती है। शब्द में अचिन्त्य शक्ति है। इसलिये जिस प्रकार का जप होता है मूर्ति में उसप्रकार का तेज बनता है। जिसको हम साधारण बुद्धि से जड़ वस्तु मानते हैं वह वास्तवमें जड़ नहीं है। उसका निश्चय मूर्ति पूजा से हो सकता है। ऐसा निश्चय होने के बाद जगत में सब चेतनमय प्रतीत होने लगता है।

स्वप्न के तेज से ऐसी दशा प्राप्त होती है कि हम दूसरा जीव बनाकर उससे बात करते हैं। उसमें भी दिव्यशक्ति काम करती है।

अणु की शक्ति से अनाज की उत्पत्ति

अनाज की उत्पत्ति भी एक छोटे से दाने में से होती है। हर एक बीज में एटम की नाईं बहुत तेज होता है। जब उस बीज को अनुकूल खाद, जमीन, पानी और सूर्य की गर्मी मिलती है तब उस बीज के तेज में एटम की नाईं परिवर्तन होता है। एक गेहूँ के छोटे दाने में इतनी शक्ति है कि उसमें से अनेक गेहूँ के दाने उत्पन्न होते हैं। सौंफ़ के एक छोटे से दाने में से बड़ा पेड़ होता है। वटवृक्ष के बड-बट्टे के अंदर के छोटे से दाने में से बड़ा वटवृक्ष होता है। वटवृक्ष का दृष्टांत छान्दोय उपनिषद में उद्दालक ने श्वेतकेतु को दिया है। वहाँ आखिर में ऐसा भी कहा है कि **'स य एषोऽणिमै तदात्म्यमिदं सर्वं**

तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति ।' अर्थात् वह जो अणु है, उसी रूप वाला यह सर्व जगत है, वह सत्य है । वह आत्मा है, वह सत् तू है । पर मनुष्य की वासना उसके आत्मा के तेज को व्यापक होने नहीं देती । इसलिये मनुष्य ब्रह्मरूप नहीं हो सकता । वटवृक्ष के बीज में भी स्थूल तेज का जत्था होने से वह तेज वटवृक्ष जितना ही बढ़ सकता है ।

अनाज के दाने का आटा बनाते हैं तब उस आटे के छोटे कण में भी अनंत शक्ति निहित होती है । उस शक्ति को अलग करने के लिये उस आटे को सेंक कर रोटी बनाई जाती है, उसके बाद खानेवाले को वह रोटी शक्ति देती है । कच्चे दाने खाने से उतनी शक्ति नहीं मिलती । अतः गर्म रसोई मनुष्य को अधिक अनुकूल पड़ती है । और भोजन के बाद मनुष्य की जठरा में स्थित अग्नि से उस खुराक को अधिक गर्मी मिलती है । अतः उस कण के भीतर की अग्नि और बाहर की अग्नि मिलकर पूरे शरीर को गर्मी देते हैं । और उस गर्मी से मनुष्य का जीवन चलता है । लेकिन उसमें गलती होनेपर शरीर का तापमान बढ़े तो पूरे शरीर को बिगाड़ देता है । इसलिये जैसे एटमबम में प्रकाश की शक्ति को नियंत्रण में लाना पड़ता है ऐसे उस व्यक्ति को दवाई के अणु देकर शरीर को स्वस्थ बनाना पड़ता है ।

दवाई के अणु

प्रायः सब दवाई की मात्रा बहुत कम होती है, फिर भी वह शरीर को स्वस्थ बना देती है । सहस्रपुटी अभ्रकभस्म लेने की मात्रा बहुत कम होती है फिर भी उसमें अनेक वनस्पतियों के पूट अणुओं से जो शक्ति भरी होती है उससे शरीर स्वस्थ होने लगता है ।

इसी सिद्धांतपर होमियोपैथिक की दवाई दी जाती है । जो द्रव्य अधिक मात्रा में खाने से (स्वस्थ मनुष्य का) शरीर खराब होता है वही द्रव्य अत्यंत अल्प मात्रा में (उसी प्रकार की खराबीवाले बीमार व्यक्ति को) देने से शरीर स्वस्थ होता है । अल्प मात्रा में वह वस्तु दवाई जैसा काम करती है । रोटी खाने के बाद हजम नहीं हुई हो और दो तीन दिन तक अजीर्ण हुआ हो तो जली हुई रोटी का बहुत कम मात्रा में पाउडर दवाई के रूप में लेने से रोटी का अजीर्ण मिट जाता है । होमियोपैथिक दवाई का सिद्धांत जो ठीक से जानता है वह पहले मरीज के मर्ज के लक्षण जानने का प्रयास करता है और तत्सम्बन्धी अत्यंत छोटी गोली देकर दर्द मिटा सकता है । ऐसी छोटी गोली में इतनी शक्ति कहाँ से आती है ? उस गोली में दवाई का भाग बहुत कम होता है

परंतु उसको जब जठरा की अग्नि लगती है तब अंदर के भागमें वह दवाई एटमबम की नाई फूटती है और पूरे शरीर को असर करती है। अतः जिसको स्वस्थ रहना हो उसको अधिक खुराक खाने की जरुरत नहीं है। अपितु खाया हुआ खुराक ठीक तरह पचता है कि नहीं उसपर पूरा आधार है।

होमियोपैथिक दवाई के सिद्धांत पर बायोकेमिक की १२ दवाईयाँ खोजी गयी हैं। उसमें भी दवाई की मात्रा बहुत कम होती है। फिर भी उसके अणु में काफी शक्ति पायी जाती है। एक मनुष्य को हृदय का दर्द था। उसको केलिफोस १००० एक्स देने से ठीक हो गया था। दिखने में यह दवाई बहुत थोड़ी होती है फिर भी वह मनुष्य के बड़े शरीर को स्वास्थ्य प्रदान कर सकती है।

अणु में से मनुष्य की उत्पत्ति

मनुष्य की उत्पत्ति भी एक छोटे से बिंदु में से होती है। उसमें भी एक प्रकार का तेज होता है। उस बिंदु को जब स्त्री के शरीर की गर्मी मिलती है तब उसमें नई कला तैयार होने लगती है। उसमें से धीरे धीरे मनुष्य तैयार होता है। मनुष्य से भी आगे निकलना हो तो मनुष्य को तप करना सीखना चाहिए, और अमुक प्रकार का तप पूरा होनेपर बिंदु में जैसे परिवर्तन होता है वैसे मनुष्य में भी परिवर्तन होता है, उस निमित्त अलग अलग धर्मों में अलग अलग साधना बतलायी गयी है। हर एक प्रकार की साधना में भी कुछ न कुछ तेज का अंश निहित होता है। पारसी लोग सूर्य और अग्नि की पूजा करते हैं। हिंदुओं में शिव की पूजा भी अग्नि की पूजा है। पुराणों में लिखा है कि ब्रह्माजी ने भी पहले तप करके फिर सृष्टि की रचना की। जल के (वीर्य के) एक बिंदु में से अलग अलग प्रकार के और अलग अलग स्वभाव के मनुष्य कैसे बनते हैं यह जानना मुश्किल है। फिर भी ऐसा समझना चाहिये कि उस बिंदु में अनेक परमाणु होते हैं। उस परमाणु में उस जीव के पिछले संस्कार होते हैं। अतः जैसे और जितने संस्कार हो उसके अनुसार परमाणुओं का समूह बनता है। पिछले कर्म कैसे हैं और कितने हैं यह जानना मुश्किल है, इसलिये उसको हमारे शास्त्रों में अदृष्ट कहा है। अतः एक जीव प्रकृति की दृष्टि से कर्म के समूह का बना हुआ है। बड़ा होने के बाद उसको जिस प्रकार के जितने विचार आते हैं वे सब कर्म के स्वरूप और परमाणु के स्वरूप से बनते हैं इसलिये वास्तवमें जितने कर्म हैं उतनी वृत्तियाँ है। जितनी वृत्तियाँ हैं उतने प्रमाण हैं और उतने प्रमाता हैं। लेकिन उन सब का साक्षी (आत्मा) सब वृत्तियों को जाननेवाले होने से असंग है। वह जीव का लक्ष्यार्थ है और जीव का सच्चा स्वरूप है,

लेकिन अज्ञान से वृत्तियों को अपना स्वरूप मान बैठा है। इसलिये वृत्तियों को सुधारने के लिये योगमार्ग का अवलंबन लेना पड़ता है। उसमें से वृत्तियों का एटमबम बनता है और अनेक सिद्धियाँ देता है, लेकिन ये सब अंतराय है। वहाँ अटकना नहीं है। इसलिये संयम के द्वारा आगे बढ़ सकते हैं। संयम से वृत्ति के परमाणु तेज की तरंगों का रूप धारण करते हैं। ऐसा भी माना जाता है कि अणु की शक्ति ठीक से जानने से मनुष्य के जीवन का रहस्य भी जान सकेंगे। अणु बम ने जगत को विज्ञान की संहारक शक्ति का परिचय दिया है। साधारण मनुष्य परमाणु बम को एक भयंकर शस्त्र मानते हैं। मानवसंहार के लिये शस्त्र की खोज करनेवाले वैज्ञानिकों के लिये परमाणु बम एक महान सिद्धि है। लेकिन यह तो उसका संहारक पहलू हुआ, उससे भी अधिक लाभदायी उसका उज्जवल पहलु भी है। उस पहलू को देखते हुए लगता है कि परमाणु की शक्ति के विषय में अभी बहुत कम खोज हो पायी है।

परमाणु में कुदरत के जो गूढ़ रहस्य छुपे हैं उसको सुलझाने का कार्य नये विज्ञान का है। बीज में से वृक्ष कैसे बनता होगा ? अंडे में से बच्चा कैसे पैदा होता होगा ? मनुष्य का दिमाग कैसे सोचता होगा ? यह सवाल मनुष्य के उत्क्रांति काल से चले आ रहे हैं और कोई उसका सच्चा उत्तर नहीं दे सकता। अनेक वैज्ञानिकों ने ऐसे कूटप्रश्नों के पीछे उनकी जीवन शक्ति लगा दी है, फिर भी वे लोग उससे अनभिज्ञ रहे है। गर्भ में से मनुष्य जन्म लेता है और वह मनुष्य फिर दूसरे मनुष्य को जन्म देता है। मि. श्रोडिंजर नामक वैज्ञानिक कहता है कि इस सृजन शक्ति का कारण उष्णता है। उष्णता ही इलेक्ट्रोन को चक्र में घूमाती है और जीवन बनाती है। परमाणु बम बनाते समय भी पहले एक शक्ति तैयार की जाती है और उस शक्ति से अन्य अणु के परमाणु को तोड़े गये। जैसे संगीत के सुर के आधार पर असंख्य गीत बना सकते हैं, टेलीग्राम के कटकट में से अनेक शब्द बन सकते हैं। ऐसे ही जीवन में भी तीन प्रकार की प्रकृति यानी सत्त्व, रज और तम में से असंख्य जीव बनते हैं। प्रवासी के १५-९-४६ के अंक में ये प्रसिद्ध हुआ है कि वैज्ञानिक अमुक अणु में परिवर्तन करके मछली उत्पन्न कर सके हैं, लेकिन वह मछली कम आयुष्य वाली हुई। अमुक कंजे (कंजी आँखवाले) मातापिता के बच्चों की आँखें कंजी क्यों होती है ? ऐसे आनुवंशिकता का प्रश्न भी जीव की उत्क्रांति से जुड़ा हुआ है। कहा जाता है कि जब परमाणु की शक्ति का उपयोग ठीक से जानने में आयेगा तब नये प्रकार के प्राणी और वनस्पतियाँ उत्पन्न कर सकेंगे। नहीं देखे हुए और नहीं जाने हुये कद के और स्वाद के फल और सब्जियाँ भी

उगा सकेंगे।

विज्ञान ने विखंडन (fission) करने में जितनी सफलता प्राप्त की है उतनी सफलता संलयन (fusion) करने में अबतक नहीं प्राप्त की। परमाणु की शक्ति में से एटमबम (hydrogen bomb) की खोज संलयन की दिशा में विज्ञान की महान प्रगतिरुपी खोज है। उसमें से नया रसायण शास्त्र रचा हुआ है। सच्चा संलयन मनुष्य को कुदरत पर अधिक काबू दे सकेगा, उस समय जीव के गूढ़ रहस्य उजागर हो सकेंगे। संलयन यानी एक एटम के इलेक्ट्रोन को दूसरे एटम में डालकर दोनों एटम को नए प्रकार के बनाना। मनुष्य का जन्म भी ऐसे ही होता है। डेवीड डीट्झ नामक वैज्ञानिक लिखता है :

प्रकाश की शक्ति में से पदार्थ बन सकेगा और पदार्थ में से शक्ति निकाल सकेंगे।

परमाणु की शक्ति की कुछ भावी संभावनायें निम्नलिखित विज्ञानवाले बता सकते हैं :

(१) विमान २४ घण्टे में जमीनपर उतरे बिना ही पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा सकेगा।

(२) वर्तमान में विमान को पेट्रॉल भी साथ में लेना पड़ता है, इसलिये पेट्रोल का वजन भी उठाना पड़ता है। जब परमाणु की शक्ति से विमान चलेगा तब एक सेर (५०० ग्राम) पदार्थ में से १ करोड़ सेर पेट्रोल (जितनी शक्ति) उत्पन्न हो सकेगी। इससे जिस प्रकार मनुष्य के लिये विमान बने है उसी प्रकार अधिक वजनदार वस्तुयें एक स्थान से दूसरे स्थानपर विमान से भेज सकेंगे।

(३) एक हजार मनुष्य आराम से बैठ सके ऐसे बड़े आकार के विमान बन सकेंगे, और वह विमान नीचे उतरे बिना अमेरिका से सीधे हिंदुस्तान तक आ सकेंगे।

(४) मोटरकार में बारबार पेट्रोल भरने की जरुरत नहीं पड़ेगी। एक छोटी गोली जितने (यूरेनियम आदिके) परमाणुओं की शक्ति से एक मोटर सालभर चल सकेगी।

(५) ऐसी ही एक (यूरेनियम) की छोटी गोली से ठंड के दिनों में पूरे घर में गर्मी फैला सकेंगे। एक सेर यूरेनियम (२३५) में से २ करोड़ सेर कोयले जलाने से जितनी शक्ति मिलती है उतनी शक्ति प्राप्त कर सकेंगे।

(६) उपरोक्त कारणों से अब तेल (पेट्रोल) के लिए लड़ाई होगी नहीं क्योंकि भविष्य में पेट्रोल की जरुरत पड़ेगी नहीं।

(७) मीलें और कारखाने परमाणुशक्ति से चला सकेंगे। खेती भी उस शक्ति से हो

सकेगी। उसके परिणाम स्वरूप सब देशों में धन धान्य बढ़ेगा और आवश्यक वस्तुयें खूब सस्ती हो जायेगी।

(८) उपरोक्त कारणों से मनुष्य को बहुत फुरसत मिल पायेगी।

(९) अणुशक्ति से सोना भी बना सकेंगे। लोहे अथवा सीसे में से भी सोना बन सकेगा।

(१०) समुद्र के पानी में से और समुद्र के नीचे की जमीन में से अनेक मूल्यवान और उपयोगी द्रव्य निकाल सकेंगे। समुद्र के भीतर लोहा, तांबा, एल्युमिनियम, चाँदी, सोना आदि बहुत सी धातुयें होती है। समुद्र की खदानों में से अभीतक बहुत कम द्रव्य प्राप्त हो पाया है। पर परमाणु की शक्ति से उसमें से अच्छा लाभ प्राप्त हो सकेगा।

(११) जहाँ बहुत ठंड हो और सूर्य की गर्मी की जरुरत हो वहाँ ऐसी गर्मी दे सकेंगे।

(१२) हर एक देश में प्रचुर मात्रामें पदार्थ उत्पन्न होंगे इसलिये कच्चे माल के लिये लड़ाईयाँ नहीं होगी।

(१३) अथवा लड़ाई ऐसी भयंकर होगी कि किसीको लड़ाई में उतरने की इच्छा होगी नहीं।

(१४) अतः मनुष्य जाति यदि अक्ल लगायेगी तो अणुशक्ति में से अनेक लाभ प्राप्त कर पायेंगे और यदि बुद्धिमानी से काम नहीं लेंगे और आपसी द्वेष बढ़ेगा तो अणुशक्ति से मनुष्य जाति का शीघ्र विनाश होगा।

मुंबई में विद्युत से चलनेवाली ट्रेन जिस शक्ति से आगे चलती है उस संपूर्ण शक्ति का उपयोग यदि एक ही बार में (एक साथ) किया जाय तो ट्रेन पटरी पर से उड़ जाय उतनी शक्ति पावर हॉउस से आती है। अतः उस शक्ति के नियंत्रण के लिये दूसरी नेगेटिव शक्ति साथ में रखनी पड़ती है। विद्युत की ट्राम भी उसी नियम से चलती है। हमारे घर में बिजली का जो लट्टू जलता है उसमें यदि पावरहाउस की संपूर्ण शक्ति लगा दी जाए तो पूरा घर जल जायेगा। इसलिये उस शक्ति को तीन चार जगह (ट्रांसफोर्मर के द्वारा) कम करके फिर घर के उपयोग में लिया जाता है।

मनुष्य भी कम शक्ति से जमीनपर चल सकता है। उसके आत्मा की संपूर्ण शक्ति उपयोग में आये तो मनुष्य जमीन पर चल नहीं पायेगा। इसलिये मनुष्य को देह के अभिमान के साथ जुड़े रहना पड़ता है।

इससे समझमें आयेगा कि हर एक एटम में इतनी शक्ति है कि कोई चाहे तो पूरी

पृथ्वी को भी जला सकता है। क्योंकि प्रकाश की गति एक सेकण्ड में १,८६,००० मील है। और पृथ्वी की परिधि सिर्फ २५००० मील है। जिसने एटमबम की खोज की उसने सिर्फ एक नगर के लोगों को मार सके उतनी शक्ति पॉझेटिव भावमें रखी और शेष शक्ति को नेगेटिव भाव में रखी। अब भविष्य में यदि अलग अलग देशों के बीच शत्रुता बढ़ेगी तो कोई सायन्टिस्ट ऐसा भी पैदा होगा कि जो ऐसा बम बनायेगा कि इंग्लॅण्ड जैसे एक देश को एक मिनट में जला दे अथवा यूरोप जैसे एक बड़े खंड को भी जला सके, अथवा कोई बेवकूफ खूनी के हाथमें वह शक्ति आयेगी तो संपूर्ण पृथ्वी को भी भस्म कर सके, लेकिन वैसा करने में भस्मासुर की नाईं वह स्वयं भी जल मरे ऐसा संभव रहता है।

अणु की शक्ति की खोज बिलकुल नयी खोज है। हमारे जमाने में ही थोड़े ही वर्षों से जानने में आयी है और उसका पहला उपयोग लड़ाई में हुआ है। अतः अब सभी देशों के लोगों को सावधानी पूर्वक रहना होगा। उनको राग द्वेष कम करने चाहिये, मैत्री बढ़ानी चाहिये, और सब देशों का एक राज्य बनाकर एक पार्लामेंट बनानी चाहिये। सब देशों के लिये एक संयुक्त लश्कर रखना चाहिये। ऐसा नहीं किया गया और यदि राग द्वेष बढ़ेंगे तो थोड़े ही समय में समस्त प्रजा का एकसाथ नाश होगा।

जड़ वस्तु और शक्ति दोनों एक ही वस्तु है। छोटे से छोटी वस्तु में अर्थात् धूलि के कण अथवा रेत के कण में अथवा धातु के कण में अनंत शक्ति छुपी है। क्योंकि उसको गुणा करने का साधन प्रकाश का वर्गफल है। उसका अर्थ यह है कि प्रकाश की गति जितनी है उसको उसकी गति से गुणा करने से जो शक्ति आती है वह एक धातु के कण में समाई है। यह शक्ति कैसे प्राप्त कर सकते है ? जब तक जड़ पदार्थ यथावत रहे तब तक शक्ति निकलेगी नहीं, यानी जब दो पदार्थों को एकदूसरे से टकराया जाये और दोनों थोड़े नरम हो जाय तो उसमें से शक्ति निकलेगी नहीं, लेकिन अत्यंत कठोर दो पदार्थों को जोरसे टकराये जाय तब पदार्थ और उसकी शक्ति में अंतर आ जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार एटम अथवा परमाणु को तोड़ा जाता है। इस प्रकार जब परमाणु के जो टुकड़े होते है उन दोनों टुकड़ों का वजन किया जाय तो वह पूरे परमाणु की अपेक्षा कम होता है। यह प्रयोग सिद्ध करता है कि उसमें से अमुक शक्ति (पदार्थ में से रूपांतरित होकर) निकल गई है। इस तरह परमाणु में से शक्ति निकल सकती है ऐसा मालूम होने पर कुछ वैज्ञानिकों ने प्रयोग करना चालू किया। अंततः ऐसा निश्चित हुआ कि यूरेनियम अत्यंत कठिन पदार्थ है। उसमें स्थित परमाणु को यदि न्युट्रान से

गोली की तरह मारे तो यूरेनियम का एटम तोड़ सकते है। उस एटम के दो समान हिस्से होते है और उन दोनों हिस्सों का वजन मूल एटम के वजन की अपेक्षा कम होता है। इससे सिद्ध होता है कि उसमें से बहुत शक्ति निकल गयी है। कितनी शक्ति इस प्रकार निकल सकती है उसका हिसाब प्रो.आइंस्टाइन ने गणित से निश्चित कर के दिया है। इस प्रकार गणित शास्त्र और प्रयोगशास्त्र एकत्र हुए और प्रो.आइंस्टाइन को लगा कि अगले युद्ध के समय यदि अमेरिका का कोई शत्रु यह खोज कर पायेगा तो अमेरिका और पृथ्वी का नाश होगा। इसलिये आइंस्टाइन ने यह हकीकत अमेरिका के उस समय के प्रेसीडेंट रुझवेल्ट को बताई। प्रेसीडेंट रुझवेल्ट ने इस बातपर बहुत ही ध्यान दिया और परमाणु में से ऐसी शक्ति प्राप्त करने के लिये राज्य की ओर से काफी खर्च करके अमेरिका में ही प्रयोग करना आरंभ किया। उसमें अनेक विद्वान वैज्ञानिकों को नियुक्त किये गये। उसके फलस्वरूप ईस.१९४५ में परमाणु-बम की खोज हुई। परमाणु में से इस प्रकार शक्ति निकल सकती है ये जानने के बाद अब उसका उपयोग लड़ाई के लिये एवम् व्यवहार में सुख और सुविधा बढ़ाने के लिये कैसे हो सके उस हेतु दोनों दिशाओं में प्रयास हो रहे हैं। और मानव जाति का जैसा प्रारब्ध होगा उसके अनुसार हमारे जगत में या तो सुविधा बढ़ेगी या विनाश होगा। इस विषय में कोई ठोस निर्णय नहीं दिया जा सकता।

ॐ ॐ
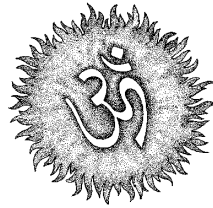
9: प्रकाश की लहरें अथवा तेज की तरंग

अबतक परमाणु के अंदर के इलेक्ट्रॉन को अलग करके उसमें से शक्ति प्राप्त करने का काम हो पाया है अथवा शक्ति का संलयन (fusion) करके उसमें से पदार्थ बनाने का कार्य वैज्ञानिक जान पाये हैं। लेकिन इलेक्ट्रोन खुद क्या वस्तु है ? उसके आसपास जो रिक्त जगह है उसका अर्थ क्या है ? और परमाणु के मध्य में जो प्रोटोन है वह क्या वस्तु है ? इस विषय में काफी खोज करना शेष रह गया है। सामान्य दृष्टि से देखा जाय तो पहले रुधरफोर्ड नामक वैज्ञानिक ने ये खोज की कि एटम एक सूर्यमाला जैसी वस्तु है अर्थात् जैसे सूर्य मध्य में है और उसके आसपास कुछ ग्रह घूमते हैं वैसे परमाणु के बीच में सूर्य की नाईं एक प्रोटोन होता है और उसके आसपास ग्रहों की नाईं इलेक्ट्रान घूमते रहते हैं। उसके बाद बोहर ने यह कहा कि हर एक प्रकार के एटम में इलेक्ट्रोन की दशा नीचे दी हुई आकृति के अनुसार अलग अलग होती है :

[(1) हाइड्रोजन एटम (2) हेलियम एटम और (3) लिथियम एटम की आकृति]
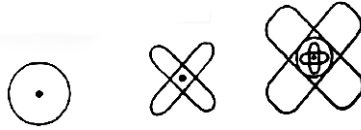
उपर की आकृति के अनुसार इलेक्ट्रोन की रचना है ऐसा बोहर नामक वैज्ञानिक ने मत दिया। फिर हर एक परमाणु में मध्य में जो प्रोटोन स्थिर है उसका वजन किया गया जो आसपास के इलेक्ट्रोन से अत्यंत अधिक मालूम हुआ।

पिछले प्रकरण में कहे अनुसार बीसवीं सदी के आरंभ में प्लान्क नामक वैज्ञानिक ने ऐसा मत दिया था कि (जैसे जड़ वस्तु में परमाणु होते हैं वैसे) परमाणु के अंदर के प्रकाश के भी कण (particle) होते हैं। उस कण का क्वान्टा हर एक प्रकाश के लिये समान नहीं होता अपितु प्रकाश की वेवलेन्थ (तरंग लम्बाई) के और जितनी उसकी गति (frequency) हो उसके प्रमाण में रहता है। नीले रंग का प्रकाश हो तो अधिक शक्ति वाले क्वान्टा रहते हैं और लाल प्रकाश में शक्ति कम होती है। इन्हीं कारणों से भगवान के चित्रों में नीले रंग का शरीर चित्रित किया जाता है। नीला रंग सत्त्वगुण का चिह्न भी है और लालरंग रजोगुण की निशानी है।

प्रकाश के भी photon बन सकते हैं उस बात को प्रो.आइन्स्टाइन ने भी समर्थन

दिया और फिर परमाणु का वजन और उसकी गति का नाप भी खोज लिया गया और उसके समीकरण (equation) भी दिये गये। जब परमाणु में स्थित इलेक्ट्रोन में परिवर्तन होते हैं तब उसके कद में बहुत छोटा सा अंतर पड़ता है और उसके फोटोन का तेज हमारी आँख में आनेवाले प्रकाश के समान होता है, उस कारण से हमें बाहर की वस्तुयें दिखती है। लेकिन अन्य प्रकार के परिवर्तन हो तो वे आँख से नहीं दिखते, पर उसको देखने के लिये स्पेक्ट्रम (spectrometer) जैसा यंत्र रखा जाता है।

तेज अथवा प्रकाश बंदूक की गोली जैसे कण (particle) के रूप में रहते हैं। इतनी खोज उपर बताये अनुसार हुई। उनको क्वांटा कहे जाते थे फिर भी इलेक्ट्रोन के प्रकाश की गति समान है कि नहीं अथवा इलेक्ट्रोन वास्तवमें कण है कि प्रकाश के तरंग के रूप में है यह निश्चित नहीं हुआ था। इसलिये उसको जानने के लिये एक प्रयोग किया गया।

इस प्रयोग का अर्थ यह हुआ कि वह सिर्फ गोली के रूप में अथवा क्वान्टा के रूपमें नहीं जाता, अपितु उसमें तरंग के रूप में अथवा लहरों के रूपमें भी फैलने की शक्ति है।

प्रयोग का परिणाम यह आया कि एटम के बाहर का प्रकाश ऐसा होता है कि वह बंदूक की गोली की तरह कण के रूप में जाता है और उसके सामने कोई आवरण आये तब तरंग के जैसा हो जाता है और एटम के अंदर का प्रकाश रिक्त जगह में तरंग के रूप में फैलता है, लेकिन जब कोई सामने अवरोध आता है तब उस प्रकाश में से बंदूक की गोली जैसे फोटोन अथवा क्वान्टा (कण) हो जाते हैं। यह सिद्धांत इलेक्ट्रोन और प्रोटोन को भी लागू पड़ता है। इस सिद्धांत के अनुसार प्रकाश कभी कण (particle) के रूप में होते हैं और कभी तरंगों (wave) के रूप में दिखता हैं। वे दोनों एक ही वस्तु के दो पर्याय है अथवा दिखावे है।

यह सिद्धांत अब हम आत्मा के स्वरूप में लगाये तो चेतन कभी ब्रह्म रूप से व्यापक दिखता है और कभी जीव रूप से चित्कण रूप में भी दिखता हैं। वे दोनों एक ही चैतन्य के दिखावे हैं। जब देह का अभिमान उत्पन्न होता है तब जीव कण जैसा दिखता है।

और जब हम कोई वाद्य का तार अपनी ऊँगली से छेड़कर ऊँगली हटा लेते हैं तब भी तार बजता रहता है। वह तार की स्वतंत्र गति है। मुंबई से किसीका संगीत ब्रोडकास्टिंग होता हो तब प्रथम वह आवाज परमाणु (कण) के रूप में होती है, फिर

यंत्र के द्वारा जब वह आवाज निकलती है तब तरंग का रूप लेती है और आखिर जब वह तरंग एरियल से टकराते हैं तब परमाणु (कण) का रूप धारण करते हैं। तंत्रशास्त्र में उसे नाद, बिंदु और कला कहते हैं। उसकी तुलना इससे करना हो तो बीच के तरंगों को नाद कह सकते हैं, उसमें से जो परमाणु (कण) बनते हैं उसे बिंदु कह सकते हैं और उसका फल जो संगीत है उसे कला कह सकते हैं। ऐसे ही चैतन्यरूप व्यापक आत्मा माया में आये तब वह बिंदु का रूप धारण करता है और उसमें से मनुष्य के जीवन की कला उत्पन्न होती है। उपरोक्त सिद्धान्त ऐसा है कि इलेक्ट्रोन में दो स्वभाव होते हैं : एक तरंगरूप और दूसरा कण रूप, दोनों एक ही वस्तु के अथवा एक ही प्रकाश के दिखावे है। जब तरंगों के सामने कुछ (आवरण) आता है तब वह कण बन जाती है और आत्मा जब किसी आसक्ति में फँसता है तब कण जैसा (जीव) दिखता है। कण जैसा कुछ हो नहीं जाता, अपितु वैसा दिखता है। यदि कण जैसा हो जाता हो तो स्वप्न से उठ नहीं सकता।

नाद अमुक स्थान में बंधा हो तब सबको एक साथ असर करता है इसलिये जीव को अमुक प्रकार के बंधन में रहना पड़ता है और जब उसको अमुक स्थान का बंधन नहीं होता है तब वह एक दूसरे के असर को दूर करता है। जहाँ नाद का बंधन होता है वहाँ स्थिति उत्पन्न होती है उसको फोटोन अथवा क्वान्टा कहते हैं।

बोहर नामक वैज्ञानिक ने परमाणु के मध्यमें एक प्रोटोन दिखाया था और उसके आसपास कक्षा में इलेक्ट्रोन (सूर्यमाला की नाईं) घूमते रहते हैं ऐसा बताया था, यह एक प्रकारकी जड़ दशा जैसा हुआ और उस दशा में देश, काल और बीच की जगह नियत रूप से होते हैं ऐसा सिद्धांत था।

लेकिन ईस.१९२७ में प्रो.हाईसनबर्ग ने नये प्रकार की क्वान्टम थियरी सायन्स के सामने रखी। हाईसनबर्ग ने ये कहा कि एटम के अंदर के भाग में भी देश काल नियत नहीं है। जैसे प्रो.आईन्स्टाइन ने सापेक्षवाद से बाह्य जगत के देशकाल और ईथर सापेक्ष बना दिये वैसे प्रो.हाईसनबर्ग ने परमाणु के अंदर के देश काल सापेक्ष बना दिये और उससे परमाणु के भीतर के जगतमें नया नियम अधिक सच्चा और सरल जानने में आया।

हमारे मन की दशा का अवलोकन करेंगे तो भी मन के तरंग उठने का कारण इन्द्रियों की भावना है और उसका मूल बाहर की वस्तुओं में है ऐसा हम मानते हैं, पर वास्तवमें व्यवहार में इन्द्रियों के सिवाय दूसरा कोई प्रमाण सच्चा मानना यह सिर्फ

अनुमान है। विषय सामने हो फिर भी इन्द्रियों में विकार न आये तो विषयों में विकार का कारणपना नहीं है। नींद में ऐसा बनता है। विषय नहीं होते फिर भी स्वप्न में बनते हैं। उसी प्रकार सिर्फ मन की कल्पना से इन्द्रियों में विकार उत्पन्न हो सकते हैं। विषय आँख से दिखते हैं, मन को आँख से नहीं देख सकते। इस प्रकार जो दृश्य है और जो दृश्य नहीं होता उन दोनों का असर जैसे मनुष्य के जीवन पर होता है वैसे ही परमाणु के अंदर जो खाली आकाश है जो आँख से नहीं दिखता उसका भी उपयोग है। जैसे दृश्य फोटोन का उपयोग है वैसे अदृश्य जगह का भी उपयोग है।

पहले के सायन्स वालों ने यह माना था कि निम्नलिखित पाँच वस्तुओं को देख नहीं सकते।

(१) देश (२) काल (३) आकाश (४) दूर की वस्तुयें और (५) दूर की घटनायें

हमारी आँख में रज कण पड़ा हो तो हम देख नहीं सकते। पर दूसरे देख सकते हैं। दिन में तारे होते हैं फिर भी सूर्य के प्रकाश के कारण देख नहीं सकते फिर भी रात्रि को देख सकते हैं। लेकिन उपरोक्त पाँच वस्तुयें क्या है और कैसी हैं उसके लिए सायन्स में अनेक अनुमान लगाये जा रहे थे। सापेक्षवाद के सिद्धांत की शुरुआत के बाद प्रथम तीन का पता चला है अर्थात् देश अथवा स्थान हमारी दृष्टि के साथ उत्पन्न होता है और काल का आधार स्थानपर होने से काल भी विचार के साथ अथवा दृष्टि के साथ उत्पन्न होता है और इसलिये आकाश भी सापेक्ष तत्त्व है। यह विषय ठीक से समझमें आये तो फिर जो वस्तु अत्यंत दूर हो और जो घटनायें अत्यंत दूर हो अथवा पहले हो गई हो अथवा भविष्य में होनेवाली हो उसका खुलासा पाने का काम सरल हो जायेगा।

बोहर के मत में एटम के अंदर जो इलेक्ट्रोन गोलाकार में घूमते हुये कल्पित किये गये थे उसको कोई देख नहीं पाया था, क्योंकि उसमें से प्रकाश नहीं निकलता था लेकिन एक प्रकार का अनुमान था। अतः सायन्स के अनुसार घटना को देख सकते हैं लेकिन उसके मूल में जो प्रोटोन अथवा इलेक्ट्रोन हैं उनको नहीं देख सकते। सूर्य के अंदर अनंत इलेक्ट्रोन और प्रोटोन हैं यह बात भी अनुमान से कही जाती है। हम सिर्फ उसके फोटोन अथवा फोटोग्राफ अथवा क्वान्टा जो हमारी आँख को अथवा चमड़ी को छूते हैं उन्हीं को जान सकते हैं।

एटम के अंदर क्या दिख सकता है और क्या दिख सकता नहीं है उस विषयपर खोज करते हुए प्रो.हाइसनबर्ग को लगा कि बड़े एटम में घूमने वाले इलेक्ट्रोन में से

बाहर के भागमें जो घूमते हो उनको देख सकते हैं लेकिन बीच के गर्भ में स्थित प्रोटोन अथवा उसके नजदीकी इलेक्ट्रोन को नहीं देखा जा सकता। उसके बाद उसने नया गणित बनाया और उसमें यह बताया कि हर एक इलेक्ट्रोन में इस प्रकार की मेट्रिक्स ☰। ☰। ☰। होती है उसपर से उसकी निश्चित जगह अथवा निश्चित गति कौनसी है यह नहीं जान सकते लेकिन देखनेवाले का संबंध निश्चित करे तो निश्चित अनुमान हो सकता है। संक्षेप में हाईसनबर्ग के गणित का परिणाम यह आया कि जब अनेक इलेक्ट्रोन एक साथ घूमते हो तब उनके संबंध ठीक रहते हैं और उनके देशकाल भी ठीक रहते हैं, इससे समीकरण (equation) हो सकता है, पर जब कोई इलेक्ट्रोन स्वतंत्र घूमता हो तब वह तरंग के रूपमें अथवा लहर के रूप में रहता है और उसके देशकाल ठीक से नाप नहीं सकते इस सिद्धांत को उसके बाद के दो वैज्ञानिक डी. ब्रोग्ली और श्रोडिंजर ने समर्थन दिया। इस सिद्धांत का अर्थ हमारे व्यवहार में करे तो जब कोई जीव किसी भी समाज से मिलता है तब वह दूसरे मनुष्य को असर करता है और दूसरे उसको असर करते हैं और उसमें से अमुक कानून और अमुक नियम उत्पन्न होते हैं, पर यदि किसीको ज्ञानी अथवा भक्त होना हो तो उनको अमुक अंश में अकेले रहना चाहिए। ज्ञानी और भक्त को अकेले रहना अच्छा लगता है। वे समाज को हानि नहीं पहुँचाते और इसलिए समाज भी उनको हानि नहीं पहुँचाता।

हाईसनबर्ग ने कहा कि इलेक्ट्रोन का सच्चा कद बनाना मुश्किल है। इलेक्ट्रोन की तरंगों की वेव-लेंथ का आधार वह कौन से समूह में किस स्थानपर है उसपर है। अतः जब वह समूह खाली जगह में घूमता हो तब तरंग कोई दृश्य वस्तु नहीं बनती। जब इलेक्ट्रोन का समूह किसी पदार्थ से टकराता है अथवा किसी आकर्षक क्षेत्र के पास आता है तब उसके देश काल जान सकते हैं, उस समय इलेक्ट्रोन की गति कितनी है और उनके देशकाल कैसे हैं, उसका निश्चित अर्थ निकल सकता है, फिर भी उस समय भी वह कल्पित वस्तु जैसे होते हैं, क्योंकि दूसरी क्षण में दूसरे देशकाल उत्पन्न होते हैं।

सापेक्षवाद से ये सिद्ध हुआ है कि जो इलेक्ट्रोन गति में हो उसका वजन गति बिना के इलेक्ट्रोन से अधिक रहता है। इसलिये गतिवाले में अधिक शक्ति होती है। अतः जब किसी इलेक्ट्रोन को जानना हो तब उसके देशकाल ठीक से जानने चाहिये।

जब तरंगों का समूह हो तब वह धीरे से गति करता है। उस समय उसका काल भी नाप सकते हैं, फिर भी उसमें जो इलेक्ट्रोन व्यक्तिगत होते हैं उनकी गति अति

ज्यादा होती है। और उस गति को नाप नहीं सकते। यानी जब इलेक्ट्रोन का गणित किया जाता है तब वहाँ देशकाल है ऐसा बता सकते है पर वस्तु को ठीक से नहीं बता सकते।

बोहर नामक सायन्टिस्ट ने परमाणु की जो रचना बनाई और जो इस प्रकरण के आरंभ में दी हुई है वह मानो एक दृश्य और जड़ वस्तु हो ऐसा मालूम पड़ता है। उसके बाद श्रोडिंजर ने उसकी जो रचना समझाई वह मानो प्राणमय कोष जैसी हो वैसा मालूम पड़ता है। और उसके बाद सर जेम्स जीन्स उस रचना को जिस प्रकार से समझाते हैं, वह हाईसनबर्ग की नयी खोज के आधारपर होने से और उसमें देशकाल की कल्पना होने से सूक्ष्म से सूक्ष्म जगत भी (परमाणु और इलेक्ट्रोन का जगत भी) मन:कल्पित हो वैसा मनोमय हो जाता है। इस प्रकार सायन्स में जैसे तैसे अन्नमय कोष से प्राणमय कोष में आये और अब वे ऐसा कहते हैं कि जिसको हम जड़ वस्तु कहते हैं ऐसे इलेक्ट्रोन की तरंग भी मनोमय है। यह बात अधिक स्पष्ट करने के लिये नीचे कुछ हकीकत दी जा रही है :

फोटोन अथवा क्वान्टा के भाग नहीं हो सकते। और हमारी आँखें भी अमुक फोटोन को ही पकड़ सकती है। मिसरी के एक छोटे से छोटे अणु में से मीठा स्वाद नहीं आ सकता और कस्तूरी के एक छोटे से छोटे अणु में से सुगंध नहीं आ सकती। कोई घंट का आवाज भी अमुक अंतर पर हो तब सुनाई देता है और कोई तारा खूब धुंधला हो तो वह आँख से दिख नहीं सकता। इसलिये एक फोटोन का अनुभव हमारी इन्द्रियों से नहीं हो सकता, पर जब अनेक फोटोन एकत्र होते हैं तब हमारी इन्द्रियों को असर कर सकते हैं। और जैसे कोई बंदूक में से गोली निकले तब कुछ अंश में बंदूक को पीछे की और धक्का मारती है वैसे कोई एटम में से फोटोन निकलता है तब उस एटम को धक्का मारता है, अतः दूसरी क्षण में एटम में परिवर्तन हो जाता है।

हमारे शास्त्रों में जो कणाद का वैशिषिक मत है उसे परमाणुवाद कहते हैं। उसमें भी ऐसा बताया गया है कि एक परमाणु से जगत बनता नहीं है, अपितु अनेक परमाणु से जगत बनता है।

किसी भी परमाणु का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उसकी स्थिति और उसकी गति जानना चाहिए। हर एक ईलेक्ट्रोन प्रकाश की तरंग के रूप में होने से यह विषय पहले ठीक से जानना जरूरी होता है। जब अनेक तरंग एकसाथ हो तब गति सरलता से जान सकते हैं, पर तरंगों की संख्या कम हो तब उसकी वेव-लेन्थ जानना मुश्किल

होता है। रेडियो का उपयोग करते समय एक वेव-लेन्थ से दूसरी वेव-लेन्थ पर काँटा (सुई) ले जाते हैं तब बीच में जो घर्षण होता है उसका यह कारण है। यदि इलेक्ट्रोन की गति जानना हो तो उसकी लंबी वेव-लेन्थ करना चाहिए। इस तरह इलेक्ट्रोन की गति नाप सकते हैं। अत्यंत छोटी वेव-लेन्थ के इलेक्ट्रोन की स्थिति नाप सकते हैं, लेकिन गति नापना कठिन है। लंबी वेव-लेन्थ में इलेक्ट्रोन खुद कहाँ है वह जान नहीं सकते। छोटी वेव-लेंथ में इलेक्ट्रोन कहाँ है यह जान सकते हैं। अतः जब इलेक्ट्रोन की बात करते हैं तब हमारा ज्ञान सही है कि नहीं उसकी जाँच करनी चाहिए और जब तरंगों की बात करते हैं तब वह वस्तु ही अनिश्चित हो जाती है। सर जेम्स जीन्स कहते हैं कि, जैसा हमारा ज्ञान हो उसके अनुसार हमारा ज्ञेय बनता है। यह खोज आत्मज्ञान में बहुत उपयोगी है। मानो कोई बन्दर हमारे जगत को देखता है, तो उसकी आँख में जितने फोटोन आते है उसपर से उसका जैसा ज्ञान हो उसके अनुसार वह उसके जगत की कल्पना करता है। उसी प्रकार गाय का जगत, कुत्ते का जगत अथवा मछली का जगत उनके ज्ञान के अनुसार होता है। उल्लू को दिन में अँधेरा दिखता है वह भी उल्लू के ज्ञान की दशा है। वह अँधेरा भगवान ने नहीं बनाया। वैसे ही मनुष्य को जो भेद (द्वैत) दिखता है वह मनुष्य के ज्ञान की दशा है। वह भेद भगवान ने नहीं बनाया।

इलेक्ट्रोन को सिर्फ स्थान ही नहीं, अपितु उसके साथ काल भी है और उससे कौनसे समय, कौनसी जगह वह कैसा दिखेगा वह पहले से निश्चित नहीं हो सकता। जिस समय देखनेवाला उसको देखता है उस समय कैसा दिखता है उसपर उसका आधार है। वर्तमान के कोई सायन्टिस्ट (वैज्ञानिक) को पूछें कि इलेक्ट्रोन क्या चीज है ? उसके उत्तर में वह हमें पूछेगा कि 'तुम इलेक्ट्रोन के बारेमें क्या जानते हो ?' हम जो जानते हो वह बताएंगे। उसके उत्तर में सायन्टिस्ट कहता है 'उसका नाम इलेक्ट्रोन है। ' अर्थात् इलेक्ट्रोन विषयक तुम्हारा जो ज्ञान है वह इलेक्ट्रोन है। यह दृष्टांत जगत के विषय में लगाये और कोई शिष्य गुरु से पूछे कि 'जगत क्या वस्तु है ?' उसके उत्तर में गुरु शिष्य को पूछे कि 'तू जगत के बारे में क्या जानता है ? ' उसके उत्तर में शिष्य जो जानता हो वह कहता है। उसके उत्तर में गुरु कहते हैं कि 'उसका नाम जगत है। 'अर्थात् मनुष्य का जैसा ज्ञान वैसा उसका जगत है यानी ज्ञान के अनुसार ज्ञेय है।

किसी विमान के पास रहकर कोई रेत के मरुस्थल का निरीक्षण करने जाय तो विमान की गति के कारण कुछ रेत के कण उड़े बिना रहेंगे नहीं। वैसे ही परमाणु में

रहनेवाले प्रकाश की तरंगो की जाँच करने पर हमारी दशा उसमें मिल जाती है। जैसे जितने विमान रेत के मैदान को देखते हो उतने प्रकार के रेत के बादल उड़ते हैं वैसे ही जितने देखने वाले हो उतने तरंगों के आकार बन जाते हैं। यह बात बंदर के दृष्टान्त से और पशु पक्षियों के दृष्टांत से ऊपर समझायी गयी है। यह सिद्धांत माया का स्वरूप समझाने में अत्यंत उपयोगी है।

प्रो.हाईसनबर्ग ने क्वांटम थियरी का जो सिद्धांत प्रस्तुत किया उसमें जो वस्तु देखने में आती है अथवा जानने में आती है उसके ऊपर ही प्रयोग किया है। जो वस्तु देखने में नहीं आती अथवा जानने में नहीं आती उस पर प्रयोग नहीं किया है। मनुष्य को जगत कैसा दिखता है ये उसने सिद्ध करने का प्रयास किया और उसमें उसने बहुत सफलता प्राप्त की। अतः अब प्रकाश की तरंगों को माया की तरंगों के जैसी कही जाती है। उसके निश्चित किये हुए गणित के अनुसार हम कोई इलेक्ट्रोन की जगह (स्थिति) और गति को नापने का प्रयास करेंगे तो एक प्रयोग से उसकी स्थिति निश्चित मिलेगी, लेकिन उस समय उसकी गति नहीं मिल सकेगी। उस दशा में इलेक्ट्रोन में छोटी वेव-लेन्थ होती है। दूसरे प्रयोग से लंबी वेव-लेंथ करेंगे तो गति मिलेगी पर ईलेक्ट्रोन कहाँ है उसका पता नहीं चलेगा। अतः एक ही इलेक्ट्रोन को दो तरह के तरंगों के रूपमें देख सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि इलेक्ट्रोन दो प्रकार का है, पर हमारा ज्ञान उस समय दो प्रकार का हो जाता है। आत्मज्ञान के प्रयोग में भी जब जीव ब्रह्मरूप से व्यापक है ऐसा अनुभव करने जायेंगे तो जीव की जगह मिलेगी नहीं और जीव को एक जगहपर शरीर में मानेंगे तो जीव की व्यापकता और गति का अनुभव नहीं होगा। उसका अर्थ यह नहीं है कि जीव दो प्रकार का है, लेकिन हमारा ज्ञान उस समय कैसा है उसका पता चलता है।

प्रकाश की तरंगों की यह बात समझने के लिये सर जैम्स जीन्स एक दृष्टान्त इस प्रकार देते हैं कि मान लो कि हमको अपने कोई मित्र जहॉन स्मिथ को मिलने की इच्छा है और उससे हमारे उधार दिये हुए पैसे वापस लेने हैं। अब किसीने हमको खबर दी कि जॉन स्मिथ तीन दिन से लन्दन से बाहर गये है। इसका अर्थ यह हुआ कि लन्दन से तीन दिन की यात्रा हो सके उतने स्थान में जॉन स्मिथ होना चाहिए। अब किसीने बताया कि वह न्यूयॉर्क गये हैं। तो हमारा ज्ञान समुद्र के बीच स्टीमर में गया, क्योंकि तीन दिन बीतने पर उसकी स्टीमर समुद्र में होगी। अब हम उसका निश्चय करने के लिये टेलीग्राम करने टेलीग्राम ऑफिस जाते हैं, लेकिन जॉन स्मिथ

खुद ही रास्ते में मिल जाता है। ऐसी एक घटना को लेकर अलग अलग कल्पनायें हमारे मनमें एक साथ आ जाती हैं। उससे दूसरा अज्ञान भी दूर होता है। यह ज्ञान प्रकाश की गति के ज्ञान से भी अधिक गतिवाला हुआ। क्योंकि दोनों के बीच जो अंधकार था वह अज्ञान का अंधकार था। इसी तरह हम जिन तरंगों की बात करते है (इलेक्ट्रोन, फोटोन आदि) वे मनुष्य के ज्ञान की तरंगें हैं।

इलेक्ट्रोन की तेजस्वी तरंगों का स्वभाव फैलने का होता है। एक क्षण में वह अनंत कोटि दिशामें अनंत अंतर में फ़ैल जाते हैं। अतः हम ईलेक्ट्रोन को जानने के लिये पूरा ज्ञान लगाये तो भी वह वास्तवमें कैसा है यह जान नहीं पायेंगे। यही माया का स्वरूप है। प्रकाश की तरंगों को देश और काल में बाँध नहीं सकते। फिर भी मनुष्य प्रकाश के आगे पर्दे रखकर उसको बाँध पाये हैं और उसमें से परमाणु की शक्ति उत्पन्न कर पाये हैं।

जैसे ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म को सर्वव्यापक मानते हैं, लेकिन ब्रह्म के प्रकाश को बाँधना हो तो ज्ञानी स्वयं देह है ऐसा मानकर विचरे तो उतना समय वह प्रकाश देह जितना होकर रहे और देह के काम कर सकता है। समाधि में उस प्रकाश को देवलोक में भेजें तो वहाँ की घटना भी जानकर आएगा। इस प्रकार प्रकाश माया से यानी अमुक नाप से बंध सकता है। प्रकाश की तरंग प्रकाश का सच्चा स्वभाव है और वे देशकाल में बंधते नहीं है पर उस प्रकाश के कण (particle) बनाकर उसको बाँधना चाहे तो बंध सकता है। सर जेम्स कहते है कि :

हमारे जीवन में हमें देशकाल में रहनेवाली वस्तुयें देखने की आदत बन गयी हैं और वह आदत तुरंत सुधर जाए ऐसी नहीं है। यह बड़ी गलती है और उस गलती के चलते ही अनेक देशों के मनुष्यों के बीच लड़ाईयाँ हुआ करती हैं। ऐसे अज्ञानी लोगों के संग में रहकर जीवन को सुधारना अत्यंत कठिन है। अज्ञानी मनुष्य और पशु में अधिक अंतर नहीं है। दोनों देशकाल की सीमा में जीवन बिताते हैं।

इस गलती का मुख्य कारण यह है कि जहाँ अनेक फोटोन अथवा क्वान्टा एक साथ देखने में आते हैं, वहाँ नियति और प्रारब्ध सच्चा होकर रहता है। इसलिए समाज में समाज के स्तर से बंधे हुए मनुष्य को मुक्ति मिलना कठिन हो जाता है।

देशकाल जगत की रचना का हिस्सा नहीं है, लेकिन हमारी इन्द्रियाँ जो देखती हैं उस प्रमाण में देशकाल निहित है। उल्लू को दिन में अंधेरा दिखे तो हमारा उजाला उसके लिए अंधकार हो जाता है। ऐसे ही मनुष्य परमाणु में सिर्फ इलेक्ट्रोन देखे और

उसमें से बम बनाये तो उसके लिए वह इलेक्ट्रोन बन जाता है। वास्तवमें जैसे उल्लू का देखा हुआ अंधकार सच्चा नहीं है वैसे मनुष्य के देखे हुए इलेक्ट्रोन भी सच्चे नहीं हैं पर वे सच्चे की तरह काम में आते हैं। स्वप्न में ऐसा बनता है। स्वप्न में हमारे अज्ञान के अलावा दूसरा कुछ भी नहीं है, फिर भी वह अज्ञान हमको दंगे के बीच में डाल सकता है अथवा कोई सुख के प्रसंग भी खड़े कर सकता है। स्वप्न में जीभ को स्वाद आता है और नाक को सुगंध भी आती है।

यदि प्रारब्ध का विचार करे तो जगत का भविष्य जगत की वर्तमान दशा में है। जैसे कोई ट्रेन चलती हो तो उसको अमुक नियम के अनुसार चलना पड़ता है, लेकिन उसमें बैठा हुआ मनुष्य किसी भी स्टेशन पर उतर सकता है। उसकी दृष्टि में हर एक क्षण में उसके विचार के अनुसार उसकी गति होती है।

ज्यों ज्यों मनुष्य में स्वतंत्रता आती है त्यों त्यों बाहर के क़ानून टूटते जाते हैं। अतः जहाँ आबादी बढ़ती है वहाँ पराधीनता बढ़ती है। अब विमान और रेडियो आदि की खोज से सब देश एक दूसरे के नजदीक आ गये हैं। सभी देशों में आबादी बढ़ी है। और अज्ञान भी बढ़ा है, इसलिए थोड़े ज्ञानियों का कहना मानने की किसीको फुरसत नहीं है।

अतः इन्द्रियों से मिलनेवाले ज्ञानपर अश्रद्धा उत्पन्न होनी चाहिये। १९वीं सदी का सायन्स कहता था कि हमारे बाहर सच्चा जगत है, बीसवीं सदी का सायन्स कहता है कि हमारा जगत यानी हमारे ज्ञानमें आनेवाला जगत हमें समझना है। जगत स्वयं कहता नहीं कि वह खुद कैसा है, अतः जगत को सिर्फ ज्ञात-सत्ता है।

ॐ ॐ

१० : जगत और जीव का संबंध

यदि बाहर का जगत सच्चा हो तो वह जैसा दिखता है वैसा है कि नहीं उसका पहले निश्चय करके फिर जो जगत दिखता नहीं है उसका विचार आरंभ कर सकते हैं। यदि जगत सिर्फ स्वप्न की नाईं जीव के कल्पित संबंध की वस्तु हो तो उसका सबूत मिलना चाहिए। नये सायन्स वाले उपरोक्त दूसरी बात को सच्ची मानते हैं, क्योंकि उनको वैसा प्रमाण मिलसकता है। अतः जो दिखता है उसका आधार उसके पीछे रहनेवाली कोई अदृश्य अथवा अज्ञेय वस्तु पर नहीं है अपितु उसके पीछे रहनेवाले मनुष्य के मन पर है। इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और उनकी रचना स्वयं कहते नहीं कि भगवान ने उनको कैसे बनाये हैं। सापेक्षवाद ने जैसे गति, लंबाई, वजन आदि को सापेक्ष बना दिये हैं वैसे क्वांटम थियरीवालों ने इलेक्ट्रोन, प्रोटोन आदि को सापेक्ष बना दिये हैं। जो दिखता है उसपर प्रयोग करने से जितनी अपेक्षा थी उससे भी अधिक ज्ञान मिल पाया है। जो नहीं दिखता उसकी यदि स्वतंत्र सत्ता होती तो उतना ज्ञान नहीं मिल सकता था। पिछले प्रकरण में बताये अनुसार इलेक्ट्रोन को प्रकाश के कण मानने की अपेक्षा प्रकाश की तरंग मानने से जगत का ज्ञान अधिक स्पष्ट होता है। सिनेमा के अंदर परदा हो तो प्रकाश की तरंगें कण (particles) के रूप में बदल जाती है। परदा नहीं हो तो सिर्फ प्रकाश की तरंगें रहती है और उसमें क्या है वह जान नहीं सकते। सिनेमा में जो कुछ दिखता है वह घटना (इवेंट) है, क्योंकि उसमें देशकाल का खेल मालूम पड़ता है। पर देशकाल दृश्य नहीं हो सकते। उसको जानने का प्रयास करें उतनी देर में काल बदल जाता है। अतः जब कोई प्रसंग बनता है तब उस प्रसंग के साथ देशकाल देखने में आ सकते हैं। और प्रसंग को जानने वाला कोई नहीं हो तो वह बनता है कि नहीं ये नहीं कहा जा सकता। अतः जीव का जगत के साथ जो संबंध मालूम पड़ता है वही उस जीव का जगत है।

पहले के सायन्स में ऐसा माना जाता था कि बाहर दिखनेवाला जगत चालू रहता है और परिणाम को प्राप्त होता रहता है। सापेक्षवाद शुरू होने के बाद जगत चार परिमाण वाला है ऐसा कहा जाता है। सब स्थानपर प्रकाश की तरंगें होने से प्रकाश एक स्थानपर है ऐसा नहीं कह सकते। बहुत सी घटनायें देखने में नहीं आती। सिर्फ जब दो इलेक्ट्रोन मिलते हैं अथवा नजदीक आते हैं तब देश काल जैसा बनता है। अमुक प्रकार का प्रकाश ही हमारी आँख को असर करता है। (Only light waves

of 400-700 nanometers wavelength deliver a stimulus to the 8 million cone shaped cells of the retina) सब प्रकार की तरंगें हमारी आँख पकड़ नहीं सकती। जैसे माला में मनके पिरोये हुए होते हैं वैसे इलेक्ट्रोन अथवा प्रोटोन होंगे ऐसा कोई मान सकता है लेकिन उनको कैसे व्यवस्थित करना उसका आधार देखनेवाले पर है। एक मनुष्य एक प्रकार से रखेगा और दूसरा दूसरे प्रकार से रखेगा। अतः जो जड़ जैसा जगत दिखता है उसको स्वसत्ता नहीं है। हम जैसी दृष्टि रखेंगे यानी जैसे चश्मे पहनेंगे वैसा वह दिखता है। बरट्रेंड रसेल कहते है कि :

जो घटनायें हमारे मनमें घटती हैं और जो घटनायें बाहर बनती है उनमें कोई फर्क नहीं है। २०वीं सदी से पहले सायन्स में जगत जीव से अलग कोई वस्तु है ऐसा समझाया जाता था। अब बाहर की वस्तु जैसा कुछ नहीं रहा। जो कुछ भी है सब घटनायें हैं, उसको नये सायन्स में इवेन्ट कहते हैं। और वह घटना देखने वाले जीव से कोई पृथक वस्तु नहीं है। और उन सब घटनाओं का स्वरूप क्या है यह गणित से निश्चित हो सकता है। यही इस ज़माने की बड़ी खोज है।

जगत मन की कल्पना मात्र है यह बात कोई देशसेवक अथवा इंजीनियर मान नहीं सकता, पर उसमें सूक्ष्मता से विचार करने की शक्ति हो तो उसको तुरंत समझमें आ सकता है। दृष्टांत के रूप में आकाश अथवा खाली जगह का विचार करेंगे। पृथ्वी की जगह की सीमा है यह बात साधारण आदमी समझ सकता है, पर जगह स्वयं अपने स्वरूप में सीमा वाली है कि नहीं यह जानना मुश्किल है। जो कहते हैं कि स्थान (देश) को सीमा है उनको सामने सवाल करनेवाले मिलेंगे कि ऐसा हो तो देश (space) के उस पार कैसा देश होगा ? आकाशमें किसी स्थानपर दीवार हो तो दीवार के बाद आकाश होना चाहिए और उसके बाद क्या होना चाहिए ? अतः जगह को अथवा देश को सीमा नहीं है।

पर मानलो कि देश एक मन की कल्पना है, तो हमारा मार्ग तुरंत खुलता है। हमारे मनके विचार निश्चित देश के विषय में होते हैं और वैसे देश को सब समझ सकते हैं। आत्मज्ञान पाना हो अथवा ध्यान और समाधि लगानी हो तो ऐसे देश की कल्पना करने की जरुरत नहीं है और ऐसी कल्पना छोड़ देना चाहिए, क्योंकि आत्मा की विशालता को किसी भी प्रकार की सीमा नहीं है।

इस पुस्तक के चौथे प्रकरण में जहाँ कांतिलाल के भूगोल के ज्ञान की बात आती है उसमें कांतिलाल की उलझन थी कि आकाश का अंत कहाँ आता होगा ? अभी भी

स्कूलों और हाईस्कूलों में भूगोल और खगोल की जो शिक्षा दी जाती है उसमें भी यह बात स्पष्ट नहीं की जाती। लेकिन बीसवीं सदी में जो सापेक्षवाद और तरंगवाद (quantum theory) सायन्स में शुरू हुई है, उसने देश और काल दोनों को सापेक्ष बना दिये हैं। इतना ही नहीं पर इनका सच्चा स्वरूप बहुत सरलता से गणित से निश्चित कर के दिया है। लेकिन उस गणित को समझने के लिये जैसी बुद्धि चाहिए वैसी बुद्धि अभी तक तैयार नहीं होने से पूरे विश्व में बहुत कम लोग उसको समझ सकते हैं। फिर भी उसको अधिक से अधिक सरल बनाने के प्रयास होते रहते हैं। जैसा देश का प्रश्न कठिन है वैसा काल का प्रश्न भी कठिन है। जगत में सबसे पहले क्या था ? यह विचार कांतिलाल को पढ़ाई के समय आता था और अनेक बुद्धिशाली विद्यार्थियों के मनमें आज भी ये विचार उत्पन्न होता है।

अब नया सायन्स गणित से निश्चित करके बताता है कि काल भी मन की एक कल्पना है, अतः जगत में सबसे पहले क्या था ? यह प्रश्न गलत है। अभी जो दिखता है उसको ठीक से देखना सीखें तो प्रश्न के समय ही उत्तर मिल सकता है। स्वप्नमें पहले क्या था और बाद में क्या था ? यह विचार गलत है। स्वप्न में नया काल उत्पन्न होता है। उसको जाग्रत काल के साथ संबंध नहीं है। स्वप्न में पहले बादमें जैसा कुछ सच्चा नहीं है। ऐसा जगने के बाद पता चलता है वैसे ही जाग्रत में भी ऐसा है कि उसमें पहले बादमें जैसा कुछ नहीं है। जगत को देखनेवाले जीव की दशा ठीक हो तो सब ठीक हो जाता है। इस कारण से ही मुण्डक उपनिषद में कहा है कि एक के ज्ञान से सर्व का ज्ञान हो सकता है।

अतः जगत कैसा है ये जानने जाओगे तो आप कैसे हो यह मालूम हो जायेगा। पुराने सायन्स वालों ने सब (कद के) जूते बनाये, लेकिन वह मनुष्य के पैर में फिट नहीं हुए। नए सायन्स वाले कहते हैं कि पैर का नाप ठीक से लेकर जूते बनाओ तो अधिक परिश्रम नहीं होगा। अतः सब विषयों में पहले नाप अथवा प्रमाण निश्चित करने की जरुरत है। ऐसी सीधी सरल बात हमारे शास्त्रों में ठीक से समझायी है। लेकिन सायन्स वालों को उस बात का पता सिर्फ बीसवीं सदी में ही चला है। लेकिन पता चलने के बाद उन्होंने इतना ध्यान दिया है कि पूरे जगत को चकित कर देनेवाले सिद्धांत उसमें से उपजाये हैं। और गणित के द्वारा वे सिद्धान्त निश्चित किये हुए होने से सभी देशों को जबरन स्वीकार करने पड़ते हैं।

पशुओं को भी पहले जहाँ डर लगा हो वहाँ फिर से जाने का मन नहीं होता और

जहाँ घास पानी मिलता हो वहाँ जाने का मन होता है। उनकी घूमने की जगह का आधार उनकी भावना पर है। मनुष्य भी अमुक स्थानपर जाना पसंद करता है और अमुक स्थान उसको नहीं रुचता। हर एक मनुष्य में ऐसा कुछ रूख होता है और सब मनुष्यों के रूख समान नहीं होते। ऐसी जगह जगत के अंदर नहीं होती, पर जीव की कल्पना से उत्पन्न होती है। ऐसे ही न्यूसपेपर में प्रसिद्ध होने वाली घटनाओं में से कोई अमुक बात पहले पढ़ता है और कोई व्यक्ति दूसरी बात पहले पढ़ता है। जिस क्रम में घटनायें घटी हो उसी क्रम से न्यूसपेपर में बातें प्रसिद्ध नहीं होती और जिस क्रम में प्रसिद्ध होती है उस क्रम के अनुसार मनुष्य पढ़ते नहीं हैं। जब कोई भी घटना के अंदर जीव प्रवेश करता है तब क्रम में परिवर्तन होता है और प्रवेश नहीं करे तो मनुष्य कहेंगे कि अमुक मनुष्य का जी उसके काम में नहीं है। बहरे के सामने सुंदर गायन व्यर्थ है और जगत के अच्छे दृश्य भी अंधे के लिये उपयोगी नहीं है। जिनकी पाँचों इन्द्रियाँ ठीक होती है उनके लिए भी ऐसी दशा उत्पन्न होती है। वे मनुष्य जो देखते हैं वह भी सापेक्ष है। यह बात अनेक दृष्टान्तों से पिछले प्रकरण में समझाई हुई है। नये गणित से जो जगत जाना जाता है वह जगत नहीं है, पर देखनेवाले को कैसा लगता है यह समझाता है। अतः जगत में प्रारब्ध सच्चा नहीं है। यदि प्रारब्ध सच्चा हो तो किसी को ज्ञान नहीं दिया जा सकता। सब देश मनुष्य को सुधारने का प्रयास करते हैं। अतः प्रारब्ध सच्चा नहीं है। जहाँ अधिक अनीति चलती हो वहाँ नीति का उपदेश दिया जाता है। जहाँ नीति अच्छी हो वहाँ आत्मज्ञान देकर जीव को ब्रह्मरूप बना सकते हैं, इसलिये मनुष्य का जीवन पुरुषार्थ से भरा हुआ है। मनुष्य पुरुषार्थ करे तो परमात्मा जैसा बन सकता है, अतः जैसा ज्ञान होता है वैसा मनुष्य बनता है, और जैसा मनुष्य वैसा उसका ज्ञान होता है। उन दोनों का परस्पर संबंध है।

छोटे से छोटे कण को फोटोन कहते हैं और उसके हिस्से नहीं हो सकते, और बड़े से बड़ा आत्मचैतन्य ब्रह्म कहलाता है उसके भी हिस्से नहीं हो सकते। इसीलिये कठोपनिषद में ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि ब्रह्म बड़े से बड़ा है और छोटे से छोटा है। तत्त्वज्ञान विषयक भिन्न भिन्न मत विभिन्न धर्मों में पाये जाते हैं लेकिन जब परमतत्त्व को गणित से निश्चित किया जाय तो और जिसमें भेद नहीं हो सके ऐसा तत्त्व गणित बताये तो सब देशों के सभी धर्मों के सभी लोगों को स्वीकार करना पड़ता है। अब ऐसा समय आया है। हम छलनी से आटा छानते हैं तो अमुक प्रकार के कण ऊपर रह जाते हैं। और अमुक प्रकार के नीचे गिरते हैं। छलनी यदि

बड़े छिद्र वाली हो तो मोटा आटा नीचे गिरता है। कोई पूछे कि तुम्हारे घरमें ऐसा मोटा आटा क्यों आता है ? अज्ञानी मनुष्य मानेगा कि ऐसा ही आटा सब के घरमें होगा, लेकिन बुद्धिमान मनुष्य ऐसा समझता है कि यह छलनी का धर्म है, आटे का धर्म नहीं है। ऐसे ही जिस जीव को जो जगत दिखता है वह उसकी वृत्ति का स्वभाव है, जगत का स्वभाव नहीं है। इसलिये पहले वृत्ति को ठीक करने की जरुरत है। वृत्ति का स्वरूप इस पुस्तक में परिशिष्ट : २ में दिया हुआ है। जगत में करोड़ों प्रकार के प्रकाश की तरंगें प्रसारित होती रहती हैं। फिर भी हमारी आँख अमुक तरंग लम्बाई (Wavelength) के प्रकाश को ही पकड़ सकती है। रेडियो में भी अमुक तरंग लम्बाई के तरंग ही पकड़ सकते हैं। बहुत छोटी वेव-लेन्थ सरकार ने जनता के लिए नहीं रखी परंतु लश्कर के उपयोग के लिए और सरकारी काम के लिए रखी है। इसलिए जिसको जगत एक जैसा ही दिखता है उसमें प्रमुख कारण है आदत। यह आदत स्पष्ट दर्शन होने नहीं देती। मनमें जो बंधन हो वह बंधन मानों जगत में हो ऐसा जीव मान बैठता है।

अतः आगे बताये अनुसार जैसी हमारे ज्ञान की दशा होती है वैसा हमको जगत दिखता है। जो मनुष्य अन्नमय कोष और प्राणमय कोष के अधीन हो उनको वैसा जगत दिखता है, जो मनोमय कोष में हो उनको वैसा जगत दिखता है और जो उसके ऊपर के कोष में होंगे उनको वैसा दिखेगा।

किसी गहरे समुद्र में मछलियाँ रहती हो वहाँ सूर्यप्रकाश नहीं पहुँचता हो और मछली का वजन और उसके कद के जितने कद के पानी का वजन समान हो तो मछली ऊपर नीचे जायेगी अथवा आगे पीछे जायेगी तो भी उसको उत्तर दिशा, दक्षिण दिशा अथवा ऊपर नीचे जैसा कुछ लगेगा नहीं। ऐसे ही वर्तमान का जगत जो नये सायन्स वाले बताते हैं वह चार परिमाण वाला है। उसमें देश और काल ऐसे अलग विभाग नहीं कर सकते। उपरोक्त दृष्टांत में कोई मछली समुद्र की सतह पर आये तो वह पानी के जगत के बदले बड़े जगत के आकार के अनुसार विचार कर सकती है। ऐसे ही मनुष्य के लिए भी साधारण विचार से ऊपर आने की जरुरत है। इसलिये जीव और जगत दोनों का अभ्यास करने की जरुरत है और दोनों के बीच कैसा संबंध है यह भी जानने की जरुरत है। जीव की वृत्ति तो जानने का एक साधन है। परंतु जानने की वस्तु पूरा जगत है। मनुष्य को जो दिखता है वह कैसे दिखता है यह जानने से गलती का पता चलता है। इस गलती को तुरंत पकड़कर उसे दूर करके आगे बढ़ना चाहिये।

आगे बढ़ना हो तो नये प्रकार की सूक्ष्म बुद्धि तैयार करनी चाहिए। कपड़े सीने हो तो खनयित्री (खंती) से नहीं सी सकते। जगत शब्द गतिवाचक है। जो गतिमान हो उसे जगत कहते हैं। और जो गति हो उसमें काल का समावेश करना चाहिये। फिर भी काल खुद क्या वस्तु है यह जब तक जान नहीं सकेंगे तब तक गति को ठीक से जान नहीं पायेंगे और उससे जगत भी ठीक से जानने में नहीं आयेगा। वर्तमान में जो चार परिमाण वाला जगत सायन्स वालों ने निश्चित किया है, उसमें एक पोइन्ट (बिंदु) निश्चित करना हो तो वह कौनसी क्षण में कहाँ है यह पहले निश्चित करना चाहिये। यदि सूर्य एक क्षण में एक स्थान पर दिखे उसे 'क' नाम देंगे। उसके बाद के क्षण में (सेकंड में) ख, ग, घ ऐसे चार परिमाण वाले जगत में दिखे तो उन चार बिंदुओं -क ख ग घ को जो लाइन जोड़ती है उसे चार परिमाण वाले जगत में जगत रेखा (world line) कहते हैं। और जिस स्थानपर वस्तु का वजन हो वहाँ आकाश (space) मुड़ जाता है। जैसे कि किसी नरम तकिये पर कोई सीसे का गोला रखा हो तो वहाँ खड्डे जैसी जगह बन जाती है। वैसे ही जहाँ जहाँ कोई पदार्थ हो वहाँ वहाँ जगह मुड़ी हुई रहती है। इसी कारण से आकाशमें जहाँ सूर्य है वहाँ जगह मुड़ी हुई है। उसके आसपास पृथ्वी और दूसरे जो ग्रह और धूमकेतु आदि घूमते हैं उसका कारण यह है कि वहाँ जगह ही उसप्रकार की है। वहाँ दूसरा कोई आकर्षण है ऐसी कल्पना करने की जरुरत नहीं है।

न्यूटन के समय में ऐसा सिद्धांत था कि सूर्य के आसपास घूमनेवाला कोई भी ग्रह सीधी जगह (flat space) में गुरुत्त्वाकर्षण के कारण गोल गोल घूमता है। आइंस्टाइन ने सिद्ध किया कि वह ग्रह गोल जगह (curved space) में सीधा घूमता है। हम व्यवहार की भाषा में भी कहते हैं कि अमुक मनुष्य के आने से वातावरण में बदलाव आ गया। किसीको वह मनुष्य पसंद नहीं हो तो वहाँ से वह चला जाता है, क्योंकि वहाँ जगह नए प्रकार की बन जाती है। एक कमरे में कोई स्त्री बैठी हो वहाँउसका बाप आये तो खुद छोटी बन जाती है और बाप के पैर छूती है। बाप कमरे से बाहर जाय और बेटा कमरेमें आये तो अपने आप को बड़ी मानने लगती है और बैठी रहती है और बेटा कमरे में से जाय और उसका पति कमरे में आये तो और नये प्रकार का स्थान और नए प्रकार के संबंध होने लगते हैं। अतः किस समय कौनसी जगह किसप्रकार की है उसको जानने के लिये देखनेवाला चाहिये और देशकाल का नाप साथमें रखना चाहिए। और पति पत्नी को शादी के बाद की प्रथम रात्रि हो तो काल कितना गया उसका उनको पता चलेगा नहीं। उस समय घड़ी के अनुसार घंटों की

गिनती नहीं होती, अपितु उनकी भावना के अनुसार घण्टे की गिनती होती है। इस तरह काल में परिवर्तन हो जाने से भूतकाल, वर्तमानकाल या भविष्यकाल जैसा कुछ रहा नहीं है। कोई मनुष्य समाधि में ठीक से बैठा हो तो उसको कितना समय गया उसका पता नहीं चलता। उसका कारण यह है कि उस समय बहुत कम घटनायें बनती हैं। प्रेम के समय भी बहुत कम घटनायें बनती हैं। ब्रह्म के आनंद के समय भी कम घटनायें घटती हैं और जहाँ घटना कम होती है वहाँ काल बदल जाता है। नींद में घटना नहीं घटती। इसलिए काल का पता नहीं चलता। इसलिये काल कोई सच्ची वस्तु नहीं है, अपितु हर एक प्रकार की घटनाओं के साथ उत्पन्न होता है। अतः जिस जगतमें साधारण मनुष्य रहता है वह मनुष्य के कद का है, वह सच्चा नहीं है, जन्म के पहले उस जगत की मनुष्य को खबर नहीं थी। मरने के बाद उस जगत की मनुष्य को खबर रहती नहीं है। बीच के समय में मनुष्य के संग में रहकर जीव मनुष्य जैसा बनने लगता है। यह विषय अधिक विस्तार से चौथे प्रकरण में कांतिलाल को कैसे ज्ञान होता है उसमें समझाई हुई है। यदि कोई जीव कुतिया के शरीर में गया तो जन्म के बाद कुत्ते के नाप वाला जगत सीखने लगता है और गधी के शरीर में गया हो तो जन्म के बाद गधे के जैसा बन जाता है। सर्कस का शेर बचपन से बकरे के साथ रहनेपर बकरे जैसा डरपोक बन जाता है। संक्षेप में यह समझना चाहिए कि मनुष्य का जीवन अंतिम जीवन नहीं है, और सब लोगों के साथ सामान्य भाव से बातचीत करने से आगे नहीं बढ़ सकते। और वर्तमान में कुछ लोग उत्तम जीवन बनाने की अपेक्षा हल्का जीवन बनाये जा रहे हैं। और पशु की नाईं एक दूसरों को बिना कसूर के मारते हैं, अतः वर्त्तमान में अत्यन्त विषम परिस्थिति आ गई है। कलियुग यानी झगड़ों का युग चालू है। समाज के लिए उसका अंत कब आएगा यह कह नहीं सकते लेकिन जिसको खुदको अच्छा बनना है और जीवन उत्तम बनाना हो उनके लिए सदा सतयुग है।

हर एक इलेक्ट्रोन प्रकाश की तरंगों के रूप में होने से तरंग की लंबाई किस समय कितनी है उसपर पूरा आधार है। हर एक वेव-लेन्थ के साथ अमुक प्रकार के क्वान्टा अथवा फोटोन होते हैं। हम हररोज वही का वही सूर्य देखते हैं, उसका कारण यह है कि हमारी आँख के तेज की रेखा सीधी सूर्य तक पहुँचती है उसको क्वान्टा कहते हैं और क्वान्टा के भाग नहीं हो सकते। इतना प्लेन्क नामक वैज्ञानिक ने सिद्ध कर दिया था। उसके बाद हाईसनबर्ग ने ये सिद्ध किया कि प्रकाश के इलेक्ट्रोन एक दृष्टि से कण प्रतीत होते हैं, वह अन्य दृष्टि से तरंग प्रतीत होते हैं और उसके बीच की

जगह के देश काल को ध्यान में रखे तो जितने प्रकार के देखनेवाले वहाँ हो उतने प्रकार की तरंगें वहाँ पर देखने में आती हैं। इलेक्ट्रोन को गतिमान होने के लिए खाली जगह की जरूरत पड़ती है और जब वह तरंगों के रूप में हो तब भी उसको गति के लिये जगह की जरुरत पड़ती है। अतः देश, काल और वस्तु इन तीनों का विचार एकसाथ करने की जरुरत रहती है। हमारे देश में देशकाल के बारे में बारीकी से हिसाब किया हो तो सिर्फ ज्योतिष शास्त्र में उसकी कुछ हकीकत मिल सकती है, पर ज्योतिषशास्त्र के जानकार ज्योतिषी यदि सापेक्षवाद और तरंगवाद का अभ्यास करे तो जिस मनुष्य को जो ग्रह दशा बाधा डालती हो उस प्रारब्ध से उसको छुड़ाने के लिये नये नये मार्ग मिल सकते हैं। वास्तवमें ज्योतिष के फल का आधार जन्माक्षर पर है। जिस स्थान पर जिस समय जो मनुष्य जन्मा हो वह समय ठीक से जानने में आये तो उसमें से कुंडली ठीक बना सकते हैं। उसको नये सायन्स वाले देशकाल का चक्कर कहते हैं। आध्यात्मिक भाव से इस विषय को देखेंगे तो जिसको देह का अभिमान है और अपने को मनुष्य मानकर एक स्थानपर रहनेवाला मानता है उसके लिए कुंडली और फल सच्चे होते हैं, लेकिन जितने अंश में देह का अभिमान छूट जाय उतने अंश में जीव को नई दशा प्राप्त होती है और उतने अंश में कुंडली झूठी हो जाती है। ज्योतिष का गणित सच्चा है पर उसका आधार देशकाल पर है और देशकाल कोई नियत वस्तु नहीं है। अतः प्रारब्ध सच्चा नहीं है और मनुष्य पुरुषार्थ करे तो प्रारब्ध को जीत सकता है। पुरुषार्थ यानी साधारण देह दशा के भान से निकलकर जितना समय आत्मदशा में रह सके उतना समय रहने की आदत बनानी चाहिए, ऐसा करते करते (जैसे कीड़ा भ्रमर का ध्यान करते करते भ्रमर हो जाता है वैसे) जीव ब्रह्म स्वरूप हो जाता है।

जब कोई प्रकाश किसी पदार्थ से टकराता है तब वह कण (particle) के रूप में परिवर्तित हो जाता है। पर जब प्रकाश खाली जगह में घूमता हो तब वह तरंग अथवा लहरों के रूप में रहता है। अतः कण अथवा तरंग ऐसी दो अलग वस्तुयें नहीं है, अपितु एक ही वस्तु के दो दिखावे है। जब प्रकाश इलेक्ट्रोन के रूप में दिखता हो तब तरंग के रूप में नहीं दिखता और तरंग के रूपमें दिखे तब इलेक्ट्रोन के रूपमें नहीं दिखता। दोनों भाव एक ही समय पर अनुभव में नहीं आते। यह दृष्टांत ब्रह्मज्ञान में लगाये तो जब हमारे में जीवभाव आता है तब ब्रह्मभाव का अनुभव नहीं होता और ब्रह्मभाव का अनुभव होता है तब जीवभाव का अनुभव नहीं होता। और एक बार तरंग

का रूप ले लिया फिर उसमें से इलेक्ट्रोन बनाने हो तो कठिन हो जाता है, क्योंकि तरंगों का स्वभाव चारों तरफ फ़ैलने का है। अतः ब्रह्म में से जीव बनाना हो तो ब्रह्म में थोड़ी माया प्रवेश करवानी चाहिए। सो प्रतिशत खरा सोना इतना पतला होता है कि उसमें से गहने नहीं बना सकते लेकिन उसमें तीसरे हिस्से जितनी चाँदी अथवा ताँबा मिलाया जाय तो उसमें से आकार बना सकते हैं। इसलिए जीव में जब मैं और मेरा ऐसी भावना रूपी माया उत्पन्न होने लगती है तभी ब्रह्म में जीव भाव दिखने लगता है।

और फिर तेज के फोटोन किस जगह होंगे यह निश्चित नहीं कर सकते। उसको सायन्स में संभावना (Law of probability) कहते हैं। ऐसे ही जीव में अहंता अथवा ममता किस जगह कौनसे समय उत्पन्न होगी यह नहीं कहा जा सकता। कहीं पर परोपकार के काम करते समय जीव में निःस्वार्थता आ जाती है। और उसमें अभिमान आये तो वहाँ पर स्वार्थ भी आ जाता है।

जब एक ही क्वान्टा अथवा फोटोन पर प्रयोग किया जाता है, तब ये कह नहीं सकते कि वह कहाँ होगा, लेकिन जब तेज तरंग के रूपमें घूमता हो तब जितनी जगह वह तरंगें रोकती है उसके अंदर फोटोन होने का संभव रहता है। वैसे ही जिस जीव को जितना परिवार हो अथवा उसने जितना देश अपना माना हो उसमें कहीं भी उसको बंधन अथवा अहंकार आने की संभावना रहती है। जब किसी समाज में कई लोग इकट्ठे हुए हो तब उनका बंधन किस प्रकार का हो सकता है यह समझना आसान है पर एक ही जीव अंजान प्रदेश में घूमता हो वहाँ उसका बंधन अथवा उसकी ममता कहाँ होगी यह कहना कठिन है। नए सायन्स वाले कहते है कि, जितना और जैसा हमारा ज्ञान उसके अनुसार प्रकाश की किरण बन जाती है। यह बात अधिक स्पष्टता से समझाने के लिये सर जेम्स निम्नलिखित दृष्टांत देते हैं :

मानलो कि एक स्टीमर न्यूयॉर्क से इंग्लॅण्ड जाती है। प्रथम दिन स्टीमर की जगह सूर्य और तारों की गति के आधारपर निश्चित की गयी और स्टीमर का अफसर उसके नक़्शे में स्टीमर की जगह अंकित कर लेता है उस समय यदि आकाश में धुंद हो और सूर्य या दूसरा कुछ दिखे नहीं तो वह अंदाज से अंकित करता है और ऐसा चिह्न बनाता है कि इस चिह्न के आसपास चारों तरफ ५ मील के अंतर के गोलघेरे में स्टीमर की जगह होगी। दूसरे दिन भी धुंद हो तो स्टीमर के मील की गिनती करके ऐसा निशान बनाएगा कि उस निशान के आसपास १० मील के गोल घेरे में स्टीमर होनी चाहिए। उसी तरह पाँचवें दिन ५० मिल का गोल चक्कर उसके नक़्शे में हो

जाता है। अब मानलो कि उस (गोल) चक्कर का आधा हिस्सा जमीनपर आता है। स्टीमर जमीनपर नहीं हो सकती इससे वह आधा हिस्सा हमारी गिनती से बाद कर सकते हैं। थोड़े समय के बाद इंग्लॉण्ड का पश्चिम किनारा दिखा तो स्टीमर के अफसर का ज्ञान तुरंत बदल गया और शेष २५ मिल का अंतर भी चला गया और स्टीमर की ठीक जगह कौनसी है यह निश्चित हो सका। इस दृष्टांत में स्टीमर खुद नहीं कहती कि वह कहाँ है। सिर्फ स्टीमर के बारे में अफसर के ज्ञान में नित्य बदलाव आता गया। ऐसे ही जगत खुद कैसा है वह नहीं कहता, सिर्फ हमारे ज्ञान में नित्य परिवर्तन हुआ करता है। उस ज्ञान का अंत तब आयेगा जब सब ब्रह्मस्वरूप है ऐसा लगेगा। जब तक ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ तबतक (स्टीमर की जगह की तरह) जीवन का स्वरूप अनिश्चित रहेगा। एक समय का जूठा ज्ञान अन्य झूठे ज्ञान उत्पन्न करता है। तेज की तरंगों की भी ऐसी ही दशा है। तेज की तरंग चारों तरफ फ़ैलाने के स्वभाव वाली होने से प्रत्येक क्षण अधिक से अधिक जगह रोकती जाती हैं।

उपरोक्त दृष्टांत में स्टीमर एक फोटोन (तेज का समूह अथवा क्वान्टा) है। समुद्र एक खाली जगह है कि जिसमें फोटोन चलते हैं और जमीन हद है कि जो (स्टीमर को) फोटोन को रोकती है। समुद्र, जमीन, स्टीमर और फोटोन ये सब साधारण जगह की वस्तुयें हैं। लेकिन स्टीमर के अधिकारी का ज्ञान उस साधारण जगह पर नहीं चलता। ऐसे ही फोटोन विषयक जो हमारा ज्ञान है वह साधारण जगह पर नहीं चलता, लेकिन उसमें कल्पित देशकाल की सीमा बनती है। देशकाल का आधार हमारे ज्ञान पर होने से जब तक ज्ञान ठीक नहीं होता तबतक सत्य क्या है वह मालूम नहीं पड़ेगा। साधारण मनुष्य के ज्ञान में सब वृत्तियाँ होती हैं इसलिए उस मनुष्य का बर्ताव कैसा होगा यह कह सकते हैं। सिर्फ अति परिचित मनुष्य एक दूसरे को कुछ अंश में पहचान सकते हैं।

जगत का सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी वस्तु की लंबाई, वजन, काल, स्थिति आदि का ज्ञान ठीक से होना चाहिए। उसके लिये लंबी तरंगें (waves) व्यर्थ है। एक मीटर के दस लाखवें हिस्से जितना छोटा नाप निकालना हो तो वैसा नाप निकलनेवाला साधन चाहिये। एक मीटर की तरंग का नाप निकालने के लिये उसके सूक्ष्म मीटर (micrometer) कर सकते हैं। लेकिन बिना हद की तरंगों की हद कितनी है यह नहीं नाप सकते। अतः साधारण मनुष्य के ज्ञान में जो जगत आता है वह सापेक्ष है। सर जेइम्स कहते हैं कि :

जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि बन जाती है। क्वांटम थियरी से भी यह बात सिद्ध होती है। हर एक क्षण दृष्टि के समय दृश्य वस्तु में से दृष्टा की ओर एक पूर्ण क्वान्टा जाता है। उसके हिस्से नहीं हो सकते। एक क्षण में जो वृत्ति हमारे अंदर उत्पन्न हो उसका भी हिस्सा नहीं हो सकता । उसका हिस्सा करना हो तो कौनसी जगह से हिस्सा करना यह निश्चित करना चाहिए । इससे एक क्षणमें जो दृष्टा, दर्शन और दृश्य की अवस्था बनती है उसके हिस्से नहीं हो सकते। इस समय जो अवस्था उत्पन्न होती है वह कोई जगत की वस्तु नहीं है, अपितु एक प्रकार का संबंध है। उसीको माया कहते हैं अथवा कल्पित नाप अथवा प्रमाण कहते हैं। अतः जबतक प्रमाण अथवा संबंध ठीक नहीं हो तबतक जगत कैसा है यह पहले निश्चित करना पड़ेगा। व्यवहार में भी हर एक क्षण दूसरों से हमारा संबंध ठीक करना सीखना पड़ता है, और यह कार्य इतना कठिन है कि जबतक हम अपने आप को ठीक नहीं करेंगे तबतक हमारा संबंध ठीक नहीं हो सकता। अज्ञानी लोगों की जितनी आबादी बढ़ती है उतनी मुसीबतें हमारे संसार में बढ़ती जायेगी। अज्ञानी लोगों को दूसरों से अपना संबंध ठीक करना नहीं आता।

आज के समय में किसी वैज्ञानिक को परमाणु के अंदर के इलेक्ट्रोन के बारे में ज्ञान प्राप्त करना हो तो उसमें से अमुक जत्थे में प्रकाश प्राप्त करना चाहिए। लेकिन वैसा करने में एटम में इतना परिवर्तन होता है कि वह नया एटम ही बन जाता है। इसलिए हमें प्रत्येक दिन और प्रत्येक क्षण नया जगत दिखता है। नदी में एकबार डुबकी लगाने के बाद दोबारा डुबकी लगायेंगे तो उसी नदी में डुबकी नहीं लगा सकते। बीच के समय में पहले का पानी आगे बह गया होता है। पेड़ का फल भी रोज वैसा का वैसा नहीं दिखता और दीपक की लौ भी वैसी की वैसी नहीं दिखती, फिर भी मानो वैसा का वैसा जगत हो ऐसा लोगों को लगता है और जहाँ बहुत लोग इकट्ठे होकर एक प्रकार का विचार करते हैं वहाँ माया की गलती पकड़ में नहीं आती।

प्रकाश की तरंगों का स्वभाव है कि उनकी वेवलेन्थ जितनी होती है उसके अनुसार उनकी गति होती है। और जब प्रकाश की तरंगों का जत्था हो तब उस जत्थे की गति कम हो जाती है। उसके अंदर के हर एक इलेक्ट्रोन की गति अति त्वरित होती है लेकिन जब अनेक इलेक्ट्रोन एकसाथ होते हैं तब सभी की गति मंद हो जाती है। यह सिद्धांत समाज की कक्षा से लागू करेंगे तो मनुष्य जब समाज के बंधन से जुड़ता है तब उसका विकास समाज के विकास के अनुसार धीरे धीरे होता है, लेकिन

जो समाज से कम लाभ लेते हैं और एकांत में जीवन बिताते हैं वे चाहे तो अधिक उन्नति कर सकते हैं।

आगे हमने देखा कि प्रकाश जब खाली जगहमें गति करता हो तब वह तरंग के रूप में रहता है लेकिन कण के रूप में नहीं रहता। इलेक्ट्रोन का स्वभाव भी ऐसा है कि जब वह खाली जगह में हो तब निश्चित तरंग का रूप नहीं लेता। इलेक्ट्रोन की गति नापने के लिए कुछ दृष्टा- दृश्य का संबंध पकड़ना चाहिए, अर्थात् जब इलेक्ट्रोन किसी पदार्थ के साथ संबंध में आये तब तरंग का रूप लेता है। ये सब हकीकत यह बताती है कि हम देखने वाले के रूप में नहीं हो तो प्रकाश की तरंगों का अस्तित्व नहीं रहता। तरंग कुदरत का हिस्सा नहीं है, अपितु हमारे ज्ञान के अनुसार बनने वाली एक प्रकार की रचना है। सर जेइम्स जीन्स कहते हैं कि प्रकाश की तरंगों का स्वभाव ही ऐसा है कि वह बढ़ने लगती हैं और जितना प्रकाश का जत्था छोटा उतना शीघ्र बढ़ सकता है इसलिए तेज के समूह से कोई निश्चित इलेक्ट्रोन का कद नाप नहीं सकते। इलेक्ट्रोन नित्य वस्तु है पर इलेक्ट्रोन प्रकाश की तरंगों के रूप में हो तब जैसी देखनेवाले की दृष्टि हो और जैसा उसका ज्ञान हो वैसा दिखता है। अतः प्रकाश की तरंगों का जो गणित हुआ है उसमें एक इलेक्ट्रोन की बात नहीं आती। एक क्षण में किसी प्रकाश के जत्थे को देखकर इलेक्ट्रोन की जगह (position) निश्चित करेंगे तो दूसरी क्षण वह बदल जाती हे, क्योंकि प्रकाश के जत्थे में बदलाव आ जाता है। यदि प्रकाश के जत्थे की लंबाई में परिवर्तन किया जाय तो उसमें नए गुणधर्म पाये जाते हैं। छोटी वेवलेन्थ हो तो इलेक्ट्रोन की जगह मिल सकती है। लेकिन उसकी गति नहीं जान सकते और जब लंबी वेवलेंथ हो तो इलेक्ट्रोन कहाँ है यह नहीं जान सकते। संक्षेप में किसी भी प्रकाश की तरंगों की जगह और गति एक ही समय में निश्चित रूप से जान नहीं सकते। (Uncertainty principle)

बोहर नामक वैज्ञानिक इस बाबत में अधिक खुलासा करते हुए कहता है कि हमको जो तेज की तरंगें दिखती हैं वे हमारे ज्ञान के देशकाल के अनुसार गठित होने के कारण वास्तवमें वह (इलेक्ट्रोन के विषय में) हमारे ज्ञान की तरंगें है। बंदर हमारे जगत को देखता है तो उसे उसके ज्ञान के अनुसार प्रकाश की तरंगें दिखती है। उल्लू को दिन में अंधेरा दिखता है वह भगवान का बनाया हुआ नहीं है, अपितु उल्लू के ज्ञान का रूप है। जब इलेक्ट्रोन खाली जगह में गतिमान हो तब कोई निश्चित तेज का जत्था हो ऐसा जानने में नहीं आता। अतः जहाँ ज्ञान नहीं है वहाँ तेज की तरंग नहीं है,

क्योंकि तेज की तरंगें कुदरत की रचना का हिस्सा नहीं है, अपितु हमारे ज्ञान का हिस्सा है। जब ज्ञान के अनुसार ज्ञेय होता है तब सत् और चित् की एकता हुई है ऐसा कह सकते हैं। और जैसा ज्ञान हो वैसा सुख मिलता है। अर्थशास्त्र के ज्ञान से खाने पीने की सुविधा मिलती है, युद्ध का ज्ञान सीखने से देश की रक्षा होती है। ब्रह्म के ज्ञान से ब्रह्म का आनंद मिलता है। अतः जो सत् और चित् है वही आनंद है।

मानलो कि एक अंधेरा कमरा है। उसमें जाकर हम ने बिजली का लट्टू जलाया। उस समय वहाँ की सब वस्तुओं का दिखावा बदल जाता है। सब वस्तुयें तेज का रूप धारण करती हैं और उस तेज को हमारी आँख के साथ जैसा संबंध हो वैसा दिखता है। उस कमरे में बिल्ली हो तो लट्टू जलाने से पहले भी उसको हम से कुछ अधिक वस्तुयें अँधेरे में दिखती हैं और लट्टू जलाने के बाद जैसा बिल्ली का ज्ञान और उसका उस प्रकाश के साथ संबंध वैसा कमरा उस समय उसके लिए बन जाता है। वह उसके ज्ञान के अनुसार ज्ञेय लगता है।

शाम को नदी किनारे पर कोई मनुष्य बैठा हो उस समय सूर्य अस्त का समय हो तो हर एक पाँच मिनट में प्रकाश में बदलाव आने से दृश्य में परिवर्तन दिखता है। अतः वास्तव में मनुष्य प्रकाश को देखता है। दृश्य को नहीं देखता। सिनेमा में भी सब प्रकाश का खेल है। सिनेमा की फ़िल्म तैयार करते समय (यानी शूटिंग के समय) अँधेरे कमरे में अमुक प्रकार का प्रकाश रखकर फिर दृश्य के फोटो खींचे जाते है। प्रकाश बहुत विचित्र वस्तु है। उसकी लीला ठीक से समझने के लिए अत्यंत सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता है।

मानलो कि किसी मेले में बहुत लोग इकट्ठे हुए हैं। उनके बीच में किसी कारण से एक बाघ दौड़ता हुआ आ जाय तो सब लोग भागने लगेंगे और सभी की दृष्टि और सभी का ज्ञान उस बाघ विषयक रहेगा। यदि वहाँ कोई नया मनुष्य आये और उस बाघ को नहीं देखे पर मनुष्यों को भागते हुए देखे तो उसको ऐसा लगेगा कि वहाँ कोई नयी घटना घटी है। वहाँ बाघिन होगी तो वह बाघ से डरकर भागेगी नहीं। अतः बाघ हो कि न हो तो भी मनुष्य के भागने का कारण डर है, बाघ नहीं। उनकी और बाघ की दृष्टि के बीचमें कुछ परस्पर संबंधवाली प्रकाश की तरंगें और आवाज की तरंगें फैलती है कि जो मनुष्य को भागने का ज्ञान देती है। वे तरंगें बाघ में से नहीं आती, क्योंकि बाघिन उस दर्शन से नहीं भागती, अपितु मनुष्य के ज्ञान से आती है। बाघ नहीं हो और कोई रस्सी पड़ी हो, तो भी अँधेरे में उसको सर्प समझकर मनुष्य भागते हैं। जैसे

भय की तरंगें उत्पन्न होती हैं वैसे प्रेम और आकर्षण की तरंगें भी उत्पन्न होती हैं। नाग के पास नागीन घूम रही हो तो वह नाग के पास जाती है और प्रेम करती है। ऐसे ही नया सायन्स कहता है कि सूर्य के आसपास पृथ्वी घूमती है उसका कारण भी उस स्थान में देशकाल का खेल है। यहाँ बाघ के बदले न्यूसपेपर भी रख सकते हैं। जब ५-६ लोग बैठे हो और उनके बीच पोस्ट वाला आकर उस दिन का न्यूसपेपर रखे तो तुरंत वातावरण में बाघ के जैसा असर होता है। हर एक मनुष्य एक पन्ना लेकर नजर घुमाता है। कभी कभी एक पन्ने पर दो तीन मनुष्यों की नजर जाती है। संक्षेप में न्यूसपेपर जैसी जड़वस्तु भी वहाँ का माहौल बदल देती है। उसका कारण यह है कि हमने हर एक न्यूसपेपर की घटना के साथ अमुक प्रकार का संबंध पहले से बना रखा हुआ है और यह इच्छा मृत्युपर्यंत पूर्ण नहीं होती, पर सत्य को जानने की इच्छा हो तो हमारा जीवन सच्चे मार्ग पर आने लगता है।

अतः भगवान अपने स्वरूप में अलग अलग संबंध बनाकर एक ही अनेक रूप में रमता है उसीको रामलीला कहते हैं। जहाँ कोई जीव नहीं हो वहाँ संबंध नहीं होता इसलिए खुद ही जीव बनता है, खुद ही संबंध बनता है, ऐसा मनुष्य की दृष्टि से दिखता है पर ऐसा क्यों करते हैं ? भगवान को ऐसा खेल खेलने में आनंद मिलता हो तो खेल करने से पहले उनको दुःख होना चाहिए। ऐसा हो तो उनकी नित्य- तृप्तता खण्डित हो जाती है। अतः दृष्टा और दृश्य के बीच कोई नियत संबंध नहीं है।

देखनेवाला जगत को देखते समय ही अपनी मान्यता दृश्य में डाल देता है इसलिए उसको अपनी मान्यता का जगत मिलता है, सच्चा जगत नहीं मिलता, और सबको अनेक प्रकार के जगत एक ब्रह्ममें मिलते हैं। अतः ब्रह्ममें अनंत सौंदर्य और अनंत प्रकार का आनंद नित्य विद्यमान है। इसलिए जगत में जो परिवर्तन दिखता है वह वास्तवमें हमारे ज्ञान का परिवर्तन है। हमारा जन्म यदि १०० साल पहले हुआ होता तो उस समय की घटनायें जानने में आती और अब भी दूसरे देशमें जन्मे होते तो उसके अनुसार जगत मालूम पड़ता। दूसरी जाति में जन्मे होते तो उसके अनुसार संसार दिखता। अतः जिसप्रकार के विचार जिस तरह हमारे मनमें हो वैसा ही हम समझ सकते हैं। चरखे से जितना आनंद म.गांधीजी को आता था उतना आनंद सब को आये ऐसा संभव नहीं है। ऐसा समय था कि जब चरखा चलाने वाली वृद्धाओं की कोई प्रसंशा नहीं करता था, पर अभी के समय में बी.ए.पढ़े हुए भी चरखा चलाते हैं और उनकी प्रसंशा होती है। अतः सुखदु:ख का आधार कुछ अंशमें प्रसंशा के साथ

रहता है। पर जहाँ अनेक मनुष्य एक ही घटना की प्रसंशा करते हो वहाँ कोई विपरीत विचार बताये तो, वह पागलपन के जैसे विचार माने जाते हैं। अतः जो घटना हमारे ज्ञान को असर करती है वह घटना हमारे लिए बंधन उत्पन्न करती है।

पर यदि हमारे ज्ञान को शुद्ध दशामें रखे और अश्वमेघ यज्ञ के घोड़े की नाईं किसी नामरूप में बंधने न दें, तो नदी जैसे समुद्र को मिलकर समुद्ररूप हो जाती है वैसे ही जीव का ज्ञान ब्रह्मरूप हो जाता है। सर जेइम्स कहते हैं कि हम अपने आपको देशकाल की सीमा में लाते हैं तब हम अलग जीव के रूप में रहते हैं। लेकिन जब हम देशकाल की सीमा पार कर जाते हैं तब शायद हम विश्व के साथ अभिन्न होते हैं। यहाँ सर जेइम्स ब्रह्मदशा की कल्पना करते हैं पर उनको अनुभव नहीं होगा इसलिए शायद ब्रह्म जैसा एक अखंड जीवन हो ऐसा अनुमान करते हैं। वास्तवमें जहाँ देशकाल (कल्पित होने से) बाधित हो वहाँ अनेक जीव जैसा नहीं रहता।

स्वप्न में व्यवहार चलता है लेकिन वास्तवमें वह प्रातिभासिक सत्ता है अर्थात् सिर्फ दिखने भर को है फिर भी उस बात का स्वप्न में क्यों पता नहीं चलता ? और स्वप्न व्यावहारिक सत्ता वाला क्यों दिखता है यह बात समझमें आये तो जाग्रत में भी व्यावहारिक और प्रातिभासिक सत्ता की जो गड़बड़ होती है वह समझमें आ सकती है :

यहाँ धर्मविशिष्ट अंतःकरण का आत्मा में अध्यास होता है। जैसे कदाचित लाल रंग के फूल के पास शुद्ध सफ़ेद स्फटिक हो तब किसी प्रकार के आवरण के कारण लाल फूल देखने में न आये तो स्फटिक लाल है ऐसी बुद्धि हो जाती है। ऐसे ही अंतःकरण का पृथक दर्शन जिस अवस्था में हो नहीं सकता उस अवस्था में अन्तःकरण और उसके धर्मों की आत्मामें प्रतीति होती है और व्यावहारिक और प्रातिभासिक सत्ता के भेद का पता नहीं चलता। धर्मी का अध्यास हो तबतक गलती ढूँढना आसान होता है, पर धर्म का अध्यास होने के बाद गलती ढूँढना मुश्किल होता है। स्वप्न में स्वप्नजगत से स्वप्नसाक्षी भिन्न नहीं दिख सकता और जाग्रत में भी अनेक मनुष्य जाग्रतजगत से जाग्रतसाक्षी को भिन्न नहीं कर सकते। इसलिए स्वप्न में और जाग्रत में व्यावहारिक सत्ता और प्रातिभासिक सत्ता का भेद मालूम नहीं पड़ता, पर किसी मनुष्य को पुण्यवश शुद्ध बुद्धि प्राप्त हुई हो अथवा गुरु के द्वारा शास्त्र का ठीक अभ्यास किया हो तो जाग्रत में जाग्रत जगत और जाग्रत साक्षी अलग अनुभव में आ सकते हैं। इतना ज्ञान मिलने के बाद साक्षी के प्रमाण के अनुसार जगत दिखता है

यह समझना आसान हो जाता है। साधारण जीवन में अंतःकरण प्रमाण है। एक ही अंतःकरण अज्ञानी की दृष्टि से साक्षी का विशेषण है और ज्ञानी की दृष्टि में साक्षी की उपाधि है। जब किसी वस्तु का ज्ञान होता है तब अंतःकरण के तीन परिणाम होते हैं : एक हिस्सा देहमें रहता है दूसरा हिस्सा देह और विषय के मध्यमें प्रतीत होता है और तीसरा भाग घट आदि पदार्थों में रहा हुआ मालूम पड़ता है, पर ये तीनों भाग अंतःकरण के हैं। प्रथम भाग का नाम अहंकार अथवा प्रमाता है। क्रिया का आधार होने से वह अहंकार कर्ता कहलाता है। अंतःकरण का दूसरा भाग अंतःकरण की वृत्ति रूप है, उसको प्रमाण अथवा माप अथवा मेझर कहते हैं। अंतःकरण का तीसरा भाग कि जो विषय के जैसा परिणाम धारण करता है वह ज्ञान का कर्म है, उसे विषय अथवा प्रमेय कहते हैं और उसका ज्ञान होता है तब उस ज्ञान को प्रमा अथवा प्रमिति कहते हैं। इस तरह ज्ञानकाल में प्रमातृचैतन्य, प्रमाणचैतन्य प्रमितिचैतन्य एक ही है। वास्तवमें एक ही चैतन्य उपाधि भेद से भिन्न दिखता है। यह भेद भी प्रत्यक्ष ज्ञानकाल में नहीं रहता, क्योंकि चैतन्य एकाकार हो जाता है। ऐसी दशामें अंतःकरण के परिणाम विशेषरूप छाया ही विषयाकार हो गयी होती है, इससे प्रमितिचैतन्य विषयाकार हो जाता है, इसकाल में प्रमातृचैतन्य भी विषयाकार हो जाता है। क्योंकि अंतःकरण से अवच्छिन्न चैतन्य प्रमातृचैतन्य है और अंतःकरण उस समय विषयरूप हो जाता है। चैतन्य का भेद तो उपाधिगत होता है। जब भिन्न देशमें दो उपाधि हो तब उपहित का भेद है ऐसा कहा जायेगा। उपाधि एक देशमें हो तब उपहित का तादात्म्य है। उपाधि की दशामें जीव भी विषय जैसा हो जाता है।

सच्चे ज्ञान में सच्चा अनेकत्व उत्पन्न नहीं होता। स्वप्न में हम अनेक जीवों का रूप लेते हैं और ठीक ढंग से सब का काम करते हैं। हम उसमें से एक है ऐसा उस समय लगता है। उस एक को दूसरे उत्तर देते हैं। वे उत्तर देनेवाले भी हम ही है। यहाँ अनेक सच्चे जीव कैसे बन जाते हैं ? जाग्रत के व्यवहार में भी हम छोटी उम्र के शरीर में थे। १० साल की आयु में, २० साल की आयु में, ३० साल की आयुमें अलग अलग शरीर थे फिर भी उसमें एक आत्मा था, तो व्यवहार के समय अनेक मनुष्यों के अनेक शरीर उस समय दिखते हैं उसमें एक आत्मा है ऐसा मानने में क्या हानि ? बुखार चढ़ा हो तब अनेक प्रकार की संवेदना होती है, शराबी का जीव शराब पीने के बाद बदल जाता है और उसके अनुसार जितनी जितनी दशा उतने उतने जीव प्रतीत होते हैं, पर वास्तवमें सच्चा जीव अथवा आत्मा एक है उसमें जो अनेकत्व दिखता है

वह माया के कारण प्रतीत होता है।

माया की दशामें रहनेवाला जीव जगत की वस्तुओं को पहले याद करता है और उससे साक्षीचैतन्य का अनुभव ठीक से नहीं रह सकता। स्वप्न में रहनेवाला जीव ज्यों ज्यों स्वप्न के पदार्थों को याद करता है त्यों त्यों अपने को भूलता है। यदि वह स्वप्न के पदार्थों को याद न करे तो जग जायेगा और जग जायेगा तो स्वप्न के पदार्थों को याद नहीं करेगा। वर्तमान सायन्स सापेक्षवाद के सिद्धांत से निश्चित कर देता है, कि जाग्रत का जगत भी स्वप्न की नाईं प्रातिभासिक है। यदि दिखावे को सत्य माना जाय तो जो सत्य अधिष्ठान रूप है उसका अनुभव नहीं होगा। स्वप्नदशा ऐसी है कि स्वप्न के समय स्वप्न की गलती मालूम नहीं पड़ती वैसे ही जाग्रत और जाग्रत की गलती का पता नहीं चलता। जिस मन से जो जगत बनता है वह मन उस जगत को मिथ्या नहीं मान सकेगा। जिस प्रमाण से अथवा मेझर से जो वस्तु सिद्ध होती है उस प्रमाण से उस वस्तु की निवृत्ति नहीं होगी। मनुष्य के जन्म के बाद यह गलती कैसे मजबूत और दृढ़ बन जाती है उसका विवेचन पिछले प्रकरणों में किया गया है।

ॐ ॐ

११ : प्रातिभासिक सत्ता

साधारण कोटि के मनुष्य सिर्फ व्यावहारिक सत्ता में रहते है। उनको ऐसा लगता है कि किसी भी तरह से हमारा व्यवहार ठीक से चले ऐसा रखना चाहिए, किन्तु व्यवहार में साधन शरीर, इन्द्रियाँ, राजव्यवस्था, समाज व्यवस्था आदि सदा ठीक नहीं रह सकते। इसलिये मनुष्यों को व्यवहार में बहुत असुविधा लगती है। जब अधिक असुविधा लगती है तब मनुष्यों को कोई पारमार्थिक सत्ता होगी ऐसा लगता है। स्मशान में शरीर को जलाने के लिए जाते हुए लोगों को उस समय वैराग्य होता है किन्तु बाद में वह मंद हो जाता है, फिर भी हजारों में कोई कोई मनुष्य को पारमार्थिक सत्ता का भान होने लगता है और ईश्वर जैसा कोई तत्त्व अवश्य होगा ऐसी मान्यता बनने लगती है। उस समय उसमें दो सत्ता का भान होता है। एक व्यावहारिक सत्ता और दूसरी पारमार्थिक सत्ता। फिर परमार्थ के मार्ग पर चलते और सत्संग करते करते ऐसा उसके सुनने में आता है कि जो कुछ यहाँ दिखता है वह और जो कुछ यहाँ नहीं दिखता वह सब ईश्वरमय है अर्थात् (ईश उपनिषद के अनुसार) ईश्वर से छाया हुआ है। उस समय व्यावहारिक सत्ता को भी पारमार्थिक सत्ता में लाने की जरुरत पड़ती है। व्यवहार को पारमार्थिक बनाने के लिए हमारे शास्त्रों में निम्नलिखित तीन मार्ग बताये हुए है :

(१) **कर्ममार्ग :** इस मार्ग में जानेवाले को खुद के किये हुए कर्म भगवान को अर्पण करने के लिये बारबार 'न मम-मेरे नहीं है' ऐसा बोलने को कहा जाता है। पहले जब हमारे देश की आर्थिक स्थिति अच्छी थी और खाने-पीने की चिंता नहीं थी तब भी मेघराजा की कृपा की आवश्यकता थी। यानी बरसात की जरुरत लगने पर और बरसात लाने के लिये यज्ञ की जरुरत पड़ने से यज्ञवाले कर्म अधिक किये जाते थे। और उस समय 'न मम-मेरे नहीं है' ऐसा बारबार कहा जाता था। आज भी यज्ञ के समय इन शब्दों का उच्चारण बारबार यजमान से करवाया जाता है लेकिन अन्य सामाजिक या राजकीय कर्म में **'न मम'** ऐसा कहने में नहीं आता इसलिए मनुष्य व्यावहारिक सत्ता में से पारमार्थिक सत्ता में नहीं आ सकते।

(२) दूसरा रास्ता **भक्तिमार्ग** का है। उस मार्ग में व्यावहारिक सत्ता को पारमार्थिक करने के लिए भक्त सब में भगवान को देखने का प्रयास करता है, किन्तु अपने में भगवान को देखने में उसको देर लगती है और जबतक अपनेमें भगवान का

अनुभव नहीं होता तब तक सब में भगवान है ऐसा अनुभव नहीं हो सकता। और जब दंगे और लड़ाई होती है तब कुछ लोगों को ऐसी शंका होती है कि यदि भगवान सब में है तो ऐसा युद्ध क्यों करवाते होंगे ? अतः भक्तिमार्ग में भी अनेक विघ्न आते है। दूसरी गलती यह होती है कि भगवान के प्रति दीनता रखने के बदले जीव विषयों के प्रति दीन हो जाता है।

(३) व्यावहारिक सत्ता को पारमार्थिक सत्ता में लाने के लिये तीसरा मार्ग **ज्ञानयोग** है। व्यवहार को देखनेवाले का विचार व्यवहार के समय ही ठीक से किया जाय तो व्यावहारिक सत्ता प्रातिभासिक हो जाती है। ऐसा कैसे होता है यह बात अनेक दृष्टान्तों से इस पुस्तक में अनेक प्रकार से समझायी गयी है। फिर प्रातिभासिक सत्ता को पारमार्थिक सत्ता में लाना कठिन कार्य नहीं है। प्रातिभासिक सत्ता यानी सिर्फ प्रतिभास अथवा दिखावा। जैसे कि स्वप्न, रस्सी में गलती से दिखनेवाला सर्प, सीपी में भूल से दिखनेवाला रूपा, ठूंठे में गलती से दिखनेवाला पुरुष, मृगजल में गलती से दिखनेवाला जल ये सब प्रातिभासिक सत्ता के दृष्टांत है। ऐसे ही ब्रह्म में गलती से दिखनेवाला जगत भी प्रातिभासिक है। वर्तमान के सापेक्षवाद के सायन्स में जिसको घटना (इवेन्ट) कहते है वह भी प्रातिभासिक है। प्रातिभासिक सत्ता का ठीक से विचार करने के बाद प्रातिभासिक सत्ता को पारमार्थिक सत्ता में कैसे लाना उस विषय पर इस प्रकरण में स्पष्टीकरण किया हुआ है।

१ : प्रातिभासिक वस्तु स्वप्न की नाईं सच्ची नहीं होती।

पिछले प्रकरण में बतलाये अनुसार ज्ञान के अनुसार ज्ञेय बन जाता है। यदि ज्ञान में भेद होता है तो वह ज्ञान ज्ञेय में भेद उत्पन्न कर देता है। स्वप्न में ऐसे अनेक अनुभव होते है। स्वप्न में झूठे ज्ञान के अलावा दूसरा कुछ नहीं है। वहाँ कोई सच्ची वस्तु नहीं है। जाग्रत में भी ऐसा बनता है। मानलो कि कोई मनुष्य दूसरे गाँव में नौकरी करने गया। वहाँ एक घर किराये से लेकर उसमें रहने लगा। उस समय उसकी उम्र २० साल की थी। फिर उस घर में उसकी शादी हुई। २ साल बाद उसकी नौकरी का तबादला हुआ। फिर २५ साल बाद उसकी शादी जिस घरमें हुई थी वह घर देखने आया तो वह घर उसको कैसा लगेगा ? अब मानलो कि वह घर उसने खाली किया उसके बाद वहाँ कोई दूसरा परिवार रहने के लिये आया। उस परिवार में किसी स्त्री का पति मर गया। उस स्त्री को वह घर अच्छा नहीं लगने से वह परिवार दूसरे गाँव रहने के लिये गया और फिर २५ साल के बाद वह विधवा स्त्री जहाँ उसका

पति मर गया था उस गाँवको देखने आई। तो उसको वह घर कैसा लगेगा ? जिस घर में प्रथम मनुष्य का विवाह हुआ था उसको उसे देखने का मन करेगा और उसी घर में जिस स्त्री का पति मर गया उसको उस घर से दूर रहने की इच्छा होगी, अथवा देखने को जाने की इच्छा नहीं होगी, या तो उस गली में जाने की इच्छा भी नहीं होगी। इस दृष्टांत में देखे तो घर के पत्थर प्रथम मनुष्य को हर्ष नहीं देते, पर उसने उस घरमें वैवाहिक जीवन का प्रथम अनुभव लिया होगा । इसलिए उसको उस घर के प्रति आकर्षण हुआ होगा और विधवा महिला को उस घरमें दुःख का प्रसंग प्राप्त हुआ था। उस के विषय में भी उस घर के पत्थरों ने दुःख उपजाया नहीं है किन्तु वहाँ ऐसी घटना घटी की उस देशकाल में दोबारा आने से उसकी वृत्ति भी उस देशकाल जैसी हो गयी। दोनों ने जो घर देखा वह हर एक के ज्ञान के अनुरूप घर था, वह सच्चा घर नहीं था। व्यावहारिक घर तो पत्थर और लकड़े का बना हुआ था, किन्तु मान्यता का घर उनके ज्ञान के अनुरूप आभासमात्र था । मुंबई में दंगे के समय मुसलमानों को हिंदुओं के इलाके में जाने में डर लगता था और हिंदुओं को मुस्लिम बाहुल्य वाले विस्तार में जाने में डर लगता था। ऐसा जगत बहुत कम समय के लिए रहा था और उसका अंत भी शीघ्र आ गया था। सब इतिहास और सब भूगोल इसी तरह के है। मुंबई में कोट के विभाग में और ट्रेन में दंगे के समय भी हिन्दू और मुस्लिम निर्भयता से घूम सकते थे। क्योंकि वे किसीका मोहल्ला नहीं था। गाँव में भी हिन्दू मुस्लिम साथ में रह सकते है। विदेश में भी साथ साथ रह सकते है। ऐसा जगत दिखावामात्र है। उसको प्रातिभासिक सत्ता कहते है, फिर भी स्वप्नमें जैसे प्रातिभासिक सत्ता से व्यवहार होता है वैसे जाग्रत में भी प्रातिभासिक सत्ता से व्यवहार होता है, किन्तु व्यवहार होता है इसलिये जैसे स्वप्न की घटनायें सच्ची नहीं है वैसे जाग्रत की घटना भी सच्ची नहीं है। हमें किसी अनजान गाँव में किसीका घर ढूँढना हो तो ज्यों ज्यों आगे चलते जायेगें त्यों त्यों उस घर के बारे में हर एक क्षण हमारे ज्ञान के अनुरूप उस घर का आकार, देश और काल बदलते जाते है। भगवान की खोज करनेवाले भक्त के दिमाग में भी हररोज भगवान कैसे होंगे, कहाँ रहते होंगे, क्या करते होंगे, हमारा उनके साथ संबंध कब होगा ऐसे तर्क उत्पन्न हुआ करते है। अतः झूठा ज्ञान बदलता रहता है वह पुरुषतंत्र है । सच्चा ज्ञान वस्तुतंत्र होता है । वह वस्तु के अधीन रहता है । भगवान के सिवाय दूसरा कुछ नहीं है ऐसा ज्ञान जब पक्का होगा तब उसमें परिवर्तन नहीं होगा।

२. प्रातिभासिक वस्तु दृष्टा से भिन्न नहीं होती

दृश्य से निकलकर दृष्टा तक जो प्रकाश पहुँचता है उसे फोटोन अथवा क्वान्टा कहते है। उसमें विभाग नहीं होते, उस तेज से दृष्टा और दृश्य का संबंध होता है। इसलिए जो वस्तु प्रातिभासिक हो वह दृष्टा से भिन्न नहीं होती। जैसे स्वप्न की वस्तु स्वप्नदृष्टा से यानी प्रमाता से भिन्न नहीं है वैसे ही जाग्रत का प्रमेय भी जाग्रत के प्रमाता से भिन्न नहीं है, फिर भी दोनों अवस्था का साक्षी अलग होता है, इसलिये ज्ञानमार्ग में प्रमाता को दृष्टा नं १ कहते है और साक्षी को दृष्टा नं २ कहते है। दृष्टा नं १ दृश्य के साथ जुड़ा रहता है और दृष्टा नं २ दृश्य से अलग रहता है। यह बात मुण्डक उपनिषद में एक पेड़ पर दो पक्षी के दृष्टांत से समझायी हुई है। यदि दृश्य स्वयं प्रातिभासिक हो तो दृष्टा नं १ (प्रमाता) भी प्रातिभासिक होता है। उसीको वेदांत में चिदाभास कहते है। चिदाभास यानी चैतन्य का आभास, यानी मूल सच्चा चैतन्य नहीं। क्रोध के समय जगत अलग प्रकार का प्रतीत होता है। वह जगत क्रोधी मनुष्य से भिन्न नहीं है। जिसने शराब पी हो उसको उस समय जगत अलग प्रकार से प्रतीत होता है। उसका जगत भी दृष्टा नं १ से भिन्न नहीं है। कोई विदेशी मनुष्य किसी नये गाँव में जाये और उसको पहला ही मनुष्य ख़राब मिले तो कहेगा कि 'पूरा गाँव ख़राब है।' और कोई साधू स्वभाव का सज्जन मनुष्य प्रथम मिले तो वह कहता है कि 'यह गाँव बहुत अच्छा लगता है।' किसी के घरपर कोई दूसरा मनुष्य भोजन करने आया हो उसको तीखा खाने की आदत न हो और दाल में मिर्च डाली हो तो वह कहेगा कि आज सारी रसोई (भोजन के व्यंजन) बिगाड़ दी है। वास्तवमें देखा जाय तो सिर्फ दाल बिगड़ी होती है। यहाँ भी प्रमाता से प्रमाण भिन्न नहीं है। पूर्णिमा का चंद्र सब को आनंद देता है किन्तु चोर को आनंद नहीं देता। एक साधू को किसीने पूछा कि 'तुम राजा बन जाओ तो प्रथम कौनसा कार्य करेगे ?' उसने उत्तर दिया कि 'मैं राजा बन जाऊं तो सब को मालपुए खिलाऊँ।' एक नाई को किसीने पूछा कि 'तू राजा बने तो क्या करेगा ?' उसने उत्तर दिया 'यदि मैं राजा बन जाऊं तो सुवर्ण के उस्तरे से हजामत करूँ।' ऐसे दृष्टांत ये सूचन करते है कि सब घटनायें प्रातिभासिक है और प्रमाता से प्रमेय भिन्न नहीं है अथवा जैसा प्रमाण वैसा प्रमाता और वैसा ही प्रमेय होता है। प्रमाण को नए सायन्स में मेझर अथवा नाप कहते है। प्रमाता को ऑब्जर्वर कहते है और प्रमेय को घटना कहते है। ये तीनों प्रातिभासिक है। स्वप्न में ये तीनों नये बनते है। जगने पर इन तीनों का बाध होता है और जाग्रत की अवस्था के अनुरूप

सुबह फिर नये होते है। मनुष्य मरकर दूसरा जन्म ले तब भी प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय और देशकाल नये बनते है। सिर्फ आत्मज्ञान हो तब ये तीनों का (प्रातिभासिक होने से) बाध होता है। जो वस्तु आत्मा में कभी दिखे और कभी न दिखे वह आत्मा का स्वभाव नहीं है अपितु उपाधि है। उपाधि अर्थात् आगंतुक स्वभाव। पानी अधिक गर्म हो तो शरीर जलता है, पर वह पानी का स्वभाव नहीं है, वह उपाधि का स्वभाव है।

३ : प्रातिभासिक वस्तु झूठी होने से उसका ज्ञान रखने की जरुरत नहीं है।

स्वप्न में जो बनता है उसका ज्ञान सच्चा था ऐसा हम नहीं मानते। सीपी में गलती से रूपा दिखे फिर सीपी का ज्ञान हो, उसके बाद रूपा का ज्ञान रखने की जरुरत नहीं है। रस्सी में गलती से सर्प दिखे फिर गलती समझ में आये, उसके बाद गलती से देखे हुए सर्प का ज्ञान रखने की जरुरत नहीं है। लेकिन जाग्रत में जाग्रत का जगत प्रातिभासिक है, फिर भी वही का वही ज्ञान क्यों सच्चा बना रहता है ? उसका कारण यह है, कि जाग्रत की घटनायें प्रातिभासिक है ऐसा निश्चय सिर्फ आत्मज्ञानी पुरुष को होता है। अब नये सायन्स वाले भी सापेक्षवाद और तरंगवाद की खोज होने के बाद कहते है कि जगत में जो प्रकाश की तरंगें हम देखते है वे हमारे ज्ञान की तरंगें हैं। अर्थात् हमारा ज्ञान ठीक करेंगे तो जगत ठीक हो जायेगा। अतः साधारण मनुष्य का ज्ञान जैसा होता है वैसा ज्ञान रखने की जरुरत नहीं है। फिर भी जैसे अनेक उल्लू इकट्ठे हो तब दिन में अंधकार का ज्ञान छोड़ नहीं सकेंगे वैसे ही समाज में अनेक लोग साथमें रहते हो वहाँ (स्वप्न की नाईं) द्वैत का ज्ञान झूठा नहीं लगेगा। ऐसे द्वैत के ज्ञान को ही शास्त्रों में अज्ञान कहा है। स्वप्न के समय जैसे स्वप्न की भूल समझमें नहीं आती वैसे जाग्रत के व्यवहार के समय जाग्रत की भूल समझमें नहीं आती। इसलिये उस विषय में अधिक सूक्ष्म विचार करने की जरुरत है। स्वप्न के ज्ञान का स्वप्न से जगने के बाद बाध हो जाता है, उसका कारण यह है कि स्वप्न की घटना का बाध होता है। ऐसे ही यदि यह ठीक से समझ सकें कि जाग्रत की घटनायें भी सब प्रातिभासिक है और मिथ्या प्रमाण के आधार पर टिकी हुई है (और यह बात वर्तमान के सापेक्षवाद से सिद्ध हुई है) तो जाग्रत की घटनाओं जा ज्ञान रखने की भी जरुरत नहीं है। जिस ज्ञान के विषय का बाध होता है उस ज्ञान को वेदांत में भ्रांति ज्ञान कहते है। अतः मनुष्यों को सच्चा प्रमाण और सच्चा ज्ञान देना चाहिये। वह ज्ञान हिंदुओं के प्रस्थानत्रय में यानी गीता, उपनिषद, ब्रह्मसूत्र आदि प्रमाणभूत शास्त्रों से ही मिल सकता है। दूसरे धर्मवाले उनके शास्त्रों को प्रमाण मानते है, पर वर्तमान समय में

धर्मशास्त्रों का अभ्यास सब धर्मों में नहींवत् हो गया है इसलिये मनुष्यों का व्यवहार झूठे प्रमाण से और झूठे ज्ञान से चलता है। सच्चा प्रमाण सिर्फ आत्मा है और उसको लक्ष्य बनाकर जो व्यवहार करता है वह मनुष्य ही प्रामाणिक है ऐसा कह सकते है। इंद्रियाँ भी आत्मा का स्वरूप नहीं है। घड़े को देखने का काम आँख करती है और उसको स्पर्श करनेका कार्य चमड़ी का है। शब्द सुनने का काम कान करते है और रस चखने का ज्ञान जीभ लेती है। इसलिए यदि इन्द्रिय आत्मा हो तो एक शरीर में पाँच आत्मा हो जाय। किन्तु मैं देखता हूँ, सुनता हूँ, ऐसे ज्ञान का ऐक्य सभी के अनुभव में है। घट को देखनेवाला मैं और घट का स्पर्श करनेवाला भी मैं। लेकिन यदि इन्द्रियों को आत्मा मानेंगे तो देखनेवाला और स्पर्श करनेवाला अलग रहेंगे यानी 'अ' की देखी हुई वस्तु का स्मरण 'ब' को हो ऐसा प्रकार हो जायेगा, पर वास्तवमें जिसको अनुभव होता है उसी को स्मरण होता है। एक कर्म करे और दूसरा उसका फल भोगे वैसा नहीं हो सकता। अतः इन्द्रियाँ आत्मा नहीं हो सकती। कोई ऐसा भी सवाल कर सकता है कि आत्मा के विषय में प्रमाण क्या है ? आत्मा प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण रूपवाले पदार्थ को ही विषय बनाता है और आत्मा स्वयं निराकार है। आँख सिर्फ रूपवाले पदार्थ को दिखा सकती है। अरूपी पदार्थ को नहीं दिखा सकती। आँख यदि अरूपी पदार्थ का ज्ञान दे सकती हो तो वायु भी देखा जा सकता है, लेकिन यह कार्य उससे नहीं होता। और आत्मा में अनुमान प्रमाण भी लागू नहीं होता। पर्वत में धुआँ देखकर अग्नि का अनुमान हो सकता है। वहाँ कोई प्रत्यक्षज्ञान हो तो उसके आधार से अनुमान ज्ञान हो सकता है, पर आत्मा इन्द्रिय प्रत्यक्ष का विषय न होने से अनुमान के लिये हमको कोई हेतु मिल नहीं सकता। हेतु नहीं मिलता इससे व्याप्ति नहीं बनती और व्याप्ति के बिना अनुमान बनेगा नहीं। अतः आत्मा अनुमान का विषय भी नहीं है।

अन्य लौकिक प्रमाण देखे जाय तो : १. उपमान प्रमाण में सादृश्यता चाहिए यानी आत्मा जैसा अन्य कुछ चाहिए परंतु ऐसा कुछ नहीं मिलता। २. अर्थापत्तिप्रमाण में कार्य प्रत्यक्ष होता है और उसपर से एक कारण के अभाव में दूसरे कारण का अनुमान करना पड़ता है। आत्मा प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय नहीं है, इसलिए अर्थापत्तिप्रमाण भी लागू हो नहीं सकता। ३. अनुपलब्धि प्रमाण में भी प्रत्यक्ष का अंश होता है। इसप्रकार सब लौकिक प्रमाण प्रत्यक्ष प्रमाण पर आधारित होने से आत्मा लौकिक प्रमाण का विषय नहीं हो सकता। तो आत्मज्ञान कैसे पाना ? और अनात्मा का ज्ञान सब

प्रातिभासिक है ऐसा आगे सिद्ध किया हुआ है और बिना ज्ञान के मनुष्य नहीं रह सकता। तो क्या करना ? ऐसा प्रश्न कोई वादी उत्पन्न करता है। इसके अलावा वादी ऐसा भी पूछता है कि निम्नलिखित दो प्रमाणों में से सच्चा प्रमाण कौनसा ?

१. व्यवहार के योग्य घर आदि वस्तुओं को विषय बनाना यही प्रमाण का प्रयोजन है या- २. सर्वथा अबाधित अर्थ को विषय बनाता है इसलिए उसकी प्रमाणता है ? प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं है क्योंकि कल्पित वस्तु (यानी सीपी में दिखनेवाला रूपा) भी व्यवहार के योग्य हो जाता है। दूसरे पक्ष की जाँच करें तो भी प्रत्यक्ष प्रमाण में जो अबाधित अर्थ को विषय बनाना रूप प्रमाण है वह अपनी सत्ता से सिद्ध है कि दूसरे की सत्ता से सिद्ध है ? उसमें प्रथम पक्ष नहीं बनता, क्योंकि भ्रांति ज्ञान के सदृश प्रत्यक्षप्रमाण इन्द्रियजन्य होने से उसमें दोष की संभावना रहती है। और उसको अपने प्रमाण के लिये दोष का अभाव हो वैसे अन्य प्रमाण की अपेक्षा होने से उसमें अपनी प्रमाणता नहीं रहती। दूसरे पक्ष का विचार करें तो जो प्रमाण अन्य प्रमाण की सहायता माँगता है उसको प्रत्यक्ष प्रमाण कहने से अनवस्था दोष आता है। किसी भी तरह से प्रत्यक्ष प्रमाण अबाधित अर्थ बता नहीं सकता। और श्रुति भी प्रत्यक्ष प्रमाण का खंडन करती है **-'नेह नानास्ति किंचन। '** यानी यहाँ कोई भेद नहीं है। यह कहकर अधिष्ठान ब्रह्म में समस्त जगत का मिथ्यात्व बताया है। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण सच्चा नहीं है, लेकिन बंध-मोक्ष की व्यवस्था के लिए श्रुति में माया की बहुरूपता बतायी हुई है। वादी कहता है कि यदि एक जीव और एक अज्ञान मानोगे तो बंध और मोक्ष की व्यवस्था रहेगी नहीं। और मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ आदि हर एक मनुष्य कहते है और हर एक के सुखदु:ख अलग है इसलिये जीव अनेक है और अज्ञान भी अनेक है।

उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर वेदांत में निम्नलिखित दिये हुए है :

सिद्धांत : ब्रह्म के साथ अज्ञान का संबंध अनादि है। यद्यपि वस्तुतः स्वयंप्रकाश परिपूर्ण आनंदस्वरूप से आत्मा भासमान है तथापि अज्ञान के कारण मिथ्या भेद की कल्पना उसमें होती है। इसलिए अद्वैत आनंदस्वरूप ब्रह्म को अज्ञान का विषय कहा गया है। ऐसी भ्रांत प्रतीति के कारण सिर्फ चैतन्य भासता है और आनंदस्वरूप नहीं भासता ऐसा लगता है। जैसे घरमें अंधकार है और घर को व्याप्त करता है वैसे अज्ञान भी ब्रह्म में रहता है और ब्रह्म को ढँकता है।

प्रश्न : ब्रह्म के साथ अज्ञान का संबंध अनादि है उसका अर्थ क्या ?

समाधान : कोई भी वस्तु के नियम का अवलोकन करते हुए जब हम अंतिम बात ग्रहण करें और उससे आगे देखने जाये तो वही की वही वस्तु उसके कारणरूप फिर से स्वीकार करने की जरुरत पड़े तब उस अंतिम बात को अनादि कहा जाता है। जैसे कि सर्व के कारणरूप ब्रह्म का स्वीकार करने के बाद ब्रह्म का कारण खोजने जायेंगे तो दूसरा वैसे का वैसा ही ब्रह्म स्वीकार करने की जरुरत पड़ी तो प्रथम ब्रह्म को ही अनादि कहना अधिक वास्तविक है अथवा ब्रह्म का स्वीकार करने के बाद उसके आगे की बात अगम्य है। अथवा दूसरी बात भी ध्यान में रखने जैसी है कि जहाँ अनादिपना स्वीकार किया है वहाँ अनादिपना स्वीकार न करते हुए आगे बढ़ने का कोई प्रयत्न करे तो जो अंतिम कारण साबित हुआ हो वही का वही फिर प्रकारांतर से रहेगा। इसका नाम है अनवस्था। जहाँ जहाँ अनवस्था दोष आयेगा वहाँ वहाँ अनादिपना मानना ही चाहिये ऐसी शास्त्र में समझाने की शैली है। और ऐसे निर्णय करने में अनुभव, युक्ति और श्रुति इन तीनों का उपयोग करना चाहिए। अतः अज्ञान (के कारण) की खोज के लिए एक उपाय यह है कि प्रश्न पूछने वाले की दशा की जाँच करना चाहिए। वह ब्रह्मदशा में हो तो अज्ञान का प्रश्न पूछ नहीं सकता और अज्ञान दशा में रहकर प्रश्न पूछे तो जो प्रश्न पूछे उसको अज्ञान हुआ है और वह प्रश्न पूछते समय उत्पन्न होता है। यह मत नये सायन्स को मिलता जुलता है।

४. प्रातिभासिक वस्तु की उत्पत्ति, स्थिति या लय नहीं होता

जैसे स्वप्न की प्रातिभासिक वस्तु की सच्ची उत्पत्ति, स्थिति या लय नहीं होता वैसे जाग्रत की वस्तु यानी प्रमेय भी प्रातिभासिक है। प्रातिभासिक वस्तु की सिर्फ प्रतीति होती है और वह प्रतीतिकाल में ही होती है। वस्तु का आधार प्रातिभासिक प्रमाणपर होता है और वह प्रमाण प्रमाता के साथ(यानी दृष्टा नं.१ के साथ) रहता है। दृष्टा नं. २ को साक्षी माना गया है। ब्रह्म एक ही परमार्थ सत्य है और नेति नेति श्रुति से कल्पित जगत का अधिष्ठान जो ब्रह्म है उसमें सब भेद का निषेध होता है। अतः द्वैत का मिथ्यात्व सिद्ध है अर्थात् द्वैत की प्रातीतिक सत्ता मात्र है। जैसे बिजली का लट्टू बुझ जाये तो वस्तुओं का दिखावा बदल जाता है, उसमें क्रम नहीं होता वैसे ही मनुष्य को ज्ञान होता है तब अज्ञान दशा का भेदवाला जगत रहता नहीं है। सुषुप्ति में जाग्रत नहीं रहता और स्वप्न में भी जाग्रत नहीं रहता। मृत्युकाल में भी जाग्रत नहीं रहता। इसलिए संपूर्ण जाग्रत प्रातिभासिक है। जो वस्तु चेतन में किसी काल में दिखे और किसी काल में न दिखे वह चेतन का धर्म नहीं है। कबीरजी कहते है कि आप मुए पीछे

डूब गई दुनिया और वर्तमान के वैज्ञानिक कहते है कि आप जियें तब तक रहती है आप की कल्पित दुनिया। पहले के समय में रूपये (के सिक्के) में रूपा था इसलिए उसको रूपया कहा जाता था अब के समय में नोट को भी रूपया कहा जाता है। नोट को अब पूछेंगे और उसमें उत्तर देने की शक्ति होगी तो वह कहेगा कि मैं तो रुपया नहीं हूँ अपितु कागज हूँ। बालक के मनमें भी वह कागज है, बिल्ली और चूहे की दृष्टि में उस कागज का कोई मूल्य नहीं है। और काल सापेक्ष होने से भी जगत की उत्पत्ति, स्थिति या लय नहीं बनते। बरट्रान्ड रसेल भी कहते है कि जहाँ एक समान काल सिद्ध नहीं हो सकता और जैसी दृष्टि वैसा काल उत्पन्न होता हो वहाँ कार्य-कारणभाव, उत्क्रांति, उत्पत्ति, लय आदि विषय में हमारे माने हुए सिद्धांत में बड़ा परिवर्तन करना पड़ेगा। नया सायन्स कहता है कि, अमुक घटना को एक मनुष्य पहले घटी हो ऐसा मान सकता है और उसी घटना को दूसरा मनुष्य कुछ देर बाद में घटी है ऐसा मान सकता है।

५ : प्रातिभासिक सत्ता में एक अंश की निवृत्ति नहीं होती।

स्वप्नमें दस लोगों से संबंध जोड़ा उसमें से पाँच के साथ संबंध रखकर जाग नहीं सकते। सीपी में रूपा दिखता है उसमें से आधा रूपा लेकर गहने नहीं बना सकते। ऐसे ही जाग्रत में संदूक में १०० रूपये पड़े है। उसमें से ५०रूपये स्वप्न में काम में नहीं ले सकते। उसका कारण यह है कि स्वप्न जैसे प्रातिभासिक है वैसे जाग्रत भी प्रातिभासिक है और प्रातिभासिक पदार्थ में एक अंश की निवृत्ति नहीं होती। मुर्गी को काटकर आधी खाने के लिए रखे और आधी अंडे देने के लिये रखना हो तो वैसा नहीं हो सकता। ऐसे ही भगवान का जगत अखंड समकाल में है। उसमें से हम थोड़ा जगत अपना माने और दूसरा अपना नहीं मानें तो वह नहीं चलेगा। पूरा अपना मानने में चाहे कितने भी विघ्न आये तो भी सब को अपना माने बिना छुटकारा नहीं है। यानी सर्प और बिच्छू को भी हमारे नजदीक के रिश्तेदार मानने पड़ेंगे। ऐसा भाव उत्पन्न न हो तब तक कुछ भेद रह जायेगा और तबतक जन्म-मृत्यु आते रहेंगे। भक्तिमार्ग में भेद का अभेद करने की साधना है और ज्ञानमार्ग में भेद का निषेध करने की साधना है। भेद का अभेद करना हो तो भी हो सके उतना समकाल में सब एक हो जाय ऐसी वृत्तिसे रहना चाहिए और भेद का निषेध करना हो तो भी समकाल में कल्पित निवृत्ति का अभ्यास करना चाहिए। कुछ लोगों को कल्पित की समकाल में निवृत्ति करना सरल लगता है। और कुछ लोगों को समकाल में भेद का अभेद करना- यहभी सरल काम

लगता है। जैसी आदत बनाते है वैसी आदत बन जाती है। योगी एक काल में भेद का अभेद करने की आदत बनाता है और ज्ञानी एक काल में भेद का निषेध करने की आदत बनाता है। दोनों मार्ग शास्त्रों में सच्चे माने हुए है। दोनों मार्गमें आरंभ में कठिनाई आती है। पर मनुष्य का जीवन पूर्ण नहीं है इसलिए विघ्नों को पार करने की हिम्मत रखना चाहिए। आखिर **'पूर्णमदः पूर्णमिदं'** का अनुभव प्राप्त करना है। ऐसा अनुभव होने के बाद कर्तव्य बुद्धि से कुछ कर्तव्य शेष नहीं रहता। संक्षेप में प्रातिभासिक वस्तु की निवृत्ति समकाल में होती है। उसका कारण यह है कि प्रातिभासिक वस्तु में अथवा प्रातिभासिक घटना में अंश-अंशीभाव नहीं बनता। मृगजल धीरे धीरे नहीं सूखता। उसका स्वभाव जानना ही उसकी निवृत्ति है, ऐसे ही कल्पित जगत धीरे धीरे अदृश्य नहीं होता। स्वप्न का जगत भी धीरे धीरे लय नहीं होता। ब्रह्मदशा में जाग्रत के भेद समकाल में निवृत्त होते है।

६ : ज्ञानकाल में प्रातिभासिक वस्तु का त्रिकालिक निषेध होता है।

माण्डूक्य उपनिषद की कारिका में कहा है कि जो पहले नहीं है और बादमें नहीं है वह बीच में भी नहीं है। स्वप्न पहले नहीं था बादमें नहीं है तो बीच में भी सच्चा नहीं था। उल्लू को महसूस होनेवाला अंधकार उल्लू के जन्म से पहले नहीं था, उल्लू के मरने के बाद भी नहीं है तो बीच के समय में भी झूठा है। हिंदुस्तान के वाईसरॉय ने अगली लड़ाई के समय तीन साल तक सभी घड़ियों का समय एक घंटे आगे करवाया था। वह पहले नहीं था, बादमें नहीं था और बीच के समय में भी सच्चा नहीं था। अतः कुछ लोग पुराने टाईम के अनुसार व्यवहार करना पसंद करते थे। संक्षेपमें अज्ञानकाल में जो झूठा हो वह ज्ञानकाल में सच्चा नहीं रह सकता। रस्सी में गलती से सर्प दिखा, उसके बाद रस्सी का सच्चा ज्ञान हुआ उस समय सर्प का नाश नहीं हुआ, लेकिन सर्प तीनों काल में नहीं था ऐसा भान होता है। ऐसे ही जो जगत मनुष्य को दिखता है वह मनुष्य की मृत्यु के बाद उसकी कल्पना में से चला जाय तो कल्पना के समय भी सच्चा नहीं होता। जीव अज्ञान की उपाधिवाला है, ऐसा जीव का अर्थ स्वीकार किया जाय तो ऐसे जीव अनेक है ऐसा अनुभव स्वप्न में किसीको नहीं होता, क्योंकि अ अथवा अ के साथ जुड़े हुए ज्ञान की उपाधिवाला जीव ब और ब के साथ जुड़े हुए अज्ञान की उपाधिवाले अन्य जीव की प्रतीति नहीं हो सकती, अर्थात् किसीको दूसरे के ज्ञान अथवा अज्ञान का अनुभव नहीं हो सकता। अतः अज्ञान अनेक नहीं है बल्कि एक ही है और इसीलिए 'मैं अज्ञ हूँ 'ऐसा अज्ञान उपहित-आत्मा

का अनुभव यद्यपि स्वप्नदृष्टा करता है। तथापि जीवभेद का प्रत्यक्ष अनुभव तो उसको नहीं ही होता और वह वास्तविक है। क्योंकि उपाधि में सच्चा भेद न होने के कारण उपहित में भी भेद का दर्शन हो ही नहीं सकता। पैर में जो चैतन्य है वह सिर के दर्द को नहीं जान सकता वैसी उपाधि में व्यवस्था बन सकती है, इसलिए देह में आत्मा का भ्रम होता है तभी जैसे अनेक जीव हो ऐसा अनुभव होने लगता है। स्वप्नमें जीव का भेद प्रत्यक्ष से सिद्ध नहीं है और अनुमान से भी सिद्ध नहीं है, पर जाग्रत में अनेक जीव कैसे दिखते है ऐसा प्रश्न उठता हो तो उसका समाधान यह है। वास्तवमें एक ब्रह्म ही है और वह अपने स्वभाव से ही नित्य शुद्ध, चैतन्य और मुक्त है और उपनिषद से ही उसका ज्ञान होता है। वही आत्मा अज्ञान का आश्रय करके जीवभाव को प्राप्त होता है और देव, तिर्यक और मनुष्य आदि देहों की कल्पना करता है। स्वप्न में भी ऐसी ही कल्पना होती है, यानी स्वप्न में जाग्रत की तरह ही जीव जगत के प्रपंच की कल्पना करता है। वहाँ भी ऐसी कल्पना हो सकती है कि वसिष्ठ जैसे दूसरे जीव अपने अपने देह और इन्द्रियों के द्वारा कर्मों को भोगने के बाद मोक्ष को प्राप्त हुए, दूसरे अभी बद्ध है, मैं भी अभी तक बद्ध, दुःखी और संसारी हूँ, मैं भी मुक्त होऊंगा। ऐसी झूठी झूठी कल्पनायें करके, फिर ऐसी स्वप्न अवस्था का भी उपसंहार कर लेता है और जाग्रत अथवा सुषुप्ति, कि जिसमें स्वप्न के सर्व भ्रम की निवृत्ति हो जाती है उस अवस्था को प्राप्त होते हैं। ऐसी वस्तुस्थिति होने से स्वभाव से ही परिपूर्ण स्वयंप्रकाश, आनंदरूप एक ही आत्मा, अपने ही अज्ञान के कारण जीव, संसारी आदि संज्ञा को पाता है। फिर जब **'तत्त्वमसि'** आदि महावाक्य को सुनकर ब्रह्मसाक्षात्कार हो अर्थात् परिपूर्ण ब्रह्म के साथ जब उसका अभेद हो तब वह अपने आपको मुक्त देख सकता है और उसके बारेमें ऐसा कहा जाता है कि 'अज्ञान और उसके कार्यों का उसने उपसंहार कर लिया है। ' उपसंहार का अर्थ यहाँ ऐसा है कि प्रातिभासिक था उसका त्रिकालिक निषेध अनुभव में आता है। उस समय ब्रह्म के सिवाय अन्य कोई जीव नहीं रहता और इसलिए लिए जिस द्वैत का वास्तविक अनुभव नहीं होता वह वास्तवमें है ही नहीं। यही वेदांत का रहस्य है। संक्षेप में स्वप्न की नाईं जाग्रत अवस्था भी कल्पित होने से प्रातिभासिक है। प्रतीतिकाल में प्रतीत होनेवाला अनुभव उस काल पर्यंत ही रहता है।

७. प्रातिभासिक वस्तु अधिष्ठान के साथ रहने से सच्चा द्वैत नहीं होता।

दर्पण में जैसे दूसरा मुँह दिखता है तो इससे दो सच्चे मुँह नहीं हो जाते। उल्लू

के लिए दिन में अंधकार और प्रकाश ऐसी दो सच्ची वस्तु नहीं बनती । रस्सी में किसीको सर्प दिखे, किसीको दंड दिखे, किसीको जल की धार दिखे और किसीको माला दिखे तब वहाँ चार सच्ची वस्तुयें नहीं होती लेकिन एक सच्ची वस्तु होती है और अन्य सब कल्पित वस्तुयें होती है। इस विषय में कोई ऐसी शंका करे कि ज्ञान और ज्ञेय ऐसी दो सच्ची वस्तु नहीं हो तो ज्ञान होगा ही नहीं तो ज्ञान होने के लिए कोई वस्तु चाहिए। जैसे कोई जलाने का निमित्त (चीज) न हो तो अग्निमें दाहक शक्ति है ऐसा सिद्ध नहीं कर सकेंगे वैसे ही ज्ञेय के बिना ज्ञान का मूल्य नहीं है। इस प्रश्न का समाधान निम्नलिखित रीत से हो सकता है । जो ज्ञान और ज्ञेय के भेद के बिना ज्ञानकी आवश्यकता हो तो उसके निम्नलिखित तीन कारण हो सकते है :

१. ज्ञान की उत्पत्ति असंभव है ? २. ज्ञान की स्थिति असंभव है ? ३. ज्ञान की ज्ञप्ति असंभव है ? स्वरूपज्ञान की उत्पत्ति का स्वभाव से ही अभाव है, क्योंकि आत्मा निरवयवी होने से उसमें क्रिया का होना संभव नहीं है और वृत्ति ज्ञान की उत्पत्ति माने तो भी उसकी उत्पत्ति के लिये विषय की अपेक्षा नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष आदि प्रमाण और उसके आभास के द्वारा ज्ञान हो सकता है अर्थात् ज्ञान हमेशा विषयजन्य हो ऐसा कोई नियम नहीं है। प्रमाज्ञान और भ्रांतिज्ञान उसके विषय की अनुपस्थिति में भी हो सकते है। प्रमाज्ञान अर्थात् किसी मनुष्य को दूसरा कोई आकर कहे कि तेरे घरमें पुत्र का जन्म हुआ। वह पुत्र प्रत्यक्ष नहीं है फिर भी प्रमावाला ज्ञान होता है। भ्रांतिज्ञान तो विषय प्रत्यक्ष नहीं हो तो भी होता है, यह सब के अनुभव की बात है । अब अन्य विकल्प का विचार करेंगे, यानी ज्ञेय नहीं हो तो ज्ञान की स्थिति संभव नहीं है। उसके समाधान में कहना चाहिए कि ज्ञान का आश्रय विषय नहीं है पर प्रमाता है। विषय को ज्ञान का आश्रय मानोगे तो विषय का विषयपना ही जाता रहेगा, क्योंकि उससे ज्ञान का अधिष्ठान विषय बन जायेगा और उस वजह से ज्ञेय मिटकर विषय स्वयं ज्ञाता हो जायेगा । अब तीसरे विकल्प का विचार करेंगे, ज्ञेय के बिना ज्ञप्ति होगी नहीं ऐसा पूर्वपक्षवाले मानते हो तो वह भी युक्त नहीं है, क्योंकि ज्ञान स्वयंप्रकाश है इसलिए अपने व्यवहार के लिए उसको अन्य किसीकी अपेक्षा नहीं है। ज्ञान स्वयंप्रकाश नहीं है ऐसा कहोगे तो वह परप्रकाश्य बन जायेगा, इसलिए उसका प्रकाश करने के लिए दूसरा ज्ञान चाहिए । इस दूसरे को तीसरा और तीसरे को चौथा ऐसे अनावस्था का प्रसंग आयेगा और उससे ज्ञान की असिद्धि के कारण जगत- अंधता का प्रसंग आयेगा। ज्ञान का स्वरूप ही ऐसा है कि वह है ही ऐसा मानना पड़ता है। ज्ञान और

सत्ता दोनों ओतप्रोत ही है, अर्थात् ज्ञान स्वयंप्रकाश है इसलिये दीये की तरह प्रकाशित होने के लिए उसको दूसरे प्रकाश की जरुरत नहीं है। अतः प्रतीति और प्रतीति के विषय भिन्न है ऐसा कहने में कोई प्रमाण नहीं है। इस चराचर विश्व का भान प्रतीतिमात्र है। जैसे ज्ञान और ज्ञेय के भेद अनेक प्रकार से स्वप्न में प्रतीत होते है, अर्थात् चराचर जगत की जो प्रतीति मात्र होती है वह आत्मा से भिन्न नहीं है। भ्रान्त दृष्टि से अंधकार में रज्जु जैसे सर्प रूप से दिखती है वैसे मूढ़ बुद्धिवाले को ही आत्मा जगत के रूप में दिखता है। आत्मा यदि जगत के रूप से प्रकाशित होता हो तो आत्मा विकारी हो जाय, इसलिए जगत की भ्रांति ही होती है ऐसा कहा है। इस भ्रांति का अधिष्ठान ब्रह्म है।

८. वस्तु एक होने से ज्ञानी को शरीरमें अहंभाव नहीं है और जगत में इदंभाव नहीं है।

जैसे स्वप्न से जगने के बाद स्वप्न के शरीर में मनुष्य को अहंभाव नहीं रहता और स्वप्न के जगत में इदंभाव नहीं रहता वैसे ज्ञानी को जाग्रत के शरीर में अहंभाव नहीं है और जाग्रत के जगत में इदंभाव नहीं है। जाग्रत का शरीर और जाग्रत का जगत भी स्वप्न में नहीं रहता, सुषुप्ति में नहीं रहता, बेहोशी में नहीं रहता और ज्ञान होने के बाद भी नहीं रहता। गीता में भी नौवें अध्याय में भगवान अर्जुन को कहते है कि **'न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् '** अर्थात् मेरे अंदर प्राणिमात्र आदि कुछ नहीं है ऐसा मेरा ऐश्वर्य तू देख। सायन्स की दृष्टि से देखे तो मैं और दूसरे बनाने के लिए बीचमें देशकाल की कल्पना रखनी चाहिए लेकिन देश और काल जगत का भाग नहीं है। वह देखने वाले की अवस्था का भाग है। उसके नाप की वस्तु है और वह नाप उसकी दशा के अनुसार बदलता है। इसलिए देशकाल कल्पित है और देशकाल कल्पित होने से मैं और अन्य ऐसा भेद भी कल्पित है, यानी सच्चा नहीं है। और प्रमाणों की सिद्धि आत्मा से होती है इससे आत्मा की सिद्धि प्रमाणों से नहीं हो सकती। यदि आत्मा को पूर्वसिद्ध न मानें तो प्रमाण का प्रमाता कोई नहीं रहने से प्रमाण का प्रमाणपना भी नहीं रहेगा। अतः 'मैं' के दो अर्थ करें तो ही सत्य मिल सकता है। एक तो प्रमाण के साथ रहनेवाला प्रमाता, उसीको कभी जीव अथवा चिदाभास कहते है और वह भेद उत्पन्न करता है। उसको 'मैं' का वाच्यार्थ कहा है। दूसरा 'मैं' का लक्ष्यार्थ है, वह सच्चा शुद्ध आत्मा का स्वरूप है, वह सब में एक होने से उसकी दृष्टि में इदंता नहीं बनती। व्यवहार में सुबह का 'मैं' अलग होता है, दोपहर का 'मैं' व्यापारी अथवा नौकर होता है,

शाम का खेल खेलनेवाला होता है और रात्रि का मैं किसीका पति हो जाता है अथवा किसीकी पत्नी हो जाता है, वह मैं सच्चा नहीं है। ये सब 'मैं' देह के अभिमानी है और जो 'मैं' देह का अभिमानी है उसको अपने से भिन्न जगत दिखता है। वह 'मैं' देशकाल की सीमा में अपने को कल्प लेता है। प्रथम वह अपने को छलता है अतः सभी प्रसंगों में वह भूल चली आती है। 'मैं' का वास्तविक अर्थ विशाल है उसीको ब्रह्म कहते है।

९ : प्रातिभासिक वस्तु में दो ज्ञान की सामग्री नहीं होती।

जब ठूंठ में पुरुष दिखे तब वहाँ ठूंठ होगा या पुरुष होगा ऐसे दो ज्ञान की सामग्री नहीं है। वहाँ ठूंठ ही है ऐसा एक ज्ञान ही सच्चा है। स्वप्नमें अनेक ज्ञान होते है लेकिन अनेक ज्ञान की सामग्री नहीं है। वहाँ सिर्फ मैं था। जाग्रत में अनेक ज्ञान होते है वहाँ अनेक ज्ञान की सामग्री हो वैसा प्रतीत होता है परंतु वास्तवमें अपने ज्ञान को छोड़कर उनकी गिनती करने जाये तो गिनती नहीं हो सकती। अतः वास्तवमें अपना ज्ञान ठीक करने की जरुरत है। जगत अपने से भिन्न दिखता है पर वह अज्ञान के कारण होनेवाली सिर्फ कल्पना है। तत्त्वज्ञान होनेपर यह भ्रांति चली जाती है। जब अनेक जीव दिखे तब भी ऐसा समझना चाहिए कि देखनेवाला अपने को ठीक करके देख नहीं सकता। देखनेवाले को ठीक करना यह कठिन कार्य होने से उसके लिए ज्ञानमार्ग में शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा आदि सात भूमिका बतलायी गयी है। पर्वत की तलहटी में खड़े होने पर जो भेद दिखता है वह भेद पर्वत पर चढ़ने के बाद नहीं दिख सकता। ज्ञान की छठी भूमिका को पदार्थ-अभाविनी कहते है। उस दशामें सिर्फ ब्रह्म के अलावा अन्य कुछ नहीं रहता। निम्न दशामें भी दूसरे के जैसा 'अन्यदिव' मालूम पड़ता है। पिछले प्रकरणों में अनेक दृष्टांतों से समझाया है कि हम जो बाहर की वस्तुयें देखते है वे वस्तुयें नहीं है अपितु घटनायें है और घटना के अंदर जो देशकाल उत्पन्न होते है वे सच्चे नहीं है, अतः जब देशकाल को छोड़कर बात करें तब सिर्फ एक ही वस्तु रहती है। वस्तु एक होने से ज्ञान भी एकरूप होना चाहिए पर मनुष्य के समाज में रहकर उस गलती को सुधारना मुश्किल हो जाता है। इसीलिए भगवान ने गीतामें कहा है कि जो आत्मदशा मनुष्यों को रात्रि जैसी लगती है उसमें ज्ञानी पुरुष जगता है और जिस द्वैतदशा में मनुष्य रहते है उसे ज्ञानीपुरुष रात्रि मानते हैं। रज्जुमें सर्प दिखे और वह सर्प बारबार दिखे तो भी वहाँ दो ज्ञान की सामग्री नहीं है। ऐसे ही हररोज वही का वही जगत दिखे तो भी वहाँ दो ज्ञान की सामग्री नहीं है। अतः पहले प्रमाण ठीक करना चाहिए। जिस प्रमाण से अनेक वस्तु दिखती है और अनेक प्रकार के ज्ञान होते

है वह प्रमाण सच्चा है कि नहीं उसकी पहले जाँच करना चाहिए। श्रवण, मनन और निदिध्यासन के अभ्यास से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वही सच्चा प्रमाण है और उससे ही आत्मसाक्षात्कार होता है। साधारण व्यावहारिक प्रमाण प्रमाण नहीं है अपितु प्रमाण का आभास है। ज्ञाता और ज्ञान के बीच भेद नहीं है इससे आत्मा अपरोक्ष हो सकता है। यदि कोई ज्ञेय प्रमाता से दूर होता जाय तो उसमें परोक्षता बढ़ती जाती है यह साधारण अनुभव की बात है किन्तु जो आत्मा अपरोक्ष है उसमें जो ज्ञान रहता है वह परोक्ष नहीं हो सकता। जहाँ जिन शब्दों से परोक्षज्ञान होता है वहाँ दो पदार्थों के बीच अंतराय होता है। जहाँ अंतराय नहीं होता वहाँ अपरोक्षज्ञान होता है। दसवाँ पुरुष है इस वाक्य से परोक्षज्ञान होता है, क्योंकि 'है' शब्द से होनेवाले ज्ञान और 'दशम' शब्द से होनेवाले ज्ञान के बीच अंतराय है। परंतु 'तू दसवाँ है' इस वाक्य से अपरोक्ष ज्ञान होता है। क्योंकि यहाँ बीच में अंतराय नहीं है, अतः व्यवधान रहित ज्ञान होना चाहिए। वैसे ही ब्रह्म सब का आत्मा होने से अत्यंत समीप है, इसलिए तू ब्रह्म है यह वाक्य सुनते ही अपरोक्ष ज्ञान ही होता है, फिर भी अगर न हो तो कल्पित आवरण दूर करने के लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना चाहिए। जीव स्वयं ब्रह्मरूप है और ब्रह्म से अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है यह बात वेदांत में जितनी भारपूर्वक समझाई जाती है उतनी दृढ़ता से अन्य शास्त्रों में वह बात नहीं मिलती। जीव ब्रह्म हो तो जीव दुःख के समय चिल्लाता क्यों है ? ऐसा कई पूर्वपक्षवाले कहते हैं, लेकिन चिल्लानेवाले को नींद आ जाय तो उसका दर्द तुरंत दवाई के बिना क्यों मिट जाता है ? उसका भी ठीक से विचार करना चाहिए। अतः दुःख उपाधि का धर्म है, आत्मा का धर्म नहीं है। अज्ञान की सिद्धि अज्ञान से होती है। अज्ञान की सिद्धि प्रमाण से नहीं होती। यदि अज्ञान की सिद्धि प्रमाण से होगी तो अज्ञान की निवृत्ति ही नहीं होगी, क्योंकि जिस प्रमाण से जिस वस्तु की सिद्धि होती है उस प्रमाण से उस वस्तु की निवृत्ति नहीं होती। जैसे स्वप्न के प्रमाण से स्वप्न की सिद्धि होती है तो स्वप्न के प्रमाण से स्वप्न की निवृत्ति नहीं होगी। स्वप्न के समय स्वप्न का ज्ञान सच्चा लगता है इसलिए वह प्रमाण सच्चा है ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि जाग्रत होते ही उस प्रमाण का बाध होता है, वैसे ही जिस प्रमाण से जाग्रत का व्यवहार चलता है उस प्रमाण से जाग्रत की भूल समझमें आयेगी नहीं, इसलिए सच्चे प्रमाण की यानी सच्चे नाप की जरुरत पड़ती है। सच्चे प्रमाण की व्याख्या शास्त्रों ने ऐसे की हुई है कि 'नहीं जाने हुए को जनाए और अबाधित अर्थ को बताये' ऐसी वस्तु सिर्फ ब्रह्म है और उस

ब्रह्म को सिर्फ उपनिषद का ज्ञान बताता है, इसलिए उपनिषद अथवा वेदांत परम प्रमाण है। और वेदांत के साथ अनुभव और युक्ति रखे हुए है। सिर्फ अनुभवपर कोई आधार रखे तो नास्तिक हो जाय। सूर्य पृथ्वी से छोटा दिखता है, यह अनुभव है फिर भी वास्तवमें सूर्य बड़ा है। स्वप्न के अनुभव का जाग्रत में बाध होता है। जाग्रत में रज्जु में सर्प दिखता है, इसलिए सिर्फ अनुभव पर आधार नहीं रख सकते। सिर्फ युक्तिपर आधार रखे तो कोई निश्चय नहीं बनेगा और सिर्फ श्रुति पर आधार रखने को अभी के कुछ लोग मना करते है, इसलिए श्रुति, युक्ति और अनुभव इन तीनों का समन्वय होना चाहिए। वास्तविकता तो यह है कि जो भेद दिखता है वह सच्चा है ऐसा मानकर विचार करने की जरुरत नहीं है। जिस समय भेद दिखता है उस समय का ज्ञान सच्चा है कि नहीं उसकी जाँच करनी चाहिए।

१० : स्वप्न के समय स्वप्न व्यावहारिक है। जगने के बाद प्रातिभासिक लगता है। प्रातिभासिक होने के बाद सबकुछ मैं था यह जानना सरल है।

जैसी दशा स्वप्न की है वैसी ही जाग्रत की दशा है ऐसा नए सायन्स वाले गणित से सिद्ध करते है। स्वप्न की नाईं जाग्रत भी प्रातिभासिक है यह गणित से सिद्ध करके दिखाना ये अभीके हमारे जमाने की बड़े से बड़ी खोज है, लेकिन प्रातिभासिक सत्ता का विचार जितना हमारे शास्त्रों में मिल सकता है उतना उनके सायन्स में नहीं मिलता। इसलिए हमारे शास्त्र और उनके सायन्स को मिलाने की जरुरत है यानी उन्हें हमारे शास्त्र समझने की जरुरत है और हमें उनका देशकाल की सापेक्षता वाला सिद्धांत समझने जैसा है। सर.ए.एडिंगटन कहते है कि : सापेक्षवाद की खोज और क़्वान्टम थियरी की खोज ये सिर्फ नई खोज नहीं है, लेकिन ये हमारी जगत विषयक कल्पना को ही बदल देती है। और आगे कहते है कि हमारा ज्ञान हमारी खुद की यानी व्यक्ति की इन्द्रियों का ज्ञान है, वह मनुष्य जाति का सामान्य ज्ञान नहीं है। जाति का ज्ञान थोड़ा मिलता जुलता है फिर भी अधिक विचार करनेपर हर एक मनुष्य को जगत अलग अलग प्रकार का लगता है। अतः देखनेवाले का विचार साथमें होना चाहिए और देखनेवाले का विचार करनेपर व्यावहारिक जगत प्रातिभासिक हो जाता है। अतः प्रमेय की ओर अधिक ध्यान रखने की जरुरत नहीं है किन्तु प्रमाण की ओर अधिक ध्यान देने की जरुरत है। और जहाँ प्रमाण अनेक हो वहाँ कैसा जगत दिखेगा उसका निश्चय नहीं हो सकता। ऐसी अनिश्चित वस्तु को सायन्स में अनियति कहते है। दृश्य को अथवा प्रमेय को पता नहीं है कि उसके देशकाल कैसे है। हम हमारी अल्प बुद्धि से

उसको झूठे देशकाल में लाकर देखते है, इसलिए हम जो देखते है वह स्वप्न के जैसी घटनायें हैं, यह कोई वस्तु नहीं है। स्वप्न का जगत जैसे निश्चित आकार वाला या निश्चित भविष्यवाला नहीं है वैसे जाग्रत का जगत भी वैसा ही है। शिवाजी महाराज को स्वप्न में भी खबर नहीं होगी कि हिन्दुस्तान में अंग्रेजो का राज्य आयेगा; और अणुबम जैसी वस्तु हमारे जगत में उत्पन्न होगी उस बात की भी थोड़े समय पहले किसी को खबर नहीं थी। और लड़ाई के बीच में जो मर गये उनको पता नहीं कि लड़ाई का अंत कैसे आया ? अतः जिस समय जो घटना घटती है उसको कैसे समझते हैं यह जानना चाहिए। हर एक मनुष्य एक प्रकार का स्वप्न देखता है कि मैं सच्चा जगत देखता हूँ। स्वप्न के समय भी ऐसी दशा उत्पन्न होती है। जिस घटना को एक मनुष्य देखता है और दूसरे लोग उसी घटना को देखे उसमें बहुत अंतर पड़ जाता है। एक ही स्त्री किसीकी पत्नी हो और किसीकी माँ हो तो दोनों की दृष्टि में अंतर पड़ जाता है।

११ : प्रातिभासिक वस्तु में सिर्फ ज्ञात सत्ता रहती है।

जब प्रातिभासिक वस्तु का ज्ञान होता है तभी उसका फल प्राप्त होता है। जो जगत हमने जाना नहीं अथवा हमारे ज्ञान में नहीं आ सकता उसका असर हमारे जीवन पर नहीं होता। जिसने रस्सी में सर्प को देखा हो उसको डर लगता है। किन्तु अज्ञात रज्जुसर्प से किसीको डर नहीं लगता। अतः जो जगत हमने जाना वह कैसे जाना यह जानने की जरुरत है और जो नहीं जाना वह कैसे नहीं जाना यह जानने की जरुरत है। हर एक व्यावहारिक प्रमेय में असत्त्वापादक आवरण होता है और अभानापादक आवरण होता है। असत्त्वापादक अर्थात् वस्तु नहीं है। वस्तु हो पर मुझे उसकी खबर नहीं हो उसे अभानापादक आवरण कहते है। जहाँ प्रातिभासिक वस्तु हो वहाँ अभानापादक आवरण नहीं बनता क्योंकि प्रातिभासिक वस्तु ज्ञानकाल में ही प्रतीत होती है, उससे पहले से वस्तु सिद्ध नहीं होती। रज्जुसर्प का ज्ञान होने से पहले रज्जुसर्प सिद्ध नहीं है, वैसे ही हमारा माना हुआ जगत हमारे ज्ञान से पहले सिद्ध नहीं है। वह ज्ञानकाल में जैसा ज्ञान हो वैसा प्रतीत होता है फिर भी प्रातिभासिक वस्तु अर्थकारी हो सकती है। रात्रि में किसी की छाया देखकर मनुष्य डरता है, किसीकी प्रतिध्वनि सुनकर भी डरता है, ऐसे ही स्वप्न का देह आदि प्रातिभासिक होनेपर भी फल देते है। जाग्रत का देह भी प्रातिभासिक है फिर भी जाग्रत के ज्ञान से वह व्यावहारिक लगता है और मृत्युपर्यंत अनेक भय उत्पन्न करता है। शुद्ध अधिष्ठान में विपरीत कल्पना करने के बाद उस झूठी वस्तु के लिए कोई मनुष्य प्रवृत्त हो या न हो

तो भी अधिष्ठान विषयक अध्यस्त का बाधक ज्ञान होते ही -फिर चाहे वह ज्ञान परोक्ष हो अथवा अपरोक्ष हो तो भी- उस मनुष्य को ऐसा निश्चय होता है कि यह कल्पित वस्तु तीनों काल में भी नहीं है। ऐसा निश्चय या बाध यह बात सब मनुष्यों की अनुभवसिद्ध है, इसलिए सच्ची वृत्ति से (यानी सच्चे प्रमाण से) आवरण भंग होता है। ब्रह्म और आत्मा के अभेद का साक्षात्कार होते ही तुरंत अज्ञान और उसके सभी कार्य और उसके अलावा जो कुछ अधिष्ठान में अध्यस्त है वह सब तीनों काल में अधिष्ठानमें नहीं है ऐसा जो अपना सिद्ध निश्चय है वही ब्रह्म में अज्ञान का बाध है, यह बाध का अर्थ होता है। अनिर्वचनीयत्व की व्याख्या ऐसी है कि अधिष्ठान में जो कल्पित है वह कल्पित के निषेध का प्रतियोगी होनापन। जैसे रज्जु में सर्प कल्पित है, वह झूठा है, उसका त्रिकालिक निषेध हो सकता है, फिर भी उसका होनापन उस समय प्रतीत होता है इसलिए उसको अनिर्वचनीय कहते है।

१२ : प्रातिभासिक वस्तु में सत्य का क्रम नहीं होता।

सत्य में क्रम नहीं बनता यानी एक घटना के ज्ञानसे दूसरी घटना का ज्ञान अधिक सच्चा है ऐसा नहीं कहा जा सकता। रस्सी में जब सर्प दिखता है तब सर्प के ज्ञान से रस्सी का ज्ञान अधिक सच्चा है ऐसा नहीं कह सकते। सर्प का ज्ञान बिलकुल झूठा है और रस्सी का ज्ञान बिलकुल सच्चा है ऐसा कह सकते हैलेकिन सत्य में न्यूनाधिक नहीं होता। चिड़िया के ज्ञान से मनुष्य का ज्ञान अधिक सच्चा नहीं है, क्योंकि दोनों का ज्ञान प्रातिभासिक है और मिथ्या है, ऐसे ही जगत के ज्ञान से ब्रह्म का ज्ञान अधिक सच्चा है ऐसा कहने में जगत का ज्ञान कुछ सच्चा है ऐसी भावना उत्पन्न हो जायेगी। वास्तवमें जगत विषयक साधारण मनुष्य का भेदवाला ज्ञान बिलकुल झूठा है और ब्रह्मज्ञान बिलकुल सच्चा है। अध्यास का नाश करनेवाला बाधक ज्ञान होने के बाद कल्पित वस्तु तीनों काल में नहीं है ऐसा जो निश्चय है उसका नाम बाध है यह बात वेदांतसिद्धांत में प्रमाण से स्वीकार की हुई है। प्रकाश और अंधकार की नाईं विद्या और अविद्या स्वभाव से ही विरोधी है। विद्या स्वभाव से ही उपमर्दक है और अविद्या स्वभाव से ही उपमर्द्य है। अविद्या का नाश विद्या से होता है यह बात लोकप्रसिद्ध है इसलिए स्वभाव से ही अविद्या की उपमर्दक विद्या है। तो अविद्या का प्रमाण क्या ? ऐसे विषय का फिर प्रमाण क्या ? प्रमाण तो दीपक के रूपमें होता है और अज्ञान तो अंधकार स्वरूप होता है। दीपक लेकर अंधकार को ढूँढने जाया जाता है क्या ? इसलिए अज्ञान का कारण भी अज्ञान है। अविद्या का कल्पक

खोजना हो तो जिसके अंदर अविद्या हो वह उसका कल्पक है वैसा निर्णय हो सकता है। घास के पूले में अग्नि की चिनगारी पड़ी हो तो जैसे अग्नि घास को जलाकर खुद अपने आप शांत हो जाती है वैसे ज्ञानवृत्ति अज्ञान को जलाकर अपने आप शांत हो जाती है। काँटे से काँटा निकालकर दोनों को फेंक दिये जाते है। इस दृष्टांत में भी फेंक देनेवाला मनुष्य रह जाता है ऐसी शंका होनेपर कतक-रेणू का दृष्टांत लेना चाहिए। इस फल का स्वभाव ऐसा है कि उसका पाउडर पानी में डाले तो पानी के अंदर के कचरे को नीचे बिठाकर खुद भी नीचे बैठ जाता है। इसप्रकार जब कार्यसहित अज्ञान की निवृत्ति हो तब प्रमाता की भी निवृत्ति होती है।

१३ : प्रातिभासिक सत्ता भ्रांतिकाल में झूठी नहीं लगती।

प्रातिभासिक सत्ता मिथ्या है यह बात सच्ची है परंतु मिथ्या यानी बिलकुल झूठी नहीं लेकिन जो झूठी हो और सच्ची जैसी लगे, उससे व्यवहार हो और जो अन्य दशा में बाधित हो। इतनी स्पष्टता ठीक से समझे बिना प्रातिभासिक सत्ता ठीक से समझ में नहीं आयेगी। यही बात वर्तमान के नये सायन्स से सिद्ध हुई है। मुख्य गलती यह होती है कि हमारी दृष्टि में जो दिखता है वही सच्चा जगत है ऐसा मान लिया जाता है। और उससे व्यवहार भी चलता है, इसलिए गलती ढूँढने की मनुष्य को इच्छा नहीं होती। सिनेमा के पर्देपर झूठे चित्र है, लेकिन उससे मनुष्य को सुख होता है इसलिये उन झूठे चित्रों को बिलकुल झूठे मानने की इच्छा नहीं होती। बरट्राण्ड रसेल कहते है कि जैसी ज्ञाता के ज्ञान की दशा होती है वैसी ही उसके ज्ञेय की दशा होती है, इसलिये जब तक प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय की त्रिपुटी एक दशा में हो तब तक उस दशा का जगत सच्चा लगता रहता है, पर जगत की रचना में उसी घटना को देखनेवाले अन्य प्रमाण और प्रमाता मौजूद होते है। इसी वजह से मनुष्य को अपनी गलती पकड़ने का साधन मिलता है। हमारे व्यवहार में हम एक दूसरे को ऐसा कहते है कि 'तुम्हें अमुक कार्य क्यों करना चाहिए ?' तुम्हारी मान्यता गलत लग रही है। इसप्रकार परस्पर की सीमा एक दूसरे के प्रमाण की तुलना करते करते टूटने लगती है। जैसा प्रमाता हो, जैसा उसका प्रमाण हो उसके अनुसार सुख दुःख का असर होता है। यदि अखंड ब्रह्म का असर अनुभव में आये तो वह ब्रह्म को देखने के समान है। किसी भी घटना के देशकाल को जानकार उसको समझने में कठिनाई नहीं पड़ती लेकिन एक ही घटना अलग अलग देशकाल से अनेक प्रकार से जान सकते है और उसमें कौनसा दृष्टिकोण सच्चा है यह निश्चित करना साधारण मनुष्य के लिए कठिन हो

जाता है। सामान्य मनुष्य के पास सिर्फ अपना ही प्रमाण रहता है, और वह सब घटनाओं को समझने के लिए काम नहीं आता। ऐसी कठिनाई के कारण सच्चा प्रमाण किसको कहना इस बात को पहले निश्चित कर लेना चाहिए। इस का निश्चय करने के लिए सच्चा सुख किसे कहना उसको भी निश्चित कर लेना चाहिए। वह सिर्फ ब्रह्म स्वरूप है, इसलिये जिस प्रमाण से ब्रह्म का आनंद मिले वही प्रमाण सच्चा मानना चाहिए। आत्मा की सत्ता से अतिरिक्त द्वैत की सत्ता नहीं है, यानी प्रातिभासिक सत्ता यह कोई सच्ची सत्ता नहीं है। यह माया का स्वरूप है और ब्रह्मदशा में बाधित होती है। जो सत्ता अन्य दशा में बाधित हो वह सच्ची सत्ता नहीं होती, इसलिए प्रातिभासिक सत्ता को पारमार्थिक सत्ता में बदलने में कोई कठिनाई नहीं लगती। यानी आत्मा को जानने से द्वैतमात्र जानने में आ जाता है। जैसे रस्सी का स्वरूप जान लिया तो सर्प, माला, दंड आदि जो उसमें अध्यस्त है वे सब जानने में आ जाते है वैसे ही आत्मा को जान लिया तो सबकुछ समझमें आ जाता है। इस बातपर किसी का विरोध नहीं होता क्योंकि अन्य सब आत्मा में कल्पित है। आत्मा में द्वैतदृष्टि का कभी संभव नहीं होता। द्वैत अपनी सत्ता से सिद्ध होकर नहीं रहता वैसे अन्य किसी से भी उसकी सिद्धि नहीं होती। अतः श्रुति के प्रमाण से देखा जाय तो माया तुच्छ है, युक्ति से देखे तो वह अनिर्वचनीय है और साधारण अज्ञानी मनुष्य की दृष्टि से देखे तो वह सच्ची जैसी लगती है। और आत्मज्ञान और उसका फल समकालीन मिलता है। श्रुति में कहा है कि **'तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।** उसको जानकर मनुष्य मृत्यु को लांघ जाता है, उसके सिवाय वहाँ जाने का कोई मार्ग नहीं है। गीता में भी भगवान ने अर्जुन को कहा है कि ज्ञान रूपी अग्नि सभी कर्मों को भस्म कर देता है। व्यावहारिक सत्ता को सच्ची मानें तो उसको दूर करने के लिए अत्यंत वैराग्य चाहिए। यदि व्यावहारिक सत्ता को प्रातिभासिक कर सके तो ज्ञान से यानी अभ्यास से मनोनाश, वासना क्षय और तत्त्वज्ञान समकालीन प्राप्त हो सकते है।

१४ : प्रातिभासिक वस्तु व्यावहारिक हो सकती है।

छाया, प्रतिध्वनि, आभास, स्वप्न आदि असत होते हुए भी सत्यवत दिखने से अर्थकारी होते हैं। एक मनुष्य एक मकान में सोया था। वहाँ उसको स्वप्न आया। स्वप्न में से जागने के कुछ समय बाद उसको पता चला कि खुद कहाँ था। स्वप्न में उसको अनेक वर्षों का अनुभव हुआ था और उसने अनेक देशों की यात्रा की थी।

यानी थोड़ा समय जापान, थोड़ा समय लंडन-न्यूयॉर्क में और मेक्सिको में वह रहा था। स्वप्न से जगने के बाद अभी आँख खुली भी नहीं थी उससे पहले उसको विचार आया कि मैं कौनसे देश में हूँ ! अंतमें आँख खोली और उसने निर्णय किया कि मैं हिन्द में हूँ, जहाँ था वहीं हूँ, और मैं कहीं गया नहीं हूँ। ऐसे ही जाग्रत में जन्मे हुए जीव को मालूम नहीं है कि खुद कैसे जन्मा, फिर भी खुद जन्मा, अनेक गाँवों में घूमा, अनेक घटनायें सुनी और याद की। लेकिन यह सब (अज्ञानरुपी) बंध आँखवाले के लिए है। ज्ञान दृष्टि खोले तो खुद ब्रह्म में था और ब्रह्म में ही है, खुद कोई कालमें या कोई देशमें गया नहीं है। वर्तमान, भूत या भविष्य जैसा नहीं है, लेकिन कर्म से ऐसा बन जाता है। प्रातिभासिक सत्ता व्यावहारिक हो जाती है उसका कारण यह है कि अंतःकरण और उसके धर्म इन दोनों का अध्यास आत्मा में होता है। जैसा स्वप्न में होता है वैसा जाग्रत में होता है।

१५ : प्रातिभासिक वस्तु की उसके अधिष्ठान के साथ एकता नहीं होती।

कल्पित का अस्तित्व अधिष्ठान के अस्तित्व से वस्तुतः अन्य नहीं है, पर अभिन्न है। और ज्ञान होता है तब कल्पित का अस्तित्व बाधित होता है इसलिए दोनों की एकता नहीं होती। क्योंकि जगत ब्रह्म में कल्पित है। प्रातिभासिक वस्तु की प्रतीति समकाल में होती है और निवृत्ति भी समकाल में होती है। मृगजल धीरे धीरे नहीं सूखता वैसे ही कल्पित जगत धीरे धीरे अदृश्य नहीं होता। आत्मा की सत्ता से अतिरिक्त द्वैत की सत्ता नहीं है। अतः आत्मा को जानने से सबकुछ जानने में आ जाता है और ज्ञेय की समाप्ति होती है। रज्जु में से सर्प की निवृत्ति होने के बाद फिर वह कोई जानने की वस्तु नहीं है, वैसे ही जगत भी जानने की वस्तु नहीं है। नये सायन्स वाले उसको एक इवेंट कहते है और इवेंट (घटना) रज्जु -सर्प की भाँति प्रातिभासिक होती है।

ॐ ॐ

१२ : अज्ञात सत्ता

विज्ञान और शास्त्र के अनुसार एक बात निश्चित हो सकती है कि जब किसी वस्तु को देखनेवाला हो अथवा किसी घटना को जाननेवाला हो तब वह वस्तु अथवा घटना प्रातिभासिक हो जाती है। जब देखनेवाले का विचार ठीक से नहीं होता तब व्यावहारिक सत्ता सच्ची हो वैसा साधारण मनुष्य को लगता है। अतः कुछ विज्ञान वाले और व्यावहारिक मनुष्य ऐसी मान्यता पर आ जाते है कि किसी वस्तु को अथवा किसी घटना को जानने वाला कोई नहीं हो तो भी उस वस्तु की हयाती हो सकती है। उसको अज्ञात सत्ता कहते हैं, अर्थात् हमारी जानकारी में नहीं हो वैसा अथवा किसी के जानने में नहीं आता हो वैसा जगत है कि नहीं और है तो कैसा है, इस बात पर विचार इस प्रकरण में किया हुआ है।

मानलो कि गुलाब के फूल में गुलाबी रंग दिखाने की शक्ति है। उस गुलाब को कोई देखनेवाला हो तो भी वह रंग वहाँ है, और कोई देखनेवाला नहीं हो तो भी गुलाब में गुलाबी रंग रहता है उसका निश्चय करना हो तो रंगीन वस्तु के फोटो खींचने के कैमेरे होते हैं। उसको गुलाब के सामने रखा हो तो उसमें भी गुलाबी रंग आ जाता है। यानी जड़ वस्तु भी गुलाबी रंग ग्रहण कर सकती है। अतः गुलाबी रंग गुलाब की प्रकृति के अंदर है, देखनेवाले की आँख से वह नहीं निकलता। अधिक सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो गुलाब में सुगंध भी है। वह सुगंध फोटोग्राफ के कैमेरे में से नहीं आती, पर मनुष्य का नाक हो तो ही पता चलता है। अथवा किसीका नाक ऐसा हो कि उसको गंध न आती हो तो सुगंध होने पर भी पता नहीं चलेगा। और गुलाबी रंग भी जिसको पीलिया हुआ हो उसको पीला भी लग सकता है अथवा हो सकता है कि बन्दर को अथवा पतंगे को वह रंग अलग प्रकार का दिखता हो।

दूसरा दृष्टांत लेकर अब अज्ञात सत्ता का पुनः विचार करेंगे। किसी कमरे में एक मनुष्य बैठा है और वह अपना रेडियो चालू करके सुनता है। कुछ समय के बाद उसको कुछ काम के लिए बाहर जाना हुआ और रेडियो चालू रखकर वह बाहर गया। उसको वापस आने में एक घंटे का समय लगा उस एक घंटे के समय में उस कमरे में कोई नहीं था। यहाँ सवाल होता है कि उस मनुष्य की अनुपस्थिति में रेडियो चल रहा था या नहीं ? चल रहा था तो उसका प्रमाण क्या ? और नहीं चल रहा था उसका

क्या प्रमाण ? साधारणतया ऐसा अनुमान हो सकता है कि वह मनुष्य जब वापस आया तब रेडियो चल रहा था, इसलिये बीच के समय में भी चलता होगा। लेकिन मानो कि बीच के समय में पावर हॉउस के कोई मशीन की खराबी के कारण कुछ समय बिजली का करंट बंद किया हो और उस कारण से १५ मिनट तक रेडियो बंद रहा हो और बिजली चालू होने के बाद रेडियो चालू हुआ हो तो उस बात का निश्चय कैसे हो सकेगा ? क्योंकि उस समय कमरे में कोई नहीं था।

और ऐसा मानलो कि हमारी पृथ्वी के जैसे ६-७ ग्रह सूर्य के आसपास घूमते हैं। उनमें जो मंगल का ग्रह है वह हमारी पृथ्वी से अत्यंत नजदीक है और लगभग हमारी पृथ्वी के जैसा है। वहाँ कोई बस्ती होगी ऐसा अनुमान होता है, लेकिन वहाँ कोई होना ही चाहिए अथवा नहीं होना चाहिए ऐसा निश्चय कैसे हो सकता है ? उल्लू को दिन में अँधेरा दिखता है इसलिए अमुक प्रकार का जगत उसको दिखता है वही जगत हमको प्रकाशमय और अलग प्रकार का दिखता है तो वही जगत ईश्वर को भी अलग प्रकार का दिखता होगा लेकिन उसका निश्चय कैसे होगा ?

कुछ लोग मर गये फिर भी हमारा जगत उनके पीछे चलता रहता है वैसे ही हमारे मरने के बाद यह जगत चलता रहेगा ऐसा अनुमान हो सकता है, लेकिन उस बात का निश्चय मरनेवाले मनुष्य को कैसे हो सकेगा ? इन सब प्रसंगों में अज्ञात सत्ता का विचार है। पिछले प्रकरणों में ज्ञात सत्ता का विचार किया गया है। तत्त्वज्ञान में अज्ञात सत्ता का विचार भी उपयोगी है। यानी ऐसा जगत हो सकता है कि जिसके होने पर भी हम नहीं जान सकते !

हमारे शास्त्रों में भी ब्रह्मलोक, देवलोक, गन्धर्वलोक, सिद्धलोक आदि अनेक लोकों का वर्णन आता है। वे लोक सचमुच हैं कि नहीं ? और उसका निश्चय कैसे हो ? मेरी अलमारी में रखी हुई पुस्तक मेरे सामने टेबल पर नहीं है। इससे वह पुस्तक समूचा है ही नहीं ऐसा कैसे कह सकते है ? और कुछ पूर्वपक्ष वाले ऐसी शंका ब्रह्मज्ञानी के सामने रखते हैं कि जो सन्मुख नहीं हो वह वस्तु ही न हो तो तुम्हारा ब्रह्म कहाँ सन्मुख है ? इसलिए वह भी नहीं है। इसप्रकार अज्ञात सत्ता का प्रश्न उत्पन्न होता है। जो वस्तु प्रत्यक्ष न हो, उसकी हयाती न हो तो घर से बाहर गया हुआ मनुष्य अपने परिवार को यानी स्त्री, पुत्र को सन्मुख नहीं देखने से उनके अभाव का निश्चय करके शोक से जलता, रोता, चिल्लाता हुआ मृत्यु को प्राप्त होगा। और स्वप्न का बाध तो

जाग्रत में होता है लेकिन जाग्रत जगत का तो बाध नहीं होता, इसलिए व्यावहारिक सत्ता भी सच्ची है ऐसा मानना पड़ेगा। ऐसी ऐसी बातें कईयों के मनमें बारबार आती है और यह बात निश्चित करने के लिए अब पश्चिम के सायन्स वाले भी दुविधा में आ गये हैं।

उपरोक्त सब प्रश्नों का उत्तर देने से पहले ज्ञानी पुरुष सामने से प्रश्न करता है कि द्वैत सच्चा है या नहीं ? द्वैत सच्चा हो तो शास्त्र की अथवा गुरु की जरुरत नहीं है और सब अद्वैत अनुभव वाले ज्ञानी पुरुषों के अनुभव झूठे हो जाय और द्वैत सच्चा न हो तो अज्ञात सत्ता जैसा रहेगा नहीं, और अज्ञात वस्तु में भी सत्ता है यानी उसका अस्तित्व है उसका निश्चय किस आधार से हो सकेगा ? अनुमान से कहो तो अनुमान प्रमाण भी प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर ही हो सकता है। पहाड़ पर धुआँ देखा हो तो अग्नि का अनुमान होता है अर्थात् दृश्य के आधार से अदृश्य का अनुमान हो सकता है। और जितना दृश्य दिखता है और जानने में आता है वह रज्जु- सर्प की नाई प्रातिभासिक है। अतः जो आकाश, देश, काल आदि दिख नहीं सकते उनकी सत्ता भी दृश्य के जैसी यानी प्रातिभासिक हो सकती है।

१ : जगत को कोई देखनेवाला नहीं हो वैसा जगत जान नहीं सकोगे क्योंकि उस जगत को जानने जाओगे तो जाननेवाले को उस समय वहाँ उपस्थित रखना पड़ेगा।

उपरोक्त एक दृष्टांत का विचार करते हैं। घर से बाहर गया हुआ पुरुष अपने रिश्तेदारों को न देखकर, उनके नाश का निश्चय करके रो- रोकर मर जाय ऐसा नहीं होता, क्योंकि रिश्तेदारों के बाध का प्रमाण वहाँ नहीं है। इसलिए रिश्तेदारों के अभाव का उसको निश्चय नहीं हो सकेगा। स्वप्न में कोई मनुष्य अपने स्त्री- पुत्र को प्रत्यक्ष नहीं देखेगा तो वे मर गये है ऐसा मानकर रोकर मरता नहीं है, अतः अज्ञातवस्तु है कि नहीं यह जानने के लिए प्रमाण का विचार जरुरी है।

और जाग्रत अथवा स्वप्न इनमें से किसी भी अवस्था में जबतक भ्रांति होती है तब तक भ्रांति का बाध नहीं होता। रज्जु- सर्प में भी जबतक बाधक प्रमाण उत्पन्न न हो तब तक भ्रांति नहीं जाती। बाधकाल में भ्रांति का अभाव होने से भ्रांतिसिद्ध व्यवहार की सच्ची सत्ता का स्वीकार नहीं किया जा सकता, पर यदि व्यवहार झूठा हो तो हररोज वैसे का वैसा जगत कैसे दिखता है ? इस बात को समझने के लिए प्रकरण

४ में मछुआरे की जाल का दृष्टांत (पृष्ठ क्रमांक 118) दिया हुआ है वह ठीक से याद रखने जैसा है। हररोज एक ही जाल का उपयोग होता हो तो हररोज एक जैसी ही मछलियाँ समुद्र में से रोज निकलेगी, यह जाल का स्वभाव है, समुद्र की मछलियों का स्वभाव नहीं है। ऐसे ही जब तक पाँच इन्द्रियों के ज्ञान को प्रमाणरूप माना हुआ है तब तक उस प्रमाण के अनुसार ही जगत दिखेगा। सच्चा जगत कैसा है यह जानना हो तो सच्चा प्रमाण तैयार करना चाहिए, यानी अलग प्रकार की जाल तैयार करनी चाहिए। अतः स्वप्न की निवृत्ति जगने के बाद होती है, लेकिन जाग्रत की निवृत्ति जब तक अविद्या की जाल है तब तक नहीं होगी।

२ : बाहर जो दृश्य वस्तुयें है उनको स्व-सत्ता नहीं है। हम उनको नहीं जाने तोवे अपनी हयाती हमको नहीं बता सकती।

रेडियो स्वयं नहीं कहता कि हमारी अनुपस्थिति में वह बज रहा था या नहीं ? गुलाब का फूल स्वयं नहीं कहता कि उसको अपना रंग कैसा है ? मंगल जैसे दूसरे ग्रह हमको नहीं कहते कि वे स्वयं कैसे है, और उल्लू को जैसा अंधकार दिखता है वैसा हमें जानना हो तो हमें उल्लू होना पड़ेगा। ब्रह्मलोक को जानना हो तो वैसा प्रमाण चाहिए। सिद्धलोक जानना हो तो वैसा प्रमाण चाहिए। देवलोक वालों को हमारा जगत जानना हो तो उन्हें मनुष्य होना पड़ेगा, फिर भी यह सब सामान्य द्वैत वाले प्रमाण की बातें हैं। यदि अद्वैतभाव प्राप्त हो ऐसा प्रमाण हमको प्राप्त हो तो फिर लोक भी उस प्रमाण के अंदर आ जाते है। अतः अद्वैत मत में ज्ञात सत्ता का ही स्वीकार है इसलिए ज्ञेय की सत्ता ज्ञान से स्वतंत्र नहीं है।

और कुछलोग कहते है कि हालांकि बाहर की सृष्टि कल्पित है परंतु वह ईश्वर की बनाई हुई है इसलिए जीव के अधीन नहीं है। सूर्य, चंद्र, तारे आदि की गति स्वतंत्र नियमित रूप से चलती है, वह गति हमारे नियंत्रण में नहीं है। इस मत को सृष्टि दृष्टिवाद कहते हैं। इस मत में ऐसा कहा जाता है कि वेद में वर्णित जगत की उत्पत्ति के क्रम के अनुसार ईश्वर ने जगत रचा है, इसलिए जगत में अज्ञात सत्ता है। ज्ञात सत्ता नहीं है। प्रमाण के द्वारा सृष्टि के साथ दृष्टि का संबंध होता है तब दृश्यवस्तु ज्ञात होती है, इसलिए पहले सृष्टि है और फिर दृष्टि है, यानी सृष्टि है, तब इन्द्रियाँ और उनके ज्ञान में प्रमाणों की प्रवृत्ति होती है, न हो तो होती नहीं। फिर भी सृष्टि को आदि और अंत है इससे सृष्टि सच्ची तो नहीं है। इस मत में सृष्टि परिणामवाद में आती है।

दृष्टि-सृष्टिवाद में जगत को ब्रह्म का विवर्त माना जाता है। परिणामवाद में एक प्रकार का समान काल चाहिये और ऐसा काल आज के सायन्स ने गणित से उड़ा दिया है। बरट्रान्ड रसेल कहते है कि देश अथवा काल कोई नियत वस्तु नहीं है, अज्ञात जगत की हयाती के लिए भी वह जगत हम से अलग किसी स्थानपर होना चाहिए और किसी काल में होना चाहिये। इसलिए पहले उस जगत के देशकाल जानने चाहिए। देशकाल सच्ची वस्तु नहीं है यह ज्ञात सत्ता से मालूम पड़ता है अतः अज्ञात सत्ता वाली सृष्टि सच्ची नहीं हो सकती।

तो हम जिस जगत को जानते हैं उसके उसपार क्या होगा ? सापेक्षवाद का सायन्स कहता है कि 'कुछ भी नहीं है' किसी भी ज्ञात वस्तु से निरपेक्ष हो वैसा आकाश हो ही नहीं सकता। उसको जानने जाओ कि तुरंत वह जगत ज्ञात सत्ता में आ जाता है।

३ : जो जगत जाना वह जाननेवाले के ज्ञान के अंदर आ जाता है, जो नहीं जाना वह त्रिपुटी में नहीं आ सकता।

मेरे आसपास जो सब कुछ मैं देखता हूँ वह क्या है ? उसको जाने बिना मैं क्या कह सकता हूँ ? तो तुम जानते कैसे हो ? जाननेवाला 'मैं' यहाँ है, जो जानने का है 'वह' वहाँ है, ऐसे यहाँ और वहाँ इन देशवाचक शब्दों से 'मैं' और 'उस' का भेद प्रथम दृष्टि से सिद्ध है। अब प्रश्न यह है कि वहाँ शब्द से 'ज्ञेय' मेरे शरीर से बाहर है ऐसा कहने का मेरा तात्पर्य मालूम पड़ता है कि वह ऐसा ही है या मैं कुछ उससे अलग ही कह रहा हूँ ? विचार करने पर तुमको स्पष्ट समझमें आएगा कि जो वस्तु विचार के रूपमें मेरी बुद्धि में नहीं है उसको मैं नहीं जान सकता और जान भी नहीं पाउंगा। 'ज्ञेय वस्तु मेरे शरीर से बाहर है। ' यह विचार मेरी बुद्धि में नहीं हो तो मैं उतना भी नहीं जान सकता, अर्थात् जितने अंशमें कोई वस्तु मेरे ज्ञान का विषय होती है उतने अंशमें ही वह वस्तु होती है। अंधे के आगे आरसी व्यर्थ है। जानने की शक्ति मेरे पास न हो तो जानने का (विषय) हो तो भी क्या ? और नहीं हो तो भी क्या ? जिसको मैं जानता हूँ, जान सकता हूँ, उसके सिवाय दूसरा क्या है ? तुम कहोगे कि जानने का तो वो रहा सामने लेकिन आप नहीं जानते। तो उतना तो मैंने जान ही लिया। अतः अज्ञातसत्ता वदतो व्याघात (बोलना ही व्यर्थ) है, क्योंकि कुछ अज्ञेय है उतना तो जाना ही, इसलिए दृष्टिमें ही सृष्टि है। मैं होउ तो वस्तु है और मैं नहीं होउ तो जगत है कहाँ ?

उसका नाम दृष्टि सृष्टिवाद । दृष्टि- सृष्टिवाद में जगत की सत्ता प्रातिभासिक है और प्रातिभासिक सत्ता ज्ञात सत्ता के रूप में रहती है । अज्ञात प्रातिभासिक नहीं होता । प्रातिभासिक सत्ता में अभानापादक आवरण नहीं होता । सृष्टि-दृष्टि वादमें जगत की सत्ता व्यावहारिक है, लेकिन अनिर्वचनीय होने से मिथ्या है अथवा उसके देशकाल को सिद्ध नहीं कर सकते, इसलिए भी मिथ्या है । और आत्मा और अनात्मा ऐसे दो पदार्थ ले तो अनात्म पदार्थ स्वयं अपनी हयाती नहीं बता सकते । उनको सिर्फ ज्ञात सत्ता ही है और जाननेवाला हो तभी उसका अस्तित्व सिद्ध होता है । शेष जो आत्म पदार्थ है वह ज्ञानस्वरूप है, इसलिए अज्ञात सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती ।

४ : जिस जगत को कोई देखनेवाला नहीं हो वैसे जगत को हमारे विचार में लेंगे तो भी उस विचार के साथ ही उसका कोई विचारक रखना पड़ेगा ।

देवलोक, गंधर्वलोक, आदि नहीं देखे हुए लोक का हम विचार करें तो भी आत्मा का अज्ञान ही देव आदि के शरीर के आकार में और उन शरीरों के आकार के उपयोग के लिए ब्रह्मांड के आकार में, उस उस वृत्ति के रूप में परिणाम को प्राप्त होता है, इसलिए जगत ब्रह्म का विवर्त है और अविद्या का परिणाम है ऐसा वेदांत में माना हुआ है । वृत्ति के पूर्वकाल में पदार्थों की सत्ता नहीं होती एवम् उत्तर काल में भी नहीं होती, अतः घट आदि पदार्थ और दूसरा जो भी कुछ विचार में आये वह वृत्तिकाल में ही ज्ञात है । अब कोई ऐसी शंका करे कि वृत्ति अगर सतत चलती रहे तो सुषुप्ति (नींद) का अभाव हो जाय और घट पट आदि के ज्ञान एककालीन नहीं होने से, अन्य वृत्ति के अभाव का प्रसंग आता है और वृत्ति का नाश तुरंत हो जाता है ऐसा बुद्ध के क्षणिक विज्ञानवादकी नाईं मानेंगे तो वृत्ति समकालीन द्वैत प्रपंच होने से उसका भी बिलकुल विनाश हो जायेगा । और हर एक वृत्ति के साथ ज्ञान की उत्पत्ति होने के कारण ज्ञान की उत्पत्ति का प्रसंग आयेगा और तदुपरांत ज्ञान के भेद से प्रपंच के भेद का स्वीकार करना पड़ेगा । और विषय का भेद होगा तो वृत्तिज्ञान में भी भेद होगा । इसलिए कल के जगत को आज देखते हैं ऐसी प्रत्यभिज्ञा का भी संभव नहीं है ।

उसका समाधान यह है कि प्रत्यभिज्ञा (यानी पहले देखी हुई वस्तु की स्मृति) होती है यह अनुभव की बात है, लेकिन वह भ्रम रूप है । रस्सी में सर्प की भ्रांति जहाँ होती है वहाँ वह भ्रम सिद्ध सर्प अनिर्वचनीय है । अतः जहाँ एक ही काल में दस लोगों को दस सर्प की भ्रांति होती है वहाँ अनिर्वचनीय सर्प दस होते हैं, एक नहीं होता,

लेकिन अविवेक के कारण एक सर्प की भ्रांति होती है ऐसा दस व्यक्ति कहते हैं। अतः हर एक मनुष्य को कल्पित जगत दिखता है। और वह उसके कल्पना काल में है। इस तरह से विषय की एकता के बिना भी प्रत्यभिज्ञा का स्वरूप उपजता है। भ्रम में अधिकतर समानता होने से भ्रमसिद्ध सर्प भिन्न भिन्न है ऐसा विवेक नहीं हो सकता। स्वप्न का बाध जैसे जाग्रत में होता है वैसे जाग्रत का बाध स्वप्न में होता है। इसलिए दोनों अवस्थायें अनित्य है। और जाग्रत के जैसा सुख स्वप्न में भी मिलता है। इसलिये जगत के प्रपंच की सिद्धि सिर्फ वृत्तिकाल में ही होती है। इसलिए प्रपंच को ज्ञात सत्ता है, अज्ञात सत्ता नहीं है।

बौद्धधर्म वाले प्रपंच को क्षणिक मानते हैं, वेदांत में प्रपंच को अध्यस्त माना हुआ है। पातंजल योगदर्शन में (३-५२) क्षण को सत्य माना है, वेदांत में और सायन्स में उसको मिथ्या माना हुआ है।

५ : जो जगत प्रतीत होता है वह जिसको दिखता हो उससे भिन्न है कि नहीं ? यदि भिन्न हो तो वह हमको अपना अस्तित्व बता नहीं सकता और भिन्न न हो तो वह ज्ञात हो जायेगा।

कोई ऐसा कहते है कि इन्द्रियों से जो ज्ञान होता है उस ज्ञान का विषय के साथ संबंध होता है, तब उस ज्ञान से पहले विषय का अस्तित्व होना चाहिए। इसलिए जगत प्रपंच की अज्ञातसत्ता माननी आवश्यक है। उसका समाधान यह है कि इन्द्रियाँ ज्ञान का कारण हो तो भी वे यथार्थ ज्ञान के कारण है ? या भ्रम मिश्रित यथार्थ ज्ञान के कारण है या सिर्फ भ्रम के ही कारण है ?

अर्थात् इन्द्रियों से उत्पन्न हुए ज्ञान की सत्यता कैसे जान सकेंगे ? भ्रांति के विषय से उसके विषय भिन्न हो तो भ्रांति का विषय क्या ? प्रमिति के विषय से भिन्न हो वह और प्रमिति के विषय के लिए प्रमाण चाहिए। इस तरह अन्योन्याश्रय दोष आ जाता है। और प्रमा का विषय होने मात्र से ही प्रमा से जानने में आनेवाली वस्तु सत्य है ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि 'यह रूपा है' इस प्रमा में प्रमा का विषय कल्पित रजत असत्य है। और प्रपंच मात्र का बाध हो सकता है, सिर्फ ब्रह्म का ही बाध नहीं हो सकता। अतः ब्रह्म के सिवाय सबकुछ मिथ्या है।

और इन्द्रियों का विषय सन्मुख नहीं होनेपर भी सत्तावान (अस्तित्ववान) होना चाहिए ऐसा मानें तो भी पहले सत् होने पर भी अज्ञात था उसको ज्ञात करने का कार्य

इन्द्रियों ने किया, इसलिये जो सब वस्तुओं का अधिष्ठान ब्रह्म अथवा आत्मा है वही इन्द्रियों का विषय हो सकता है, क्योंकि पूरा प्रपंच जड़ होने से हम उसको अज्ञात कहते हैं। लेकिन जड़ अज्ञात नहीं हो सकता क्योंकि जड़ को स्वसत्ता नहीं है। अज्ञात पदार्थ हो तो भी ब्रह्म ही अज्ञात हो सकता है। और ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है अतः जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं हो सकता। इसलिए जीव से भिन्न स्थान में अज्ञात नहीं रह सकता और जो अलग नहीं हो वह ज्ञात सत्ता में आ जाता है।

इसप्रकार ब्रह्म के सिवाय सबकुछ, फिर वह ज्ञान हो कि ज्ञेय हो वह, मिथ्याज्ञान है। अतः सर्व की सत्ता प्रातितिक है।

६ : किसीको ऐसा नहीं लगता कि मैं नहीं हूँ इसलिए प्रत्येक घटना में जाननेवाला समाविष्ट है।

दृश्य की सत्ता दर्शन से स्वतंत्र है ऐसा मानने का कारण नहीं है क्योंकि अनिर्वचनीय रूपा तीनों काल में नहीं है फिर भी सीपी में ज्ञात होता है। वह आँख का विषय नहीं है पर साक्षी-भास्य है। स्वयंप्रकाश आत्मा अपने भान के लिए अन्य किसी की अपेक्षा नहीं रखता। अतः इन्द्रियाँ न तो प्रपंच को विषय करती है और न आत्मा को बता सकती है। इसलिए जगत मात्र की ज्ञात सत्ता है। प्रत्यक्ष आदि प्रमाण प्रमाण नहीं है लेकिन प्रमाणाभास है। ज्ञान और ज्ञेय का भेद किसी प्रकार से सिद्ध नहीं हो सकेगा। जहाँ मन है वहाँ जगत है। जहाँ मन नहीं वहाँ जगत भी नहीं है। सुषुप्ति में मन नहीं है तो जगत भी नहीं है। जाग्रत में मन है तो जगत है, अतः जगत को देखनेवाले के बिना का जगत सिद्ध नहीं हो सकेगा।

७ : प्रो.आईन्स्टाईन का मत

अमेरिका में जून १९४५ की एक त्रिमासिक पत्रिका में प्रो.आइंस्टाइन सापेक्षवाद के सायन्स के अनुसार विचार करके लिखते हैं कि, जो जगत दिखता है वह सच्चा नहीं है। हम जो देखते हैं वह जगत नहीं है। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण भी झूठा हो जाता है। और अनुमान प्रमाण का आधार तो प्रत्यक्ष प्रमाण पर रहता है। इसलिए अनुमान प्रमाण भी झूठा हो जाता है।

८ : जो वस्तु हमारे ज्ञान में नहीं आ सकती उसका हमारे लिए कोई मूल्य नहीं है।

यदि कोई भी अज्ञात वस्तु हो अथवा अज्ञात सत्ता हो तो भी जब तक हमारे

ज्ञान में नहीं आये तबतक उसका मूल्य नहीं मालूम पड़ता। इसलिए एक ज्ञान में सब का समावेश कर लेना चाहिए। वेदांत की प्रतिज्ञा भी ऐसी है कि एक के ज्ञान से सर्व का ज्ञान हो जाता है। ब्रह्मज्ञान प्रमाता का बाध करके साक्षी को ब्रह्मरूप बना देता है और ब्रह्म के सिवाय अन्य कुछ भी सच्चा नहीं होने से अज्ञात सत्ता नहीं रहती। अन्य सब साधारण प्रमाण प्रमाता को जीवित रखते हैं, लेकिन वेदांत प्रमाण प्रमाता को मिटाकर स्वयं भी मिट जाता है, इसलिए अज्ञात सत्ता का प्रश्न टिकता नहीं है।

९ : यदि अज्ञान सच्चा हो तो अज्ञात सत्ता सच्ची हो।

अविद्या का स्वरूप ऐसा है कि उससे वस्तु जैसी हो वैसी मालूम नहीं पड़ती और वस्तु नहीं हो वैसी मालूम पड़ती है। स्वप्न में जो मालूम पड़ता है और जो मालूम नहीं पड़ता वह सब अविद्या का स्वरूप है। सच पूछो तो उसको अज्ञात सत्ता माने तो भी वास्तविक नहीं है। प्रातिभासिक वस्तु में सिर्फ ज्ञात सत्ता रहती है वैसे ही आज का सायन्स कहता है कि जगत प्रातिभासिक है और इसलिए ज्ञाता के ज्ञान में जितना जगत आता है उतना उसका जगत है। हम जगत के विषय में कुछ कहने लगते हैं तब सच्चा जगत नहीं मिलता पर हमारा स्वभाव कैसा है ? हमारी दृष्टि कैसी है ? यह मालूम पड़ता है। इस दृष्टि में गलती है कि नहीं यह जानना हो तो सच्चा प्रमाण किसे कहना यह समझना चाहिए। सच्चा प्रमाण अबाधित अर्थ को बताता है। अन्य प्रमाण अविद्या के स्वरूप है। प्रमाण की गलती जाने बिना प्रमेय की गलती समझमें नहीं आयेगी।

यहाँ किसीको सहज में ऐसा सवाल उत्पन्न हो सकता है कि अविद्या का स्वरूप कैसा है ? भगवान के जगत में मनुष्य स्वयं अपने आपको भूल जाय ऐसी अविद्या कहाँ से आयी ? इसका समाधान निम्न लिखित है:

चिदात्मा में जिसका स्वरूप न हो ऐसी मिथ्या वस्तु का आरोप करना और उसके संबंध की कल्पना करने को अविद्या कहते हैं। उसका कारण यह है कि उस मनुष्य ने आत्मा और अनात्म के स्वभाव का विचार नहीं किया है, इसलिए ऐसी दशा उत्पन्न होती है। व्यवहार दशा में आत्मा से जो अन्य दिखे अथवा जो विरुद्ध धर्म वाला दिखे उसे अनात्मा कहते हैं। उस अनात्मा का निरपेक्ष सत्यत्व नहीं बन सकता। वह आत्मा के अविचार की अपेक्षा से ही सदा रह सकता है। अनात्मा सदा अव्यभिचारी स्वरूप वाला नहीं रह सकता। उसकी सत्ता अथवा हयाती मानते हैं तब

भी वह अन्यथा हुआ करता है। सुषुप्ति में तो उसका अत्यंताभाव मालूम पड़ता है। ऐसे स्वभाव वाला अनात्मा अनिर्वचनीय है और मिथ्या है ऐसा विद्वान लोग जानते हैं। अतः विपरीत स्वभाव वाला आत्मा निरपेक्ष सत्य है और वह निर्विशेष, अनवच्छिन्न, शुद्ध चैतन्यरूप है। जिस कारण से विशेष आभासवाला अनात्मा मिथ्या है ऐसा सच्ची बुद्धि से समझमें आता है उसी कारण से आत्मा की निर्विशेषता सिद्ध होती है। अतः आत्मा अवच्छेद रहित है, क्योंकि उसको अवच्छेद करनेवाली कोई अन्य पारमार्थिक वस्तु है नहीं। और आत्मा शुद्ध स्वरूप है, अन्य किसी वस्तु की गंध भी उसमें नहीं है और वह स्वयं सिद्ध होने से चैतन्य स्वरूप है। व्यावहारिक प्रपंच का जो भास होता है उसका आधार आत्मा है। आत्मा से जो भिन्न कल्पित किया जाय वह अनात्मा है। आत्मा और अनात्मा के स्वभाव विरुद्ध होनेपर भी उनकी मिलावट करके उनके धर्म परस्पर एकदूसरे में आरोप करनेवाली जो वृत्ति है उसको आत्मज्ञानी पुरुषों ने अविद्या नाम दिया है। जिसके आवरण से वस्तु जैसी हो वैसी दिखे नहीं और जिसमें ध्यान दें तो जीव अनर्थ में आ जाता है उसे अविद्या कहते हैं। अग्नि उष्णतावाला होनेपर भी उस स्वभाव का जिसे पता नहीं है ऐसा बालक कदम कदम पर उसको छूते हुए जलता है। ऐसे ही यहाँ भी आत्मा के स्वरूप का निश्चय जिसको नहीं हुआ वह उसमें मिथ्यावस्तु के संबंध का आरोप करके, मन आदि उपाधि की तादात्म्यता आत्मा में मानकर जन्म-मृत्य और सुख दुःख बारबार भोगता है और उससे आकर्षित होकर उसका फल भोगते हुए अपनी स्वरूपप्रच्युति होती है, उसका स्मरण उसको नहीं रहता। इसलिए अपने कर्म से संसार में मानो भटकता रहता हो ऐसा उसको दिखता है। इसलिए सब अनर्थों का हेतु आत्मा और अनात्मा का परस्पर अध्यास है। उसी अध्यास को तत्त्वचिंतक 'अविद्या' कहते हैं। यह अविद्या का स्वरूप है और इस अविद्या की दृष्टि से कुछ सत्ता रहती है और कुछ अज्ञात रहता है। अविद्या नहीं हो तो वस्तु जैसी हो वैसी मालूम पड़ेगी यानी आत्मा के सिवाय अन्य कुछ रहेगा नहीं और इससे अज्ञातसत्ता का प्रश्न भी नहीं रहेगा।

१० : जो वस्तु सच्ची हो उसे जान सके या न जान सके, पर जो वस्तु सच्ची नहीं हो, यानी जो अध्यस्त हो उसको स्वसत्ता नहीं होने से उसमें अज्ञात सत्ता भी नहीं रह सकती।

अध्यास अथवा अविद्या उत्पन्न हो तो अज्ञात सत्ता जैसा मालूम पड़ सकता है

लेकिन अध्यास सिद्ध करने के लिए युक्ति नहीं मिलेगी। यदि अध्यास युक्ति और प्रमाण से निश्चित हो जाय और उससे सच्ची वस्तु जैसा हो जाय तो उसको दूर करने का प्रयास व्यर्थ है, अर्थात् ऐसी अविद्या की निवृत्ति हो ही नहीं सकती। जो वस्तु सब के अनुभव में आती हो उसको कोई मिथ्या नहीं कहता, पर पिछले प्रकरणों में बताये अनुसार देखनेवाले की अवस्था के अनुसार जगत बदल जाता है। अतः जहाँ ज्ञात जगत का ठिकाना नहीं है वहाँ अज्ञात जगत का क्या कहना ? जहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण झूठा हो जाता है वहाँ अनुमान प्रमाण कैसे सच्चा रह सकता है ? इसलिए अध्यास सिर्फ दिखावा मात्र है। उसको खोजने जायेंगे तो वह लुप्त हो जाएगा। सच्चा प्रमाण बत्ती (रौशनी) है यानी आत्मा है और झूठा प्रमाण माया अथवा अंधकार है। प्रमाण से अज्ञान को सिद्ध करने का कार्यबत्ती लेकर अंधकार को खोजने जैसा है।

तो अज्ञान का मालिक (आश्रय) कौन ? अज्ञान का मालिक भी दर्पण में जैसे झूठा मुँह दिखता है वैसे झूठा उत्पन्न होता है। उसको शास्त्रों में प्रमाता कहा है। जैसे दर्पण आदि में प्रतिबिंबित मुख का आभास होता है, वह साक्षात् मुख है ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि उससे भिन्न (दर्पण से दूर) सच्चा मुख मिल सकता है। वह आभास दर्पण का धर्म नहीं है, क्योंकि मुख नहीं हो तो दर्पण में वह नहीं दिखता। मुख और दर्पण से भिन्न ऐसी आभास कोई वस्तु है जो दोनों का स्वाभाविक धर्म नहीं है। उनको कैसे भी मिलाने से वैसा धर्म उत्पन्न नहीं होता। इस दृष्टांत में जिसका इदंता के रूप में निरूपण नहीं कर सके ऐसा मुख का आभास प्रतीत होता है। ऐसे ही आत्मा और अनात्मा का अध्यास करनेवाला चित्-आभास (चिदाभास) है ऐसा लोक में और शास्त्र में प्रसिद्ध है। चिदाभास प्रमाता है। वह अमुक कल्पित प्रमाण के साथ रहता है। वह ज्ञात सत्ता को भी ठीक से जान नहीं सकता और अज्ञात सत्ता को भी ठीक से नहीं जान सकता। वह स्वयं कल्पित होने से अपने जैसी सत्ता को समझ सकता है।

अतः संसार ही अविद्या है, संसार का कारण अविद्या हो तो अविद्या पहले से होनी चाहिए, परंतु अविद्या काल में संसार मालूम पड़ता है इसलिए अविद्या ही संसार है। उसीको मिथ्याज्ञान भी कहते हैं और ऐसे ज्ञान के अनुसार प्रकाश की तरंगें किस प्रकार के देशकाल वाली हो जाती है यह पिछले प्रकरणों में समझाया हुआ है। उन तरंगों का नियत स्वभाव नहीं है वह अविद्या का अथवा मिथ्याज्ञान का परिणाम है।

वेदांत में कहा है कि जगत चेतन का विवर्त है और अविद्या का परिणाम है यह

बात अब विज्ञान से भी सिद्ध हो सकती है। लेकिन उसमें थोड़ा सुधार करने की जरुरत है। अविद्या स्वयं ब्रह्म का विवर्तरूप होने से जगत अविद्या का परिणाम है ऐसा मानने की अपेक्षा अविद्या -समकाल में जगत की प्रतीति है यह मत अधिक अच्छा है। श्री शंकराचार्य ने छान्दोग्य उपनिषद के भाष्य में भी ऐसा ही कहा है।

११ : अध्यास अथवा अविद्या का निरूपण हो नहीं सकता यह अविद्या का भूषण है।

अविद्या अथवा मिथ्याज्ञान को झूठा प्रमाण कहते है। वह कैसा है उसका निरूपण ठीक से नहीं हो सकता। अतः शास्त्र उसको अनिर्वचनिय कहते हैं, और आज के विज्ञान वाले भी कहते हैं कि देशकाल सापेक्ष होने से उसका ठीक से निरूपण नहीं हो सकेगा, क्योंकि जिस क्षण जो घटना घटती है उसका प्रमाण कैसा है यह उसी क्षण जानना चाहिए, लेकिन उसको जानने जायेंगे तब तक दूसरी क्षण हो जाती है इसलिए उसप्रकार का ज्ञान अथवा अज्ञान कैसा है यह सिद्ध नहीं हो सकता। अज्ञान का सिद्ध नहीं हो पाना अज्ञान का भूषण है। यदि अज्ञान प्रमाण से सिद्ध होता हो तो वह दूर नहीं हो सकता और किसीको सच्चा ज्ञान नहीं दे सकते। अतः अज्ञान, नाप अथवा माया स्वयं अपने को सिद्ध नहीं होने देगा, फिर भी आज के विज्ञान वाले उसका स्वरूप कुछ अंशमें समझा सकते हैं। सापेक्षवाद वालों को उसमें कुछ सफलता मिली है, लेकिन क्वान्टम थियरी वाले कहते हैं कि यह नाप अनिश्चित है, इसलिए उसको जानने में संभावना (probability) रही हुई है। इस प्रकार के निष्कर्ष पर सायन्स वाले पहुँचे हैं। इसलिये सापेक्षवाद के मूल रिसर्चकर्ता प्रो.आईन्स्टाईन को भी आश्चर्य हुआ है।

सायन्स वाले कहते हैं कि हम बाहर जो जगत जानते है, उसमें एक प्रकार के प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय रहे हुए हैं। उसमें प्रमाण स्थिर नहीं होने से और देशकाल के अधीन होने से इन तीनों का संयुक्त काम कैसा होगा उसका सिर्फ अनुमान हो सकता है, लेकिन वह सच्ची वस्तु नहीं है, अतः हम जो जानते हैं वह सच्चा नहीं है। प्रो. आइंस्टाइन ने भी इस बात को समर्थन दिया है। पर उनका कहना है कि जो दिखता नहीं है वह भी ज्ञान में आना चाहिए। उसका मार्ग विज्ञानवालों को नहीं मिलता। जो नहीं दिखता वह देशकाल की माया है। किसी ने सच्चा देश और सच्चा काल अबतक देखा नहीं है। देखने जाये तो ये दोनों सापेक्ष हो जाते हैं। इसीलिए देश के लिए लड़ाई

होती हैं। यदि सब के लिए एक सच्चा देश निश्चित हो जाय तो लड़ाई नहीं होगी। लेकिन एक मनुष्य कहता है कि अमुक देश मेरा है और दूसरा कहता है कि दूसरा देश मेरा है। काल भी ऐसी ही वस्तु है। दो अलग अलग आयु के मनुष्य बात करते समय एक कहता है कि मेरे समय में ऐसा हुआ था और उस समय तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ था आदि आदि। ऐसी बातों से जान सकते हैं कि देश काल का कुछ ठिकाना नहीं है। कोई अज्ञात जगत हो तो भी देशकाल के भेद के बिना बन नहीं सकता, लेकिन यदि देशकाल सच्चे नहीं हो तो जगत सच्चा कैसे हो सकता है ? इसलिए अनात्मा का विचार छोड़कर आत्मा की तरफ सब को मुड़े बिना छुटकारा नहीं है।

जो न्यूसपेपर पढ़कर भविष्य में क्या होगा उसका विचार करते हैं वे सब अपना जीवन व्यर्थ बिताते हैं। भविष्य में जो बनने वाला हो उस पर अनेक कारणों का असर होता है, और उन सब कारणों को कोई जान नहीं सकता। वर्तमान काल का जगत भी कोई पूरा पूरा जान नहीं सकता, तो भविष्य का तो कहना ही क्या ? इसलिए अविद्या को जानने का परिश्रम करना अथवा अविद्या के कार्य (अज्ञात सत्ता) को जानने का परिश्रम करना व्यर्थ है। अविद्या स्वयं अपने आपको सिद्ध नहीं होने देती यह अविद्या का भूषण है, क्योंकि अविद्या सिद्ध हो तो द्वैत सच्चा होगा।

१२ : आत्मा और जगत का संबंध

आत्मा और जगत का संबंध सच्चा मानकर लोक में कार्य कारण की खोज होती है। मन से संबंध जोड़ा जाय तो मन का स्वभाव कैसा है ? जैसा अविद्या का स्वभाव है, माया का स्वभाव है वैसा ही मन का स्वभाव है। मन का कारण न मिले तो ऐसा समझना चाहिए कि वस्तु ही ऐसी है, फिर भी नींद में मन नहीं रहता, समाधि में नहीं रहता इसलिए वह सच्चा नहीं है। मन का कारण अविद्या है तो अविद्या का कारण क्या होगा ? इसप्रकार कारण खोजने से इच्छा शांत नहीं होगी। फिर भी कारण कार्य अथवा हेतु और फल का विचार मनुष्य के जीवन में उपयोगी होने से इसके बाद के प्रकरण में इसका विचार अधिक विस्तार से किया गया है।

अविद्या अनादि है ऐसा कहने में भी काल की अपेक्षा रहती है। जो अविद्या काल की अपेक्षा रखती हो वह काल का कारण कैसे हो सकती है ? अतः कारण को जानने की तृष्णा पूरी नहीं हो सकती। काल का कारण जानना संभव नहीं है, क्योंकि जानने की इच्छावाली बुद्धि भी काल की अपेक्षा वाली है।

इसलिए अध्यास वास्तवमें सच्चा नहीं है। उसका कर्ता यानी प्रमाता होने की वजह से सच्चा नहीं है अथवा मन के कारण का अभाव होने से उसके कारण का अनुमान करने की जरुरत नहीं है। इसलिए अविद्या का स्वरूप निश्चित नहीं हो सकता और उसीमें अविद्या की शोभा है। यदि अविद्या का स्वरूप निश्चित हो जाय तो द्वैत हो जाय और उसकी निवृत्ति नहीं होगी।

१३ : देखनेवाले के बिना जगत हो तो भी उसका निश्चय करने के लिये किसी देखनेवाले को रखना पड़ेगा।

किसी घर के भीतर कोई है कि नहीं उसका निश्चय करना हो तो किसी को देखने के लिए भीतर भेजना चाहिए। उस घर में कोई नहीं है ऐसा कहने के लिए भी प्रमाण चाहिए और प्रमाण के लिए प्रमाता चाहिये। यदि हम देखनेवाले के बिना की वस्तु सच्ची मानें तो हमारा आधार उस वस्तु पर रहेगा और यदि देखनेवाले के बिना वस्तु नहीं हो तो हमें अपने पर आधार रखना पड़ेगा। हमारे पर आधार रहेगा तब गलती को निकालने का पुरुषार्थ करने का मन होता है और दूसरे पर आधार रहेगा तब प्रारब्धवादी हो जाते हैं। अविद्या गई फिर अनात्मा नहीं टिकता, इसलिए अविद्या का विषय, प्रमाता और आश्रय भी प्रमाता है। प्रमाता में सापेक्ष चेतन है। शुद्ध आत्मा स्वयं अविद्या का अविषय होनेपर भी बुद्धि आदि उपाधि के सान्निध्य से 'अहं' के कपड़े पहनकर मानो आवृत्त होता हो और बुद्धि का विषय होता हो वैसा दिखता है। उस समय आत्मा का विषयपना मालूम पड़ता है। फिर भी अध्यास दशा में भी शुद्ध आत्मा वैसे का वैसा रहता है। ऐसा नहीं हो तो अध्यास की सिद्धि ही नहीं हो सकती। आकाश में अध्यास से नीला रंग दिखता है इससे आकाश कोई वैसे रंगवाला नहीं हो जाता। इसलिए विषय रूप से कल्पित आत्मा स्वतः विषय नहीं होता।

आत्मा का अध्यास के रूप में भासना आत्मा का स्वभाव नहीं है। आत्मा का स्वभाव तो प्रकाश करने का है। अध्यास का विरोध तो प्रमाण से उत्पन्न हुए ज्ञान से होता है। ऐसा ज्ञान जिसमें उत्पन्न नहीं हुआ उसने आत्मा का विचार नहीं किया यानी उसको आत्मा प्रकाशता नहीं है ऐसा दिखता है। अतः अध्यास का कारण अविचार है। यानी विषय और विषयी जैसा विभाग जिस तरह ग्रहण होता है वह भ्रांति से सिद्ध होने से उसमें महान आग्रह रखने की जरुरत नहीं है।

यदि आत्मा के विषयपने के लिए आरोप चाहिए और आरोप के लिए विषय

चाहिए तो जैसे स्वप्न में दोनों एकसाथ अविद्या से बनते हैं वैसे जाग्रत में भी दोनों एकसाथ बनते हैं। स्वप्न के बाप में और स्वप्न के बेटे में पहले और बाद के काल के भाव की कल्पना की जाती है वैसे ही जाग्रतमें प्रमाता-प्रमेय समकालीन होनेपर भी पहले और बाद के काल के भाव की कल्पना होती है। ऐसा काल का भेद गलती से कल्पा जाता है। ऐसी गलती का स्वरूप ठीक से जानने पर जगत में किसीका सच्चा जन्म नहीं होता, हुआ नहीं है, और किसीका सच्चा मरण हुआ नहीं है और होनेवाला भी नहीं है, यह बात भी ठीक से समझमें आयेगी। लेकिन स्वप्न में रहकर जैसे स्वप्न की गलती नहीं समझमें आती वैसे जाग्रत प्रपंच जिस प्रमाण से सिद्ध होता है उस प्रमाण की गलती जबतक नहीं निकलेगी तबतक जाग्रत प्रपंच भी झूठा नहीं लगेगा, और कुछ जाना और कुछ जानना शेष रह गया ऐसी वृत्तियाँ उठती रहेगी। स्वप्न में नहीं जानी हुई वस्तु सिर्फ एक है और वह आत्मा है, वैसे ही जाग्रत में भी नहीं जानी हुई वस्तु भी एक ही है और वह आत्मा है। इसीलिए उपनिषद में कहा गया है कि एक के ज्ञान से सब का ज्ञान हो सकता है।

१४ : मनुष्य का जन्म कैसे होता है ? ये भी मानो कोई अज्ञात सत्ता की घटना हो ऐसा साधारण मनुष्य के ज्ञान से मालूम पड़ता है।

एक गाँव में एक जिज्ञासु ने सत्संग के समय ऐसा प्रश्न किया कि 'जो जीव जन्म लेता है वह अश्चार्यकरक ढंग से स्त्री के शरीर में आकर धीरे धीरे नौ मास तक बढ़ता है, तो वह जीव शरीर में आया कैसे ?' उसका उत्तर निम्नलिखित प्रसंग से समझ सकेंगे।

एक समय कहीं मुण्डक उपनिषद का पठन हो रहा था। उसमें आया कि आत्मा उपाधि धर्म वाला हो तब वह अपने आपको ठीक से जान नहीं सकता। उस समय कुछ बैठे हुए जिज्ञासुओं में से एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया कि उपाधि का अर्थ क्या ? हमने उसको पूछा 'तुमको किसी प्रकार का व्यसन है ?' उसने कहा कि सुंघनी लेने की (नसवार सूंघने की) बहुत आदत है इसलिए नसवार की डिब्बी बारबार याद आती है। ' हमने उसको कहा कि 'यह आदत छोड़ दो, यह आदत ही उपाधि का स्वरूप है' उसने कहा वह आदत नहीं छूट सकती। ' हमने कहा कि 'हमको कैसे नसवार के बिना चलता है ? तो तुम्हारी नसवार की डिब्बी हमको देदो' उसने उत्तर दिया कि 'ऐसा करूँगी तो फिर नयी डिब्बी और नई नसवार लेने की इच्छा होगी, क्योंकि मेरा जी

डिब्बी में जाता है।'

जैसे उसने कहा की मेरा जी डिब्बी में जाता है उसी तरह मनुष्य एक शरीर छोड़े तो भी उसकी वासना जीव का रूप लेकर दूसरे शरीर रूपी डिब्बी में जाता है। यह मनुष्य के जन्म का कारण है। यदि जीते जी डिब्बी में जीव जायेगा तो मरने के बाद भी डिब्बी में जीव जायेगा। सोने के बाद सुबह उठते ही पहले डिब्बी में जीव जाता है वैसे मरने के बाद शरीर रूपी डिब्बी को जीव खोजता है। ऐसी माया की डिब्बी एक प्रकार की नहीं होती। किसीका जीव न्यूसपेपर पढ़ने में जाता है। किसीका जीव स्त्री-पुत्र में जाता है, किसीका जीव धन में जाता है इसलिए जीव अपने ठिकाने रहता नहीं है, और अनुकूल ज्ञान और प्रतिकूल ज्ञान जीव के प्रमाण हो जाते हैं। ऐसे ज्ञान से रागद्वेष होते हैं। रागद्वेष से कर्म होते हैं। कर्म से शरीर आते है। और शरीर से दुःख उत्पन्न होते है। फिर उस जिज्ञासु ने हमसे ऐसा प्रश्न किया कि, भगवान ने ऐसी माया का बखेड़ा क्यों किया होगा ? हमने उसको पूछा कि नसवार का बखेड़ा तुमने किया है कि भगवान ने किया है ?' यदि भगवान ने नसवार का बखेडा किया होता तो सब को नसवार सूंघने का मन होता लेकिन वैसा नहीं होता। इससे अलग अलग प्रकार के व्यसन और उससे उपजनेवाले अलग अलग प्रकार के ज्ञान यानी नई आदत जीव का नया प्रमाण बन जाती है। फिर उस प्रमाण से जगत को देखने से कुछ समझमें आता है और कुछ समझमें नहीं आता। इसलिए प्रमाण सच्चा है कि नहीं उसको पहले निश्चित कर लेने की जरुरत है और उसके लिए बहुत सत्संग की आवश्यकता है। एक प्रमाण से दूसरे प्रमाण की बात समझमें नहीं आती।

दरजी अथवा मोची के पास एक ही नाप का कुर्ता (अंगरखा) अथवा जूता हो तो सब लोगों के लिए वह नाप नहीं चलता। ऐसे ही हमारे मन के नाप से सम्पूर्ण जगत को नापा नहीं जा सकता। फिर भी मुण्डक उपनिषद में आया है कि एक के ज्ञान से सब का ज्ञान हो सकता है, वह केवल ब्रह्मस्वरूप है वह अबाधित होने से ब्रह्म का ज्ञान ही सच्चा प्रमाण है। उससे बाहर कोई अलग वस्तु नहीं है इसलिए उस प्रमाण में सब समाविष्ट हो जाता है।

१५ : देश और काल अदृश्य है परंतु किसीने पहले से निर्धारित नहीं कर रखे।

हर एक वस्तु में देशकाल रहे हुए होने से उसको आज के सायन्स वाले घटना

अथवा इवेंट कहते हैं। वह देशकाल कोई वस्तु का हिस्सा नहीं है अपितु हमारा घटना के साथ जो संबंध उत्पन्न होता है उसमें रहते है। अतः जहाँ कोई देखनेवाला नहीं हो तो वहाँ देशकाल नहीं उत्पन्न होते और देशकाल के बिना जगत नहीं उत्पन्न होता। अतः जिस जगत को देखनेवाला कोई नहीं होता ऐसा अज्ञात सत्ता वाला जगत नहीं बन सकता। और हर एक घटना में अनेक कद (time space dimensions) बन जाते है। उसमें कोई एक ही नाप सच्चा मानें तो उस घटना के प्रति हमारा पक्षपात होता है।

और नाप का आधार प्रमाता पर है। यदि जगत सच्चा हो तो नींद में क्यों नहीं दिखता ? मनुष्य जगता है तब भी जगत कहता नहीं है कि मैं हूँ। अतः जगत को स्वसत्ता नहीं है और जिसको स्वसत्ता नहीं है वह कोई वस्तु नहीं है ऐसा वेदांत का सिद्धांत है।

१६ : अज्ञान का आश्रय

कुछ लोगों के मन में प्रश्न उठता है कि अज्ञान का आधार क्या है ? इस प्रश्न में ऐसी मान्यता समाविष्ट है कि अज्ञान कोई सच्ची वस्तु है। सच्ची वस्तु को आधार चाहिए। झूठी वस्तु का आधार खोजने की आवश्यकता नहीं है। अधिष्ठान का ज्ञान अविद्या का घातक है। अतः वह ज्ञान अविद्या को आधार नहीं दे सकता। लेकिन अज्ञान का अर्थ क्या ? कोई उसके तीन अर्थ करते हैं :

१. अज्ञान अर्थात् ज्ञान का अभाव २. संशयज्ञान और ३. मिथ्याज्ञान इन तीनों में ज्ञान का अभाव स्वरूप से सिद्ध नहीं हो सकता। ज्ञान की हयाती में ज्ञान का अभाव नहीं रह सकता। ज्ञान का अभाव है ऐसा कहने में भी कुछ ज्ञान उत्पन्न होता है। ज्ञान की उत्पत्ति और ज्ञान का नाश जिस ज्ञान से मालूम पड़ते है उसका अभाव मान नहीं सकते। इस तरह यदि अज्ञान का स्वभाव सिद्ध नहीं होता हो तो संशयज्ञान और मिथ्याज्ञान भी ज्ञान के सिवाय कोई वस्तु नहीं है। ज्ञान ही विषय का कपड़ा पहनकर वैसा दिखता है। हालांकि सम्यकज्ञान, संशयज्ञान और मिथ्याज्ञान ये भिन्न पदार्थ हैं (नहीं तो प्रमा और भ्रम एक हो जाय) तो भी उन सब में अनुगत जो ज्ञान है वह अनेकत्व वाला नहीं होता। विषयों की उपाधि से अनेक ज्ञान जैसे व्यवहार हो उसमें दोष नहीं है। इसलिए संशयज्ञान और मिथ्याज्ञान में अनुगत एक ही ज्ञान है ऐसा मानना ठीक है, संशय और मिथ्यात्त्व उसके विशेषण है। वह स्वतः ज्ञानस्वरूप

नहीं है लेकिन उपाधि वश उसमें ज्ञानपना आरोपित होता है यह मानना चाहिए। इसलिए ज्ञान से अलग अज्ञान नामकी कोई सच्ची वस्तु नहीं है और उससे अज्ञातसत्ता सिद्ध नहीं हो सकती।

फिर भी अविद्या अथवा अज्ञान अध्यारोप भाव से मानकर उसका अपवाद करने की पद्धति शास्त्रकारों ने स्वीकारी है। अतः अविद्या से ग्रहण किया हुआ चिदाभास ज्ञान और अज्ञान का आश्रय है ऐसा भी मान सकते हैं। उसके आश्रित रहकर उसी अविद्या के विषय के जैसा आत्मा बनता है।

१७ : अज्ञान का कार्य

मिथ्या वस्तु का स्थापन और जिस वस्तु में जो धर्म नहीं हो उस धर्म का ज्ञान रखना ये दोनों मिलकर अज्ञान का कार्य अथवा अध्यास का कार्य होता है। जैसे सीप में रूपा नहीं है फिर भी उसमें रूपा की कल्पना कर रूपा की बुद्धि करना अविद्या का कार्य है। अतः आत्मा में भी अनात्मा का अध्यास होता है और अज्ञात अनात्मा जैसी वस्तु कोई हमारे ज्ञान के बाहर होगी ऐसा अनुमान होता है। और मिथ्या कल्पना वाली वस्तु, उसका आरोप और सच्ची वस्तु -इन दोनों के बीच कभी संशय भी होता है। यह सीप है कि रूपा है ऐसी शंका होनेपर यह रूपा ही है ऐसी विपरीत बुद्धि कई बार उत्पन्न होती है। उन सब गलतियों का निमित्त वस्तु के स्वरूप के अज्ञान में है। ऐसे ही जिसने आत्मा का स्वरूप नहीं जाना उसमें अनात्मा के संबंध वाला अभिमान उत्पन्न होता है। और उस विषय में संशयज्ञान, विपरितज्ञान, आभास आदि की मनोवृत्तियाँ उठती हैं। उसके बाद मिथ्या विषय को सच्चा मानने के निमित्त उसमें रागद्वेष होता है। फिर उसको ग्रहण करने अथवा छोड़ने के लिए उसमें प्रवृत्ति या निवृत्ति होती है, उसके फल स्वरूप सुख या दुःख प्राप्त होते हैं। ऐसे ही संसार का आलंबन अविद्या है ऐसा सायन्स की रीत से समझने में आता है।

१८ : अज्ञान का कारण क्या ?

कुछ लोगों का प्रश्न ऐसा है कि अविद्या मिट्टी की तरह कोई भावरूप द्रव्य (positive entity) नहीं है, इसलिए संसार का कारण अविद्या है ऐसा कैसे कह सकते हैं ? वास्तवमें देखा जाय तो संसार का मिथ्यात्त्व होने से पारमार्थिक दृष्टि से संसार का स्वरूप नहीं मिलता। दृष्टि के दोष से दो चंद्र दिखे उसका कारण खोजने का कोई परिश्रम नहीं करता। चंद्र एक होते हुए भी जैसे सिर्फ दृष्टि के दोष से दो जैसा दिखता

है, वैसे ही यहाँ भी मिथ्या दृष्टि के दोष से संसार दिखता है और शास्त्र दृष्टि से वह दोष दूर होता है। अतः संसार का कारण अज्ञान है ऐसा कहा जाता है। इसलिए संसार और अविद्या के बीच कार्य-कारण भाव नहीं बनता, लेकिन दोनों समकालीन हैं। हमारे गुरुदेव स्वामी वामदेवतीर्थ कहते थे कि अविद्या का कारण खोजना हो तो मिलेगा नहीं फिर भी उपदेश के लिए ऐसा कह सकते हैं कि अविद्या का कारण भी अविद्या ही है।

यदि अज्ञान सच्चा हो तो अज्ञान के समय सीप में रूपा उत्पन्न हुआ और ज्ञान के समय रूपा नष्ट हुआ ऐसी बुद्धि उत्पन्न होनी चाहिए, लेकिन वैसा नहीं होता। प्रतीति के समय सीपी से अभिन्न रूपा ग्रहण होता है। वहाँ रूपा का स्वरूप से निषेध नहीं है, क्योंकि व्यवहार होता है यानी कि उस रूपा को लेने की इच्छा होती है लेकिन पारमार्थिक दृष्टि से रूपा का निषेध होता है। ज्ञान होनेपर जो रूपा दिखावामात्र है उसका निषेध होता है। जब पता चलता है कि यहाँ रूपा नहीं है अपितु सिर्फ भ्रम था। तब व्यावहारिक और प्रातिभासिक सत्ता का अभेद दिखता है और रूपा का बाध होता है यह बात स्पष्ट मालूम पड़ती है। ऐसे तर्क का आश्रय करके सब प्रत्ययों की अपने अपने विषय में सार्थकता है, ऐसा मानकर जो रूपा दिखावामात्र है वहाँ वह अज्ञान से प्रतीत होता है फिर भी उत्पन्न होता है ऐसा कुछ लोग मान लेते हैं।

और मिथ्या वस्तु का कारण नहीं होता। जो मिथ्या कार्य हो उसका मिथ्या कारण नहीं बन सकता। सत्य कार्य का सत्य कारण बन सकता है। मिथ्यावस्तु तो मिथ्या ही है अर्थात् है ही नहीं। उसका कार्य कारण भाव खोजना ठीक नहीं है।

दोष व्यावहारिक हो तो मिथ्या वस्तु के मिथ्या कारण का नियम टूट जायेगा और दोष प्रातिभासिक है वैसा मानोगे तो दोष का कारण दूसरा दोष खोजना पड़ेगा और उससे अनवस्था (दोष) आ जायेगा। मिथ्या वस्तु का उपादान कारण मिल नहीं सकेगा। सच्चे रूपे की नाईं मिथ्या रूपे का कारण अथवा अकारण ऐसा कोई तात्त्विकधर्म का संबंध होता है ऐसा मानने में नहीं आ सकता। मिथ्यावस्तु का मिथ्यापना-इसका अर्थ यही है कि जो वस्तुरूप से नहीं होती फिर भी दिखती है अथवा मालूम पड़ती है और ज्ञानकाल में उसका बाध होता है, इसलिये प्रातिभासिक वस्तु का उपादान कारण भी नहीं मिलेगा। जो वस्तु प्रातिभासिक है उसकी उत्पत्ति या निषेध नहीं होते। सीपी में रूपा उत्पन्न हुआ उसका नाश हुआ ऐसी प्रतीति का अभाव होने से रूपा उत्पन्न हुआ ऐसा वचन भी नहीं बनता। ऐसे ही ब्रह्म में जगत

उत्पन्न हुआ या नाश हुआ ऐसी प्रतीति का अभाव होने से जगत उत्पन्न हुआ यह वचन नहीं बनता । अतः हमने थोड़ा जगत जाना और शेष जानना रह गया ऐसे विकल्प झूठे हैं। जो जाना वह कैसे जाना यह पहले जानना जरुरी है और उस विषय में आज का नया सायन्स हमको अच्छी मदद करता है।

सीपी में रूपा देखते समय प्रतीति के अनुसार रूपा था यह बात सच्ची नहीं है, सिर्फ प्रतीति थी । बाध के समय मुझे मिथ्या रूपा दिख रहा था ऐसी प्रतीति के अनुभव के अनुसार मिथ्या रूपा की उत्पत्ति की कल्पना करना युक्त नहीं है । वहाँ रूपा नहीं था सिर्फ मिथ्या दिखावा था । अरजत में रजत बुद्धि ऐसी व्यवहाररूप कल्पना ही थी। ऐसे ही ब्रह्म में जगत की प्रतीतिमात्र है। जगत की उत्पत्ति के लिए काल चाहिए और काल दृष्टि के साथ उत्पन्न होता है इसलिए जगत की प्रतीति भी दृष्टि काल में ही हो सकती है। दृष्टि के आगे पीछे जगत नहीं वैसे अज्ञात जगत भी नहीं है। जैसे सीपी ही रूपा के व्यवहार के योग्य होकर भासती है वैसे ही ब्रह्म व्यवहार के योग्य होकर भासता है। यदि वहाँ सीपी ही है ऐसा ग्रहण हो तो रूपा के रूप में कल्पना कहाँ और कैसे रह सकती है ? दोष से अधिष्ठान का सम्यक अग्रहण ही कारण है। जो सीपी में रूपा देखता है उसमें दृष्टि दोष है । बन्दर को सीपी में रूपा नहीं दिखता इसलिये मिथ्यावस्तु की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती, तो फिर उसके कारण की खोज क्यों करना ?

१९ : अविद्या की निवृत्ति

यदि अविद्या अथवा मिथ्याज्ञान आत्मामें होते तो आत्मा का ठीक साक्षात्कार करके फिर कह सकते हैं। आत्मा में क्या है और क्या नहीं है, यह आत्मा को जाने बिना कहना उचित नहीं है । ज्ञानी होकर कोई प्रश्न करे तो अविद्या आत्मा को तीनों काल में स्पर्श नहीं करती । अविद्या मिथ्याज्ञान रूप होने से आत्मज्ञान से उसकी निवृत्ति होती है ऐसा समझमें आता है। ज्ञेय, ज्ञाता आदि सब मिथ्या अध्यास वाला है और वस्तुतः यह सब शुद्ध चैतन्य मात्र है। वह एक ही सत्य है ऐसा ज्ञान अविद्या का नाश करता है। ऐसा उत्पन्न होनेवाला वृत्तिज्ञान जैसे अन्य प्रपंच को मिथ्या जानता है वैसे अपने को भी मिथ्या जानता है इसलिए संपूर्ण द्वैत मिथ्या है ऐसा सिद्ध होता है। विद्या की उत्पत्ति से भिन्न अलग कोई अविद्या की निवृत्ति नहीं है । विद्या की उत्पत्ति ही अविद्या की निवृत्ति है और यही संसार की निवृत्ति है। ये भी सिर्फ उपदेश

के लिए है। वास्तविक निवृत्ति नहीं बनती। विद्या की उत्पत्ति को ही दूसरे शब्दों में अविद्या की निवृत्ति कहते हैं। जो जाग गया उसका स्वप्न गया ऐसे एक ही क्रिया में दो प्रकार का व्यवहार कह सकते हैं। अतः संसार का वास्तविक आवरण नहीं बनता और वास्तविक अज्ञात सत्ता भी नहीं बनती। सिर्फ झूठी वृत्ति से आवरण उत्पन्न होता है और सच्ची वृत्ति से आवरण भंग होता है, उसी समय अखंड आनंद का स्फुरण होता है और संसार के दुःख का जड़ से उच्छेद होता है। उसीका नाम मोक्ष है। ज्ञान होने के बाद द्वैत नहीं रहता इसलिए अज्ञात सत्ता का प्रश्न नहीं बनता। जीव से अलग कोई ईश्वर होंगे ऐसा भी प्रश्न नहीं बनता। अद्वैतभाव में जीव, जगत, ईश्वर आदि सब अपने सच्चे स्वरूप में एक हो जाता है। नदियाँ समुद्र में जाकर जैसे ऐक्य प्राप्त करती हैं वैसे सब की एकता ब्रह्म में हो जाती है।

२० : पूर्ण की पूर्णता

पूर्ण ब्रह्म हमेशा पूर्ण है। वह सिद्ध होने से साध्य नहीं है। ज्ञानस्वरूप होने से ज्ञेय नहीं है। आनंद स्वरूप होने से उसमें आनंद उत्पन्न नहीं करना है, इसलिए जिसको जैसे प्रश्न उत्पन्न होते हैं उसे अपना नाप ठीक करने की जरुरत है। कुछ वैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि मनुष्य उत्पन्न होने से पूर्व जगत कोई परमाणु के रूप में था (singularity) और अब भी कुछ तारे ऐसे होंगे कि जिनको मनुष्य नहीं जानते, लेकिन नयी क्वांटम थियरी वाले कहते हैं कि जहाँ मनुष्य का ज्ञान नहीं है वहाँ कोई परमाणु नहीं है और कोई प्रकाश की तरंगें भी नहीं है।

अतः जगत को जानने की जरुरत नहीं है पर देखनेवाले को जानने की जरुरत है। वेदांत में और नए सायन्स में इसी बात पर जोर दिया जाता है। साधारण मनुष्य जगत को कुछ असर किये बिना देख नहीं सकता। इसलिए उसको उसकी कल्पना का जगत मिलता है। इसलिए एक अविद्या में से दूसरी अविद्या निकलती है और ऍम.ए अथवा बी.ए पास होनेपर भी अविद्या दूर नहीं हो सकती।

जिनका मन इतिहास और भूगोल में अधिक मग्न रहता है उनको ऐसे विचार आते हैं कि सबसे पहले क्या होगा अथवा तारे के पीछे क्या होगा ? कहा जाता है कि मनुष्य किसी तारे पर जाकर हमारी पृथ्वी को देखे तो वह एक तारे जैसी लगेगी पर यहाँ कुछ तारे जैसा है नहीं। यहाँ बहुत विचित्र प्रकार है इसलिए सच्चा इतिहास वही है जो मनुष्य को अज्ञान में से ज्ञान में लाये। सच्चा भूगोल भी वही है जो मनुष्य को

सर्वव्यापक बनाये। आर्यों की विद्या कला का यही उद्देश्य था इसलिए आर्यों की विद्याकला में आज के इतिहास और भूगोल जैसे इतिहास और भूगोल कभी सिखाये नहीं गये। सिर्फ संस्कारों के प्रति ध्यान दिया गया है। यानी किसी भी प्रकार से मनुष्य में संयम बढ़ाकर उसको प्रभुरुप बनाना यही आर्यों की विद्याकला का सच्चा रहस्य है। साधारण मनुष्य अपूर्ण जीवन को पूर्ण मान लेता है। और अपनी गलतियाँ सुधारने के लिए जरूरी समय नहीं निकालता। काल से अतीत तत्त्व क्या है यह जानने का साहस कैसे करना यह बात आज की विद्या नहीं सिखाती। बुद्ध के समय में भी संस्कारों के प्रति बहुत ध्यान दिया जाता था। बौद्ध धर्म में ऐतिहासिक घटनाओं पर ध्यान नहीं दिया गया। जो अनुभव जीव को होते हैं वे सापेक्ष हैं ऐसा उस धर्म में बारबार कहा हुआ है। उन सब का बाध हो सके तो शेष ब्रह्म ही रहता है। लेकिन लोगों को अज्ञान और असत्य ही पसंद हो तो वह दूर करना कठिन है। सापेक्षवाद भी कहता है कि जहाँ किसी भी प्रकार का आकर्षण हो वहाँ वातावरण नहीं बदल सकते।

अतः आज के समाज की रक्षा के लिए नये बम बनाने की जरुरत नहीं है लेकिन सच्चे ज्ञान के लिए नयी पद्धति और नयी प्रणाली तैयार करने की जरुरत है।

घट को आवृत्त करने से प्रकाश का घट के साथ व्यवधान (अंतर) होगा और दीप आदि प्रकाश को ढकने से परस्पर दोनों का व्यवधान होगा। जड़ घटादि विषय में आवरण नहीं बन सकता लेकिन चेतन को अज्ञान के द्वारा आवृत्त करने से विषय और चेतन का व्यवधान बन जाता है। इस व्यवधान से विषय में अज्ञानता आ जाती है। अतः चेतन का अज्ञान दूर करना ही सच्ची विद्या है।

ॐ ॐ

१३ : सब घटनाओं का कारण क्या ?

यदि भगवान ने करोड़ों वर्ष पहले जगत की रचना की हो और उसके सब नियम ठीक से बनाकर रखे हो एवम् जैसे हम घड़ी की चाबी देते हैं और फिर घड़ी उस नियम के अनुसार ठीक से चलती रहती है। ऐसे ही यदि जगत की गति के लिए भगवान ने आगे से सब निर्धारित कर रखा हो और सब विषयों में भगवान अपनी शक्ति से ही सारा निर्णय करते हो तो मनुष्य में किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता रह नहीं सकती, मनुष्य को किसी भी प्रकार का पुरुषार्थ करना नहीं होगा और नीति के नियम पालन करने के लिए बंधन नहीं रहेगा। अनीतिमय आचरण करनेवाले कुछ लोग कहते हैं कि भगवान ने हमको ऐसे क्यों बनाये ? आज के मनुष्यों की बुद्धि इतनी तो तर्क लगाने में लग जाती है कि सारा दोष भगवान पर थोपने में उनको देर नहीं लगती। भगवान स्वयं मनुष्य को दर्शन देने आये तो भी आज के मनुष्य उनसे पूछेंगे कि आप भगवान हो उसका क्या प्रमाण है ? वे अपने प्रमाण से भगवान को नापना चाहते हैं। भगवान के प्रमाण से स्वयं को नहीं जान सकते।

और यदि मनुष्य बिलकुल स्वतंत्र हो और अपनी इच्छानुसार सबकुछ कर सकता हो तो मनुष्य दुखी नहीं होगा अथवा भगवान की स्वतंत्रता को बाधा आएगी। मनुष्य और भगवान दोनों स्वतंत्र हो तो एक गाँव में अनेक राजाओं के शासन जैसा हो जायेगा। और राज्य ठीक से चलेगा नहीं, अतः या तो भगवान स्वतंत्र है या जीव स्वतंत्र है। ऐसी कठिनाई दूर करने के लिए कुछ लोग मानते हैं कि जीव के कर्मों के अनुसार भगवान फल देते हैं। ऐसा हो तो भी भगवान में सापेक्षता आ जाती है और उसमें स्वतंत्रता, सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमानता रहेगी नहीं।

और जीव बद्ध है एवं जीव मुक्त है ऐसी दोनों बातें टिकती नहीं, इसलिए श्रीमद्भागवत में उद्धवजी ने श्रीकृष्ण को यह प्रश्न किया है कि 'देह के (कर्म और फल आदि) गुणों में रहते हुए भी इस देहधारी जीव कैसे उसके बन्धन में न फँसे ?' और यदि ऐसा कहा जाय कि उसको (आकाश की नाई) आवरण नहीं है इसलिए माया के गुणों से उसका संबंध नहीं होता तो उसको बंधन कैसे होता है और बंधन क्यों दिखता है ? एक ही आत्मा नित्यबद्ध और नित्यमुक्त कैसे हो सकता है ? (११-१०-३७) इसके उत्तर में भगवान कहते हैं, कि 'गुणों के कारण मुझमें बंधन और मुक्ति की कल्पना की जाती है, वस्तुतः ये बंधन और मुक्ति सच्चे नहीं हैं और गुण का मूल माया

है। शोक, मोह, सुख, दुःख और देह की उत्पत्ति ये सब माया के कार्य हैं और यह संसार भी स्वप्न की नाईं बुद्धिजनित प्रतीति ही है, वह वास्तवमें सच्चा नहीं है। '(११-११-२)

देशकाल की माया क्या चीज है उसका कुछ अंशमें स्पष्टीकरण हो सके इस हेतु से यह पुस्तक तैयार की गई है। आज के नये सायन्स वाले जिसको मेझर अथवा माप कहते हैं उसका स्वभाव क्या है यह वे गणित से गिनती करके बताते हैं। और यदि यह ठीक से समझमें आये तो माया का स्वरूप समझने में बहुत आसानी हो सकती है। इस प्रकरण में भी माया की कुछ बातें कही गयी हैं।

जगत में जो कुछ भी हो रहा है, उसका कारण कुछ होना चाहिए यह बात सामान्य बुद्धि से समझमें आती है। उसका कारण यह है कि एक घटना का दूसरी घटना के साथ संबंध है। और यह संबंध हमारे जीवन में जान सके ऐसा है। और उस घटना के साथ जो संबध है वह पहले से निश्चित हो तो जीव की स्वतंत्रता नहीं रह सकती। हमारी इच्छा के अनुसार जीवन चलता है लेकिन हमारी इच्छा कैसे चलती है ? शरीर अस्वस्थ होता है तब हमारी इच्छा के अनुसार चलता भी नहीं। अतः जगत की सम्पूर्ण शक्ति का नियंता भगवान होने चाहिए। परंतु भगवान दयालु है और सर्वशक्तिमान है ऐसा भक्त मानते हैं तो जीव को दुःख क्यों आते है ? ऐसा प्रश्न भी पुनः जीव के मन में उपस्थित होता है। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि भगवान दयालु नहीं हैं अपितु न्यायी है अर्थात् जैसे जीव के कर्म हो उसके अनुसार फल देकर न्याय करके फल देते हैं। ऐसा हो तो फिर मनुष्य पूछते हैं कि पापी क्यों सुखी दिखते है ? और पुण्यशाली दु:खी क्यों दिखते है ?

जीव स्वयं थोड़े अंशमें भी स्वतंत्र ढंग से कार्य कर सकता हो और उसको दूसरे के आधार की जरुरत न हो तो भी जीव में स्वंतत्रता है यह कह सकते हैं। यदि मनुष्य की बुद्धि कर्म के अनुसार निश्चित होती हो और कर्म बुद्धि के अनुसार होते हो तो उस चक्कर में से कैसे निकलना यह जानना जीव के लिए विशेष जरुरी है। और यदि सूर्य-चंद्र जैसी वस्तु को कोई जीव चला नहीं सकते तो भगवान उनको जरूर चलाते हैं। यह कहना चाहिए। ऐसे जड़ पदार्थ अपने आप नहीं चलते, अतः जगत की रचना में कुछ नियम हैं। कुछ हेतु हैं, कुछ रचना हो ऐसा हमको साधारण दृष्टि से लगे बिना नहीं रहता। लेकिन यदि सब भगवान चलाते हो और सब घटनाओं के परस्पर संबंध भी उनके निश्चित किये हुए हो तो जीव पत्थर के समान परतंत्र होकर रहे। अतः हर एक

घटना के बीच कैसा संबंध है ये जानना हमारे जीवन में अत्यंत जरुरी ज्ञान हैं। इस संबंध को अंग्रेजी में रीलेशन कहते हैं। और उस संबंध को समझाने वाले शास्त्र को सापेक्षवाद कहते हैं।

सब घटनाओं के बीच जरुरी अथवा नियत संबंध का अर्थ ऐसा है कि उस संबंध में परिवर्तन नहीं हो सकता अथवा आगे बनी हुई घटना अन्य ढंग से नहीं घट सकती। और सब घटनाओं के कारण भी मनुष्य समझ नहीं सकते इसलिए सबकुछ भगवान ने पहले से निर्धारित कर रखा है ऐसा मानकर कुछ मनुष्य संतोष मानते हैं। थियोसोफि में तो एक मत ऐसा भी है कि भगवान ने महात्माओं को भी पहले से तैयार कर रखे हैं। वे हिमालय में रहते हैं और योग्य समयपर प्रकट होकर दुनिया को सरल बना देंगे। भगवान की स्वतंत्रता का एक कारण यह भी है कि उनको अपने कानून बनाने के लिए अन्य किसीके सहयोग की जरुरत नहीं पड़ती। मनुष्यों को अपने जीवन के लिए कानून बनाने हो तो बहुमत की जरुरत पड़ती है और फिर भी बहुमत में भी सच्ची मति उत्पन्न नहीं होती। और लड़ाइयाँ रूकती नहीं। मनुष्य के जीवन पर बाहर के अनेक कारणों का असर होता है। इसलिए मनुष्य स्वतंत्र नहीं रह सकता। फिर भी स्वतंत्र होने की इच्छा उसमें जाग्रत रहती है। इसका अर्थ यह है कि पुरुषार्थ करे तो काफी अंशमें स्वतंत्र हो सकता है। यूरोप में स्पिनोजा नामक एक तत्त्वचिंतक हो गये। वे कहते है कि :

'जो जीव अपना जीवन अपने स्वातंत्र्य से निश्चित कर सके वही स्वतंत्र जीव है। जिस जीव के जीवन पर दूसरे का असर हो अथवा जिस जीव के कर्म दूसरे के द्वारा निश्चित हो उस जीव में स्वतंत्रता नहीं आती। 'इस दृष्टि से देखने पर जो समाज के नियम में रहते हैं अथवा देश के कानून के बंधन में रहते हैं वे जीव स्वयं ऐसा माने कि हमारा देश स्वराज्य भोग रहा है तो भी वह सच्चा स्वराज्य नहीं है। यूरोप का एक डान्झीक बंदरगाह पोलैंड को देना कि जर्मनी को देना इस बात का निश्चय नहीं हो पाया और इतनी बड़ी लड़ाई हुई कि वह १९३९ से १९४५ तक चली। (दूसरा विश्व युद्ध) उसमें करोड़ों मनुष्य मर गये और उस लड़ाई का असर दूर दूर के सब देशों के छोटे छोटे गाँवों पर भी कैसे हुआ इस बात का अनुभव हम सबको हुआ है। वह युद्ध भी जो देश कहते हैं कि हम स्वराज्य भोग रहे हैं उन्होंने शुरू किया था। अतः आज के समय में जिसको स्वराज्य कहा जाता है वह भी पराधीनता ही है।

ऐसी परिस्थिति होने से तत्त्वचिंतक कारण के दो विभाग करते हैं : १. उपादान

कारण २. निमित्त कारण। उपादान कारण को प्रमुख कारण माना जाता है।

दूसरा विश्वयुद्ध कि जो ईस.१९४५ में पूरा हुआ उसका उपादान कारण यह था कि सब देशों में परस्पर रागद्वेष बढ़ रहे थे और निमित्त कारण डान्झीक बंदरगाह था। अतः जबतक उपादान कारण नहीं बदलता तबतक लड़ाई नहीं रुक सकती। सांप्रदायिक दंगे में भी उपादान के रूप में दोनों संप्रदाय की जीवन शैली होती है। दोनों के धर्म में समानता का अंश है एवं विरोधाभास का धर्म भी है। हर एक मनुष्य में, हर एक जाति में, हर एक धर्म में ऐसा होता है। विरोधाभास का अंश कैसे दूर करना यह सब देश के नेताओं की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या है।

उपादान कारण कार्य के अंदर साथ में जाता है। जैसे कि मिट्टी में से घड़ा बनता है तो मिट्टी घड़े के अंदर जाती है (घड़े के निर्माण में काम आती है)। निमित्त कारण कुम्हार है। उसका हाथ घड़े की रचना में नहीं जाता। निमित्त कारण कार्य से भिन्न रह सकता है। इसलिए कुछ लोग यह मानते हैं कि जगत की रचना में जीव के कर्म उपादान कारण के रूप में हैं और भगवान निमित्त कारण के रूप में है, लेकिन भगवान से जगत भिन्न नहीं है। इसलिये कुछ लोग भगवान को अभिन्न निमित्त-उपादान कारण रूप मानते हैं।

ऊपर बताये अनुसार यदि भगवान के सिवाय अन्य किसीकी सत्ता जगत में हो तो दो सत्ता जैसा हो जाय और दो राजा से एक गाँव का राज्य चलेगा नहीं। एक सत्ता हो तो सब के संबंध पहले से निश्चित हो जाय और उससे कोई मनुष्य स्वतंत्र नहीं रह सकेगा। भगवान ने निर्धारित किया हो कि अमुक घटना घटनी चाहिए तो वह घटनी ही चाहिए और यह बात सच्ची हो तो जीव के पुरुषार्थ का कोई अर्थ नहीं रहता। यदि जीव के जन्म से पहले पूरा भविष्य निर्धारित हो गया हो तो जीव अपना भविष्य कैसे बना पायेगा ? फिर भी जीव यदि कुछ सत्ता जैसा बता सके तो दो सत्ता जैसा हो जाय इसलिए कुछ लोग मानते हैं कि जगत की शुरुआत भगवान ने की है और वही भगवान जगत में रहकर जगत को चलाते हैं। ऐसी मान्यता का आधार यह है कि जगत में कुछ घटनायें नियमित रूप से घटती रहती हैं।

अ नामक घटना क नामक घटना का कारण बने उसमें संबंध कैसा है यह देखेंगे। उस संबंध में काल के क्रम की जरुरत नहीं है। अ के बाद क उत्पन्न होता है ऐसा कई बार कहा जा सकता है। लेकिन उससे अ क को उत्पन्न करता है ऐसा नहीं कह सकते। दृष्टांत के तौर पर कहे कि मुर्गे बांग देते हैं बाद में सूरज उगता है। लेकिन

उससे ऐसा नहीं कह सकते कि मुर्गे सूरज को उगने की प्रेरणा देते हैं। अतः दो घटनाओं के बीच संबंध कैसा है यह जानने की विशेष जरुरत है। और जैसे जगत में नियम वाली घटनायें देखने में आती हैं वैसे नियम बिना की घटनायें भी देखने में आती हैं। खून करने की प्रकृति वाले सब मनुष्य खून नहीं करते, उनमें कोई सुधर भी जाता है। कोई मनुष्य प्रामाणिक हो वह बादमें अप्रामाणिक भी हो जाता है।

और यदि प्रारब्ध सच्चा हो तो जो बननेवाला है उसका ज्ञान पहले से रहना चाहिए। ऐसा ज्ञान मिलना मुश्किल है इसलिए प्रारब्ध सच्चा नहीं रह सकता। सिर्फ प्रारब्ध में मान्यता के कारण प्रारब्ध सच्चा नहीं हो जाता। साधारण मनुष्य का जीवन ऐसा है कि जो घटना दिखती है उसमें उसकी दृष्टि चली जाती है। उस समय उसका दर्शन सच्चा है कि नहीं अथवा उसका ज्ञान सच्चा है कि नहीं उसका विचार उसको नहीं आता और दृश्य देखकर वह अपना जीवन ठीक करने लग जाता है। जब उसके जीवन में गलती महसूस होती है तब अपने ज्ञान की ओर नजर घूमाता है। इसी कारण से कुछ लोग प्रारब्ध में मानते हैं।

कोई एक मनुष्य अपने हाथ में शरबत का ग्लास रखकर स्वयं विचार करे कि उसको पीने में वह स्वतंत्र है कि नहीं ? इतने में कोई जरुरी कार्य आ जाय और उस कार्य के लिए वह बाहर जाय। बाहर घूमते हुए उसको कोई मार डाले तो उसके शरबत का ग्लास वैसा ही पड़ा रहे। सामाजिक जीवन में एक घटना पर अनेक कारणों का असर रहता है।

दो घटनाओं के बीच में अंतर कैसा है ? उसमें देश, काल और संबंध का क्रम सच्चा है कि नहीं ? आज का सायन्स कहता है कि वह संबंध सच्चा नहीं है तो कौनसी घटना कारण बनेगी और कौनसी घटना कार्य होगी ? बरट्रान्ड रसेल कहते हैं कि:

संबंध कोई सच्ची वस्तु नहीं है। संबंध सच्चे नहीं होने से दो घटनाओं के बीच का संबंध नियत नहीं रह सकता। अतः कारण-कार्यभाव टूट जाता है और प्रारब्ध भी टूट जाता है। कारण के बाद कार्य होना चाहिए लेकिन जहाँ काल का क्रम सच्चा नहीं है वहाँ यह बाबत सच्ची कैसे रह सकती है ? अतः क्रम दिखता है पर क्रम स्वयं सच्चा नहीं रहता। पातंजल योग दर्शन में विभूतिपाद के ५२वें सूत्र में कहा है कि 'क्षण का और क्षण के क्रम का संयम करने से योगी को विवेकजन्य ज्ञान प्राप्त होता है।' उस सूत्रकी व्यास वाचस्पति आदि की टिका में लिखा हुआ है कि क्षण सच्ची है

लेकिन क्रम सच्चा नहीं है। वेदांत में यह कहा गया है कि क्षण भी सच्ची नहीं है। स्वप्न में से जगने के बाद स्वप्न का काल नहीं रहता। आज का सापेक्षवाद का सायन्स जाग्रत के दृष्टांत से क्षण को कल्पित बनाता है, यह उसकी विशेषता है। आज का सायन्स कहता है कि क्रम के बिना क्षण नहीं हो सकती और दृष्टा (observer) के बिना क्रम नहीं बनता। यानी आत्मा के अज्ञान से जैसे स्वप्न में क्रम बनता है वैसे जाग्रत में क्रम बनता है। आत्मज्ञान होने के बाद क्रम नहीं है। जगत में जो परिवर्तन देखने में आता है वह जगत में बनता है ऐसा पहले माना जाता था लेकिन सापेक्षवाद की खोज होने के बाद ऐसा सिद्ध हुआ है कि जगत की घटनायें किसी जगत को देखनेवाले के संबंध की बात है। इसलिये उसका और जगत का संबंध कैसा है यह पहले निश्चित करने की जरुरत है।

हम हमारे सामने किसी पदार्थ को देखते हैं इसलिए वह पदार्थ वास्तवमें वहाँ है ऐसा सिद्ध नहीं होता। दूसरे मनुष्य को वह पदार्थ नजदीक लगे अथवा अधिक दूर लगे अथवा अलग प्रकार का लग सकता है। आज का सायन्स कहता है कि पदार्थ जैसा कुछ है नहीं, सब घटनायें हैं और एक घटना देखनेवाले मनुष्य से कितनी दूर है उसका नाप भी उस घटना के अंदर रहता है। दो मनुष्यों के बीच जो खाली जगह है वह जगह दो मनुष्यों के बीच भेद नहीं करती, मनुष्य की दृष्टि में जो भेदबुद्धि का ज्ञान होता है उससे भेद होता है। इसलिए अज्ञातसत्ता अथवा अज्ञातजगत जैसा कुछ रहता नहीं है। और सब घटनाओं को एक नाप से नाप नहीं सकते इसलिए घटना के बारे में पहले से कुछ कह नहीं सकते। यदि कोई भी घटना चालू रहे तो उसके लिए सच्चा अनुमान हो सकेगा, लेकिन सब घटनायें देखनेवाले के साथ रहती हैं, इसलिए उसके अनुसार विचार करना चाहिए।

नए सायन्सवाले कहते हैं कि प्रारब्ध जैसा अथवा नियत कायदे जैसा कुछ मालूम नहीं पड़ता। सत्य क्या है यह जानना हो तो जगत की घटनाओं का विचार मत करो, लेकिन उसका संबंध तुम्हारे साथ कैसा है उसका विचार करो।

जहाँ एक ही प्रकार का अनुभव रहता है वहाँ अनुभव की वस्तु की ओर ध्यान जाता है और अनुभव की क्रिया की ओर लक्ष नहीं रहता। लेकिन वास्तवमें अनुभव की क्रिया की ओर देखना चाहिये। उस बात पर ध्यान देंगे तो मालूम पड़ेगा कि जगत में जो नियम देखने में आते हैं उसका कारण यह है कि एक ही घटना के ऊपर उसकी परिस्थिति के अनुसार अनेक प्रकार का असर रहता है। मनुष्य की परिस्थितियों के

अनुसार मनुष्य का जगत दिखता है और मनुष्य के जीवन की घटनाओं में नियम दिखते हैं, और बंदर के ज्ञान के अनुसार बंदर के जीवन के नियम ठीक हो वैसा मालूम पड़ता है। इस विषयमें मोर्टमर टोबे नामक एक अमेरिकन लेखक कहता है कि :

'जगत के साधारण नियम उचित ढंग से चलते रहते हैं और किसी एक मनुष्य की स्वतंत्र गति के साथ कुदरत का संबंध नहीं है ऐसा १९वीं सदी तक माना जाता था। लेकिन बीसवीं सदी में सायन्स में जो खोजें हुई हैं वह ऐसा बताती हैं, कि जगत के नियम सामाजिक है और भगवान ने नियत किये हुए नहीं हैं। अतः जीव की स्वतंत्रता की ओर लापरवाही नहीं रखनी चाहिये। जैसे जैसे सायन्स मनुष्य का दृष्टिबिंदु पकड़ेगा वैसे वैसे जगत के नियम टूटने लगेंगे। हमारी दृष्टि, शक्ति, इच्छा आदि व्यक्ति की घटना है। उसमें भूतकाल के संस्कार हैं। लेकिन यदि उन सब संस्कारों की हम वर्तमानकाल की शुद्ध दृष्टि से पुनः ठीक से जाँच करेंगें तो जगत में हमको बंधन में रखे वैसे नियम नहीं है, पर हर एक मनुष्य स्वतंत्र है और मुक्त है।'

उपरोक्त सिद्धांत हमारे धर्म शास्त्रों से मिलता जुलता है। यानी जब तक मनुष्य समाज में रहता है और समाज से अधिक लाभ उठाता है और समाज की दृष्टि के अनुसार उसको विचार करने की आदत होती है तब तक समाज के कानून उसके लिए सच्चे हैं और प्रारब्ध भी सच्चा लगेगा। लेकिन यदि उसको जगत के सुख से वैराग्य हो, समाज के द्वारा मिलनेवाले सुख से वैराग्य हो और वह वैराग्य सच्चा हो तो मनुष्य की मुक्ति में कोई अवरोधक बन नहीं सकता। अतः जगत में जो बंधन जैसा दिखता है वह एक प्रकार की माया है। यही बात भगवान ने उद्धवजी को कही है। यानी हम अपना नाप और अपनी दृष्टि बदल सकें तो जीव का मोक्ष तो प्राप्त की प्राप्ति है। अतः माया को जीतने के लिये अभ्यास और वैराग्य ऐसे दो साधन हैं।

आज के युग में अनेक लोग समाज को बिगाड़ते हैं। इसलिए मनुष्य को समाज सुधार के विचार आते हैं। उनमें कुछ लोग जो एक ढंग से समाज को बिगाड़ रहे हो वे समाज को सुधारना चाहते हैं। और कुछ निःस्वार्थी हो वे भी समाज को सुधारना चाहते हैं, लेकिन समाज को संसार का सुख चाहिए और उस सुख के लिये समाज को अनेक बंधनों में आना पड़ता है। जो समाज की सेवा करते हैं वे भी समाज को संसार के सुख की सुविधा कर देते हैं। इससे गलती की परंपरा बढ़ती है और समाज आगे बढ़ नहीं सकता। वास्तवमें समाज को अधिक ज्ञान की आवश्यकता है और आबादी नहीं बढ़े वैसे वैराग्य की भी जरुरत है। खाने-पीने से तो रेशनिंग के कारण न चाहते हुए

भी वैराग्य आ ही गया है। लेकिन विषयों के भोग से वैराग्य नहीं आया। इसलिए आबादी बढ़नेपर अंकुश रहता नहीं है और इस विषयमें सरकार भी कुछ नहीं कर सकती। सरकार भी समाज को संसार के सुख की सुविधा कर देती है। यह जरुरी है लेकिन उतने में ही जीवन रूक जायेगा तो प्रारब्ध सच्चा लगेगा। इसलिए समाज सुधार में ब्रह्मचर्य की जरुरत है। जिस परिवार में आबादी कम हो वहाँ अच्छे विचार के लिए फुरसत भी ठीक रहती है और घर के खर्च के लिए भी अधिक चिंता नहीं रहती। उस बात पर समाज सेवक अधिक ध्यान नहीं देते और ध्यान दे तो भी उसका प्रयोग करना और करवाना अत्यंत कठिन कार्य है। कुछ विद्वान भी ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकते। इससे मालूम पड़ता है कि उस दिशा में बहुत पुरुषार्थ की जरुरत है। जब अज्ञानी मनुष्यों की आबादी बढ़ती है तब लड़ाई शुरू होती है क्योंकि अनेक अज्ञानी जीवित रहे तो समाज को अधिक बिगाड़ेंगे। फिर भी ऐसी आबादी बढ़ती जाती है और उसका अंत कहाँ और कब आयेगा यह समाज को नहीं सूझता।

प्राचीनकाल के ऋषिमुनियों को ऐसा उपाय सूझा था कि समाज के चार भाग करना। उसमें जो साधू संत जैसे पुरुष हो उनको ब्राह्मण मानकर, राज्य की ओर से खाने पीने की और यात्रा की सुविधा देकर समाज में अच्छे विचारों का प्रचार करने का कार्य दिया और जो लोग गुंडे स्वभाव के हो और उपदेश से सुधरने वाले नहीं हो और समाज को बिगाड़नेवाले हो उनको अंत्यज अथवा शुद्र मानकर समाज से दूर रखना। उनमें से जो सुधरे उनको ही समाज में वापस आने की अनुमति देना। ऐसे कुछ उपायों किये बिना समाज की गाड़ी ठीक से चले ऐसा नहीं लगता।

कर्म का अर्थ है घटना। घटना में जो भी रहस्य जिस समय देखा जाय उसमें देखनेवाले की मान्यता रहती ही है। कर्ता के बिना कर्म नहीं बनता, वैसे ही देखनेवाला (observer) न हो तो घटना का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। कभी कभी विचित्र प्रकार की घटना भी बनती है। उदाहरण के तौर पर कोई मनुष्य किसी पेड़ को देखता हो तो उस घटना में एक देखनेवाला है। लेकिन यदि वह ऐसा जाने कि मैं कुछ देखता हूँ तो वहाँ दो दृश्य जैसा बनता है। एक तो पेड़ को देखनेवाला और दूसरा उस देखनेवाले को भीतर जानने वाला। प्रथम देखनेवाले को दृष्टा नं १ (प्रमाता) नाम देंगे और दूसरे को दृष्टा नं २ (साक्षी) नाम दे सकते हैं। साधारण व्यवहार में दृष्टा नं १ कार्य करता है। लेकिन वह गाढ़ निद्रा में चला जाता है। गाढ़ निद्रा में सिर्फ दृष्टा नं २ जगता है। सुबह दृष्टा नं १ जगता हो वैसा दिखता है। वह अमुक कायदे में रहा हुआ होता है। और देश

काल के बंधन को स्वीकार कर लेता है। हमें दृष्टा नं १ को सुधारना है और दृष्टा नं २ को समझाना है । अतः मनुष्य को स्वयं या तो मन को बदलना चाहिए या परिस्थितिको बदलनी चाहिए । समाजवादी मनुष्य परिस्थिति बदलने का परिश्रम करते हैं । और सात्त्विक मनुष्य अपना मन बदलने का प्रयास करते हैं । किसी भी प्रकार से समाजवादी मनुष्य दूसरे को नीतिवान बनने को कहता है। और साधू मनुष्य ऐसे नीतिवाले मनुष्यों को ब्रह्मरूप बनाने का प्रयास करते हैं । अतः दो प्रकार की शिक्षा की जरुरत है। एक तो समाज को आगे बढ़ाने के लिए नीति बताए ऐसी शिक्षा और और दूसरी व्यक्ति को आगे बढ़ाने के लिए ज्ञान देनेवाली शिक्षा । इस बात को ध्यान में रखकर ऋषिमुनियों ने समाज के लिए वर्णधर्म बनाये हैं । और मनुष्य की उन्नति के लिए आश्रम धर्म बनाये हैं । आश्रम धर्म अर्थात् छोटी आयु में ब्रह्मचर्य अवस्था में सच्चा ज्ञान प्राप्त करना । फिर गृहस्थाश्रम में भी संयम से रहना, फिर वानप्रस्थाश्रम में आना और बादमें संन्यास लेना । फिर वर्ण और आश्रम का संबंध ठीक से बनाए रखने के लिये जो पूर्ण संयम का पालन कर सके उनको ब्राह्मण कहे, पौने संयम वाले क्षत्रिय कहलाते हैं। आधे संयम वाले व्यापारी होते हैं और बिना संयम के शुद्र होते हैं।

हर एक घटना क्षण परिणामी होती है। वह अपनी मर्यादा से बाहर नहीं जाती। दूसरे समय दूसरी घटना होती है। इसलिए हर एक घटना के साथ रहा हुआ दृष्टा नं १ भी घटना के जैसा रहता है, यह बुद्ध के तत्त्वज्ञान का रहस्य है।

लेकिन दृष्टा नं २ हर एक घटना और हर एक कर्म पूरे होने के बाद भी चालू रहता है। निद्रा में वह निद्रा को देखनेवाले साक्षी के रूप में रहता है। दृष्टा नं २ दृष्टा नं १ के कर्म ठीक से देख सकता है। आज का सायन्स कहता है कि :

काल घटना के साथ रहता है। काल कर्म का अंग है। कोई कर्म जल्दी फल देता है और कोई कर्म देर से फल देता है उसका भी यही कारण है। अतः कर्ता और कर्म के संबंध पर पूरा आधार है और उस संबंध में ऐसी गलती होती है कि दृष्टा नं १ हर एक कर्म के समय बदलता है। फिर भी मानो खुद चालू रहता हो और सब कर्म एक के हो ऐसा मालूम पड़ता है। ऐसी दशा उत्पन्न होने के कारण के रूप में आज के सायन्स वाले कहते हैं, कि देशकाल बदले तो जिस समय जो नाप चलता हो वह उस समय सच्चे के जैसा होकर व्यवहार में कार्य करता है। इसलिए दृष्टा नं १ को अपनी गलती समझमें नहीं आती। उस दृष्टा को प्रमाता कहते हैं और वह हर एक घटना के समय

भिन्न होता हैफिर भी हर एक घटना में जो नाप रहा हुआ है उस नाप से वह घटना ठीक लगती है। इसलिये हर एक मनुष्य ऐसा मानता है कि जो जगत वह देखता है वह सच्चा है। स्वप्न में देशकाल के नाप हर एक क्षण में बदलते रहते हैं, लेकिन उन सब के नाप के बीच जो संबंध है उस संबंध को बनानेवाला दृष्टा नं २ अविकारी रहता है। इसलिए दृष्टा नं १ यह समझता है कि मैं भी अविकारी हूँ, लेकिन जगने के बाद स्वप्न का दृष्टा नं १ (प्रमाता) जाता रहता है। और जाग्रत का प्रमाता उस दशा के जैसा उस समय बन जाता है। स्वप्न के प्रमाता को तैजस कहते हैं। जाग्रत के प्रमाता को विश्व कहते हैं। और निद्रा के प्रमाता को प्राज्ञ कहते हैं। संक्षेप में स्वप्न की सब घटनाओं के बीच संबंध बनाने वाला तत्त्व दृष्टा नं २ अविकारी है। और प्रमाता का नाप भी उस दशा में सच्चा लगता है इससे उस नाप के प्रमाता को अपने जीवन में अधिक जाँच करना आवश्यक नहीं लगता। जैसा स्वप्न में बनता है वैसा ही जाग्रत में भी बनाता है। छोटी उम्र के बालक को भी वह जो करता है वह सच्चा लगता है। उसको खुद का ज्ञान भी उस समय सच्चा लगता है। जब देशकाल बदलते हैं तब यदि मनुष्य में बुद्धि हो तो गलती का पता चलता है। साधारणतया उसको दूसरे समय में गलती मालूम पड़ती है। और दूसरे लोग पहले की अवस्था से यानी जीवनकला से अलग होने से पहले के नाप की गलती खोज सकते है, लेकिन पहले को गलती नहीं लगती, क्योंकि उसको अपना जीवन सच्चा लगता है। ऐसा नियम होने से जो मनुष्य हररोज थोड़ा समय जनसमुदाय से अलग रहकर अपने विचारों की जाँच करने की आदत बनाते हैं वे ही आगे प्रगति करते हैं। अमेरिका के विख्यात तत्त्ववेत्ता एमर्सन भी कहते हैं, कि मनुष्य के बीच रहकर मनुष्य होना सरल है, एकांत में रहकर ब्रह्मज्ञानी होना भी सरल है। पर मनुष्य के बीच रहकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना उल्लू के बीच रहकर दिन में प्रकाश देखनेके समान है। बालक को बड़ा होने के बाद शायद अपनी छोटी उम्र की गलतियों का पता चल सकता है लेकिन बड़ी उम्र की गलतियों का पता नहीं चलता। हिटलर ने जर्मनी के लिए डान्जिक का बंदरगाह माँगा और उसके न मिलनेपर बड़ा युद्ध शुरू किया, लेकिन उसकी अपनी दृष्टि में वह गलती नहीं लगी। माया अथवा नाप का स्वभाव ही ऐसा होता है कि जो मनुष्य अपने प्रमाण के साथ एकाकार हो जाता है वह अपनी गलती को नहीं जान सकेगा।

सायन्स कहता है, कि हर एक कर्म के समय अथवा हर एक घटना के समय एक नाप उत्पन्न होता है और उस नाप से नापने से वह कर्म और वह घटना ठीक लगते

हैं। उसका नाम माया है। लेकिन वह नाप सतत बना नहीं रहता। दूसरे समय दूसरी घटना के लिए दूसरा नाप बनता है। उसमें मनुष्य को मजा आता है और उस समय नाप फिर से सच्चा हो जाता है। छोटी उम्र के बच्चे-बच्चीयाँ गुड्डे गुड्डियों से खेलते हैं। और उस समय वह खेल उनको बहुत पसंद आता है, लेकिन विवाह के बाद पहले के खेल तुच्छ लगते हैं। फिर युवा उम्र के खेल शुरू होते हैं और युवा शरीर मानों देवताओं ने अमृत से बनाये हो वैसा लगता है। लेकिन उनमें से कोई युवा शरीर मर जाय, वह जलकर राख बन जाय और वह किसी बुद्धिशाली मनुष्य के देखने में आये तब फिर उस जवानी के खेल में कुछ गलती मालूम पड़ती है और मनुष्य के जीवन से आगे बढ़ने की जरुरत मालूम पड़ती है, इसलिये सत्य क्या है उसको जानने के लिए प्रमाण के स्वरूप को जानने की जरुरत है और उसके लिए आज का नया सायन्स हमको बहुत मदद करता है। जहाँ प्रमाण झूठा हो वहाँ प्रमाता भी झूठा हो जाता है।

अतः कुछ मनुष्य अपने विचारों पर निगरानी रखने के लिए एकांत में थोड़ा समय बिताते हैं। ऐसा एक मनुष्य ४५ साल तक अविवाहित रहा। किसीने उससे पूछा कि 'तुमने विवाह क्यों नहीं किया ?' तब उसने उत्तर दिया : 'अब तक मैं खुद ज्ञानी नहीं हुआ और मूर्ख जैसा लगता हूँ और मैं विवाह करूँ तो घर में दो मूर्ख मिलेंगे। 'यह उत्तर सच्चा है, लेकिन यदि कोई एकांत में रहकर अच्छे विचार करने की आदत न बनाये तो उसको अपना प्रमाण सच्चा लगता है। और स्वयं मूर्ख होने पर भी मानो सब बातों में सयाना हो वैसा दिखाने का प्रयास करता है। दृष्टा नं १(प्रमाता) में भूल होना संभव है, लेकिन यदि हम दृष्टा नं २ की स्थिति में यानी साक्षी की स्थिति में कुछ समय रह सके तो ही गलती समझ में आती है, अन्यथा गलती समझ में नहीं आती और जीवन के संस्कारों का दिवाला हो तबतक गलती चालू रह जाती है। इतना ही नहीं पर यदि प्रमाता को अपनी माया सच्ची लगती हो और उसकी मृत्यु का समय आये तो फिर से उस नाप के अनुसार दूसरा जन्म लेने की इच्छा होती है। महात्मा गांधीजी को कई लोग पूज्य बुद्धि से देखते थे। उनको अपने जीवन में कोई गलती हो तो कई बार समझमें आती थी। उसका कारण यह है कि खुद सोमवार को मौन रखते थे और बारबार आत्मनिरीक्षण करते थे, फिर भी उनको अपने मन में जहाँ खूब आग्रह था वहाँ अपनी गलती का पता नहीं चलता था। अन्य नेता कि जो आत्मनिरीक्षण के लिए बिलकुल समय नहीं देते, उनकी गलती दूसरे साधारण मनुष्य जान सके तो भी वे स्वयं जान नहीं सकते। इसी कारण को लेकर अब केबिनेट और काउन्सिलों के राज्य

हुए हैं। पहले के समय में जब राजाओं के राज्य थे तब राजा लोग अपनी गलती की जाँच करने के लिये साधूओं और नगरसेठ की सलाह लेते थे।

अतः यदि कोई मनुष्य में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो कि यदि पूरा जगत मेरी मान्यता के अनुसार चले तो सुखी हो, तो वह संभव नहीं है। हर एक मनुष्य को अपनी मान्यता सच्ची लगती है। और हर एक घटना के बारे में अनेक मान्यतायें रहती हैं और उनमें से नये कानून और नये बंधन उत्पन्न होते हैं।

मुझे यात्रा करनी हो तो रेल्वे के नियमों का पालन करना चाहिये, मुझे खेती करना हो तो बरसात और राज्य के कानून पर आधार रखना पड़ेगा। अतः जिसको समाज की सुविधा अधिक चाहिये उसको अमुक बंधन में रहे बिना छुटकारा नहीं है। और समाज का कार्य ऐसा है कि वह एक प्रकार के बंधन दूर करके नए प्रकार के बंधन उत्पन्न करता है। इससे जिनको समाज से आगे बढ़ना हो उनको बहुत कठिनाई होती है। अतः प्रारब्ध कोई घटना में नहीं है अपितु जिस घटना में जिसको जितनी रुचि होती है वह रुचि उसका प्रमाण बन जाती है और इससे व्यवहार में बंधन जैसा मालूम पड़ता है। अतः गलती खोजने के लिए कोर्ट में साक्षी की जरुरत पड़ती है और आत्मज्ञान में भी साक्षी की जरुरत पड़ती है। साक्षी किसी घटना का पक्षपात नहीं करता।

मनुष्य का जीवन ऐसा है कि कभी कभी एक ही समय में दो तीन कर्तव्य एक साथ उत्पन्न होते हैं। किसी कर्तव्य का पालन करने में कभी कुछ लाभ होता है, और कुछ अलाभ भी होता है, लेकिन महानपुरुषों का लक्ष्य ऊँचा होता है। वह लक्ष्य उनको योग्य मार्ग दिखाता है। इसलिए अमुक संयोगों में अमुक मनुष्य कैसा व्यवहार करेगा यह ठीक से नहीं कह सकते। हर एक नए संयोगों में हर एक प्रमाता के पास नई घटनायें उत्पन्न होती है और वह घटना उसकी मान्यता में परिवर्तन कर देती है। प्लेंक नामक वैज्ञानिक कहता है कि :

हर एक समय मनुष्य के जीवन में नये हेतु उत्पन्न होने की संभावना है। इस वजह से उसका भविष्य निश्चित रूप से किसी के द्वारा कहा नहीं जा सकता। बहुत विचार करके कल जो काम करने का निर्णय किया हो, दूसरे दिन उठने के बाद वह एक क्षणमें ही बदल देता है।

सामान्य नियम ऐसा है कि मनुष्य की इच्छा उसकी बुद्धि को पूछे बिना अंतिम निर्णय कर लेती है। कुछ लोग कहते हैं कि मुझे अमुक बात समझमें आती है, लेकिन

मैं उसमें नहीं मानता। वह बात जब उसको अधिक समझमें आती है तब उसकी मान्यता बदलती है। अतः बाहर की दृष्टि से देखनेपर इच्छा अमुक प्रकार की होने से उसके अनुसार प्रारब्ध रहता है, लेकिन जब बुद्धि का उपयोग शुरू होता है तब इच्छा बदलने लगती है और जीव अपना भविष्य बनाने में स्वतंत्र बनता है।

अतः समाज के लिये नियत नियम बनाने में समाज के नेताओं को और देश के नेताओं को बड़ी कठिनाई होती है। इसलिये प्रजासत्ताक राज्य में थोड़े थोड़े वर्षों के अंतर में चुनाव किया जाता है। नयी विधानसभा वाले पुराने बंधन तोड़ते हैं। और नए बंधन उत्पन्न करते हैं। सब देशों में अधिक बुद्धिवाले मनुष्य आगे आते हैं, फिर भी युद्ध बंद नहीं होते उसके कारण निम्नलिखित मालूम पड़ते हैं :

१. बुद्धिशाली मनुष्य अज्ञानी मनुष्यों के मत पर अपने ज्ञान का मूल्यांकन करते हैं।

२. चुनाव में सिर्फ संसार के सुख एवम् सुविधा बढ़ाने की बातें होती हैं। उसमें आत्मज्ञान का लक्ष्य देखने को नहीं मिलता।

३. ज्ञानी मनुष्य को एक मत देने का अधिकार है और अज्ञानी मनुष्य को भी एक मत देने का अधिकार है।

४. चुनाव में रागद्वेष भी रहते हैं और अपने पक्ष के प्रति पक्षपात रहता है।

५. इसलिये सत्य क्या है इस बात को जानने का परिश्रम नहीं होता और नेता, नेता बनने के बदले लोग नेता बनते हैं और नेता सेवक बनते हैं।

ऐसे कारणों के चलते कोई समाज स्वयं ऊँची दशा में नहीं आ सकता। लेकिन मनुष्य स्वयं चाहे तो व्यक्ति के रूप में अपना जीवन उच्च बना सकता है। यह बात सायन्स से भी सिद्ध होती है। जहाँ अनेक इलेक्ट्रोन एक साथ कार्य करतें हो वहाँ अमुक प्रकार के कानून और बंधन उत्पन्न होते हैं और उनको नाप सकते हैं। लेकिन जहाँ एक इलेक्ट्रोन तेज की तरंगों के रूप में घूमता हो वहाँ उसका भविष्य नहीं जान सकते। वह मुक्त जैसा घूम सकता है।

समाज सापेक्ष जगत में रहता है। उसपर अनेक कारणों का असर होता है, इसलिए प्रारब्ध सच्चे जैसा हो जाता है। उसमें दृष्टा नं १ (प्रमाता) बद्ध हो जाता है। लेकिन दृष्टा नं २ (साक्षी) का ज्ञान अलग प्रकार का है। वह सब में एक होने से सरलता से ऐक्य कर सकता है। और उसके सामने कुछ रहता नहीं है इसलिए उसके लिए मुक्ति सरल है। एक पेड़ पर के दो पक्षी की नाईं एक शरीर में प्रमाता और साक्षी

दोनों रहते हैं। इसलिए जीव को जो दशा पसंद हो उसे वह ले सकता है। ऐसी अद्भुत और श्रेष्ठ रचना करने के लिए भगवान का उपकार मानना चाहिये । जो लोग ऐसा मानते हैं कि, भगवान ने इस जगत में दुःख, अज्ञान, लड़ाई और दंगे क्यों बनाये ? वह मनुष्य खुद को ठीक से देख नहीं सकता, अपने को पहचान नहीं सकता, और उससे जगत को भी पहचान नहीं सकता । जिस मनुष्य में अनेक इच्छायें हैं वह कर्म के आधीन रहेगा । कर्म अथवा प्रारब्ध को जीतना हो तो इच्छाओं को जीतना चाहिए । उसके लिए पुरुषार्थ करना मनुष्य जीवन का मुख्य कर्तव्य है। इच्छाओं को छूट न दी जाय तो उनकी कुछ सत्ता नहीं है। एक मनुष्य के पास धन, परिवार, कीर्ति आदि है और वह अपने को सुखी और भाग्यशाली मानता है, लेकिन जबतक मृत्यु का डर है तबतक भाग्यशाली किस बात का ?

और जिस समय समाज में बहुत अस्थिरता हो तब मनुष्य सुख और शांति तुरंत मिले ऐसे साधन चाहता है। ऐसे साधन सिर्फ इन्द्रियों के विषय हैं। इसलिए ऐसे समय में मनुष्यों को विषयों के सुख बहुत अच्छे लगते हैं। जब बाहर लड़ाई न हो और शांति का समय अधिक चलता हो तब मनुष्य ऊँचे विचार के लिए समय निकाल सकते है और सच्चे सुख की खोज करते हैं। आज का नया सायन्स कहता है कि हमको जो जगत दिखता है वह सच्चा नहीं है। लेकिन दूसरी ओर मनुष्यों की चिंता इतनी बढ़ गयी है कि ऐसी बातों को समझने जितना धैर्य और समय नहीं रहे।

जहाँ देशकाल के बंधन उत्पन्न होते हैं वहाँ स्वतंत्रता नहीं रहती । इसलिए देर सबेर सब देशों का एक राज्य होना संभव है । और उसके बाद बाहर के व्यवहार में अधिक शांति आयेगी ऐसी संभावना है । उस समय एक देश दूसरे देश से स्पर्धा का व्यवहार नहीं करेगा, अपितु सहयोग का व्यवहार करेगा । पहले इतिहास में जैसी घटनायें घटी हो वैसी ही फिर से दोबारा घटे ऐसा कोई नियम नहीं है।

हमारे बीते जीवन की घटनाओं को याद करें और भूतकाल के सुख पाने के साधन फिर से माँगेंगे तो प्रारब्ध के विचार आया करेंगे, लेकिन वर्तमानकाल में जो घटना आँखों के सामने घटती है उसमें समता रखकर पुरुषार्थ कर सकें तो प्रारब्ध का कोई अर्थ नहीं है, अतः भूतकाल को भूलकर वर्तमानकाल में सच्चे ज्ञान का उपयोग करना अधिक जरूरी है।

किसी कमरे में बिजली की बत्ती का प्रकाश हो और वहाँ एक टेबल पड़ा हो उस पर हमने चश्मे एक तरह से रखे हो तो ऐसे आकार

|______| वाली परछाई पड़ेगी फिर दूसरी बार चश्मे अलग तरह से रखे तो उसकी छाया

o-----o ऐसे पड़ेगी। अब चींटी जैसे कोई जीव उस टेबल पर घूमते हो यानी दो परिमाण वाला (two dimensional) उनका जीवन हो तो प्रथम परछाई को दूसरी परछाई का कारण मानेगें लेकिन मनुष्य तीन परिमाण वाले (three dimensional) जगत में रहते होने से उनको पता चलता है, कि ये दोनों परछाईयाँ सिर्फ एक ही वस्तु के अलग अलग दिखावे हैं। ऐसे ही मनुष्य के तीन परिमाण वाले जगत में जो घटनायें घटती है वे भी एक ही ब्रह्म के अलग अलग दिखावे हैं। अर्थात् जगत ब्रह्म का विवर्त है। अगले प्रकरण में बताया कि इलेक्ट्रोन भी कभी कभी कण (particle) के रूप में दिखते हैं और वही इलेक्ट्रोन दूसरी दृष्टि से देखनेपर प्रकाश की तरंगों (wave) के रूप में भी दिखते हैं। अतः जगत कोई सच्ची वस्तु नहीं है, अपितु हमारे अज्ञान से हम ब्रह्म में से जगत बना लेते हैं। (Collapse of wave function takes place when it is observed.) और फिर उस रचना में ऐसी आसक्ति होती है कि जिस प्रमाण से जो बना हुआ होता है उस प्रमाण पर ध्यान नहीं रहता। जब सिर्फ प्रमेय पर ध्यान रहता है तब प्रारब्ध जैसा मालूम पड़ता है। जहाँ गति अथवा क्रिया उत्पन्न होती है वहाँ नये देशकाल मालूम पड़ने लगते हैं। और मनुष्य को नये विचार आने लगते हैं। जैसे कि ताश के खेल में और क्रिकेट के खेल में हर एक क्षण नयी घटना बनती है। उसमें निश्चित भविष्य नहीं है और निश्चित प्रारब्ध नहीं है। उसमें हर एक क्षण प्रत्येक खिलाड़ी का मन काम करता है। और उससे हर एक क्षण में नया जगत और नयी परिस्थिति उत्पन्न होती है। जगत का अर्थ है गतिवाली घटना। अतः हमारा ज्ञान हमारा भविष्य बनाता है। उस ज्ञान को वृत्तिज्ञान कहते हैं। वृत्तिज्ञान में हर एक समय अलग देशकाल होते हैं, अतः प्रारब्ध सच्चा नहीं रह सकता। क्रिकेट के खेल में खिलाड़ी का ज्ञान देखनेवाले को आनंद देता है। दो घटना में अलग काल हो तो कार्यकारण का संबंध सच्चा नहीं रह सकता। कारण में से कार्य बनने में कुछ क्षणान्तर होना चाहिये और क्षणान्तर वाले काल का क्रम सापेक्ष होने से काल समान नहीं है। इसलिये कारण के विचार और कार्य के विचार का मेल नहीं रहता। अच्छा खेलनेवाला किसी नियम से बँधा हुआ नहीं रहता। वह हर एक समय हर एक घटना में अपने ज्ञान का उपयोग करता है। फिर भी जहाँ समसत्ता हो वहाँ साधक बाधक हो सकता है। स्वप्न में घर बनाना हो तो स्वप्न का राजगीर चाहिए और स्वप्न की इंटें

चाहिये, और स्वप्न का चूना चाहिये। जगने के बाद ऐसा लगा कि राजगीर ने घर नहीं बनाया था लेकिन राजगीर, ईंट, चूना आदि सब स्वप्न का प्रमाता स्वयं था।

ऐसे ही किसी कुँआरे मनुष्य ने स्वप्न में विवाह किया। उसके बच्चे हुए और बच्चे के बच्चे हुए। उस समय ऐसा लगा कि बाद वाले बच्चों (पौत्रों) का कारण पहले के बच्चे (पुत्र) थे, लेकिन जगने के बाद लगा कि सब का कारण स्वयं था। ऐसी घटना यह बताती है कि समानसत्ता में साधक बाधक भाव रह सकता है। जाग्रत की वस्तु स्वप्न में काम नहीं आती और स्वप्न की वस्तुयें जाग्रत में काम नहीं आती। ऐसे ही ब्रह्मदशा में मनुष्य का जगत रहेगा नहीं। किसीको रस्सी में पहले सर्प दिखे, फिर माला दिखे, फिर दंड दिखे और फिर पानी की धारा दिखे, तो मूल वस्तु उस स्वभाव वाली नहीं है। अज्ञानी मनुष्य के ज्ञान का क्रम कोई वस्तु का क्रम नहीं है। व्यवहार दृष्टि से एक घटना के अनेक कारण मालूम पड़ते हैं। परमार्थ दृष्टि से सब घटनाओं का एक कारण है और वह आत्मा का अज्ञान है। जैसा स्वप्न में है वैसा जाग्रत में है।

जाग्रत के व्यवहार में कार्य-कारणता दो प्रकार की हो जाती है। एक वास्तविक कार्य- कारणता जैसे कि गाय में से बछड़ी का जन्म होता है और दूसरी बुद्धिनिष्ठ कार्य-कारणता जैसे रस्सी में सर्प की भ्रांति। जहाँ वास्तविक कार्य-कारणता हो वहाँ यदि कारण न हो पर कारण के स्वरूप का ज्ञान ठीक हो तो कार्य का ज्ञान भी ठीक से होगा। अथवा कार्य के स्वरूप में संदेह हो और कारण के स्वरूप का ज्ञान हो तो कार्य के स्वरूप का ऐसा ज्ञान होता है कि जो कारण का स्वरूप है वह कार्य का स्वरूप है।

जहाँ बुद्धिनिष्ठ कार्य-कारणता है वहाँ कारण के अज्ञान से कार्य रहता है। और कारण के ज्ञान से कार्य की निवृत्ति होती है। दूसरी विलक्षणता यह है कि वास्तविक कार्य-कारणता में कार्य की उत्पत्ति के बाद कारण को रहने की आवश्यकता नहीं रहती, जैसे कि बछड़ी होने के बाद गाय मर जाय तो भी बछड़ी को मर जाने की जरुरत नहीं है। लेकिन जहाँ बुद्धिनिष्ठ कार्य-कारणता है, वहाँ कार्य होने के बाद कारण का रहना जरुरी है, जैसे सर्प का ज्ञान रज्जु के होने से ही होता है। अन्य ढंग से नहीं होगा।

अब विचार करना चाहिए, कि जाग्रत और स्वप्न की वास्तविक कार्य कारणता है कि नहीं। जिसको हम जाग्रत कहते हैं उससे जाग्रत बुद्धिवाला स्वप्न उत्पन्न होता है। स्वप्न में वह झूठा है यह मालूम नहीं पड़ता। स्वप्न में जाग्रत बुद्धि जैसा हो जाता है और स्वप्न बुद्धि अज्ञात रहती है। जाग्रत में तो संदेह भी रहता है, कि यह स्वप्न जैसा

है कि नहीं। लेकिन स्वप्न में जो जाग्रत दिखता है उसमें वैसा संदेह होता नहीं है। और सजातीय कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है। इसलिए कार्य- स्वप्न का कारण जाग्रत भी स्वप्न ही है। जैसे स्वप्न में सिर्फ जाग्रत बुद्धि ज्ञात थी, स्वप्न अज्ञात था, लेकिन बाद में स्वप्न प्रमाणित हुआ उसी तरह पूरे जाग्रत में सिर्फ जाग्रत बुद्धि ज्ञात होती है और स्वप्नबुद्धि अज्ञात होने से ये सिद्ध हुआ, कि जो यह जाग्रत है वह भी वास्तवमें स्वप्न है।

जो घटना भ्रांति वाली हो उसमें ज्ञातसत्ता और अज्ञातसत्ता दोनों रहती हैं, जैसे स्वप्न स्वप्न के समय अज्ञात है और जाग्रत के समय ज्ञात है। वैसे ही जाग्रत भ्रांति रूप होने से अज्ञानकाल में सच्चा लगता है, ज्ञानकाल में उस सत्ता का बाध होता है। शास्त्र और आप्तवाक्य से जाग्रत की स्वप्नरूपता का पता चलता है। उसमें फिर आज का सायन्स अनुभव से और युक्ति से यह बात सिद्ध कर देता है। जैसे एक स्वप्न में से दूसरा स्वप्न चला आता है वैसे भ्रांतिरूप परंपरा चलती रहती है।

स्वप्नदृष्टा स्वप्नकाल में जाग्रत मानता है उसमें अप्रसिद्ध अध्यास हेतु है। स्वप्न से अतिरिक्त दूसरा कोई जाग्रत उस समय मालूम नहीं पड़ता। सिर्फ एक स्वप्न में से दूसरे स्वप्न में जानेपर नए नए जाग्रत के जैसा अध्यास होता है। उस समय भ्रांति से ऐसा प्रतीत होता है, कि पहले मैंने जाग्रत में यही देखा था। लेकिन यह सच्ची बात नहीं है। यह तो दूसरी समजातीय (स्वप्न की) प्रतीति है। जब जब अंधकार में रज्जु में सर्प का अध्यास होता है तब पहले से सर्प यहाँ पड़ा है ऐसी भ्रांति होती है। यह नया अध्यास है। उसीतरह जो जिस जिस जाग्रत का भान होता है वह उस एक स्वप्न से दूसरे स्वप्न में जाने जैसा नया नया अध्यास है।

और प्रत्यक्ष स्वप्न काल में जब जाग्रत बुद्धि उत्पन्न होती है तब स्वप्नदृष्टा जिस समय जो प्रपंच देखता है उस समय वास्तवमें वह दृष्टा (प्रमाता) स्वयं उस प्रपंच का सृष्टा है और उस प्रपंच का ज्ञाता है। लेकिन स्वयं अपने को सृष्टा नहीं मानता लेकिन ईश्वर को उस प्रपंच का सृष्टा मानता है। और अपने को उस अध्यस्त जाग्रत का अभिमानी मानता है और अपने को उस अध्यस्त जाग्रत का मानता है। यह अन्यथा ग्रहण है। ऐसा बादमें सब के अनुभव में आता है, क्योंकि दूसरी अवस्था आने के बाद प्रथम अवस्था स्वप्न जैसी लगती है। वैसे ही जगतरूप जाग्रत भी अज्ञान और उसके कार्यरूप अन्यथा ग्रहणरूप भ्रांति काल में सत्य हो वैसा मालूम पड़ता है। और ज्ञानरूप नया जाग्रत उत्पन्न होता है तब जाग्रत भी स्वप्न के समान लगता है।

जैसे स्वप्न में उस समय का जाग्रत ज्ञात था और स्वप्न अज्ञात था वैसे ही अधिष्ठान ब्रह्म में कल्पित अज्ञान तत्कार्यरूप स्वप्न में, जगतरूप जाग्रत ज्ञात है और ब्रह्मभाव अज्ञात है। जब गुरु और शास्त्र के द्वारा ब्रह्म से अभिन्न साक्षी भावापत्तिरूप वास्तव जाग्रत हो तब जगत जाग्रत सहित अज्ञान निद्रा नहीं रहती, इसलिए जगत की ओर से सुषुप्ति और ब्रह्म अभिन्न साक्षी भाव में जाग्रत ही परम पुरुषार्थ है।

भूल का कारण यह है, कि सब सत्ता आत्मा की होनेपर भी आत्मा ग्रहण नहीं होता। आत्मा की अग्राहयतारूप अज्ञानता अधिक रहती है उस कारण से आत्मा ही अन्यथारूप से जीव, जगत आदि रूप से यानी इदंतारूप से अध्यस्त होकर रहा हुआ है। आत्मा अग्रहणरूप है। अग्रहण का झूठा ग्रहण करने को अन्यथा ग्रहण कहते हैं। स्वप्न में जैसा बनता है वैसा जाग्रत में भी बनता है। नये सायन्स वाले कहते हैं, कि इलेक्ट्रोन का ग्रहण नहीं हो सकता। उसका ग्रहण करने जाते हैं तब या तो उसकी स्थिति मिलती है तो गति नहीं मिलती और गति मिले तो स्थिति नहीं मिलती, उसका कारण यह है कि देखनेवाले की माया (प्रमाण) उस दृष्टि में मिल जाती है। इसलिये जगत जैसा है वैसा नहीं दिखता और जैसा नहीं है वैसा दिखता है। अतः वास्तवमें वहाँ दृष्टा का ही दूसरा (अध्यस्त) रूप दिखता है। ऐसी आश्चर्यकारक खोज हमारे शास्त्रों के सिद्धांत को खूब मददरूप बनती है। इसलिये ऐसा दृढ़ निश्चय रखना चाहिये कि मैं सदा अद्वितीय ब्रह्म नित्य मुक्त हूँ। इदंता कभी भी नहीं हुई। जो इदंता दिखती है उसे सत्य दृष्टि से देखे तो वह कोई सच्ची वस्तु नहीं है! अतः ब्रह्मदृष्टि से देखे तो वह अज्ञान और अन्यथा ज्ञान कदापि नहीं है। केवल खुद स्वयंप्रकाश पूर्ण आत्मा है।

कार्यकारण का भाव एक प्रकार की दृष्टि का विकार है। यदि कोई ऐसा जगत हो कि जिसको कोई देखनेवाला कुछ असर न कर सके, तो कारण का विचार सच्चा हो सके, लेकिन ऐसा जगत भगवान का रचा हुआ नहीं है। आज के सायन्स वाले तो कहते हैं, कि हर एक देखनेवाला खुद के देखे हुए जगत को प्रत्येक समय असर (प्रभावित) करता है। इसलिए हर एक को अपनी कल्पना का जगत मिलता है और इसीलिए स्वयं अपने आप से ही मिलता है, जगत से नहीं मिलता। जगत के विषय में कुछ कहने जाते है तब कहनेवाला कैसा है यह मालूम हो जाता है, जगत कैसा है यह नहीं मालूम पड़ता।

कोर्ट में जब किसी खूनी पर खून का आरोप हो और उसका केस चलता है, तब बचाव पक्षवाला वकील सिर्फ इतना सिद्ध करता है, कि आरोपी उस समय दूसरे

स्थानपर था। इतने प्रमाण से आरोपी छूट जाता है। ऐसे ही साक्षी स्वयं हमेशां अपनी सिद्ध दशा में अथवा ब्रह्मदशा में है। स्वप्न में उसको सजा हो तो भी वह वास्तव में नहीं भोगता और जाग्रत में भी उसकी वास्तविक दशा भिन्न है। इतना भान ठीक से हो तो प्रमाता का बाध होता है और साक्षी ब्रह्मरूप होता है।

जेल का कैदी और जेल का पुलिस दोनों जेल में रहते हैं। फिर भी कैदी मानता है कि मैं बद्ध हूँ। कैदी को मुफ़्त में खाना मिलता है और आराम से सोने को मिलता है। पुलिस को नौकरी करे तब खाना मिलता है और रात्रि में जगना पड़ता है। कैदी दो साल में छूट जाता है और पुलिस को ३० वर्ष की नौकरी करने के बाद पेन्शन मिलता है। फिर भी वह पुलिस अपने को बड़ा मानता है, क्योंकि कैदी की अपेक्षा उसकी भावना में अंतर है। किसी राजा ने दिन में आठ घण्टे राज्य किया और रात्रिमें स्वप्न में आठ घण्टे मजदूर बनकर मजदूरी की। किसी मजदूर ने दिन में आठ घण्टे मजदूरी की और रात्रिको स्वप्न में सचमुच में राज्य किया तो दोनों में राजा कौन ? और मजदूर कौन ?

एक स्थानपर एक फ़क़ीर रात्रि को रास्तेपर जैसा तैसा ओढ़कर पड़ा था। सुबह में उठा तब वहाँ से उस गाँव का राजा पसार हुआ। राजा ने फ़क़ीर से पूछा, "क्यों ! रात कैसे बीती ?" फकीर ने उत्तर दिया, कि नींद आने के बाद तू और मैं बराबर थे। सुबह होने पर तेरे सिर पर सारे गाँव की चिंता लगी है। और मुझे किसी की चिंता नहीं है इतना फर्क तेरे और मेरे बीच में है।

अतः मनुष्य के जीवन में अज्ञान की निवृत्ति करना यही एक मुख्य कार्य करने का है। और अज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है कि उसकी जाँच करने जाओगे तो वह चला जायेगा। जहाँ सच्चा प्रमाण नहीं है वहाँ अज्ञान खड़ा रहता है। और जहाँ सच्चा प्रमाण आया वहाँ अज्ञान रहेगा नहीं, लेकिन प्रमाण का विचार हमारे जीवन में बहुत कम है। यूरोप और अमेरिका के विद्वान और वैज्ञानिक भी कहते हैं कि, हमने २००० साल तक प्रमाण (measure) की खोज नहीं की इसलिये गलती में रहे। यह गलती ईस. १९०५ में प्रो. आइंस्टाइन ने बताई और संपूर्ण विश्व को नई दृष्टि दी। ज्योर्ज बर्नाड शो नामक प्रसिद्ध लेखक कहता है कि 'आइंस्टाइन ने नया जगत रचा है।' वास्तवमें देखा जाय तो उसने हमारे जगत को समझने के लिये नयी दृष्टि दी है।

माण्डूक्यउपनिषद की कारिका में बताया है कि (४-१३) जिसके मत में अजन्मा वस्तु से किसी कार्य की उत्पत्ति हो उसको ऐसा कोई दृष्टांत नहीं मिलता और जन्मे

हुए कारण में से कार्य हो तो कारण का कारण खोजने में अनवस्था दोष उत्पन्न होगा। और जिसके मत में हेतु का कारण फल है और फल का कारण हेतु है उसके मत में वे दोनों अनादि कैसे रह सकेंगे ? जिसके मत में हेतु का कारण फल है और फल का कारण हेतु है उसके मत में मानो पुत्र से पिता की उत्पत्ति होती हो वैसा लगता है। यहाँ हेतु का अर्थ धर्म-अधर्म और फल का अर्थ देहादि समझना चाहिए। देह से धर्म-अधर्म होते हैं और धर्म अधर्म से फिर देह आये तो जो हेतु फल से उत्पन्न हो वह हेतु ही नहीं रह सकेगा और जो हेतु असिद्ध है वह फल को कैसे उत्पन्न करेगा ? अतः उन दोनों में प्रथम कौन है यह निश्चित करने में मनुष्य की बुद्धि चल नहीं सकती। इसी कारण से अजातवाद सिद्ध हो सकता है। अर्थात् वास्तवमें कुछ उत्पन्न हुआ नहीं है। अनादि काल से कोई हेतु उत्पन्न नहीं होता और अनादि हेतु से किसी फल की उत्पत्ति भी नहीं बनती। चित्त किसी भिन्न पदार्थ को स्पर्श नहीं करता, तो फिर पदार्थ के आभास को तो कैसे स्पर्श करेगा ? जिस वस्तु का जो स्वभाव हो वह अन्यथा नहीं होता। आत्मा को जन्म नहीं है और अन्य वस्तु को सत्ता नहीं है। जो पहले नहीं है, बादमें नहीं है वह मध्य में भी नहीं है। ऐसा अनात्मा का स्वरूप स्वप्न जैसा है।

नये सायन्स वालों ने भी जगत को स्वप्न जैसा बना दिया है। यानी जगत किसी देशकाल में नहीं रहता। अतः जगत का कारण अज्ञान के सिवाय दूसरा कुछ नहीं मिल सकता। नये सायन्स की खोज के बाद अब पूरा जीवन फिर से विचारने योग्य वहाँ के वैज्ञानिकों को लगता है। एडिंगटन कहता है कि 'हमने जो जाना वह कैसे जाना उसे पुनः जानने की जरुरत है, क्योंकि एक ही घटना को अनेक नाप से(यानी अनेक प्रकार के ज्ञान से) नाप सकते है। दो घटनाओं के बीच जो काल का अंतर मालूम पड़ता है उसको, यदि दो घटना नजदीक हो तो कुछ अंश में जान सकते हैं। लेकिन दो घटनाओं के बीच में काल का अंतर अधिक हो तो एक घटना से दूसरी घटना पर, दृष्टा किस रास्ते से जाता है उस रास्ते पर पूरा आधार है। इसी कारण से मनुष्य को अपने पूर्व जन्म की हकीकत याद नहीं आती और छोटी उम्र की अनेक बातें बड़ी उम्र में भूल जाते हैं। अथवा कई बातें अभी सुनी हो, उनमें से जिन बातों में रूचि हो वे घटनायें निकट में घटी हो वैसा मालूम पड़ता है, इसलिए वही याद रहती हैं। लेकिन उसमें दृष्टा ठीक से न जुड़े तो वे बातें याद नहीं रहती। बरट्रान्ड रसेल कहते है, कि हम जितनी घटनायें इकट्ठी करें उतना हमारा जगत बनता है। लेकिन यदि दो घटनाओं में अलग टाईम-ऑर्डर हो तो कार्य-कारण भाव नहीं बनता। जीव अपने

अहंकार से एक प्रकार का टाईम-ऑर्डर बना लेता है। जैसे स्वप्न में ऐसा करता है वैसे जाग्रत में भी ऐसा करता है। फिर भी स्वप्न के कर्म के लिये स्वयं जिम्मेदारी नहीं लेता, वैसे ही जाग्रत में किये हुए कर्मों की जिम्मेदारी स्वप्न में नहीं लेता। जाग्रत में किसी स्त्री को बहुत चोट लगी हो और उसका पति उस कमरे में नींद में हो अथवा स्वप्न में हो तो उसको मदद करने नहीं आता। स्वप्न का प्रमाता जाग्रत में नहीं आता और जाग्रत का प्रमाता स्वप्न में नहीं जाता। हर एक अवस्था के अनुसार प्रमाता बनता है। वह उस दशा के प्रमाण के साथ रहता है। जाग्रत में भी जो दो घटनायें एक मनुष्य को एकसाथ बनती हुई दिखती हैं वे दूसरे देखनेवाले को क्रम से बनती दिखती हैं। ऐसे कुछ दृष्टांत पिछले प्रकरण में दिए हुए हैं।

हमारे जन्म से पहले जगत था यह बात सच्ची नहीं है। स्वप्न का पर्वत बहुत समय से पड़ा था और हमने अब देखा यह बात सच्ची नहीं है। जाग्रत का पर्वत भी हमारे पहले नहीं था, क्योंकि आत्मरूप से हम जगत के पहले से हैं। इसलिये हर एक नाप अथवा प्रमाण एक घटना है, वह उसके संयोगों के अनुसार रहता है। उसमें अमुक प्रमेय अथवा अमुक प्रमाता साथ में होते हैं। लेकिन उससे वह घटना सच्ची नहीं हो जाती। अतः जगत को सुधारने की जरुरत नहीं है, अपितु जगत के साथ का अपना संबंध सुधारने की जरुरत है। उसके लिये पहले अपने अहंकार को, मन को और बुद्धि को शांत करने की जरुरत है। इसीलिए भगवान गीता के बारहवें अध्याय में अर्जुन को कहते हैं : 'तेरा मन और तेरी बुद्धि मुझे दे दे।' परंतु यह सरल कार्य नहीं है। जब तक जगत सच्चा लगता है तबतक मन और बुद्धि उसमें दौड़ेंगे, और मन है तब तक जगत भी है। अतः उत्क्रांति, इतिहास, भूगोल, खगोलविद्या -इन सब के ज्ञान भुलावे में डालते हैं। न्यूसपेपर का ज्ञान भी मनुष्य को अपने आत्मा की खोज करने में मदद नहीं करता, अपितु भुलावे में डालता है। समाज के नियमों के पालन से भी जीवन पूर्ण नहीं होता। जो लोग संसार के सुख और सुविधा बढ़ाने के प्रयास करते हैं वे मनुष्य को आत्मा का अनुभव कैसे हो उसका मार्ग नहीं बता सकते। आत्मा स्वयं प्रकट है, अपना स्वरूप प्रकाशित करे ऐसा है। जो दीपक अन्य वस्तु को प्रकाशित करता है वह स्वयं को भी प्रकाशित कर सकता है। ऐसे ही जो आत्मा अन्य को दिखा सकता है वह अपने आपको भी दिखा सकता है। फिर भी उसका अनुभव न हो तब तक कुछ आवरण है, उसको कोई अज्ञान कहता है। कोई अध्यास, माया अथवा मिथ्याज्ञान कहते हैं। वह जीव को अनर्थ में ले जाता है। अतः मनुष्य के जीवन में यदि कोई

सच्चा काम करने की जरुरत हो तो वह है अज्ञान को दूर करना । और उसमें आत्मज्ञानी पुरुषों के सिवाय अन्य कोई सहायता नहीं कर सकते।

जगत का बारबार प्रतीत होना यही जगत का कारण है, और कार्य का स्वभाव ऐसा है, कि अपने उपादान को छुपाना । बिच्छु, पेड़ आदि कार्य अपने गोबर, मिट्टी आदि उपादान कारण के स्वभाव को तिरोधान करते हैं। बिच्छु के शरीर में गोबर नहीं दिखता और पेड़ में मिट्टी नहीं दिखती। सिद्धांत में ऐसा समझना कि अंतःकरण रूप अविद्या के कार्य का विषयाकार में परिणाम होनेपर अपने उपादानभूत अविद्या का आवरण करनेवाले स्वभाव का विनाश कर देता है। इससे वस्तु का प्रकाश हो जाता है और तद् विषयावच्छिन्न चैतन्य में अविद्या का स्वरूप नहीं दिखता। यदि उस अविद्या का स्वरूप दिखे तो विषय का प्रकाश ही नहीं हो सकता, अतः कर्म की गति (इवेंट की गति) गहन है।

प्रथम विश्वयुद्ध में मनुष्य इसलिये लड़े थे कि भविष्य की प्रजा (यानी उनके पुत्र और पौत्र) सुखी हो लेकिन उनके पुत्र बड़े हुए कि तुरंत दूसरा विश्वयुद्ध शुरू हो गया और प्रजा सुखी नहीं हुई। दूसरे विश्वयुध्द के समय भी ऐसी भावना रहती थी कि युद्ध पूरा होने के बाद कुछ वर्षों में शांति आ जायेगी और भविष्य में प्रजा अधिक सुखी होगी। वह युद्ध पूरा होने पर भी भूतकाल की प्रजा से भी अभी की प्रजा अधिक सुखी नहीं हुई और नये प्रकार की मुश्किलें उत्पन्न हुई है।

हमारे देश में दादाभाई, गोखले, सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी आदि कोंग्रेस के शुरूआती नेताओं ने राजकीय आंदोलन इसलिए चलाये थे कि भविष्य की प्रजा (आज की प्रजा) सुखी हो, लेकिन उनके समय में जितनी शांति थी उतनी आज नहीं दिखती। खुराक के विषय में सिंध के गेहूँ और बर्मा के चावल स्वतंत्रता से नहीं मिलते। निराश्रितों का पालन पोषण करना पड़ता है। और आबादी बढ़ती जाती है। रहने के लिए मनुष्यों को पर्याप्त घर नहीं मिलते। रेलवे में भीड़ बढ़ती जा रही है और शिक्षा के लिये हाईस्कूल और कॉलेज भी पूरी नहीं पड़ती।

कल्पना भी नहीं होगी !

ऐसे स्वराज की कल्पना दादाभाई, गोखले आदि को नहीं होगी । पंडित जवाहरलाल आदि भी बहुत परिश्रम करके राज्य और समाज को ठीक करने का प्रयास कर रहे हैं, फिर भी भविष्य की प्रजा सुखी होगी कि नहीं ऐसा कौन कह सकता है ? वर्तमानकाल में भी सरकार इतने सारे कानून बना रही है, कि लोग वह याद नहीं

रख सकते, फिर भी प्रारब्धपर आधार नहीं रखना चाहिए, अकेला प्रारब्ध सच्चा हो तो चिकित्सा शास्त्र और धर्मशास्त्र व्यर्थ हो जाय। फिर भी समाज में एक घटना पर अनेक कारणों का असर रहता है। इसलिए अपेक्षित फल नहीं मिलता।

चीन में हमें कोई गाड़ी किराये से लेकर स्टेशन जाना हो, स्टेशन का रास्ता १० मिनट का हो और ट्रेन छूटने में २० मिनट की देर हो और हम गाड़ी वाले से पूछे कि समयपर स्टेशन पहुँच पायेंगे कि नहीं, तो वह ऐसा उत्तर देगा कि शायद पहुँच पायेंगे। चीन में निश्चित उत्तर नहीं मिलता, क्योंकि एक घटना पर अनेक कारणों का असर रहता है। कर्म की गति गहन है ऐसा गीता में भी कहा है।

कर्म की गति गहन है

कर्म के साथ कर्ता और करण (साधन) भी रहते हैं। सामाजिक और राजकीय कर्म में अनेक कर्ता एक साथ मिलते हैं। कर्ता में भी एक देश के मनुष्यों के संस्कार और दूसरे देश के मनुष्यों के संस्कारों में बहुत फर्क होता है। पचास साल पहले के मनुष्यों के और आज के मनुष्यों के संस्कार भी अलग प्रकार के होते हैं, फिर भी कुछ सामान्य गुणों के अनुसार भविष्य का अनुमान होता है। दृष्टांत के तौर पर इतिहास में ऐसा हुआ है कि हिन्द की पश्चिम दिशा से मुसलमानों ने बारबार हमले किये हैं और कश्मीर की शर्तें भी पाकिस्तान वाले नहीं पालते, इसलिए पश्चिम की सीमा की चिंता आज के प्रजासत्ताक राज्य को रहती है और फिर भी यदि लड़ाई हुई तो जैसी दशा निझाम की हुई वैसी दशा शायद पाकिस्तान की भी हो। कर्म की गति गहन है।

लड़ाई शुरू हो तब वर्तमानकाल की प्रजा सुखी नहीं होती। थोड़े व्यापारियों का व्यापार बढ़े अथवा मजदूरों को उस समय अधिक मजदूरी मिले, फिर भी लड़ाई से अनेकों का जीवन चिंता वाला हो जाता है। जीवन क्या है, मनुष्य के जीवन का उद्देश्य क्या है उसका विचार करने का समय रहता नहीं है और अच्छे जीवन से अच्छी मृत्यु का अधिक मूल्यांकन होता है। लेकिन उससे संस्कार सुधरते नहीं हैं। भविष्य की प्रजा के सुख के लिए लड़ाई होती हो तो भी जैसे भूतकाल के भविष्य की प्रजा (आज की प्रजा) भूतकाल की लड़ाई से अधिक सुखी नहीं हुई, ऐसे ही आज की दृष्टि से भविष्य की जो प्रजा होगी वह सुखी होगी कि नहीं यह नहीं कह सकते।

भविष्य का निश्चय

इतना तो सच है कि इन्द्रियों के सुख जितने अकबर बादशाह ने भोगे उससे ज्यादा आज के मजदूर भोग सकते हैं। बिजली की बत्ती, रेडियो, सिनेमा, न्यूसपेपर,

होटल, स्टीमर, मोटर, विमान आदि आदि सुविधाएँ बढ़ी है, फिर भी संस्कार अच्छे नहीं हुए। उसी तरह इन्द्रियों के भोग बढ़े और उसके लिए सुविधा बढ़े इससे भविष्य की प्रजा सुखी होगी ऐसा नहीं कह सकते।

अतः वर्तमान जीवन को ठीक करने की विद्या सीखनी चाहिए। लेकिन वर्तमान काल किसको कहना ? और वर्तमान काल कैसे उत्पन्न होता है उसका विचार करना चाहिये। ईस.१९४२ में पंडित जवाहरलाल जब अहमदनगर की जेल में थे तब कुछ समय तक उनको कोई न्यूसपेपर नहीं दिए गये थे। उस समय की उनकी दशा का वर्णन करते हुए वे अपनी पुस्तक में लिखते हैं -'हम उस समय भूतकाल में रहते थे, हमारी दृष्टि में वर्तमानकाल जैसा कुछ रहा नहीं था, क्योंकि दुनिया में क्या हो रहा है उसकी हमको खबर नहीं थी और सिर्फ हिंदुस्तान के भूतकाल के संस्कार याद करके हम जेल में जीवन बिताते थे। 'इससे मालूम पड़ता है कि वर्तमान काल न्यूसपेपर से अथवा रेडियो से उत्पन्न होता है ऐसा भासता है, लेकिन दूसरे दिन वह वापस भूतकाल हो जाता है और फिर से वर्तमानकाल बनाने के लिये नये समाचार की जरुरत पड़ती है।

काल का आधार

और भूतकाल भी सच्चा नहीं है। यदि वर्तमा नकाल की घटनाओं से बहुत मजा आये तो भूतकाल याद नहीं आता। इसलिये मनुष्य को अगले जन्म की बातें याद नहीं आती अथवा सब अब ही बनता हो ऐसा लगता है। जब शामळदास गांधी ने जूनागढ़ का राज्य लिया तब उसको जूनागढ़ राज्य का इतिहास इतना जोर से याद आया कि उन्होंने १७वीं साहित्य परिषद के समय यह कहा था कि ‘ये सब भूतकाल की घटनायें मानों कल ही घटी हो ऐसा लगता है। ' अतः काल का आधार मनुष्य पर है, मनुष्य का आधार काल पर नहीं है। मनुष्य जन्मता है तब उसको मालूम नहीं है कि खुद जन्मा है। छोटी उम्र की घटनायें भी बड़ी उम्र में अधिक याद नहीं रहती। इसलिये घटनाओं से और कर्म से काल उत्पन्न होता है। नींद में घटना नहीं है तो काल नहीं है।

महात्मा गांधीजी का देहांत हो गया, फिर भी पंडित जवाहरलाल जी ने स्विट्झर्लेंड में भाषण करते हुए कहा कि, ‘महात्मा गांधीजी मेरे गुरु हैं, वे गये नहीं हैं पर हमारे साथ रहकर अब भी प्रेरणा देते हैं। 'जिसका स्मरण अधिक रहता है उसका वियोग नहीं लगता। अथवा वियोग में संयोग जैसा लगता है। अतः कर्म की गति गहन है।

काल के अनुसार अथवा इतिहास के अनुसार कर्म चले आ रहे हैं, यह बात सच्ची नहीं है। लेकिन कर्म के अनुसार काल और इतिहास बनते हैं। स्वप्न में नए प्रकार के कर्म उत्पन्न होते हैं तो काल भी नया उत्पन्न होता है। यू.पी. में थोड़े समय पहले एक विद्यार्थी कॉलेज में पढ़ता था। उसमें इतिहास का विषय उसकी पढ़ाई में था, लेकिन वह इतिहास का ठीक से अभ्यास नहीं करता था। इससे उसके प्रोफ़ेसर ने उसको कहा कि 'तू इतिहास ठीक से क्यों नहीं पढ़ता ? ' उसने उत्तर दिया कि 'मैं नया इतिहास बनाने का प्रयास कर रहा हूँ। ' उसका कहने का तात्पर्य ये था कि 'मैं कोई महान राजद्वारी पुरुष होकर नया इतिहास बनाऊंगा। ' इससे मालूम पड़ता है कि इतिहास कोई सच्ची वस्तु नहीं है। भूगोल भी सच्ची वस्तु नहीं है। हिंदुस्तान का नक्शा गत दो साल में बहुत बदल गया है और आगे भी कितना बदल जायेगा यह कह नहीं सकते। पाठशाला के विद्यार्थी जो इतिहास और भूगोल पढ़ते हैं वे झूठा सीखते हैं। फिर भी जिस प्रकार से सीखते हैं उस प्रकार से परीक्षा में लिखे तो ही पास होते हैं। कर्म की गति गहन है।

वर्तमान, भूत या भविष्य जैसा नहीं है, लेकिन कर्म से ऐसा बन जाता है। कर्म की गति गहन है इसलिए कर्म करते समय कर्ता की ओर ध्यान देना चाहिये।

यदि कर्ता की दशा ठीक कर सकें अर्थात् जीव का ज्ञान ठीक कर सकें तो छोटे कार्य में दिव्य भाव मालूम पड़ेगा, और ज्ञान ठीक नहीं होगा तो बड़े कार्य का भी मूल्य नहीं रहता, इसलिए कर्ता और उसके कारण (ज्ञान) की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये। ज्ञान ठीक हो तो वर्तमान में भगवान का परिचय भी हो सकेगा, लेकिन भगवान कहाँ है ? भगवान कहते हैं कि मैं सब में हूँ। एक पत्थर लेकर भी उसको भगवान मानकर पूजा करे तो उसमें से भगवान मिल सकते है ऐसा अनेक भक्तों ने कहा है। एक जिज्ञासु तो कहते थे, कि अगर समझो भगवान नहीं भी हो तो भी मैं भगवान को बनाकर उनकी पूजा करूँगा। कर्म की गति गहन है।

लेकिन संसार का सुख चाहिए तो भगवान नहीं मिलेंगे। ऊंट पर बैठकर हुक्का नहीं गुड़गुड़ा सकते। भगवान संसार में हैं। लेकिन संसार का सुख भगवान का सुख नहीं है।

आत्मश्रद्धा

लेकिन भगवान ने ऐसी जंजाल बनाई क्यों ? उसका उत्तर यह है कि पिता की इच्छा पुत्र को ब्रह्मचारी रखने की है और पुत्र की इच्छा विवाह करने की है। तो ऐसी

स्थिति में पुत्र का विवाह करवाना चाहिये, अन्यथा वह दुराचारी हो जायेगा। ऐसे ही भगवान की इच्छा ऐसी है कि सब मनुष्य ब्रह्म में विचरण करके ब्रह्मरूप बने लेकिन मनुष्य की इच्छा है इन्द्रियों के भोग के सुख को पानेकी। तो ऐसी दशा में कर्म की सत्ता काम करेगी और भविष्य का अंत आयेगा नही। इसलिए वर्तमान जीवन ठीक करने का ज्ञान होना चाहिए। भगवान भविष्य में नहीं हैं। मूडीवादी, मजदूरीवाले, कम्युनिस्ट आदि और केंद्र सरकार भी प्रजा को भविष्य में अच्छा सुख बताते हैं और वे भविष्य का छोर नहीं दिखाते। अतः उनमें से किसी पर भी विश्वास करने योग्य नहीं है। उनकी अपेक्षा अपने आत्मा पर पूर्ण श्रद्धा हो तो कर्म बंधन से मुक्ति मिलती है।

महात्मा लोग कह गये हैं कि भगवान के राज्य में रहना हो तो मनुष्य के राज्य में से निकलना चाहिये। जहाँ दो स्वामी हो वहाँ सुख नहीं मिलेगा। हर एक मनुष्य आत्मभाव से राजा है। लेकिन सामाजिक जीवन बेढंगा हो तो मनुष्य को ग़ुलाम बना देता है। वह यदि दूसरे के गुणदोष में नहीं पड़ता तो समाज का असर भी उसपर नहीं पड़ता, लेकिन यह बात कठिन है। भूतकाल में कर्म करते समय दूसरे में वृत्ति गयी हुई होने से वह कर्म जब फल देने आता है तब वैसी ही वृत्ति फिर से उत्पन्न करता है। उस समय उदासीन भाव अथवा तटस्थ भाव रखना बहुत कठिन कार्य है। कर्म की गति गहन है। गीता में भगवान कहते हैं कि सब कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं। द्रव्यमय सब यज्ञों से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है।

ज्ञान अर्थात् अद्वैत भाव। ऐसा भाव जिनको प्राप्त हुआ हो उनके पास कुछ समय रहकर अभ्यास करना चाहिये और वह अभ्यास टिक सके इस तरह वैराग्य भी बढ़ाना चाहिये।

ॐ ॐ

१४ : योगवाशिष्ठ में काल का विचार

जगत की रचना ऐसी है, कि जहाँ अनेक तत्त्व एकसाथ मिलकर कार्य करते हैं, वहाँ नियम, कानून, कारण, हेतु आदि देखने में आते हैं। उसको नये सायन्स में सामाजिक कानून कहते हैं और सांख्य में उसको २५ तत्त्ववाली प्रकृति कहते हैं। क्वांटम थियरी में क्वांटा का अर्थ समूह अथवा जत्था होता है। गीता में भी कहा है कि प्रकृति में कार्य-कारण भाव रहता है। और पुरुष जब प्रकृति में रहकर प्रकृति के गुणों को भोगता है तब वह ऊँची नीची गति में बारबार जन्म मरण के चक्कर में घूमता रहता है। जीव में अनेक संकल्प हो वे भी क्वांटा जैसा काम करता है। इस माया को गुणदोष वाली माया कहते हैं। ऐसी माया में अनेक लोगों का जीवन शुरू होता है और उसी में पूरा होता है। यह व्यावहारिक सत्तावाला (एक जाग्रत अवस्था का) जगत है। लेकिन जगतमें दूसरी रचना ऐसी है, कि जो प्रकृति अनेक तत्त्वोंवाली सामान्य दृष्टि से दिखती है उसका प्रमाण कैसा है उसका विचार करें और उसको देखनेवाला कैसा है उसका विचार करें तो उसमें अनेक तत्त्व नहीं दिखते। लेकिन प्रकाश की तरंगें एक दूसरे के साथ ऐसे तो मिलजुल गई हैं कि जैसे बरसात के साथ बहुत पवन हो तो बरसात की बूँदें एक दूसरे से बिलकुल मिल जाती हैं। और वह सब मिलकर एक वस्तु हो वैसा दिखता है। अथवा जैसे नदियाँ समुद्र में जाकर समुद्ररूप बनती है। वैसे पूरा जगत अभिन्न समुद्र की तरंगों के रूपमें दिखता है। ऐसी दशामें जगतमें कोई निश्चित नियम देखने में नहीं आते, लेकिन जगत को देखनेवाला अपने को ठीक लगे ऐसे नियम मानकर उस दिव्य तेज में से अपना मनचाहा जगत, जब ठीक लगे तब उतना समय, मानकर स्वप्न की नाईं प्रातिभासिक सत्ता को व्यावहारिक बना सकता है। ऐसे नियम स्वप्न की नाईं जब तक देखनेवाला अपने दृश्य को स्थिर मानता है तब तक ही टिकते हैं। अबाधित जगत का लंबे समय का परिचय ही सत्यता की भ्रांति की दृढ़ता का कारण है। इसलिये ऐसे समय में देशकाल की माया का प्रश्न रहता है। माया कैसी है यह समझने के लिये नये सायन्स वाले (अगले प्रकरणों में बताये अनुसार) अनेक उपाय खोज सके हैं। और उसका गणित भी बना सके हैं। इस माया को गणित के बिना सरलता से समझने के लिये हमारे शास्त्रों में तीन अवस्थाओं का उपयोग किया हुआ है : जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। इन तीन अवस्थाओं का विचार करें तो देशकाल समझने में सुविधा होती है और ज्ञान एवम् अज्ञान का खेल कैसा है यह भी समझमें

आता है। उससे यह निश्चित हुआ है, कि जो जगत हम देखते हैं वह सिर्फ हमारे मिथ्याज्ञान का खेल है। नये सायन्स वाले भी कहते हैं कि तेज की तरंगें सच्ची तरंगें नहीं है, अपितु हमारे झूठे ज्ञान की तरंगें हैं। उसीको वेदांत में अविद्या का परिणाम कहते हैं। अतः जो हमारा ज्ञान होता है वह हमारा प्रमाण बन जाता है और वह ज्ञान हमारे प्रारब्ध अथवा कर्म का रूप लेता है। उस प्रारब्ध से छूटना हो तो हमारा ज्ञान बदलना चाहिये। स्वप्न के ज्ञान में रहकर स्वप्न की गलती नहीं जान सकते। इसलिए मनुष्य अपने ज्ञान में जो गलती है उसे निकालने के बदले भगवान ने ऐसा गड़बड़ी वाला जगत क्यों बनाया ऐसे भगवान पर अपने दोष का सारा आरोप लगाता है।

मनुष्य के ज्ञान में कैसी गलतियाँ चली आती हैं और हमारी देशकाल की भावना में कैसी गलतियाँ हैं यह विषय सापेक्षवाद से और क्वांटम थियरी से अब बहुत स्पष्ट हो गया है। हमारे शास्त्रों में देशकाल की और मिथ्या ज्ञान की गलतियाँ एवम् माया को बहुत स्पष्टता से बताने वाला कोई अच्छा ग्रन्थ हो तो वह है योगवासिष्ठ का ग्रन्थ।

ब्रह्मसूत्र के द्वितीय सूत्र में कहा है, कि **जन्माद्यस्ययतः** अर्थात् जगत की उत्पत्ति, स्थिति और लय ब्रह्म से होते हैं। वहाँ विद्वानों का ऐसा मानना है, कि ब्रह्म को जगत का स्वतंत्र कारण मानकर जो द्वैत उत्पन्न किया है उसे दूर करने के लिये सब ब्रह्म की सत्ता से है यह बताने का आशय है। यदि ब्रह्म को जगत के कारण के रूप में माना जाय तो भी द्वैत जैसा हो जाय। अगले प्रकरण में समझाया है उसके अनुसार जहाँ अनेक तत्त्व हो वहाँ कार्य कारण भाव लागू पड़ता है। यह बात सायन्स से और हमारे शास्त्रों से भी सिद्ध हो सकती है। लेकिन जहाँ एक अद्वितीय ब्रह्म की बात आये और उसके सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है ऐसी बात आये, वहाँ कार्य-कारण भाव भी कल्पित बन जाता है। ब्रह्मसूत्र में पंचम विभक्ति बारबार अनेक सूत्रों में आती है। यह बात दृष्टांत से समझने का प्रयास करें तो इसप्रकार समझ सकते हैं : लकड़े में से खिड़की निकली (यह पंचम विभक्ति का व्याकरण है) ऐसा कहा जाता है, फिर भी खिड़की के साथ लकड़ा होता है तो वास्तव में लकड़े में से खिड़की नहीं निकलती लेकिन लकड़ा दूसरे रूप में दिखता है। सोने में से अंगूठी निकली लेकिन अंगूठी ने सोना छोड़ नहीं दिया, इसलिए सोना ही अंगूठी के रूप में दिखता है। ऐसे ही ब्रह्म में से जगत निकला ऐसा कहने में आता है लेकिन ब्रह्म जगत के साथ होने से ब्रह्म ही जगत के रूप में दिखता है, फिर भी लोग जगत को देखते हैं और वह ब्रह्म है ऐसा नहीं मान सकते। कोई कहे कि मैंने अंगूठी देखी है पर सोना नहीं देखा, चाकू देखा है पर लोहा

नहीं देखा, खिड़की देखी है पर लकड़ा नहीं देखा ऐसे ही जगत देखा है लेकिन ब्रह्म नहीं देखा, यह एक प्रकार का अज्ञान है। अज्ञान की महिमा ऐसी है कि जैसे एक क्षण में स्वप्न में अनेक प्रकार का जगत दिखाता है वैसे जाग्रत में भी अनेक प्रकार का जगत दिखाता है और ज्ञान की महिमा ऐसी है कि एक क्षण में सब दिखावे को ब्रह्मरूप कर देता है।

अतः जो दिखता है वह हमारे ज्ञान की दशा है। वह जगत की दशा नहीं है। मनुष्य यदि अपने ज्ञान का ठीक से विचार करे तो यह बात स्पष्ट समझमें आ जाय। मनुष्य को स्वयं छोटी उम्र से जिस जिस प्रकार का ज्ञान हुआ वह कैसे हुआ उसका पूरा विचार करने की जरुरत है। उसके सिवाय प्रमाण की गलती पकड़ में नहीं आयेगी। आज के दिन जो ज्ञान संचित किया वह कल के व्यवहार का प्रमाण हो जाता है। अतः आज का ज्ञान सच्चा है कि नहीं उसकी ठीक तरह से जाँच करनी चाहिए।

पहले प्रमाण की भूल समझनी चाहिये। नाप गलत होगा तो अंगरखा (कुर्ता) अथवा जूता फिट नहीं होगा।

वैसे ही जहाँ प्रमाण झूठा हो वहाँ प्रमाता भी झूठा हो जाता है। ज्ञान दृढ़ नहीं होने के ४ कारण होते हैं १. विषय में आसक्ति २. प्रमाण में संशय ३. प्रमेयगत संशय और ४. भ्रांति। उनमें प्रथम दोष की निवृत्ति विवेक वैराग्य आदि से होती है। दूसरे दोष की निवृत्ति वेदांत के श्रवण से होती है। तीसरे की निवृत्ति मनन से होती है और चौथे की निवृत्ति निदिध्यासन से होती है। यदि प्रथम दोष निवृत्त नहीं होता तो दूसरा भी निवृत्त नही होता। अर्थात् वैराग्य नहीं होगा तो पाँच इन्द्रियों का प्रमाण सच्चा हो जाता है और ब्रह्माकार वृत्तिवाला प्रमाण सच्चा होगा कि नहीं उसमें शंका रहती है। प्रमाण में शंका होगी तो मनन ठीक से नहीं होगा और मनन ठीक से नहीं होगा तो निदिध्यासन भी ठीक से नहीं होगा।

योगवासिष्ठ का ग्रन्थ आदि कवि श्री वाल्मीकिजी का लिखा हुआ है। उसमें देशकाल की माया का जैसा स्पष्टीकरण कीया हुआ है वैसा अन्य किसी स्थान में नहीं मिलता। वेदांत संबधित ग्रंथों में योगवासिष्ठ ग्रंथ अत्यंत प्रमाणभूत माना जाता है। उसमें मुमुक्षुप्रकरण में ऐसा कहा गया है कि (मु.प.स.१८) यह ग्रन्थ सुनने में आये, विचारने में आये और समझने में आये तो मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति के लिए तप, ध्यान अथवा जप आदि की कोई अपेक्षा नहीं रहती। उसका कहने का महत्वपूर्ण विषय यह है, कि जो वस्तु संकल्प से सिद्ध है वह संकल्प से ही नष्ट हो सकती है। यह जगत

संकल्प की वृद्धि से वृद्धि पाता है और संकल्प की क्षीणता से क्षीण होता है।

जैसे हर एक प्राणी को दिखनेवाली स्वप्न की सृष्टि निमेषमात्र होनेपर भी लंबी लगती है, वैसे ब्रह्मा को दिखनेवाली यह समष्टि सृष्टि निमेषमात्र होनेपर भी लंबी लगती है। जैसे सोया हुआ मनुष्य अपने स्वप्न के शीघ्र विनाशीपने को कर्मों के प्रतिबंध के कारण शीघ्र विनाशी नहीं जानता, वैसे ब्रह्मादिक भी अपनी दृष्टि से बाधित हुए इस जगत रूप स्वप्न को कर्मों के प्रतिबंध के कारण शीघ्र विनाशी नहीं जानते। इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य देशकाल की माया समझाने का है। अतः उससे संबंधित कुछ निम्नलिखित दृष्टांत और सिद्धांत योगवासिष्ठ से लिये गये हैं। योगवासिष्ठ के तीसरे प्रकरण में श्री रामचन्द्रजी ने वसिष्ठजी से ऐसा प्रश्न किया है कि एक ही ब्रह्माण्ड में मनुष्य का एक साल देवताओं का एक दिन कैसे ? किसी क्षुद्र प्राणी का लंबा काल ब्रह्मा की एक क्षण कैसे ? काल एक होनेपर भी भिन्न भिन्न प्रतीति क्यों होती है ? (यो.वा.३-६०) उसके उत्तर में वसिष्ठजी कहते हैं, कि यदि अर्थ सत्ता के अनुसार प्रतीति होती हो तो तुम्हारे कहने के अनुसार काल का विरोध हो। लेकिन प्रतीति के अनुसार अर्थसत्ता (भासती) है और वह भी अनिर्वचनीय है। अतः जो जब, जिसप्रकार, जिस पदार्थ की भावना करता है तब वह उसप्रकार से उस पदार्थ का अनुभव करता है। तात्पर्य यह है कि दृष्टा की भूमिका के भेद से काल का भेद विरुद्ध नहीं है। अतः एक ही काल के संस्कार भेद से किसीको निमेष का ज्ञान और किसीको कल्प का ज्ञान होता है यह विरुद्ध नहीं है। यदि निमेष में कल्प की भावना होती है तो वही निमेष कल्प होती है और यदि कल्प में निमेष की भावना करें तो कल्प निमेष होता है, क्योंकि भावना का ऐसा स्वभाव है। रात्रि दुःखी को कल्प के समान लगती है और सुखी को क्षण जैसी लगती है। राजा हरिश्चंद्र को एक रात में बारह साल का अनुभव हुआ था और रावण ने एक रात में सौ साल का आयुष्य भोगा था। जैसे मन असत् मनोराज्य की कल्पना करने में समर्थ है वैसे क्षण को कल्प बनाने में भी समर्थ है। विक्रम संवत २०१६ में मरा हुआ हिन्दू इंग्लॅण्ड में तुरंत जन्मे तो १९६० की साल में जन्मेगा। इसप्रकार भूतकाल में जन्म हो सकता है, लेकिन उसका उसे पता नहीं चलता। और यदि वह मनुष्य पाकिस्तान में मुसलमान होकर जन्मे तो १३७८ की साल(हिजरी संवत) में अपना जन्म हुआ मानेगा।

दृष्टांत : १

ऐसी बातें स्पष्ट ढंग से समझने के लिये योगवासिष्ठ में कुछ दृष्टान्त मिलते हैं।

उनमें उपशम प्रकरण में ४४वें सर्ग से गाधि ब्राह्मण का एक आख्यान आरंभ होता है। उसमें कहा गया है, कि कोसलदेश में एक गाधि नामक ब्राह्मण रहता था। वह वेद विद्या में अत्यंत निपुण और बुद्धिमान था। उसको छोटी उम्र में वैराग्य होने से वह तप करने के लिए वन में गया। वहाँ एक निर्मल सरोवर के किनारे विष्णु के प्रत्यक्ष दर्शन न हो तब तक तपस्या करने का निश्चय करके बैठा। वहाँ तपस्या करते हुए उसको आठ महीने बीत गये। उसके बाद एक दिन तपस्या से शोकयुक्त हुए उस ब्राह्मण के पास भगवान विष्णु पधारे। उन्होंने उस ब्राह्मण से कहा, कि 'तुझे जो वरदान चाहिये वह मुझ से माँग ले।'

ब्राह्मण : मैं आपकी अपने स्वरूप में रची हुई और सब को मोहित करनेवाली माया देखना चाहता हूँ।

विष्णु : तू उस माया को देखेगा और फिर छोड़ देगा। ऐसा कहकर भगवान विष्णु अंतर्धान हो गये। वह ब्राह्मण उस वन में कुछ समय तक रहा। एक दिन तालाब के जल में स्नान करते हुए उसने डुबकी लगाई। उस समय ध्यान के मन्त्रों का विस्मरण हो गया और बुद्धि विपरीत हो जाने से उसने जल में अपना घर देखा। उस घरमें उसने अपनी वृद्धावस्था देखी और बाद में अपने शरीर को मरा हुआ देखा। कुछ समय के बाद उसके रिश्तेदारों ने उसके शरीर को स्मशान में ले जाकर जला दिया।

फिर जल में डुबकी लगाये हुए उस गाधि ब्राह्मण ने देखा कि मानों 'भूतमंडल' नामक किसी देश की सीमा के गाँव के पास एक चांडाल रहता था। उसकी स्त्री के गर्भ में अपने को देखा। समय आने पर वहाँ उसका जन्म हुआ। फिर वहाँ वह बड़ा हुआ और विवाह किया और उसको पुत्र हुए। कुछ समय के बाद परिवार के सब सदस्य मर गये। चांडाल के समय का उसका नाम कटंज था। वह फिर दुःखी होकर भटकने लगा। घूमते घूमते एक दिन किर नामक देश की राजधानी देखी। वहाँ उसके देखने में एक हाथी आया। उस राजधानी के राजा के मरने के बाद राज्य के योग्य ऐसे किसी भाग्यशाली पुरुष की परीक्षा करके खोजकर लाने की इच्छा से हाथी चारों तरफ घूम रहा था। उस चांडाल ने उस हाथी को देखा। हाथी ने भी उस चांडाल को देखा और सूंड से उठाकर अपनी पीठ पर बिठाया। उस समय विजय सूचक बाजे बजने लगे। और उसको किर पुर का राज्य मिला। उसका नाम राजा गवल पड़ा। एक दिन राजा गवल राजमहल के चौराहे पर बैठा था। वहाँ अन्य कुछ चांडाल उसने देखे। उनमें से एक बुजुर्ग चांडाल खड़ा हुआ और वह एकाएक राजा गवल को कहने लगा कि हे

कटंज ! (ऐसे चांडाल के नाम से पुकारा और कहा) तेरे दर्शन से मुझे अपार आनंद हुआ है। यह बात पूरे गाँव में फ़ैल गई। इस गाँव का राजा चांडाल है। यह बात राज दरबार में और नगर में सब जान गये। फिर उसका कोई स्पर्श भी नहीं करते। सब लोग उसको स्पर्श करने के पाप का प्रायश्चित करने के लिए जल मरने की तैयारियाँ करने लगे। अनेक चिताएं जलाई और संपूर्ण प्रजा जलकर मरने लगी। यह देखकर राजा गवल को भी खूब दुःख हुआ और उसने भी अग्नि में अपने शरीर की आहुति दी। गवल नामक उसका देह अग्नि में पड़ने से और उसको जलन होने से व्याकुल अवयव वाला हो जाने से जल में रहा हुआ गाधि ब्राह्मण अपने अंग में दाह का स्फुरण होते ही तुरंत जाग्रत हुआ। थोड़े समय तक उसके चित्त में बड़ा भ्रम हुआ। उसको लगा कि 'मैं स्नान करने के लिये तालाब में उतरा हुआ गाधि हूँ। यह तर्पण आदि मुझे करने हैं और मुझे राज्य नहीं करना है।' ऐसा देखने लगा। वह जल से बाहर आया और वह पृथ्वी और पानी मानो दूसरे हो वैसा देखते हुए उसको बड़ा विस्मय हुआ।

और उसको ऐसा विचार आया, कि मेरी माँ और स्त्री कहाँ गये कि जिनके सामने मेरी मृत्यु हुई ? मैं छोटा था तभी मेरे माता-पिता का देहांत हुआ था। मैनें तो विवाह भी नहीं किया। मेरे देश के लोग यहाँ से बहुत दूर है, फिर भी उनके सामने मैं मर गया। उनके साथ मेरा क्या संबंध था ? मैंने जन्म आदि अभिनिवेश वाला क्या देखा ? जो देखा सो देखा लेकिन मुझे अब उसका विचार करने की जरुरत नहीं है। मैं रिश्तेदारों के बीच मर गया था वह तो मेरी भ्रांति थी। इस मोह में कुछ भी सत्य नहीं है। प्राणियों के चित्त नित्य उसीतरह अनेक प्रकार की भ्रांतियों के दिखावे में भटकते रहते हैं।

फिर कोई अतिथि गाधि के पास आता है। उसने गाधि को कहा, कि किरदेश में एक चांडाल ने ८ साल तक राज्य किया था। यह बात सुनकर गाधि को बहुत विस्मय हुआ। उसको लगा कि मैंने जो भ्रांति में देखा उसको इस अतिथि ने सचमुच बना हुआ मुझको कहा। उस बात की पुष्टि करने गाधि उस राज्य में गया। उसके मनमें जैसी रचना का स्मरण था वैसी ही रचना वाला एक किरनगर उसके देखने में आया। वहाँ उसने जाँच की, सब लोगों से पूछा, तो सब ने कहा, कि यहाँ एक कटंज नामक चांडाल ने ८ साल तक राज्य किया था। फिर वह चांडाल की गली में गया, तो वहाँ भी अपने अनुभव के अनुसार सब दिखा। उसके मन में बहुत कौतूहल उत्पन्न हुआ। वह विचार करने लगा कि यह माया कैसे दिखती है ? लगभग ६०-७० साल की

घटना कुछ क्षण की डूबकी में कैसे दिखी ? उसने फिर तपस्या करके विष्णु को बुलाये, और ऐसी माया का कारण पूछा। विष्णु ने कहा कि वासना रूपी रोग से ग्रस्त चित्त का ही यह रूप है जो बड़े जगत के विभ्रम के रूप में तेरे देखने में आता है। यह आकाश, पर्वत, समुद्र, पृथ्वी और दिशायें और उनके काल आदि जो कुछ भी देखने में आता है वह कुछ भी सच्चा नहीं है, अपितु सबकुछ चित्त में ही है। स्वप्न की नाई चित्त ही जगत की क्रियाओं को बनाता है, उनको स्थिति देता है और उनका नाश करता है। निर्वासनिक चित्त में जन्म-मृत्यु नहीं होते। जैसे तेरा चांडालपना भ्रांतिवाला था वैसे ही अतिथि आया, भोजन किया, सोया यह भी भ्रांति ही थी। तूने भूतमंडल और किर देश में जो देखा वह भी भ्रांति ही थी। तू मन से ही सभी देशों में घूमा है। जो तेरे देखने में आया वह तेरे मन का विभ्रम था। ऐसा कहकर विष्णु अदृश्य हो गये। गाधि को शंका होनेपर पुनः उस देश में गया और पुनः वहाँ के मनुष्यों ने पुष्टि की और कहा कि यहाँ कटंज नामक चांडाल हुआ था और वहाँ उसने ८ साल राज्य किया था। उसका रहस्य जानने के लिए गाधि ने फिर तपस्या की। विष्णु ने फिर दर्शन दिए और गाधि ने पुनः वही प्रश्न किया।

विष्णु : जो तुम्हारे चित्त में चांडाल की स्थिति प्रतिबिंबित हुई थी वैसे काकतालिय न्याय से भूतमंडल देश के और किर देश के सभी मनुष्यों के मन में चांडाल की स्थिति प्रतिबिंबित हुई है। इसलिए वे तेरे वृत्तांत को बराबर कहते हैं। जो मिथ्या प्रतिभास हुआ हो उसका ज्ञान से बाध होता है, लेकिन उसका स्वरूप से उपमर्दन नहीं होता। अनेक लोगों को कई बार एक ही प्रकार का स्वप्न आता है। काल एक प्रकार का मन का कल्पा हुआ पदार्थ है। जिसको तू सच्चा मानता है और जिसको तू झूठा मानता है वह भी सब मोह जाल ही है। वासना से आवृत्त चित्त अपने में क्या नहीं देखे यह कह नहीं सकते। एक साल में हो सके वैसा कार्य अथवा एक साल में बन सके वैसा मकान भी स्वप्न में क्षण मात्र में सिद्ध हुआ चित्त के देखने में आता है।

फिर भगवान विष्णु अपने स्थान क्षीरसागर में पधारे। तीसरी बार गाधि ब्राह्मण भूतमंडल और किरदेश देखने गया और तीसरी बार भी वहाँ के लोगों के मुख से अपने चांडालपने आदि का वही वृत्तांत सुनने में आने से वह पुनः भ्रमित हुआ और फिर से विष्णु की आराधना करके विष्णु को बुलाये। उसने पुनः विष्णु से कहा, कि भ्रांति से देखे हुए पदार्थ अवश्य ही दूसरे काल में बदल जाते हैं। लेकिन मेरे देखे हुए पदार्थ तो

दूसरे काल में बदले नहीं, अतः वह भ्रांति हुई थी ऐसा कैसे कह सकते है ? विष्णु ने कहा, कि किसी चांडाल ने गाँव की सीमा पर घर बनाया था जो तेरे देखने में आया और उसमें तूने प्रवेश किया। कभी कभी काकतालिय न्याय के अनुसार कई लोगों को अनेक प्रकार का आभास होता है, क्योंकि मन की गति विचित्र है। जैसे भ्रांति उत्पन्न करनेवाली शराब के नशे से बिगड़े हुए चित्तवालों को सब प्रकार से सब दिशाएं घूमती हुई नजर आती हैं। वैसे ही कई लोग कभी कभी एक प्रकार के स्वप्न देखते हैं। ऐसा हमारे देखने में आता है। मिट्टी के घर को कई बच्चे भ्रांति से घर मान लेते हैं और युद्ध में वध, पराजय, पलायन आदि अनेक प्रकार के प्रारब्ध के फल सब को मिलने वाले हो तब योद्धा आदि अनेक मनुष्य एक ही समय एक घटना में जय, लाभ और भोग आदि प्रयोजनों की भ्रांति से उसमें कल्पना करते हैं। हे गाधि ! यदि जगत एक प्रकार की मनकी कल्पना हो तो किसी काल में अमुक धान्य के पौधे का उदय होता है और अमुक का नाश होता है इसप्रकार की काल की व्यवस्था नहीं होनी चाहिए, लेकिन मन की कल्पना से सब काल में सब होना चाहिए ऐसी शंका मत करो, क्योंकि यह काल भी मन से कल्पा हुआ एक पदार्थ ही है। सूर्य की क्रिया को देखकर मन से ही ऋतु एवम् महीने आदि की दृढ़ कल्पना कर ली जाती है। कल्पित काल का अधिष्ठानभूत जो आत्मा है वह तो सर्वदा अपने स्वरूप में ही रहता है, यानी वह किसीका प्रतिबंध भी नहीं करता और किसी का उदय भी नहीं करता। जो वास्तविक अखंड काल है वह आत्मा ही है ऐसा विद्वानों ने निश्चय किया हुआ है। और वह आत्मा किसीका कुछ ग्रहण नहीं करता और न ही त्याग करता है। वर्ष, कल्प और युग आदि रूप जो लौकिक काल है वह तो सूर्य आदि ग्रहों की गति आदि से कल्पा हुआ है और उससे पदार्थों के प्रतिबंध और उदय कल्पे हुए हैं। जिनके चित्त में भ्रांति हुई थी ऐसे भूतमंडल देश के और किर देश के मनुष्यों ने सब को समान (एक ही प्रकार का) प्रतिभास होने से तेरा चांडालपने आदि का आडंबर भी देखा है और उस आडंबर का अंत भी देखा है। हे गाधि अब तू वर्णाश्रम संबंधित अपने कर्मों में तत्पर रहकर बुद्धि से आत्मा का विचार करना और मन के मोह को त्याग कर यहीं रहना। ' इतना कहकर विष्णुजी अंतर्धान हो गये। पुनः चांडालपने की स्थिति का स्मरण करने से गाधि का चित्त भ्रमित होने से अपने मोह की निवृत्ति के लिए विष्णु को बुलाये और मोह की निवृत्ति का उपाय पूछा, और कहा कि मोह निवृत्त न हो तबतक आप यहीं बिराजिये। आप मुझे कोई एक निर्मल कार्य करने को दीजिये। विष्णु ने कहा कि यह जो माया का

आडंबर मालूम पड़ता है उसमें आत्मा के स्वरूप के विस्मरण (अज्ञान) के कारण सब प्रकार के आश्चर्य की कल्पनाओं का होना संभव है। तूने जो कुछ भी देखा वह सब अज्ञान के निमित्त से संभव है। स्वप्न आदि में अज्ञान के कारण नहीं देखे हुए पदार्थों का जो भ्रम होता है वह सभी लोगों के अनुभव में है। संकल्पों की समानता के कारण काल आदि की समानता हो सकती है। अब मैं तुझे सत्य बात कहता हूँ। भूतमंडल देश में पहले एक ही कटंज नामक चांडाल था, वह तेरे देखने में आये हुए संपूर्ण आकारवाला था। वह परिवार रहित किर देश में गया था और किर देश का राजा हुआ था, और फिर उसने अग्नि में प्रवेश किया था। और तूने जल में डुबकी लगाई थी, तब तेरे चित्त में जो उस कटंज के रूप में होने का भ्रांतिरूप आभास हुआ था वह सिर्फ मेरे संकल्प के कारण ही हुआ था। चित्त जैसे किसी समय में देखे हुए और अनुभव किये हुए पदार्थ को बिलकुल भूल जाता है वैसे कभी नहीं देखे हुये पदार्थों की भ्रांति को भी प्राप्त होता है। स्वप्न संबंधित, मन की कल्पना संबंधित और सन्निपात संबंधित स्थितियों में मन जैसे अनेक प्रकार के संभ्रमों को देखता है वैसे जाग्रत की स्थिति में भी अनेक प्रकार के भ्रम देखता है। जैसे त्रिकालदर्शी योगी को भविष्यकाल के पदार्थ भी दिखते हैं वैसे तुझे भूतकाल में हो गया हुआ कटंज का आचरण वर्तमानकाल में भ्रांति से दिखा। 'कटंज कि जो मैं नहीं था और उसके स्त्री पुत्र और घर आदि मेरे नहीं थे, उनमें मैं ही कटंज हूँ और वह स्त्री पुत्र और घर आदि 'मेरे ही है' इतनी दृढ़ भ्रांति कैसे हो गयी ऐसी शंका नहीं रखना क्योंकि आत्मज्ञान के बिना के सब लोगों को जो कि अपना रूप नहीं ऐसे देह में 'मैं हूँ' ऐसी और जो अपने नहीं ऐसे स्त्री, पुत्र और घर आदि में 'मेरे हैं' ऐसे जो महाप्रबल झूठे भ्रम हुआ करते हैं, उनके आगे अल्पकालीन तेरी भ्रांति क्या है ? जो आत्मवेत्ता पुरुष हो वही 'यह देह मैं हूँ और यह स्त्री पुत्र मेरे हैं' ऐसी मिथ्या भ्रांति में नहीं डूबता। शेष सब प्राणी ऐसी भ्रांति में डूबे हुए है। हालांकि तत्त्वज्ञान में आरूढ़ विद्वान को भी 'सर्व जगत मैं हूँ। ' ऐसा अहंकार रहता है तो भी ऐसे अहंकार से उसका कुछ बिगड़ता नहीं है, क्योंकि ऐसा विद्वान पदार्थों से भिन्न भिन्नतारूप अनर्थ की भावना का स्वीकार नहीं करता। वह विद्वान भी एक प्रकार के अहंकार वाला है, तो भी पदार्थों के विभाग रूप दुष्ट भावना का स्वीकार नहीं करता। अतः जैसे तुंबा पानी में नहीं डूबता वैसे सुख दुःख के विलास वाले भ्रम के प्रकारों में वह डूब नहीं जाता। तू अभी वासना की जाल से आवृत्त चित्त वाला है। तुझे अभी पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ। इसलिए जैसे अधूरा घर बनानेवाला पुरुष बरसात के दुःख का

निवारण नहीं कर सकता वैसे तू तेरे मनके भ्रम का निवारण नहीं कर सकता। यदि चित्त को दबा दिया जाय तो मायारूपी चक्र किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न नहीं कर सकता। अब तू चित्त के निरोध का अभ्यास कर तो तुझे अपरिच्छिन्न ज्ञान की प्राप्ति होगी। 'इतना कहकर भगवान विष्णु अंतर्धान हो गये। गाधि को विवेक और वैराग्य प्राप्त हुए, और फिर सब संकल्पों का त्याग करके उसने ज्ञान प्राप्त किया। ज्ञान होने के बाद अपनी ब्रह्मरूप सत्ता को प्राप्त होकर, भय एवम् शोक से रहित होकर निरंतर उदित जीवन्मुक्त स्वभाव वाला होकर उसने विश्रांति प्राप्त की।

उपरोक्त दृष्टांत का अब नये प्रकार से विचार करेंगे, तो निम्नलिखित सिद्धांत उसमें से निकलते हैं।

१. गाधि ब्राह्मण ने जल में जिस तरह डुबकी लगाई वैसी सब मनुष्यों ने डुबकी लगाई हुई प्रत्यक्ष देखने में आती है। मनुष्य जीव भी एक जल की बूंद में से बनता है। उस जल में उस जीव ने डुबकी लगाई है, और डुबकी में किसीको ४० वर्ष का अनुभव होता है, पुत्र-पुत्रियाँ होते हैं, किसीको राज्य भी मिलता है। किसीको ६० साल का अनुभव होता है और किसीको ८० साल का अनुभव भी होता है। जितना उस मनुष्य का आयुष्य हो उतना उसको अनुभव होता है। लेकिन यदि वह देहरूपी डुबकी से निकलकर, समाधि करके अपने ब्रह्मस्वरूप का अनुभव कर ले तो उसको लगेगा, कि स्वयं जन्मा ही नहीं, विवाह नहीं किया, बच्चे नहीं हुए और स्वयं राजा भी नहीं हुआ। ऐसी डुबकी से निकलने के लिये अज्ञान दूर होना चाहिए और अज्ञान दूर करने के लिए ब्रह्मज्ञानी महापुरुष का सतत सत्संग करना चाहिए।

२. हिप्नोटिझम में भी जहाँ जमीन हो वहाँ गुरु शिष्य को ऐसी सूचना करे, कि यह जल है तो वहाँ उस मनुष्य को जल दिखने लगता है।

३. कोई मनुष्य पानी में डूब रहा हो तब उसको कुछ सेकण्ड में अनेक घटनायें एकसाथ याद आया करती हैं।

४. गाधि ब्राह्मण की मुख्य्य गलती यह थी कि, उसने अपनी एक दशा के प्रमाण से दूसरी दशा को नापने का प्रयास किया। वास्तव में जिस दशा को समझना हो उस दशा के लिए जो प्रमाण सच्चा हो उसे लेना चाहिए। सब्बल से कपड़े की सिलाई नहीं कर सकते, लकड़े वाले के पास जाकर एक लीटर लकड़ा नहीं माँगा जाता, अनाज की दुकान पर जाकर एक फुट अनाज नहीं माँगा जाता, मोची के चमड़े चीरने वाले चाकू से सब्जी नहीं काटी जाती। अतः मनुष्य के मन से भगवान की रचना समझने का

प्रयास करना व्यर्थ है।

५. काल का आधार संबंध पर है। किसी कन्या का विवाह हुआ उसके दूसरे दिन उसे कोई पूछे, कि तेरे पति को कितने साल हुए तो वह उत्तर देती है कि २० साल हुए। वास्तवमें देखा जाय तो उसके पति को एक दिन हुआ है, उससे पहले वह उसका पति नहीं था। संबंध के अनुसार काल उत्पन्न होता है। उसकी सास को ५० साल हुए हैं। ऐसा वह कहे तो भी सत्य नहीं है। उसकी सास को भी एक ही दिन हुआ है, विवाह के पूर्व वह उसकी सास नहीं थी। इस प्रकार संबंध के अनुसार काल उत्पन्न होता है।

६. योगवासिष्ठ जैसा एक पुस्तक कुछ समय पूर्व ही अंग्रेजी में प्रसिद्ध हुआ है। उसका नाम 'टॉमकीन्स इन वंडरलैंड' है। उसमें भी गाधि ब्राह्मण की नाईं टॉमकिन्स अलग अलग प्रकार के जगत का अनुभव करता है और ये सब अनुभव सायन्स से सिद्ध भी हो सकते हैं। अर्थात् गणित से प्रमाणित कर सकते हैं। उस पुस्तक में निम्नलिखित प्रकरण हैं :-

१. खिलौने जैसा जगत –उसमें एक मनुष्य दूसरे को 'गुड मॉर्निंग' कहता है और दूसरा उत्तर देता है, कि यहाँ सुबह नहीं होती।

२. क्वान्टा का कमरा, उसमें बिलियर्ड के जैसा खेल बताया हुआ है और एक गेंद हो, वहाँ अनेक गेंद जैसा दिखता है। वैसे ही एक ईलेक्ट्रोन एक ही समय अनेक स्थान पर दिखता है।

३. नगर में सायकिल पर जाते हुए एक मनुष्य को टॉमकिन्स देखता है और वह मनुष्य की गति के अनुसार वह चपटा होता हो वैसा दिखता है।

४. ४० साल के एक मुसाफिर मनुष्य को उसकी ८० साल की बेटी की बेटी मिलती है। और वह बेटी उसको दादा कहकर पुकारती है। सायन्स कहता है कि जो वस्तु हमेशा गति करती है उसके काल की गति कम हो जाती है।

५. एक शिकारी के समूह के साथ टॉमकीन्स जाता है। वहाँ एक बाघ सामने से आता है। लेकिन वहाँ अनेक बाघ हो ऐसा उस ग्रुप को मालूम पड़ता है। और कौन से बाघ को मारना यह मारनेवाले को समझमें नहीं आता। ऐसे ही भगवान के सिवाय कुछ नहीं है, फिर भी अनेक जीव हो वैसा गलती से दिखता है। उसका कारण यह है, कि एक जीव और दूसरे जीव के बीच खाली जगह क्यों दिखती है ? उसे समझने की जरुरत है। आज का सायन्स कहता है, कि वह जगह सच्ची नहीं है।

६. एक शिकारीयों का समूह हिरन का शिकार करने जाता है और वहाँ एक हिरन है। फिर भी अनेक हिरन हो वैसा मालूम पड़ता है। इलेक्ट्रोन की जगह खोजने में भी आज के सायन्स वालों को ऐसी कठिनाई होती है।

७. चलती हुई ट्रेन में से बाहर के तार के खंभे जितने दूर है उससे अधिक पास में लगते हैं।

८. एक स्टेशन से एक ट्रेन पसार हुई उस समय किसीने स्टेशन मास्टर का खून किया, तब वहाँ एक मनुष्य को बंदूक का आवाज खून से पहले सुनाई दिया, और दूसरे को वह आवाज बाद में सुनाई पड़ा।

९. एक स्थानपर अमुक विस्तार में अमुक पेड़ हैं। वह स्थान गोलाकार (spherical) हो तो पेड़ की संख्या में अंतर पड़ जायेगा।

१०. एक ट्रेन प्रकाश की गति से दौड़ती है। उसके डिब्बे पर एक मनुष्य प्रकाश की गति से दौड़ता है। फिर भी कुल गति दुगुनी नहीं होती। क्योंकि उस मनुष्य को जमीन के साथ संबंध नहीं है, लेकिन ट्रेन के ऊपर के भाग के साथ संबंध है। अतः संबंध के अनुसार काल उत्पन्न होता है।

११. चार गतिमान मनुष्य अपनी घड़ी मिलाते हैं तो टाइम में अंतर पड़ जाता है। वह अंतर कितना होता है यह गणित से समझाया हुआ है।

१२. जहाँ जगह गोल हो (curved space) और घूमती हो वहाँ देशकाल बदल जाते हैं।

१३. किसी लिफ्ट में कोई मनुष्य ऊपर जा रहा हो और उसके हाथ में से फल गिरे तो लिफ्ट का पटिया फल को मिलने के लिए ऊपर जाता है ऐसा भी कह सकते है।

१४. किसी प्रकाश का स्वभाव जानना हो तो उसकी जितनी वेवलेंथ हो उतनी वेवलेंथ से उसे नापना चाहिए। उससे सूक्ष्म वस्तु उसमें हो तो उस नाप से जान नहीं सकेंगे। बड़े ब्रश से छोटा चित्र नहीं हो सकेगा, उल्टा चित्र बिगड़ जानेकी संभावना है और उसमें से क्या दिखेगा यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते।

उपरोक्त सभी बातें समझमें आये वैसा गणित हुआ है, लेकिन वैसा गणित समझनेवाले और समझानेवाले अभी बहुत कम हैं। भविष्य में सब कॉलेजों में यह गणित अनिवार्य सीखना पड़ेगा। उस समय प्रमाण के स्वरूप की खबर पड़ेगी और गाधि ब्राह्मण ने जिन प्रश्नों के खुलासे के लिए भगवान विष्णु को बुलाये वैसे भगवान को

बुलाने नहीं पड़ेंगे, पर मनुष्य अपनी बुद्धि से समझ सकेंगे।

दृष्टांत : २

काल की विचित्र गति का अन्य एक प्रसंग योगवासिष्ठ में उत्पत्ति प्रकरण में १६वें सर्ग से शुरू होता है। वहाँ सविस्तार वर्णन आता है। लेकिन यहाँ यह प्रसंग बहुत संक्षेप में दिया जाता है। एक देश में एक पद्मराजा था। उसकी रानी का नाम लीला था। उन दोनों में परस्पर बहुत प्रेम था। संसार के भोग में डूबी हुई लीला रानी को एकबार ऐसा विचार आया, कि यह मेरा पति पद्मराजा अजर और अमर कैसे हो जिससे मैं उसके साथ लम्बे काल तक रमण कर सकूँ ? मुझे तप, जप, मन्त्र से और नियम से ऐसा यत्न करना चाहिए, जिससे उसकी मृत्यु न आये। उसने तपस्या करके देवी सरस्वती को प्रसन्न किया। देवी ने दर्शन दिए और लीला को कहा कि तुझे जो वरदान चाहिए वह माँग ले।

लीला ने कहा : हे माँ ! मुझे दो वरदान दीजिये। प्रथम यह कि मेरा पति मर जाये तब उसका जीव अपने अंतःपुर के मंडप में ही रहे, और दूसरा यह कि दर्शन के लिए जब भी मैं प्रार्थना करूँ तब आप मुझे दर्शन दें।

देवी ने कहा : तथास्तु।

ऐसा वर देकर देवी अंतर्धान हो गयी।

फिर लीला अपने को ठीक लगे वैसे संसार का आनंद लेने लगी। एक समय राजा पद्म का काल आया। युद्ध में लड़ते हुए वह मर गया। लीला उसके शरीर को देखकर अत्यंत दुःखी हुई। उस समय देवी सरस्वती ने उसको दर्शन दिए और कहा, "पुत्री ! इस शव रूप तेरे पति के शरीर को फूलों से ढककर रख दे, बाद में तू अपने पति को प्राप्त करेगी। फूल मुरझाएंगे नहीं और शरीर भी बिगड़ेगा नहीं। थोड़े दिन में पुनः वह तेरा पति होगा। उसका जीव इस तेरे अंतःपुर के मंडप से तुरंत निकल कर जाएगा नहीं। " लीला ने देवी के कहे अनुसार पति के शरीर को पुष्पों से ढक दिया।

उसी रात्रि को जब सब सोये हुए थे तब लीला ने सरस्वती का स्मरण करके बुलाई और पूछा, "मेरे पति अभी कहाँ है और क्या कर रहे हैं, और कैसे हैं ? आप मुझे उनके पास ले चलिये। मैं अपने पति के बिना अकेली जीवित नहीं रह पाऊँगी। " सरस्वती ने कहा, "एक वासनामय चित्ताकाश है, दूसरा चिदाकाश है और तीसरा यह व्यावहारिक आकाश (भूताकाश) है। पहले और तीसरे की संधि में जो चिदाकाश है वह दोनों से रहित है। अभी तेरा पति जहाँ है वह स्थान यद्यपि चिदाकाश के गर्भरूप है

तथापि चिदाकाश से भिन्न नहीं है। चिदाकाश का एकाग्रता से चिंतन करने से वह स्थान तुरंत यहाँ दिखने में और अनुभव में आ सकता है। संवित निमेष मात्र में एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाती है तब उस संवित का दोनों प्रदेश से रहित जो मध्य है वह चिदाकाश है ऐसा समझना चाहिए । तू सब संकल्पों का त्याग करके उस चिदाकाश में स्थित हो। वह सर्वात्मक पद होने से उसमें तुझे अवश्य ही तेरे पति के स्थान की प्राप्ति होगी। हालांकि वह पद जगत का अत्यंत बाध होनेपर ही मिलता है, उसके बिना नहीं मिलता फिर भी मेरे वरदान के प्रभाव से तुझे उस पद की प्राप्ति होगी।"

सरस्वती अपने स्थानपर चली गई। लीला को समाधि लग गयी। उसने स्थूल देह का अभिमान त्याग दिया और चिदाकाश में स्थिति प्राप्त की। उसमें उसने कुछ समय के बाद अनेक राजाओंको देखा। उसमें अपने पति को एक विदूरथ नामक राजा बनकर किसी देश का राज्य करते हुए लीला ने देखा। वहाँ उसकी सभा में अपने नगर के नगरजनों को देखा। यह देखकर लीला को विचार आया, कि ये सब तो मेरे राज्य में थे, क्या ये लोग भी मर गये हैं ? फिर वह समाधि से बाहर आई। सुबह होनेपर उसने अपने राज्य की सभा बुलायी। लीला ने वहाँ पहले की भाँति मंत्री, राजाओं, सभासदों नगरजनों आदि को देखा। सभा पूरी करके वह अंतःपुर में आई। उसको लगा कि जैसे आईने में बाहर और अंदर पर्वत का अनुभव होता है। वैसे चैतन्य के बाहर के प्रदेश में भी वैसी ही सृष्टि का अनुभव होता है। ऐसा होने से उनमें कौनसी सृष्टि सच्ची है ? पुनः देवी सरस्वती को बुलाई। उसने इसप्रकार का प्रश्न देवी के सामने रखा। लीला ने सरस्वती को कहा, "यह मैं और तुम यहाँ बैठे हैं वह सृष्टि सच्ची लगती है। और मेरा पति जिस सृष्टि में है वह झूठी लगती है। " सरस्वती ने कहा कि उस सृष्टि का कारण यह पुरानी सृष्टि है। लेकिन पुरानी सृष्टि सच्ची हो तो उसमें से नयी झूठी सृष्टि कैसे होगी ? वास्तवमें दोनों सृष्टियाँ मिथ्या है । जैसे नई सृष्टि कल्पनारूप है वैसे यह पुरानी सृष्टि भी कल्पनारूप है। चिदाकाश में काँच के टुकड़े जैसी श्यामता वाले आकाश से ढका हुआ कोई संसार रूपी मंडप है। उसमें समुद्र, नदी, तालाब, पाताल, भूतल, स्वर्गलोक आदि हैं। ब्रह्मा नामक एक वृद्ध ब्राह्मण उस मंडप में बैठा है। वह मंडप जीवों के समूहरूप कोये से भरपूर है। उसके एक कोने में एक खड्डे जैसा पहाड़ी गाँव है। उसमें एक अग्निहोत्री ब्राह्मण रहता था। उसका नाम वसिष्ठ था। उसकी स्त्री का नाम अरुंधति था। एक दिन वसिष्ठ ब्राह्मण उस गाँव के

पर्वत के शिखर पर बैठा था उस समय नीचे के स्थान से एक राजा पसार हो रहा था। वह शिकार करने निकला था। उस राजा को देखकर वसिष्ठ ब्राह्मण विचार करने लगा, कि ब्राह्मणपने से तो राजापना अच्छा है। मैं ऐसा पृथ्वीपति कब होऊंगा ऐसा संकल्प करते करते वह वृद्ध हुआ। उसकी स्त्री ने भी तेरी तरह मेरा पूजन करके ऐसी प्रार्थना की, कि मेरा पति मर जाय तो उसका जीव मेरे इस मंडप से बाहर न जाय। मैंने उसको तथास्तु कहा। फिर दैवयोग से वह ब्राह्मण मर गया और उसी घर के आकाश में जीव रूप से रहा। वह तेरा पति पद्मराजा हुआ था। उसकी स्त्री (वह ब्राह्मणी) तू है। उस ब्राह्मण का घर, उसकी जमीन और स्थावर संपत्ति आदि उस पहाड़ी गाँव में है। उसकी मृत्यु का आज आठवाँ दिन है और उसका जीव उस पहाड़ी गाँव के घर के अंदर स्थित है। ब्रह्मरूप आकाश में जीने की भ्रांति होने से ऐसी प्रतीति हो सकती है। उस भ्रांतिरूपी पूर्व सृष्टि में से यह वर्तमान सृष्टिरुप भ्रांति प्रतिबिंबित हुई है। यह सृष्टि जो कि अपनी सत्ता से असत्य है और अधिष्ठान की सत्ता से सत्य है उसने तुमको जन्म मृत्यु की मिथ्या प्रतीति ही करवायी है। इसप्रकार होने से कौनसी सृष्टि भ्रांतिमय और कौनसी सृष्टि सच्ची ? अविद्या, कि जो बिना प्रतिबिंब के अनर्थ रूप है, उसके बिना सृष्टि का कोई कारण नहीं है।"

लीला ने पूछा : "हे देवी ! तुमने यह कैसी बात कही ? ब्राह्मण का जीव जो कि उसके घर में है वह कहाँ और यहाँ के स्थानपर हम कहाँ ? समाधि में जो नई सृष्टि मैंने देखी वह भी इस घर में ही है। यह कैसे संभव है ?"

सरस्वती : "वह पहाड़ी गाँव के ब्राह्मण का जीव कि जो चिद् रूप है वह अपने हृदयाकाश में अपने ही घर में इस बड़े देश को देखता है। जैसे जाग्रत की स्मृति लुप्त होकर स्वप्न में अन्य प्रकार की सृष्टि होती है वैसे उनको आगे की स्मृति लुप्त होकर अन्य प्रकार की स्मृति हुई है। स्मृति का अत्यंत लोप होना ही मृत्यु है। जैसे स्वप्न का और संकल्प का त्रैलोक्य झूठा है वैसे ही इसको समझना। तू, मैं और ब्रह्मांड यह सर्व वास्तविक रूप से चिदाकाशरूप ही है।"

लीला ने कहा : "हे माँ ! वह ब्राह्मण आज से आठवें दिन मर गया ऐसा आप कहती हो और हमारे जन्म को तो कई वर्ष बित गये हैं ! अतः उस ब्राह्मण और ब्राह्मणी से हमारी उत्पत्ति कैसे संभव है ?"

सरस्वती ने कहा : "जैसे हृदयाकाश में देश की लंबाई सच्ची नहीं है वैसे काल की लंबाई भी सच्ची नहीं है। जैसे इस जगत की सृष्टि प्रतिभासमात्र है वैसे क्षण और

कल्प आदि संपूर्ण जगत, तू पने और मैं पने के अध्यास के कारण अपना जन्म हुआ ऐसी भ्रांति से ही प्रतीत होता है। अब यह प्रतिभास होने का क्रम कहती हूँ उसे सुन। जीव क्षण मात्र में अपनी मिथ्या मृत्युरूप मूर्छा का अनुभव करके अगले जन्म को भूलकर दूसरे नये जन्म को देखता है। उस दूसरे जन्म का प्रतिभास होते ही स्वयं देह आदि के आधार से रहित होते हुए भी अपने हृदयाकाश में ही 'मैं देह आदि आधार में आधेय के रूप में रहा हूँ। ' ऐसा अनुभव करता है और यह हाथ, पैर आदि से युक्त देह मेरा है ऐसा देखता है। देह का अध्यास होते ही मैं पिता का पुत्र हूँ, मुझे इतने वर्ष हुए, ये मेरे सुन्दर बांधव है, यह मेरा सुन्दर घर है, मैं जन्मा हूँ, पहले बालक था, अब बड़ा हुआ हूँ, मैं ऐसा हूँ और मेरे सब बांधव अपने अपने कार्य करते हैं, यह सब देखने में आता है। देहरूप हुए चित्त की और आत्मा की एकता के दृढ़ अभ्यास के कारण यद्यपि ये बांधव आदि पदार्थ संबंध बिना के ही हैं तथापि संबंधयुक्त भासते हैं। इसप्रकार जीव के चित्त में संसाररूपी खंड का उदय हुआ है, लेकिन वास्तवमें किसीका उदय नहीं हुआ* (*काल संबंध से उत्पन्न होता है। यदि संबंध भूल जाये तो काल नहीं है।) जीव शुद्ध चिदाकाशरूप है, स्वप्न में जो चैतन्य दृष्टा में है वही चैतन्य दृश्य में है। वैसे ही जाग्रत में भी जो चैतन्य दृष्टा में है वही चैतन्य दृश्य में है। एक चैतन्य ही सर्वरूप से प्रतीत होता है। चैतन्य जैसे स्वप्न में दूसरे प्रकार से प्रतीत होता है वैसे परलोक में तीसरे प्रकार से प्रतीत होता है और वैसे ही इस लोक में चौथे प्रकार से प्रतीत होता है। चैतन्य सब स्थितियों में एक ही है। जैसे तरंग जल से भिन्न नहीं है वैसे स्वप्न, परलोक और यहलोक चैतन्य से बिलकुल भिन्न नहीं है। अतः जगत उत्पन्न हुआ ही नहीं, और इसलिए इसका नाश भी नहीं होगा। जगत अपने स्वरूप से कुछ है ही नहीं।

जो प्रकाशता है वह चैतन्य ही प्रकाशता है। जैसे दृश्य रहित चैतन्य परब्रह्म ही है वैसे दृश्यों वाला चैतन्य भी परब्रह्म ही है। जीव को मृत्युरूप मोह होने के बाद निमेष मात्र में ही देश, काल, आरंभ, कुल, जन्म, माता, पिता, संतान, अवस्था, समझ, स्थान, चेष्टा, बांधव, सेवक, अस्त और उदय आदि वासनाओं का अनुसरण करनेवाली ब्रह्मांडरूप दृश्यवर्ग की शोभा का प्रतिभास होता है। जीव स्वयं कि जो चैतन्यरूप है वह जन्मा हुआ नहीं है, फिर भी 'मैं जन्मा हुआ हूँ' ऐसा मान लेता है। और उससे देश, काल, क्रिया, दृश्य, मन, बुद्धि, और इन्द्रिय आदि को देखता है। और निमेषमात्र में कल्प जितना बड़ा काल बीत जाने की प्रतीति भी उसको होती है। यह

जगत है, और यह सृष्टि है। इसप्रकार से वासना का ही स्फुरण होता है। और वह वासना समीप में दूरपने का और क्षण में कल्पपने का विपरीत भ्रम उत्पन्न करती है। जैसे स्वप्न संबंधी भ्रम में दूसरे पिता में भी अपनी वासना होती है वैसे ही इस संसार में नहीं अनुभव में आये हुए में भी अनुभव में आये हुए की वासना कभी उदित होती है। जगत का अत्यंत विस्मरण ही मोक्ष कहलाता है। " फिर लीला और सरस्वती उस पहाड़ी गाँव में गई। लीला ने वहाँ पूर्वजन्म के अपने बड़े पुत्र ज्येष्ठशर्मा को देखा। उसने वसिष्ठ और अरुंधती के मृत्यु की बात उन देवियों के सामने कही।

अब लीला को पुनः अपने पति के देश को देखने की इच्छा हुई और उसने वैसा कर देने को सरस्वती देवी से कहा। सरस्वती ने उसके उत्तर में कहा : "हे अरुंधती तेरे अनेक जन्मों में सैकड़ों पति हो गये हैं उनमें से तीन तो अभी अभी हुए हैं। उसमें वसिष्ठ ब्राह्मण भस्म हो गया। राजा पद्म अंतःपुर में शव होकर पुष्पों में पड़ा है। और तीसरा विदूरथ अभी इस संसार मंडप में राज्य कर रहा है। अब मैं तुझे कौनसे पति के पास ले जाऊं ? यद्यपि चैतन्य की दृष्टि से सारा संसार मंडप यहीं पास में ही हैं तथापि लौकिक दृष्टि से उनके बीच में करोड़ों योजन का अंतर है। जो परम चैतन्य है वह अपने में ही इस जगत आदि के रूप से स्फुरता है जैसे तालाब में तरंगें हो-होकर लीन हो जाती है। वैसे ही चैतन्य के विचित्र आकारवाले दिन आदि काल के विभाग और ब्रह्मांड आदि देश हो- होकर फिर प्रतीत हुआ करते हैं। "

लीला ने कहा : "मुझे भी ऐसा ही लगता है। मैंने मेरे कर्म के अनुसार अनेक जन्म भोगे हैं। किसी जन्म में मैं भ्रमरी हुई थी, किसी में मछली हुई थी, किसी में नागिन और किसी में भीलनी थी। पहाड़ी गाँव में मैं अरुंधती थी ऐसा मुझे स्मरण हो रहा है। अब मुझे मेरे पति पद्मराजा के नगर में जाने की इच्छा हुई है। "ऐसी याचना करनेपर दोनों देवियाँ संकल्प बल से पद्मराजा के नगर में पहुँची। वहाँ थोड़ा समय रहकर फिर दोनों वहाँ से उड़कर विदूरथ राजा के राज्य में आयी। उस समय दूसरे कोई सिंधुराज नामक राजा ने सेना सहित उस विदूरथ राजा के राज्य पर आक्रमण कर दिया था और युद्धभूमि लंबे समय के युद्ध से भयंकर हो गयी थी। लीला और सरस्वती ने विदूरथ राजा के घर में सूक्ष्म छिद्र से प्रवेश किया। चिदाकाश सर्व प्रदेशमय है। और उसमें आतिवाहिक कहलाने वाला सूक्ष्म देह ज्ञान के प्रभाव से चाहे वहाँ विचरण कर सकता है। राजा ने दोनों देवियों को देखा। सरस्वती ने राजा को पूछा, "तू कौन है ? किसका पुत्र है ? और इस देश में कब जन्मा है ?"उसके उत्तर में

उस राजा के मंत्री ने कहा, “हमारे राजा के पिता का नाम नभोरथ है। इनकी माता का नाम सुमित्रा है। विदूरथ दस वर्ष के हुए तब उनके माता-पिता उनको राज्य देकर वन में चले गये हैं। ” सरस्वती ने राजा से कहा, “तू विवेक से अपने आप ही अपने पूर्वजन्म का स्मरण कर। ”ऐसा कहकर उसने राजा के सिर पर हाथ घुमाया। उस हाथ का स्पर्श होते ही राजा को पूर्वजन्म का चक्रवर्तीपना; लीलारानी के साथ विलास और अंत में मृत्यु होने का संपूर्ण वृत्तांत हृदय में प्रत्यक्ष जैसा होकर स्मरणमें आया। राजा ने देवियों से कहा, “इस संसार में मेरे मन में जो माया का विस्तार हुआ है वह अभी तुम्हारी कृपा से मेरे जानने में आया है। हे देवी ! यह कैसा आश्चर्य है ? मेरी मृत्यु को अभी एक ही दिन हुआ है। और यहाँ तो मेरी अवस्था सत्तर साल की हुई है। ”

सरस्वती ने कहा, “तुझे पूर्व जन्म में 'मृत्यु' नामक महामोहरूप मूर्छा प्राप्त होने के बाद उस सर्ग का भान टल जाने से उसी समय, उसी घर के उसी आकाश में तुझे इस सर्ग की प्राप्ति हुई है। चिदाकाश के अंदर जो पहाड़ी गाँव है उसके गाँव के ब्राह्मण के घर के अंदर के मंडप में ही तेरा पूर्व सर्ग हुआ था। और उस पूर्व सर्ग के घर में मंडप के अंदर के आकाश में ही तुझे इस सर्ग का प्रकाश हुआ है। प्रत्येक सर्ग में जगत भिन्न भिन्न है। प्रथम सर्ग में तेरे चित्त में इस वर्तमान काल का व्यवहाररूप विस्तीर्ण भ्रम भासमान हुआ है। मुझे ७० साल हुए है। मेरे अमुक माता-पिता थे, मैंने अमुक कार्य किये इसप्रकार की तुझे बहुत बड़ी भ्रांति हुई है। पूर्वजन्म में जिस क्षण तेरी मृत्यु हुई उसी क्षण में तुझे स्वतः ही हृदय में प्रतीति उदय हुई है। जैसे किसीको स्वप्न में एक क्षण में ही सौ साल की भ्रांति होती है वैसे संकल्प की रचना में जीवन और मृत्यु की भ्रांति होती है। जैसे स्वप्न में अपना मस्तक कटा हुआ लगता है वैसे ही तुझे यह विस्तीर्ण संसार की भ्रांति हुई है। तू वास्तव में कभी भी जन्मा नहीं है और कभी मरा भी नहीं है। तू तो विशुद्ध ज्ञानरूप है और सदा आनंदरूप है। यह पर्वत, गाँव, शत्रु और हम कोई सच्ची वस्तु नहीं है। केवल पूर्णब्रह्म में, मिथ्याघर में, मिथ्यालोग मिथ्या व्यवहार करते हैं। शुद्ध बोधस्वरूप ब्रह्म में यह जगतरूपी अविद्या ने भ्रम किया है ऐसा प्रतीत होता है। जगतरूपी भ्रम का मिथ्यात्त्व मालूम पड़ने के बाद उस भ्रम की सत्ता का रहना संभव ही कैसे है ? जैसे जीवित मनुष्य को अपने स्वप्न में होनेवाला मृत्यु का भय मिथ्या है वैसे जाग्रत में होनेवाला मृत्यु का भय भी मिथ्या ही है। ज्ञानी पुरुष की दृष्टि में 'यह मैं हूँ और यह जगत है' ऐसे तुच्छ शब्दों के अर्थ वास्तविकता में रहते ही नहीं। ”

फिर विदूरथ ने अपने पूर्व शरीर में (राजापद्म के शरीर में) आने की इच्छा की। सरस्वती ने कहा कि इस युद्धमें तुझे मरना पड़ेगा फिर तू अपने पूर्व शरीर को प्राप्त होगा। ऐसा हुआ और विदूरथ का जीव राजा पद्म के शरीर में आया। अब इस कथा को नए ढंग से समझने का प्रयास करेगें तो मालूम पड़ेगा कि :

१. हम स्वप्नमें किसी ८० साल के वृद्ध को देखते हैं तो उसको ८० साल हुए होंगे ऐसा मान लेते हैं। वास्तवमें उसको उत्पन्न हुए एक मिनट हुई होती है। पर ऐसा देखने की आदत बनी हुई होने से संबंध से काल उत्पन्न होता है।

२. तुकाराम की फ़िल्म में भी तुकाराम के ५० साल की घटनायें हम दो घंटे में देखते हैं। दो घंटे में तुकाराम ५० वर्ष के हुए नहीं, फिर भी देखनेवाले उसको देखकर आनंदित होते हैं।

३. श्री शंकराचार्य ने भी अपना स्थूल शरीर एक पेड़ के बिल (खोखले) में रखकर सूक्ष्म शरीर से काशी के राजा के मृतदेह में प्रवेश किया था। उस समय उस राजा की रानी को लगा था कि मेरा पति जीवित हुआ है, पर वास्तवमें उसमें शंकराचार्य थे। ऐसे ही हिरन के देह में राजा भरत थे, गिरगिट में से राजा नृग निकले थे, पत्थर में से अहिल्या निकली थी, दो पेड़ में से मणिग्रीव और नलकुबर निकले थे, बांस में से धुंधुकारी निकला था। अतः यह सृष्टि अत्यंत विचित्र प्रकार की है। और विचार करनेपर उसमें स्वप्न के जैसी कल्पना होती है।

४. जहाँ आकाश अथवा देश अलग प्रकार का हो वहाँ काल भी अलग प्रकार का होता है। देखनेवाले की भावना के अनुसार यानी संबंध के अनुसार उसमें बदलाव होता है।

५. दिल्ली में जन्मी हुई एक कन्या को ९ साल की आयु में मथुरा में अपना पूर्व जन्म का घर याद आया। वह कुछ लोगों को लेकर वहाँ गई और उसने अपने पति को, ससुर को, चाचा को और पुत्र को भी पहचान लिए थे। उस समय उसका पिछले जन्म का बेटा १० साल का हुआ था और उसकी ९ साल की माँ उसको सहलाने लगी। यह प्रसंग कल्याण मासिक के दसवें वर्ष के छठे अंक में ११२३ वें पन्ने पर प्रसिद्ध हुई है।

६. दूसरा एक प्रसंग दिल्ली में एक गृहस्थ के परिवार में बना हुआ है। उस परिवार में सौतेली सास और बहु के बीच कुछ अनबन होने से सास ने सौतेले बेटे को मारने का प्रयास किया। उसके लिए जो दूध था उसमें संखिया मिलाया, लेकिन पति

को बचाने के लिए उसकी स्त्री ने वह जहर पी लिया और मर गयी। उस स्त्री का दूसरा जन्म दक्षिण में सांगली के पास के तहसील के जागीरदार के घरपर हुआ। वह कन्या मुंबई में पढ़ी लिखी और १४ साल की आयु में सूरत में अपने कोई रिश्तेदारों को मिलने आई। उसके अगले जन्म के पति जैन धर्म के साधू हुए थे। वे १४ साल के बाद सूरत में आये और वहाँ उस कन्या के साथ बातचीत होनेपर पूर्व जन्म की बात का सत्यापन हुआ। यह सब हकीकत गुजराती भाषा की 'जीगर अने अमी' नामक पुस्तक में विस्तारपूर्वक दी हुई है। संक्षेप में यदि संबंध का पता न हो तो दो जन्म की घटना इकट्ठी नहीं होती, लेकिन संबंध का पता चले तब काल बदल जाता है। सिर्फ ज्ञान से काल बदलता है यह बात अब गणित से सिद्ध हुई है।

७. पुनर्जन्म का एक तीसरा प्रसंग इस.१९४२ के प्रयाग के कुंभ मेले के प्रसंग में हमारे जानने में आया था। उस समय रामदेवी नामक एक १२ साल की कन्या ने अपने भाषणों से लोगों का ध्यान खिंचा था। उसने अपने अगले जन्म के मातापिता को खोज लिये थे। उसके पूर्वजन्म के पिता और भाई भी उससे स्नेह करते हैं। इस हकीकत की एक पुस्तक सत्युग आश्रम, बहादुरगंज अल्लाहाबाद में मिलती है।

८. एक ढाई साल की बच्ची की माँ मर गयी और शरीर को जलाने के लिए ले गये तब वह बच्ची कहने लगी कि मुझे मेरी माँ के पास जाना है। मृत्यु क्या है और जन्म क्या है यह छोटे बच्चों को पता नहीं होता।

९. काल की ऐसी बात को आज के आइंस्टाइन के सापेक्षवाद से भी समझ सकते हैं। मानो कि नेपोलियन की लड़ाई को १५० साल हो गये। प्रकाश की गति एक सेकेण्ड में १, ८६, ००० मिल है। हमारी पृथ्वी से कुछ तारे इतने दूर हैं, कि यहाँ का प्रकाश वहाँ पहुँचने में १५० वर्ष लगते हैं। उस तारे पर कोई योगशक्ति से जा सके (और टेलीस्कोप से पृथ्वी पर देखे) तो नेपोलियन की लड़ाई अब हो रही हो ऐसा वह देख सकता है। यानी देखनेवाले की भूमिका के अनुसार देश और काल बदल जाते हैं।

१०. ट्रेन चलने के बाद जो गाँव पीछे चला गया वह नहीं दिखता, लेकिन उस समय विमान में चढ़कर देखे तो देख सकते है। उस समय भूतकाल वर्तमानकाल में आ जाता है। गति के अनुसार काल बदलता है। उस विषय में अनेक दृष्टांत गत प्रकरणों में दिये हुए हैं।

११. चिदात्मारूप जीवात्मा को जिस काल में प्रथम शब्द आदि विषयों का ज्ञान

होता है वह काल पीछे के उत्तरकाल की अपेक्षा पूर्वकाल कहा जाता है। जो प्रदेश एक प्रदेश से ऊपर के भाग में होता है। उसको नीचे के प्रदेश की अपेक्षा से ऊपर के भाग के रूप में वह जीव कल्प लेता है। इसप्रकार यह चिद्रूप जीव दिशाओं के भी उत्तर-दक्षिण आदि अनेक नामों को क्रम से कल्प लेता है।

१२. योगवासिष्ठ में अन्य स्थानपर कहा हुआ है, कि जैसे स्वप्न दृष्टा का ज्ञान ही स्वप्न है वैसे जाग्रत का ज्ञान ही जगत है। (३-५२-४३)

लीला का आख्यान पूरा करके वसिष्ठजी श्री रामचन्द्रजी को कहते हैं, कि काल कोई सच्ची वस्तु नहीं है। मनु का संपूर्ण जीवित (आयुष्य) होता है तब ब्रह्मा का एक मुहूर्त होता है। ब्रह्मा का पूरा जीवित विष्णु का एक दिन है और विष्णु का संपूर्ण जीवित महादेवजी का एक वासर है। और जिस मनुष्य का चित्त निरंतर ध्यान में ही रहता है उसको दिन नहीं है और रात्रि भी नहीं है। उसको पदार्थ नहीं और जगत भी नहीं है। क्योंकि उसका चित्त निर्विकल्प समाधि में ही होता है। हर एक मनुष्य के मन में जैसी भावना होती है वैसा उसको अनुभव होता है। मधुर पदार्थ में कड़वे की भावना करने से वह कड़वा लगता है और कड़वे में मधुरपने की भावना करने से वह कड़वा होते हुए भी मधुर लगता है। स्वप्न की स्त्री भी संवेदन से जाग्रत अवस्था की स्त्री की तरह प्रीति उपजाने वाली हो जाती है। इसप्रकार जिस मनुष्य को मन से जैसा आभास होता है वैसा उसको अनुभव होता है (३-६०-३४)। जैसे स्वप्नमें किसी मनुष्य का किसी से युद्ध होता हो लेकिन दूसरा जाग्रत में रहा हुआ मनुष्य उस युद्ध को नहीं देख सकता, वैसे ही अज्ञानी मनुष्य को स्वप्न के युद्ध की नाईं अनेक प्रकार के व्यवहार सहित जगत मालूम पड़ता है।

योगवासिष्ठ में देशकाल की विचित्रता के कुछ अन्य दृष्टांत हैं। उसमें एक राजा लवण का आख्यान भी प्रसिद्ध है। यह प्रसंग उत्पत्ति प्रकरण के सर्ग १०४ से शुरू होता है। राजा लवण ने भी गाधि ब्राह्मण की नाईं एक मुहूर्त में अनेक वर्षों का अनुभव किया था। उसने भी चांडाल कन्या से विवाह किया था। और उसके साथ उसने कुछ समय तक व्यवहार चलाया था। इस दृष्टांत में वसिष्ठजी श्री रामचंद्रजी से कहते हैं कि मन लघु पदार्थ को दीर्घ बनाता है, सत्य में असत्यत्त्व करता है और शत्रु में मित्रता करता है। मनुष्य को चित्तवृत्ति में * (*वृत्ति का स्वरूप परिशिष्ट-२ में दिया हुआ है।) जैसा प्रतिभास होता है वैसा उसको प्रत्यक्ष अनुभव होता है। अविद्या में सब वस्तुओं का संभव है। प्रतिभास की पराधीनता से सबकुछ उल्टा दिखता है। एक क्षण

कल्परूप और एक कल्प क्षणरूप दिखता है। बुद्धि विपरीत होने से जीव अपने आत्मा को भेड़ के रूप में देखता है। जो भेड़ शेर का रूप धारण करता है।

थोड़े समय पहले छोटा उदेपुर में एक मनुष्य को स्वप्न आया था उसमें उसने पहले एक स्त्री को देखा, कुछ देर के बाद वह गाय हो गयी और उसके बाद वह गाय में से धूल हो गयी।

स्वामी विवेकानंदजी ने अपने लेखों में एक स्थान पर नारदजी को काल का भ्रम कैसे हुआ था यह कहा हुआ है। उस प्रसंग में जंगल में घूमते हुए नारदजी के पास भगवान पानी माँगते हैं। नारदजी पानी लाने के लिए नजदीक के गाँव में जाते हैं। वहाँ एक कन्या उनको पूछने जाती है कि क्या चाहिए। उस कन्या का मुख देखकर नारदजी पानी की बात भूल जाते हैं। और उस कन्या के साथ विवाह करते हैं। फिर उनका गृहस्थाश्रम १२ साल तक चलता है। फिर उस गाँव की नदी में बाढ़ आती हैउसमें नारदजी की स्त्री और बच्चे बह जाते हैं। और पीछे से भगवान पुकारते हैं, “नारदजी ! अबतक पानी क्यों नहीं आया ? आपको गये आधा घण्टा हो गया। ” नारदजी को विचार आया कि 'आधा घण्टा !' बारह साल की घटनायें उसकी दृष्टि के आगे खड़ी हुई और वो सब आधे घण्टे में हुआ ! इसका नाम माया, अथवा भगवान की इन्द्रजाल। आज भी मनुष्य का जीव किसी कन्या को अपनी स्त्री के रूप में स्वीकार कर संसार की माया में ऐसा फंस जाता है कि जीवनरूपी पानी जो भगवान को देना है उसे वह जीव भूल जाता है। जो केवल आत्मनिष्ठा में रहते हैं वे ही ऐसी माया को जीत सकते हैं।

स्वप्न का पर्वत अणुमात्र भी जगह रोकता नहीं है और स्वप्न की घटना किसी काल को नहीं रोकती। वैसा ही जाग्रत में भी है। विशेष सामग्री के अभाव में जो विशेष ज्ञान होता है उसको भ्रांति कहते हैं। संक्षेप में अज्ञात ब्रह्म में दृश्य का आरोप है। जीव को जब द्वैत के अभाव का बोध हो जाता है तब कोई भी कारण नहीं रहने से जन्म नहीं लेता। मिथ्या अभिनिवेशमात्र ही जीव के जन्म का कारण है।

ॐ ॐ

१५ : मूल तत्त्व की खोज

ईस.१९४७ के फ़रवरी महीने में नर्मदा किनारे तीन महात्माओं की आपस में भेट हुई। उनके कल्पित नाम स्वरूपानंद, मुक्तानंद और आत्मानंद थे। उनके बीच मूल तत्त्व विषयक अर्थात् अधिष्ठान अथवा ब्रह्म विषयक निम्नलिखित वार्तालाप हुआ था :

मुक्तानंद : कुछ लोग कहते हैं, कि साधुओं को देशसेवा के कार्य में अथवा समाज सेवा के कार्य में लगना चाहिए।

स्वरूपानंद : जिसमें परिच्छिन्न अभिमान हो उनके लिए ये ठीक है, लेकिन सच्चे ब्रह्मज्ञानी में विश्व का अभिमान होता है। जिनमें विश्व का अभिमान होता है वे ब्रह्मज्ञान फ़ैलाने की सेवा करते हैं। उनको छोटे सुख की सेवा अनुकूल नहीं पड़ती। समाज सेवा का लक्ष्य मनुष्य के व्यावहारिक सुख और सुविधा बढ़ाने का है। सच्चा धर्म मनुष्य के द्वारा संपूर्ण विश्व का सच्चा तत्त्व समझने का प्रयास करता है।

मुक्तानंद : आपको योग संबंधित कोई अनुभव है ?

स्वरूपानंद : प्राण के निरोध से मन का निरोध हो सकता है इतना अनुभव हुआ है, लेकिन मन के निरोध से प्राण का निरोध होता हो वैसा नहीं मालूम पड़ता।

मुक्तानंद : मन जब शांत होता है तब प्राण भी शांत होते हैं। प्राण की ऐसी शांति को ज्ञान मार्ग में निरोध कहते हैं। प्राण बिलकुल बंद हो जाय तो ठीक ऐसा ज्ञानमार्ग में नहीं माना गया। और ज्ञान होने के बाद उसमें निष्ठा करने को ही ज्ञानमार्ग में योग कहते हैं। वह योग विधिरूप नहीं है, अपितु सिर्फ तत्त्व में सावधानता रूप होता है। आज के कई मनुष्यों को ऐसी गहन और उपयोगी बातों में रूचि नहीं होती। वे यह प्रश्न पूछते हैं कि समाज को आगे कैसे बढ़ाया जाय उसके उपाय बतलाइये।

स्वरूपानंद : उत्तम प्रकार की सेवा करना हो तो आर्थिक प्रश्न और राज्यसत्ता के प्रश्न खूब सरल बनाने चाहिए। उस विषय में जो चिंता लोगों के मन में है वह दूर हो तो वे ब्रह्मज्ञान की ओर ध्यान दे पायेंगे। उसके लिए सब देशों का एक राज्य होना चाहिए, शिक्षा में बदलाव लाना चाहिए, आबादी बढ़ाने पर अंकुश होना चाहिए और संस्कार के मंडल बनाने चाहिए। एक उत्तम संस्कार वाला मंडल, एक मध्यम संस्कार वाला मंडल और एक हल्के संस्कारवाला (कि जो आगे बढ़ नहीं सकते हो वैसे लोगों का) मंडल। ऐसी पद्धति रखी हो तो समाज में कई लोग आगे बढ़ सकेंगे, लेकिन अच्छे संस्कार वालों को और बुरे संस्कार वालों को साथ में रखने से कोई आगे बढ़ नहीं

पायेगा।

मुक्तानंद : मुझे लगता है, कि जिनकी इच्छा व्यवहार में रहकर आगे बढ़ने की हो उन्हें इन नियमों का पालन करना चाहिए :

१. सब कर्म ईश्वर की प्रीति के लिये करना और कर्म पूरे करने के बाद हररोज दिन में १०-१२ बार 'न मम' अर्थात् मेरा नहीं, मेरा नहीं ऐसा बोलते रहना।

२. ब्रह्मचर्य का पालन करना और वैराग्य बढ़ाना।

३. नित्य दो घण्टे सत्संग करना।

४. अपनी आय का अमुक हिस्सा नियमित रूपसे दान करना।

५. अहंकार दूर करना। अहंकार हिरण्यकशिपु का स्वरूप है। वह कहता है, कि मैं बाहर न मरुँ और अंदर भी न मरुँ, दिन में न मरुँ और रात्रि में भी न मरुँ, मनुष्य से न मरुँ और पशु से भी न मरुँ।

स्वरूपानंद : अहंकार को मारने के लिए आत्मज्ञान के सिवाय अन्य कोई रास्ता नहीं है। आत्मा और मन का जहाँ तादात्म्याभिमान है वहाँ कर्तृत्वादि सब धर्मों से विशिष्ट अंतःकरण का आत्मा में अध्यास होता है, इसलिए व्यावहारिक सत्ता और प्रातिभासिक सत्ता के भेद का पता नहीं चलता। आत्मा में माया के धर्म नहीं हैं, फिर भी उपाधिवश आत्मा ज्ञाता होता है तब कर्ता बनता है।

मुक्तानंद : जहाँ जीव और ब्रह्म की एकता का विषय आता है वहाँ दोनों में प्रतीयमान धर्मों का अध्यास मानकर एकता की जाती है। एक निर्धर्मक हो और दूसरा सधर्मक हो तो अत्यंत अभेद नहीं हो सकता। अतः दोनों के धर्म का आरोप सिद्ध करके फिर अपवाद करने की रीत है।

स्वरूपानंद : यह बात सच्ची है। ब्रह्म से अन्य कुछ नहीं होने से ब्रह्म किसीसे व्यावृत नहीं है। और किसीसे अनुगत नहीं है। दूसरी वस्तु अथवा दूसरी सत्ता मानने से ब्रह्मार्थ दुर्लभ हो जाता है। औपाधिक भेद उपाधिमात्र में होते हैं। शुद्ध चैतन्य में नहीं होते। अतः जहाँ भेद दिखते हैं वहाँ चिदाभास का खेल है।

मुक्तानंद : चिदाभास जड़ नहीं है, वैसे ही चेतन भी नहीं है, दोनों से विलक्षण है। अविद्या भी ऐसी ही है। अविद्या सत् से विलक्षण है इससे द्वैतापत्ति नहीं होती। असत् से विलक्षण होने से सविशेष जैसी भी लगती है। इसलिए जाग्रत आदि अवस्था बन सकती हैं, लेकिन वह पारमार्थिक सत्य नहीं है। अविद्या हो तो प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय रहते हैं। अविद्या न हो तो वे क्षणभर के लिए भी नहीं टिकते ! अतः मात्र अविद्या

की निवृत्ति करने की जरुरत है। इन तीनों की निवृत्ति करने की जरुरत नहीं है। अर्थाध्यास और ज्ञानाध्यास दोनों अविद्या है।

स्वरूपानंद : यह सच्ची बात है। जिस ज्ञान का विषय बाधित हो वह ज्ञान प्रमा ज्ञान नहीं है। घट आदि पदार्थ तो बाधित है। इसलिए उनको विषय करनेवाला ज्ञान प्रमा नहीं है। ब्रह्म का तीनों काल में बाध नहीं है। अतः ब्रह्म को विषय करनेवाला ज्ञान प्रमा है। जैसे सीपी में रूपा का ज्ञान भ्रांति है वैसे यह घड़ा है या यह मनुष्य है या यह जगत है यह ज्ञान भी भ्रांति ज्ञान है। लेकिन व्यवहार काल में बाध ज्ञान का अभाव होने से घटादि के ज्ञान को साधारण लौकिक पुरुष प्रमाण समझते हैं। सीपी में दिखनेवाले रूपा के ज्ञान के बाद और स्वप्न के समय भी बाधज्ञान से पहले कुछ समय तक उसमें प्रमाण का अभिमान हो जाता है।

इस बातचीत के समय नजदीक की गुफा में स्वामी आत्मानन्दजी ध्यानस्थ थे। अब वे ध्यान से उठे और बाहर आये। उन्होंने उपरोक्त दोनों स्वामीयों से पूछा : क्या विषय चल रहा है ?

मुक्तानंद : प्रमाण के विषय पर बात चल रही है।

आत्मानंद : चिदात्मा जैसे जैसे संकल्प फुराता है वैसा वैसा वह देखता है। यह अनुभव वृद्ध से लेकर छोटे से छोटे बालक पर्यंत प्रसिद्ध है। लेकिन कहीं भी चिदात्मा का नाश नहीं होता। वह चिदात्मा संसार को (द्रष्टान्त रूप से) देखता है, मुक्तपने का अनुभव करता है और सुखदु:ख को भी जानता है, लेकिन यह सब अपने चित्स्वरूप से अलग नहीं है। अपना सच्चा स्वरूप नहीं पहचानने से ही वह स्वयं 'मोह'-इसप्रकार का नाम धारण कर लेता है और अपने स्वरूप का ज्ञान होनेपर वह स्वयं 'मोक्ष' नाम धारण करता है। वस्तुतः देखा जाय तो किसी काल में किसी स्थानपर किसी वस्तु का नाश अथवा उत्पत्ति नहीं होते, क्योंकि सर्व चिन्मात्र है। और वह आकाश जैसा स्वच्छ है। ऐसा भी कुछ नहीं है कि जो सत्य हो और ऐसा भी कुछ नहीं है कि जो मिथ्या हो, और सच पूछो तो जिसके लिए जिसने जैसा निश्चय किया हो उसके प्रति वह वैसा होकर प्रतीत होता है। चिदात्मा जगतमें जैसे जैसे दृढ़ संकल्पों का स्फुरण फुराता है वैसा वैसा उसके अनुभव में आता है। यह बात अनुभव सिद्ध है इसलिये सर्व पदार्थों के समूह विष और अमृत की नाईं कालद्वारा, भोक्ता द्वारा और सहकारी कारण के योग से अनेक प्रकार से प्रतीति में आते हैं। लेकिन चिदात्मा का अनुसरण नहीं करे ऐसा कुछ भी नहीं है। यह बात सुप्रसिद्ध है, अतः मनुष्यों को

संकल्प करने में सावधानी रखनी चाहिये। मनुष्य जैसे जैसे संकल्प करने लगता है उन्हें चिदात्मा की सत्ता प्राप्त होती है और वह संकल्प सिद्ध होने लगते हैं। उस सत्ता को ही शास्त्रों में कामधेनु अथवा कल्पवृक्ष कहा जाता है। मूल तत्त्व की सत्ता संकल्प में फुरने लगती है।

मुक्तानंद : आज के नए सायन्स वाले भी सिद्ध कर सकते हैं, कि हम जैसे जैसे संकल्प करते है वैसा हमारा जीवन बन जाता है और फिर उस गलती का पता नहीं चलता। अतः प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय का स्वरूप मनुष्य की समझ में आये तो अनेक संकल्प दूर हो सकते हैं।

आत्मानंद : इन तीनों को जो सत्ता मिलती है वह मूल तत्त्व में से मिलती है। अतः मूलतत्त्व का स्वभाव पहचानना अधिक उपयोगी है। यदि यह बात तुम दूसरों को समझा सको तो सब महात्माओं से भी तुम्हारी कीर्ति अधिक बढ़ जाये ऐसा है।

मुक्तानंद : मेरी समझ के अनुसार और मेरे अनुभव के अनुसार जीव और जगत दोनों चेतन के विवर्त हैं। और अविद्या के परिणाम हैं। शब्दात्मक आकाशरूप बनी हुई अविद्या स्पर्शात्मक वायु को उत्पन्न करती है, क्योंकि स्वरूप के अंदर रही हुई शब्द की कार्यरूप शक्ति स्पर्शात्मक वायु में चली आती है। उसी प्रकार शब्द और स्पर्शरूप चेतन मिलकर तेज को उत्पन्न करता है।

आत्मानंद : जगत, कि जो एक प्रकार का परमात्मा का स्वप्न ही है वह चिद्रूप होने से और ब्रह्माकाश से कुछ भी भिन्न नहीं होने से सर्व ब्रह्मरूप है। ऐसा अनुभव होता है। जगत रूपी भ्रम अत्यंत दृश्य होने से और महा चैतन्य अदृश्य होने से चिदात्मा मदशक्ति की नाईं स्वयं अदृश्य रूप से रहा हुआ है, यह बात भी (वैसा माननेवाले को) सत्य जैसी दिखती है।

स्वरूपानंद : तो क्या और कोई सत्य है ?

आत्मानंद : सत्य दो नहीं है, पर मूल तत्त्व की सत्ता का चमत्कार समझने जैसा है। सर्व दृश्य की उपरामता होने पर प्राप्त होनेवाला मोक्ष अज्ञान के कारण नहीं मिलने से और उसके बिना अद्वितीय चिदात्मा अलभ्य होने से एवम् मोक्ष के समय भी उसका अलग अनुभव करनेवाला दूसरा कोई नहीं होने से शून्यतावाद भी (उस मत को माननेवाले को) जैसे सत्य हो ऐसा प्रतीत होता है। तुमने आकाश, वायु, तेज, जल आदि की जो सांख्य की पद्धति बतायी उसमें पुरुष चिन्मात्र है और अकर्ता है। जगत प्रधानरूप से मूल कारण में से महत्तत्व, अहंकार आदि क्रम से आविर्भूत होता है, ऐसे

माननेवालों (सांख्य मतवालों) को वैसा ही अर्थ अनुभव में आने से वह बात सत्य लगती है। क्योंकि उनको सबकुछ वैसा ही दृष्टिगोचर होता है और अनुभव में भी आता है।

मुक्तानंद : इससे लगता है, कि जिसमें जैसा ज्ञान दृढ़ हो गया हो उसको वह प्रमाणरूप लगता है। न्यूसपेपर में राजनिति की बातें पढ़नेवाले का ज्ञान इतना प्रमाण रूप हो जाता है, कि उनको वह जगत सच्चा लगता है और उससे हररोज न्यूसपेपर पढ़ने का मन होता है। सिनेमा देखनेवाले का ज्ञान उनका प्रमाण हो जाता है और उनको हररोज सिनेमा देखने का मन होता है। विषयी मनुष्य को विषय का ज्ञान प्रमाण रूप हो जाता है। और उनको विषयों का जगत ही सच्चा जगत हो वैसा लगता है। यह सब देखते हुए ऐसा मालूम पड़ता है, कि चिदात्मा मनुष्य की कल्पनाओं का अनुसरण करता है।

जब देव, मनुष्य और असुर ब्रह्माजी के पास ज्ञान प्राप्ति के लिए गये तब ब्रह्माजी ने हर एक को 'द' शब्द कहा। उसका अर्थ देवों ने ऐसा किया, कि हमको दमन करने को कहा गया है, मनुष्यों ने अर्थ निकाला कि हमको दान करने को कहा गया और असुरों ने अर्थ निकाला, कि हमको दया करने को कहा है। इसप्रकार एक ही अक्षर के तीन अर्थ हो गये थे।

आत्मानंद : दृश्य ब्रह्म का एक विवर्त है ऐसा मानने वाले (वेदांती) को वह मत सत्य प्रतीत होता है। क्योंकि उनको सबकुछ वैसा ही दृष्टिगोचर होता है और अनुभव में आता है। जगत परमाणुओं के समूह रूप में है। ऐसे (कणाद, गौतम आदि का) मत भी है। ऐसा उनको अनुभव भी होने लगता है। जैसा सब कुछ यहाँ दिखता है वैसा ही परलोक में भी है। जगत सचमुच अनिर्वचनीय है। लेकिन उसको सद्रूप या असद्रूप नहीं कह सकते। मन की प्रौढ़ कल्पना के अनुसार जगत की प्रतीति होती है। यह बात भी (वैसा मानने वाले को वैसा अनुभव होने से) सत्य प्रतीत होता है।

मुक्तानंद : श्रीमद्भागवत में छठे स्कंध में जहाँ वृत्रासुर के जन्म की बात आती है। वहाँ यह कहते हैं, कि वृत्रासुररूपी तमोगुण से जब सब लोग आवृत्त हो गये थे तब देवता भयभीत हुए और भगवान के पास जाकर आवरण दूर करने के लिए भगवान की स्तुति करने लगे। उस स्तुति में ऐसा कहा है, कि जैसे एक ही रस्सी भ्रांति रहित पुरुष को रस्सी दिखती है और भ्रांत पुरुष को सर्प, दंड, माला, धारा आदि रूप से प्रतीत होती है। उसी तरह आप भी विवेकी और अविवेकी पुरुषों की बुद्धि का अनुसरण

करते हो। अर्थात् अविवेकी पुरुषों को आप अन्य संसारी जीवों के समान कर्ता-भोक्ता जैसे मालूम पड़ते हो। (६-९-३७) लेकिन विचारपूर्वक देखनेपर आप ही सब वस्तुओं के सारभूत हैं। आप ही सर्वेश्वर हैं। आप ही जगत के कारणरूप महत्तत्त्व आदि के भी कारण हैं। और सब के अंतर्यामी होने से आप ही सब विषयों की प्रतीति से लक्षित हैं। और आप ही को श्रुति अनात्म वस्तुओं का निषेध करके सबके अधिष्ठानरूप यानी मूल तत्त्वरूप अवशेष रखती है।

आत्मानंद : उस मूल तत्त्व की ही यह सब शक्ति है। उसकी शक्ति से ही हर एक को अपना प्रमाण सच्चा लगता है। कुछ (चार्वाक आदि) वादी बाहर का जगत ही सत्य है ऐसा मानते हैं। पृथ्वी आदि पंचभूतों से अलग अंतरात्मा नहीं है ऐसा कहते हैं। उनके विचार के अनुसार यह बात भी सत्य है, क्योंकि अतीन्द्रिय आत्मा को वे अपने देह में विचार करनेपर भी देख नहीं सकते। वस्तुमात्र का प्रतिक्षण परिवर्तन होता देखने में आने से क्षणिक विज्ञानवादीओं की क्षणिकता विषयक बुद्धि भी उनकी दृष्टि में युक्त ही भासती है। क्योंकि सर्व के आदिरूप परमतत्त्व सर्वशक्तिमान होने से उसमें सब विकल्पों का समावेश होना संभव है। जैसे घड़े में बंद पक्षी घड़े का मुँह खुलनेपर उसमें से उड़कर बाहर चला जाय वैसे देह में परिच्छिन्न आकार में रहा हुआ जीव कर्म का क्षय हो जानेपर देह में से उड़कर परलोक में चला जाता है। ऐसा (जैन मत) का विचार भी वैसा मानने वाले के अनुभव के अनुसार सच्चा लगता है। ऐसे ही यवन आदि की जीव आदि की कल्पना (उसके अनुभव के अनुसार) झूठी नहीं कह सकते। और सत्पुरुष, विप्र, अग्नि, विष, अमृत और मृत्यु आदि विषम पदार्थों में भी समान बुद्धि रखनेवाले होते हैं। जैसे कि तत्त्ववेत्ताओं की दृष्टि में ब्रह्म ही सर्वरूप है और सर्व का आत्मरूप है।

मुक्तानंद : ब्रह्माजी ने जब नारदजी को ज्ञान दिया तब कहा कि (भागवत-२-६-३६) जिनके वास्तविक स्वरूप को मैं, तू और महादेवजी भी जान नहीं सकते उनको दूसरे देवतागण कैसे जान सकते हैं ? ऐसी माया से रचित इस जगत को भी हम सब माया से मोहित होने से अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार जानते हैं। और जो मुनिजन अपने देह, मन और इन्द्रियों को स्वाधीन और शांत करके रहते हैं, वे उस मूल तत्त्व को जान सकते हैं। लेकिन जब असत्पुरुष कुतर्क करते हैं तब उस कुतर्क से आच्छादित हो जाने से अंतर्धान हो जाते हैं अर्थात् वे उसका स्वरूप कुछ जान नहीं सकते।

आत्मानंद : अतः हमारा ज्ञान कैसा है उसकी और ठीक से ध्यान देने की जरुरत है। मूलतत्त्व का अनुसंधान रखकर जो कुछ किया जाता है उसका फल अच्छा आता है और हर एक संकल्प सिद्ध होता है, लेकिन मूलतत्त्व को भूल गये तो कुछ सार नहीं मिलता।

मुक्तानंद : मूलतत्त्व को भूलने पर कन्या के विवाह में दूल्हे का घात करने जैसा हो जाय।

आत्मानंद : उस दशा में सत्य सापेक्ष हो जाता है। और हर एक को अपना मत सच्चा लगता है। यह सब स्वभाव से सिद्ध ही है, ऐसा स्वभाववादियों का कहना भी उस मतको स्वीकारनेवालों को युक्त प्रतीत होता है। क्योंकि खोज करनेपर भी कोई बुद्धिमान सर्वकर्ता उनकी बुद्धि में आरूढ़ नहीं होता, क्योंकि उनको लगता है कि जगत में यदि एक ही कर्ता हो तो, दंगे, लड़ाई, अकाल आदि कैसे आ सकते हैं।

मुक्तानंद : ऐसा प्रश्न राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से भागवत के सप्तम स्कंध के आरंभ में किया हुआ है। उसके उत्तर में शुकदेवजी ने कहा है, कि बाध्य-बाधक भाव जो मालूम पड़ता है। वह माया के कारण मालूम पड़ता है।

आत्मानंद : वैष्णव माया को भगवान की शक्ति मानते हैं। सर्वत्र एक ही कर्ता है ऐसी बात, कि जो ईश्वर में आसक्त चित्तवाले पुरुष कहते हैं वह भी सत्य ही है। क्योंकि वह उपासक पुरुष, अपना दृढ़ निश्चय होने से सर्वकर्ता परमेश्वर को अवश्य प्राप्त होता है। यह बात अबाधित है। कुछ आस्तिक इस लोक की नाईं ही परलोक को भी मानते हैं। और तीर्थस्नान, अग्निहोत्र आदि अन्य कर्म भी (परलोक में सुख साधक होने से) निष्फल नहीं है। ऐसी उनकी प्रबल भावना भी सत्य है, ऐसा आप समझो।

मुक्तानंद : अवश्य, भावना के अनुसार जगत दिखता है और भावना के अनुसार भगवान का स्वरूप दिखता है। जब श्रीकृष्ण ने कंस को मारने के लिए रंगभूमिमें प्रवेश किया तब उन मल्लों की दृष्टि में वज्र जैसे कठोर लग रहे थे, मनुष्यों को नररत्न लगे, स्त्रियों को साक्षात् कामदेव के रूप लगे, गोपों को स्वजन लग रहे थे, दुष्ट राजाओं को शासक (दंड देनेवाले) लग रहे थे। पिता-माता को बालक लग रहे थे, कंस को मृत्युरुप लग रहे थे, अज्ञानियों को विराट रूप लग रहे थे, योगियों को परमतत्त्व रूप लग रहे थे, और वृष्णिवंश के यादवों को इष्टदेव के समान लग रहे थे, उसमें निम्नलिखित ग्यारह भाव वाले भगवान दिख रहे थे।

१. मल्लों का रूद्र भाव होने से उनको भगवान में रूद्र भाव लग रहा था।

२. मनुष्यों में मनुष्य के जैसे बुद्धि होने से उनको भगवान में अद्भुत भाव लग रहा था।

३. स्त्रियों में कामना होने से उनको भगवान में शृंगाररस दिखता था।

४. गोप को भगवान में हास्यरस दिखता था।

५. राजाओं को भगवान में वीररस दिखता था।

६. वसुदेव और देवकी को वात्सल्यभाव लग रहा था।

७. कंस को भगवान भयानक लग रहे थे।

८. अज्ञानी को बीभत्स लग रहे थे।

९. योगी को भगवान शांत लगते थे।

१०. कुछ यादवों को भगवान प्रेमी लग रहे थे।

और

११. कुछ यादव भगवान को अपना इष्टदेवमानते थे।

इसतरह देखनेवाले में ग्यारह प्रकार के भाव होने से भगवान में भी ग्यारह भाव हो वैसा मालूम पड़ता था।

सीताजी के स्वयंवर के समय जब श्री रामचन्द्रजी त्र्यम्बक धनुष को तोड़ने के लिए खड़े हुए, तब उनका स्वरूप कुछ ऐसा दिखता था :

१. साधारण राजाओं को भगवान में वीररस दिखता था।

२. कुटिल राजाओं को भयानक मूर्ति दिखती थी।

३. राक्षसों को वे कालरूप लगे थे।

४. नगरवासियों को नररत्न लगते थे।

५. स्त्रियों को अपनी अपनी रूचि के अनुसार उनमें शृंगाररस दिखता था।

६. विद्वानों को विराटरूप लग रहे थे।

७. जनक को रिश्तेदार के रूप में दिखे।

८. रानियों को बालक के रूप में दिखे।

९. योगियों को परमतत्त्व रूप लग रहे थे।

१०. भक्तों को इष्टदेव के रूप में दिखे।

११. सीताजी को जो स्वरूप दिखा वह तो अनिर्वचनीय था।

अर्थात् ब्रह्माकार वृत्ति से आवरण भंग होने के बाद जैसा अनुभव हो वैसा लगता था।

आत्मानंद : मूल तत्त्व की सत्ता अत्यंत विचित्र प्रकार की है। यह सर्व शून्य है ऐसा शून्यवादी बौद्धों का मत भी (उनके विचार के अनुसार) सत्य है, क्योंकि उस शून्यवाद में विचार करनेपर आखिर में कुछ भी शेष नहीं रहता। इसप्रकार सर्व वादीयों के इच्छित विचार को एक चिदात्मा ही (भगवान के अनुसार) चिंतामणि की नाईं और कल्पवृक्ष की नाईं अपने आप ही शीघ्र संपादन कर के देता है कि जो स्वयं अपने स्वरूप में ही चिदाकाश के रूप में स्थित है। सत् ख्यातिवादी, असत् ख्यातिवादी और अनिर्वचनीय ख्यातिवादी इन सब के मत भी झूठे नहीं है। क्योंकि ब्रह्म, कि जो सर्वशक्तिमान है, उसकी माया-शक्ति अनिर्वचनीय है और वह शून्य नहीं है। वैसे ब्रह्मरूप भी नहीं है, इसलिये अनिर्वचनीय कह सकते हैं। जो पुरुष जिस निश्चय में स्थिर हो गया हो उसमें से यदि अपनी बालक बुद्धि से पीछे न हटे तो अवश्य फल प्राप्त करता है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष को पंडितों के साथ विचार करके श्रेष्ठ वस्तु कि जो तत्त्वरूप हो उसमें आरूढ़ होकर निश्चय ग्रहण करना चाहिए लेकिन जिस किसी सिद्धांत को बिना विचारे ग्रहण नहीं कर लेना चाहिए।

मुक्तानंद : यह बात सच्ची मालूम पड़ती है। असहकार की हवा चलती है तब यह बात भी प्रमाण हो जाती है, पैसा कमाने की हवा चलने लगती है तब वह बात भी प्रमाण हो जाती है। मजदूरों के राज्य में मजदूरी का मूल्य अधिक आंका जाता है।

आत्मानंद : जैसे कोई कार्यरूप धट मृतिकामात्र है वैसे प्रकृति आदि आत्मारूप ही है, भिन्न नहीं है। आत्मा सत्य संकल्परूप है। वह जैसा जैसा संकल्प करता है वैसा वैसा प्रतीत होता है। जहाँ सीपी से रूपा भिन्न देखने में आता है, वहाँ सीपी में रूपा का अध्यास बन सकता है। लेकिन आत्मा से अन्यत्र अनात्मा को नहीं देख सकते। अतः आत्मा में अनात्मा का अध्यास भी नहीं बनता। इसलिये ब्रह्मदशा में ज्ञान या अज्ञान की बातें नहीं हो सकती।

मुक्तानंद : जब श्रीकृष्ण के साथ पुण्यशाली ग्वाले सुखपूर्वक क्रीड़ा करते थे तब भगवान तत्त्वज्ञानी पुरुषों की दृष्टि में ब्रह्मानंद स्वरूप अद्वितीय लगते थे, दास्यभाव को प्राप्त हुए भक्तों की दृष्टि में अपने इष्टदेव के रूप में लगते थे। और माया से मोहित हुए पुरुषों की दृष्टि में छोटे मनुष्य-बालक के रूप में दिख रहे थे। (भागवत-१०-१२-११)

आत्मानंद : यह जगत उत्पन्न हुआ है यह सिद्ध कर सकते हैं और उत्पन्न नहीं हुआ यह भी सिद्ध कर सकते हैं। अतः मूल तत्त्व की सत्ता अत्यंत अद्भुत है। ऐसी ऊँची बातें सिर्फ सत्संग से टिक सकती हैं। शास्त्र के अध्ययन से और व्यवहार से

(आचरण से) मनुष्य उत्तम बुद्धिवाला होता है। अतः जहाँ भी उत्तम बुद्धिवाला साधू भाग्ययोग से मिल जाय तो उसका आश्रय ग्रहण करना चाहिए। सत् शास्त्रों के अनुसार आचरण करनेवाले सत्पुरुषों में कुछ दैवयोग से संदेह से विवाद पैदा हो तो उसमें भी जो सबका समाधान करके उनको आनंदित करे और निषिद्ध आचरण से रहित हो उस पुरुष को श्रेष्ठ समझना और उनका आश्रय लेना। विशाल चिदाकाश में प्राणियों की भोग विषयक तृष्णा लता की तरह प्रथम हजारों जगतरूपी बेलों को पसार के खुद भी पसरी हुई है। उसमें सारासार का विचार कर परमार्थ की ओर ध्यान रखनेवाले तत्त्वज्ञ पंडित कोई विरले ही होते हैं।

स्वरूपानंद : कोई दो मित्र काशी देखने चले और एक दिन में काशी देखकर विश्वनाथ के दर्शन करने का निश्चय किया। वे सुबह में काशी की एक धर्मशाला में आकर ठहरे। उसमें एक मित्र को ऐसी इच्छा हुई कि पहले खाने पीने का काम पूरा करके फिर काशी देखने निकलना चाहिए। उसने खाने-पीने और रसोई बनाने की वस्तुयें इकट्ठी की और १ बजे भोजन करने के बाद थोड़ा आराम किया और शाम को थोड़ा काशी देखा, लेकिन विश्वनाथ के दर्शन करने का समय नहीं मिला। दूसरे मित्र ने बाजार से जो नास्ता मिला वह खाकर काशी देख लिया और विश्वनाथ के दर्शन भी कर लिए। इस दृष्टांत में दूसरे मनुष्य के पास अधिक बुद्धि थी ऐसा मालूम पड़ता है। वैसे ही जो मनुष्य सिर्फ खाने पीने में और पैसा कमाने में पूरा जीवन बिताएं तो उनको ब्रह्मरूपी विश्वनाथ के दर्शन करने का समय नहीं मिलेगा, लेकिन जीवन की जरूरतों को थोड़े में निपटाना आ जाय तो विश्वनाथ के दर्शन सरलता से कर सकते हैं।

मुक्तानंद : ऐसा तो जब सब देशों का एक राज्य हो, आबादी बढ़नेपर अंकुश लगे और पाठशालाओं में आत्मज्ञान दे सके वैसे समर्थ साधू तैयार हो तब हो सकता है।

स्वरूपानंद : बालक जब बालक में से बड़ी उम्र का मनुष्य होता है तब उसके जीवमें (चिदाभास में) बहुत परिवर्तन होता है। और जब जीव में परिवर्तन होता है तब उसके ज्ञान में भी बदलाव आता है और उसके ज्ञेय में भी उसको परिवर्तन मालूम पड़ता है।

मुक्तानंद : यह बात सत्य है। अज्ञान चिदाभास (जीव) को होता है और ज्ञान भी उसीको होता है। आत्मा तो सदा ज्ञान स्वरूप से है। जीव अपने आपको कैसा मानता है उसपर पूरा आधार है। भगवान सब स्थानपर पूर्ण है, लेकिन हमारी वृत्ति जितना भाव ग्रहण कर सकती है उतने ही अनुभव में आते हैं।

आत्मानंद : जब हम सब अद्वैत भाव से देख सकें तब हमको मूलतत्त्व की सत्ता का अनुभव होता है, उसीको सद्गुण कहते हैं।

मुक्तानंद : वह स्वरूप सब को प्राप्त है। उसको भविष्य नहीं है। हर एक वस्तु के लिए भविष्य होना चाहिए ऐसा सिद्धांत ठीक नहीं है। विद्यार्थियों को यह बात ठीक से समझनी चाहिए। अद्वैतभाव को काल नहीं है। वह भाव कोई भी अधिकारी पुरुष किसी भी समय प्राप्त कर सकता है। उसमें प्राप्त की प्राप्ति है, उसमें आवरण सिर्फ अहंकार का है। अहंकार हिरण्यकशिपु का स्वरूप है। वह दिन में नहीं मरता और रात्रि में भी नहीं मरता, अंदर नहीं मरता और बाहर भी नहीं मरता, सिर्फ प्रह्लाद के जैसा अद्वैतज्ञान हो तब मरता है।

आत्मानंद : अपरोक्ष अनुभव तो मुसीबतों के समय ही होता है। सच्चा साधू हो वह ऐसा समझता है कि मनुष्य के जीवन की हर एक क्षण एक प्रकार का युद्ध है। क्योंकि हर एक संयोगों में आत्मज्ञान को अनुकूल हो वैसे निर्णय उसको करने पड़ते हैं। इसलिए जैसे युद्ध के लिए घोड़ों को और योद्धाओं को तैयार करने पड़ते हैं वैसे आत्मज्ञान के लिए भी जिज्ञासुओं को बराबर तैयार करने पड़ते हैं। बाहर के युद्ध की अपेक्षा अपने भीतर रहे हुए काम, क्रोध और लोभ आदि को जीतना अधिक कठिन होने से, क्षत्रिय बहुत मिल सकते हैं। लेकिन ब्रह्मज्ञानी बहुत नहीं मिल सकते। क्षत्रियों को सिर्फ अमुक कार्य के समय ही अहंकार दूर करना पड़ता है। लेकिन ब्रह्मज्ञानी को सब कार्यों में अहंकार दूर करना पड़ता है। पर ब्रह्मज्ञानी तो शत्रु को भी प्रेम करता है अथवा उनके लिए कोई शत्रु नहीं होता। क्षत्रियों को कोई कोई शत्रु लगते हैं।

साधुओं के जीवन अत्यंत सादगी भरे होते हैं। इसलिए वे अधिक प्रसिद्धि में नहीं आते, उनमें निरहंकारीपना होने से भगवान उनके द्वारा कार्य करते हैं। इसलिए उनके छोटे से कर्म का भी बड़े से बड़ा परिणाम आता है। जीवन कैसे बदलना यह उनके दृष्टान्त से दूसरे जान सकते हैं।

स्वरूपानंद : भेददृष्टि अविद्या का स्वरूप है और अभेद दृष्टि विद्या का स्वरूप है। जब पूर्ण दृष्टि खिलती है तब बंध अथवा मोक्ष जैसा नहीं लगता।

मुक्तानंद : कुछ लोग मानते हैं, कि हम दूसरों की सेवा करेंगे तो ही अद्वैत सिद्ध होगा।

स्वरूपानंद : अद्वैत सिद्ध ही है अतः किस भाव से सेवा होती है उसपर पूरा आधार है।

अधिकतर सेवा के कर्म के समय अद्वैत का अनुभव मिलता है। पर क्रिया पूरी होने के बाद फिर द्वैत स्फुरने लगता है। ज्ञान से जो अद्वैत अनुभव में आता है उसमें आत्मा की एकता होती है। इसलिये अद्वैत के बाद द्वैत नहीं स्फुरता। ज्ञान नित्य वस्तु है, उतने प्रमाण में कर्मों में नित्यता नहीं रहती। इन्ही कारणों से राजनेता मनुष्य अद्वैत भाव नहीं रख सकते। वे ऐतिहासिक सुधार में मानते हैं। उनके सुधार में भविष्य होता है और उस भविष्य का अंत नहीं आता। काउंसिलों में, मंदिरों में, और समाज सेवामें भगवान भविष्य में होते हैं, वर्तमान में नहीं है। जहाँ एक राज्य दूसरे राज्यपर लड़ाई करने की तैयारी करे, वहाँ अद्वैत का अनुभव नहीं रहता, इतना ही नहीं पर कई बार अभिमान बढ़ जाता है।

आत्मानंद : किसी भी तरह अपने मनमें अशांति उत्पन्न नहीं होने देना चाहिये। रेडियो और न्यूज़पेपरों के द्वारा बारबार समाचार प्राप्त करने की आदत से चित्तमें हमेशा कल क्या होगा ऐसी उत्सुकता बनी रहती है। ऐसे चित्त में अद्वैतभाव स्थिर नहीं रह सकता। जिस चित्त में इतिहास की घटनायें चलती रहती हैं उसमें तीन काल बन जाते हैं। लेकिन परम सत्य अर्थात् ब्रह्म को काल नहीं है। ब्रह्मदशा प्राप्त करने के लिए इतिहास के ज्ञान की जरुरत नहीं है। उल्टा ऐसा ज्ञान विघ्नरूप होता है। जो अपनी अल्प मान्यतायें नहीं छोड़ते और उसे प्रमाण रूप मानते हैं वे ब्रह्मभाव को प्राप्त नहीं कर सकते। सब बातों में सादगी और सरलता बनाये रखना कठिन है। किसी प्रकार के मतमतान्तर प्रकट करके उथल-पुथल करना सरल है। जो विशेष मान योग्य पद भोग रहे हैं उनमें सादगी आना बहुत मुश्किल है। प्रेमरहित ज्ञान से अहंकार आने की संभावना है और ज्ञानरहित प्रेम से विषयों में बह जायेंगे। अतः सच्चे ज्ञान की जरुरत है और सच्चे प्रेम की जरुरत है।

मुक्तानंद : जिनको कुछ करके दिखाने की इच्छा रहती है उनमें कुछ अपूर्णता होती है। उनमें अभिमान और मद तुरंत प्रकट हो जाता है। आज के समय में मनुष्य के मन की दशा पर ध्यान नहीं दिया जाता, पर परिस्थिति बदलने पर ध्यान दिया जाता है। अतः सुख का आधार बाह्य वस्तु पर रह जाता है। वास्तवमें सुख का आधार संयम पर है उसके बदले सुखका आधार कर्म, प्रवृत्ति और मजदूरी को माना जाता है।

स्वरूपानंद : बहुत लोगों को आत्मज्ञान नहीं रुचता, क्योंकि उसमें संयम की जरुरत पड़ती है। उनको तुरंत मिलनेवाला माया का सुख अच्छा लगता है। पर उससे

भय और चिंता बढ़ते हैं। वास्तवमें हमें क्या करना है यह जानने से पहले हमें कैसा बनना है यह जानने की प्रथम आवश्यकता है। यदि भगवान की ओर हमारा लक्ष्य होगा तो हमारे कर्म अच्छे ही होंगे। यदि अहंकार की तरफ हमारा लक्ष्य होगा तो कर्म में गलतियाँ होती रहेगी। सब सुधार के हेतु मनुष्य के लिए अच्छा भविष्य किसे कहना और उस भविष्य का अंत कब आये यह जानना सरल नहीं है। जिस धर्म में सनातन तत्त्व अर्थात् नित्य की ओर पूरा ध्यान रहता है, उस धर्म के मनुष्य क्षणिक सुधार में नहीं मानते। वे समझ बिगड़े नहीं उसका ध्यान रखते हैं। इसलिए सुधार पर सुधार करने की जरुरत नहीं पड़ती।

मुक्तानंद : यह बात सच्ची है। सनातन धर्मवाले दूसरे लोगों को दुःख नहीं देते। इतना ही नहीं, पशुओं को भी दुःख नहीं देते। सच्ची भक्ति बढ़ाने के लिए संसार के सुख से भी वैराग्य आना चाहिए। किसी धर्म में जब सड़न लग जाती है तब वह धर्म अन्य जीवों के लिए दुःखरूप हो जाता है। जैसे राज्य (शासक) में अहंकार आये तो अनेक प्रकार के अनर्थ करवाता है। वैसे धर्म में अहंकार आ जाता है तो भी वह अनेक प्रकार के अनर्थों का कारण बन जाता है। प्रथम ऐसा समझना है कि हमारा कल्याण भविष्य में नहीं, अपितु वर्तमान में ही है। कार्यकारण भाव काल के अंदर रहता है इसलिए काल से मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति के लिए नित्य चैतन्य के अनुभव की जरुरत रहती है। वैसा अनुभव शुद्ध अंतःकरण में उत्पन्न होता है। संक्षेप में सनातन धर्म से इतिहास को अधिक प्रमाण (महत्त्व) देना नहीं चाहिए।

जैसे कुछ लोग मूर्ति की पूजा करते हैं लेकिन उससे आगे नहीं बढ़ सकते, वैसे कुछ बुद्धिवाले मनुष्य अपनी मान्यता रूपी मूर्ति की पूजा करते हैं। समाज में और राजनीति में ऐसी मान्यता रूपी अनेक मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। विधानसभा में जितने कानून बनाये जाते हैं वे सब मूर्तियाँ है। उससे व्यवहार में कुछ सुविधा मिलती है। लेकिन परमार्थदृष्टि विकसित करने के लिये यानी मनुष्य को आत्मसाक्षात्कार करने के लिये उनमें से कितने कानून उपयोगी होते हैं उसका हिसाब करेंगे तो बहुत कम मिलेंगे। स्थूल वस्तु मोक्ष में उपयोगी नहीं है। जो उपाय गरीबी दूर करने के काम में आते हैं उन उपायों से आत्मज्ञान नहीं होता। जिन सेठ लोगों को गरीबी का पता नहीं है वे भी अज्ञान में डूबे हुए हैं।

स्वरूपानंद : नीति के सेवक भी नीति की पूजा करते हैं और आगे बढ़ नहीं सकते। वे भगवान को नहीं पूज सकते। वे नीति को साधन मानने की अपेक्षा नीति को

फल मान लेते हैं। किसी मनुष्य को ऐसा लगता है कि उसका पूरा जीवन परोपकार में जाता है। फिर भी उस समय भी गुप्त ढंग से भी उसके अहंकार का पोषण होता है। उस दशा में खुद ही खुद को मान देता है और अपना प्रमाण बन जाता है। मान को संस्कृत में प्रमाण कहते हैं, इसलिये सबको मान चाहिए।

आत्मानंद : आत्मज्ञानी मनुष्य का मन बहुत शांत रहता है। स्वयं ज्ञानी है ऐसा बताने की भी इच्छा उसको नहीं होती। अहंकार पर थोड़ा सा चित्त जाता है तो वह चित्त भगवान में नहीं लगता।

स्वरूपानंद : कुछ मनुष्यों को भगवान के दर्शन होते हैं वह कैसे होता होगा ?

मुक्तानंद : उसमें भावना की प्रबलता चैतन्य के साथ काम करती है। स्वप्न में हम जैसे अपनी भावना से स्वयं से भिन्न कुछ बनाते हैं वैसा जाग्रत में भी बना सकते है पर ऐसी दशा में हम कौन ? उस बात का अज्ञान रहता है।

स्वरूपानंद : लेकिन वैसा अलग दिखनेवाला चैतन्य अथवा मूर्ति अनुग्रह कैसे कर सकती है ?

मुक्तानंद : स्वप्न में जैसे हम से अलग दिखनेवाला पुरुष हम को मदद कर सकता है वैसे जाग्रत में भी बन सकता है। धार्मिक क्रिया परम सत्य नहीं है। जो जो दृश्य दिखते हैं वह परब्रह्म नहीं है। ध्रुव ने विष्णु के दर्शन करके राज्य माँगा और फिर बादमें पछताये। अर्जुन ने श्रीकृष्ण को मित्र मानकर उनसे बातें की थी और उसके लिए बाद में पछताये थे। वसुदेवजी श्रीकृष्णको पुत्र के रूप में मान लेते हैं। और फिर नारदजी के उपदेश से अपनी गलती का पता चलता है।

स्वरूपानंद : राजकाज (प्रशासन) में पड़े हुए प्रधान अपनी कल्पित भावनाओं से मानो मोक्ष मिलता हो ऐसा मानकर वैसी भावनायें समाज के सामने रखते हैं, तब नए प्रकार की मूर्ति पूजा शुरू होती है।

मुक्तानंद : थोड़ा भी अहंकार शुरू होता है कि तुरंत उतने अंश में आत्मज्ञान पर आवरण शुरू होता है।

आत्मानंद : आवरण और विक्षेप दूर करने का सच्चा मार्ग प्रार्थना में है अथवा अधिष्ठान के स्मरण में है।

मुक्तानंद : अधिष्ठान का सच्चा अर्थ ज्ञान है। घट का ज्ञान, पट का ज्ञान इसप्रकार जानने की क्रियायें अनेक है पर ज्ञान एक है। घट और पट अनेक हैं और भिन्न है। पर इनका ज्ञान अनेक और भिन्न नहीं है फिर भी अनेक जैसा प्रतीत होता

है। जब उस ज्ञान का घट की उपाधि के साथ संबंध होता है, तब उसको घटज्ञान कहते हैं और पट की उपाधि से पटज्ञान कहलाता है। देवदत्त का ज्ञान विष्णुदत्त से भिन्न नहीं है और पहले कोई मर गया ऐसे मनुष्य का ज्ञान भी अभी जो जीवित है उससे भिन्न नहीं है। संसार में भूत, वर्तमान अथवा भविष्य तीनों काल की दृष्टि से ज्ञान एक है। उसको प्रकट होने के अंतःकरण अनेक हैं। और अंतःकरण की उपाधि के कारण ज्ञान भी अनेक जैसा दिखता है। सुषुप्ति में भी ज्ञान रहता है। लेकिन उसको प्रकट करनेवाला उपाधियुक्त अंतः करण मालूम नहीं पड़ता। जगने के बाद जब हम किसी वस्तु की कल्पना करते हैं तब उस वस्तु की आकृति हमारे मन पर पड़ती है। यह प्राप्त आकृति ज्ञान से अलग कोई वस्तु नहीं है पर ज्ञान ही है। जैसे जल की तरंग केवल जल ही है। वैसे भगवान ज्ञानरूप से जगत के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं। एक ही वस्तु हर एक रूप में और हर एक विभूति में प्रकाशमान है। देवदत्त बैठा था, अब खड़ा हो गया पर वास्तवमें देवदत्त सृष्टा नहीं है और सृष्टि भी नहीं है। वैसा ही ज्ञान के विषय में समझना है। ज्ञान के साथ जब गुण का भास होता है, तब कल्पना भी सच्ची लगने लगती है। जब रस्सी में सर्प का भ्रम होता है तब तुरंत डर नहीं लगता लेकिन सर्प की आकृति में जब उसके आश्रित गुण स्पष्ट मालूम पड़ते हैं, तब सच्चा सर्प प्रतीत होता है। स्वप्न में भी संकल्पमय सर्प की आकृति में उसके साथ जब गुण स्पष्ट दिखते हैं, उस समय वह सर्प कल्पित नहीं लगता। वास्तवमें वह कल्पित अथवा भ्रममात्र है, पर जब धर्म का अध्यास होता है तब गलती समझ में नहीं आती।

आत्मानंद : सिर्फ भगवतज्ञान ही सच्चा है और समस्त नाम और रूप ज्ञान की आकृतियाँ है। अतः भगवतज्ञान की दो विभूतियाँ निश्चित हो सकती है। एक में ज्ञान की आकृतियाँ जल की तरंगों जैसी प्रतीत होती है और दूसरी में सब आकृतियों का अभाव हो जाता है। प्रथम को सगुण अवस्था कहते हैं। और दूसरी को निर्गुण अवस्था कहते हैं। जब ज्ञानीपुरुष जगत में नाम और रूप को देखते हैं, तब सगुण ब्रह्म का दर्शन करते हैं। जब नेत्र बंध करके समाधि में सब आकृतियों का लोप हो जाता है, तब निर्गुण का साक्षात्कार होता है। ऐसे ही ज्ञानवान को प्रत्येक दशा में भगवद् दर्शन प्राप्त होते हैं। जब तक ऐसा संपूर्ण ब्रह्मदर्शन नहीं होता तबतक अभयपद प्राप्त नहीं होता।

मुक्तानंद : जल के तरंग में असल अस्तित्व तो जल का ही है। तरंग का अपना स्वतंत्र अस्तित्व कुछ नहीं है, तो भी तरंग के रूप में जल के अस्तित्व का आरोप होता है। वैसे ही ज्ञान की जो आकृतियाँ ज्ञान में उत्पन्न होती हैं वह अभावमात्र हैं। भगवद्

ज्ञान का अस्तित्व उसमें आरोपित दिखता है । विचार करके देखनेपर उसमें आकृतियों का जरा भी अस्तित्व नहीं है। रज्जु में कल्पित सर्प की आकृति अभावरूप होनेपर भी प्रतीत होती है। वास्तविक दृष्टि से सर्प की आकृति में अस्तित्व सच्चा नहीं है तो भी रज्जु का अस्तित्व सर्प के अस्तित्व पर आरोपित होता है। जिस अवस्था का किसी दशा में अभाव हो जाता है वह वास्तवमें अनात्मा है ऐसा मान सकते हैं और जो वस्तु प्रत्येक दशा में स्थिर रहे वह वस्तु आत्मा है ऐसा मान सकते हैं। जब लोहे का तपा हुआ गोला दिखता है, तब लोहा और अग्नि दोनों का भाव दिखता है। जब गोला ठंडा हो जाता है, तब अग्नि का अभाव हो जाता है। अतः यह सिद्ध हो सकता है कि गोले का वास्तविक रूप लोहा है, अग्नि नहीं है क्योंकि दूसरी दशा में अग्नि के स्वरूप का अभाव हो जाता है। अतः यह सिद्ध होता है कि प्रथम दशा में अग्नि का स्वरूप उसमें आरोपित था।

स्वरूपानंद : जैसे जाग्रत अवस्था में ज्ञान विकल्प के अधीन होता है, वैसे सुषुप्ति-अवस्था में वह अज्ञान का संबंध करता है। आत्मज्ञान अज्ञान का विरोधी नहीं है, अपितु जानने का संबंध (यानी वृत्तिज्ञान) अज्ञान के संबंध का विरोधी है।

मुक्तानंद : स्वप्नकाल में ऐसा ख्याल आता है कि यह जगत किसीने उत्पन्न किया है। उसमें मेरा शरीर और मैं भी उत्पन्न हुए हैं। और उस अवस्था में मूल सत्ता के ज्ञान से अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, तो भी मनुष्य की स्वप्न - आकृति उस समय जाग्रत के काल की आकृति जैसी उत्पन्न होती है। उसमें अहंता का ख्याल होता है और स्वप्न में आना-जाना, कोमलता, कठोरता भी अपने में होते हैं। स्वप्नप्रपंच कल्पनामात्र है, फिर भी उस समय ऐसा विचार उत्पन्न होता है, कि मैं एक चींटी भी उत्पन्न नहीं कर सकता। मानलो कि किसीको ऐसा स्वप्न आया, कि मुझे प्यास लगी है और कुआँ और बाल्टी है लेकिन रस्सी नहीं है। उस समय रस्सी खोजने लगते हैं। यद्यपि कुआँ, प्यास, बाल्टी यह सब कल्पना है तथापि रस्सी की कल्पना उस समय नहीं कर सकता। वैसे ही सम्पूर्ण जगत हालाँकि जीव का संकल्प है परंतु वह ऐसा मानता है कि वह एक चींटी भी उत्पन्न नहीं कर सकता। यह मूल सत्ता के ज्ञान की विचित्र शक्ति अथवा लीला है।

आत्मानंद : उस ज्ञान में दो तत्त्व हैं : संकल्प और प्रकाश। लेकिन उन दोनों का विवेक जब नहीं होता, तब संकल्प के परिणाम को प्रकाश का परिणाम हो वैसा मान लिया जाता है। सांख्य शास्त्र में प्रकाश और संकल्प का विवेक बताते हैं फिर भी उन

दोनों को स्वतंत्र पदार्थ मानते हैं यह भूल है। वेदांत में एकमात्र सत् का ही अनेक स्थानपर संकेत बताया है। अतः मूलसत्ता में संकल्पमात्र दिखावा है, जो वास्तवमें नहीं है और चेतन अथवा प्रकाश सच्ची वस्तु है। मूलसत्ता का ज्ञान अविभक्त, अद्वैत और प्रकाशमात्र है, तो भी उसका संकल्प के साथ मिलना कल्पित कह सकते हैं। संकल्प ही माया है। उसकी विचित्रता स्वप्नमें और जाग्रत में प्रत्यक्ष अनुभव में आती है।

अन्वयभाव से अथवा प्रकाश की दृष्टि से विचार करें तो देवदत्त खड़ा है, चलता है, दौड़ता है। ऐसी देवदत्त की सब स्थितियाँ देवदत्त से भिन्न नहीं है, क्योंकि उन सब क्रियाओं में देवदत्त स्वयं देवदत्त ही कहलाता है। उस उठक बैठक में देवदत्त कुछ अलग वस्तु नहीं बन जाता। उठने या बैठने की दशाएं देखनेवाले की बुद्धि में आनेवाली काल्पनिक आकृतियाँ हैं। जैसे देखनेवाले की अपनी बुद्धि में अपनी स्वप्नावस्था में एक के बाद एक आकृतियाँ दिखे और बदले वैसे ही देवदत्त के उठक बैठक रूपी विलास के कारण दृष्टा के अंतःकरण में आकृतियाँ दिखती और बदलती रहती हैं।

और जैसे स्वप्न काल की वे आकृतियाँ स्वप्न- दृष्टा के मन में से निकलती हैं, वैसे ही उन आकृतियों के अंतर एवम् विभाग भी स्वप्नशील दृष्टा के स्वरूप में से निकलकर आकृतियों के साथ एकाकार हो जाते हैं। अतः ये आकृतियाँ पृथक- पृथक दिखती हैं। वस्तुतः सिर्फ दृष्टा ही वहाँ विद्यमान होने से उन आकृतियों और उन आकृतियों के अंतर एवम् विभाग का भी वही अधिष्ठान है स्वप्नदृष्टा स्वयं तत्त्वरूप है। अतः वे कल्पित विभाग भी तत्त्वस्वरूप में होते रहने से आकृतियाँ भी भिन्न भिन्न रूप से सत्य प्रतीत होती हैं। और दृष्टा ही अनेक जैसा दिखता है। दृष्टा के वास्तविक स्वरूप में विभाग नहीं होते यह हम स्पष्ट जानते हैं। क्योंकि आकृतियाँ और उनके विभाग वस्तुतः मिथ्या हैं, सत्य नहीं हैं और मिथ्या वस्तु का मूल वस्तु पर कोई प्रभाव नहीं होता।

स्वरूपानंद : वस्तु के परिच्छेद में जो सगुण अथवा सावरण दर्शन होते हैं उसका स्वरूप इसप्रकार का लगता है : जैसे कोई प्रेमी का प्रेम पात्र मुँह ढककर उसके पास आये, उसी समय उसको बिच्छु के डंक के समान वेदना होती हो तो ऐसी अवस्था में प्रेमी को प्रेमपात्र के ऐसे दर्शन से थोड़ा भी आनंद प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उस आनंद में दुःख का मिश्रण है। उसीप्रकार सिद्धांत में ऐसा प्रतीत होता है कि परमात्मा प्रत्येक

नाम, रूप, वेश और उपाधि में प्रकाशमान है, लेकिन जब मनुष्य की दृष्टि नाम और रूप में चली जाती है, तब ऐसे रूपों का नानात्व (भेद) बिच्छु के डंक की वेदना के जैसा है, अतः उस आनंद का अनुभव अपरोक्ष और पूर्ण नहीं है। ज्ञानी उस नानात्व यानी भेदभाव को वस्तुतः दुःख-शोक का कारण कहते हैं। और ऐक्य अथवा अभेद को ही वे वास्तविक सुख अथवा आनंद मानते हैं। पूर्णानंद तो निरावरण परमात्मा का साक्षात्कार हो तभी मिलता है।

ॐ ॐ

परिशिष्ट : १

सत्य क्या है ?

कवि रविन्द्रनाथ टैगोर और प्रो.आइंस्टाइन के बीच उपरोक्त विषयपर जर्मनी में दिनांक १४-७-१९३० को प्रो.आइंस्टाइन के घरपर निम्नलिखित बातचीत हुई थी :

आइंस्टाइन : भगवान जगत से असंग है ऐसा आप मानते हो ?

टैगोर : नहीं, मनुष्य का अनंत आत्मा जगत को अपने में समाविष्ट कर सकता है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है कि जो मनुष्य के चैतन्य में समा नहीं सकती हो। अतः ऐसा सिद्ध होता है कि जगत का जो सत्य है वह मनुष्य का सत्य है। इस बात के लिये मैं निम्नलिखित सायन्स का दृष्टांत देता हूँ। जड़ वस्तु के परमाणु (एटम) में प्रोटोन और इलेक्ट्रोन हैं। उनके बीच में खाली जगह है। फिर भी जड़ पदार्थ ऐसा घन दिखता है कि मानो उसमें खाली जगह न हो। ऐसे ही मनुष्य जाति में (कई) व्यक्ति हैं फिर भी उनके बीच मानवीय संबंध है। वह संबंध मनुष्य के जगत को पूर्ण एकता देता है। वैसे ही संपूर्ण जगत हमारे साथ जुड़ा हुआ है। मैंने यह विचार विद्या से, कला से और मनुष्य के धार्मिक ज्ञान के द्वारा निश्चित किया हुआ है।

आइंस्टाइन : जगत के बारे में निम्नलिखित दो निर्णय हो सकते हैं :

१. मनुष्य जाति पर आधारित एकता का जगत।

२. मनुष्य के तत्त्व (घटक) से अतीत और स्वतंत्र सत्य हो ऐसा जगत।

टैगोर : जब हमारा जगत मनुष्य के नित्य अखंड चैतन्य के साथ एक हो जाता है, तब हमको वह सत्य मिलता है। हमको वह सौन्दर्यमय लगता है।

आइंस्टाइन : यह तो जगत के विषय में मनुष्य की कल्पना हुई।

टैगोर : उसके सिवाय अन्य कोई शुद्ध विचार नहीं है। यह जगत मनुष्य का जगत है।

सायंस की दृष्टि का जगत भी सायन्सवाले मनुष्यों का जगत है। उसमें ज्ञान और आनंद का कुछ निश्चित प्रमाण रहा हुआ है कि जो उसको सत्यता देता है। मनुष्य का शाश्वत आत्मा जिस प्रमाण से अनुभव लेता है वह हमारे अनुभव के द्वारा लेता है।

आइंस्टाइन : ये अनुभव मनुष्य की हस्ती (सत्ता) का है।

टैगोर : हाँ, एक नित्य सत्ता का अनुभव हैं। हमें हमारी भावनाओं के द्वारा और हमारी प्रवृत्तियों के द्वारा उस नित्य सत्य का अनुभव प्राप्त करना है। जिस मनुष्य की

सर्वोच्च सत्ता को व्यक्तिगत बंधन नहीं है उसका साक्षात्कार हमें सीमित क्षमताओं के द्वारा प्राप्त होता है। व्यक्ति के साथ जिसको संबंध नहीं है ऐसे सत्य की खोज सायन्स कर रहा है। वह सत्यों का मानवीय जगत अवैयक्तिक है। धर्म उन सत्यों का अनुभव लेता है और उनको हमारी गहरी आवश्यकताओं के साथ जोड़ देता है। सत्य विषयक हमारा व्यक्तिगत ज्ञान समष्टि के साथ एक हो जाता। धर्म सत्य को मूल्य देता है। जब हम उस सत्य के साथ एक होते है तब हमको वह कल्याणकारी (सुखकर) लगता है।

आइंस्टाइन : तो तुम्हारी मान्यता के अनुसार सत्य और सौंदर्य मनुष्य से स्वतंत्र नहीं है ?

टैगोर : नहीं।

आइंस्टाइन : यदि हमारे जगत में कोई मनुष्य नहीं होता तो सौन्दर्यवाली वस्तु (Apollo of Belvedere) का सौंदर्य नहीं रहेगा ?

टैगोर : नहीं।

आइंस्टाइन : सौंदर्य के विषय में इस बात से मैं सम्मत हूँ लेकिन सत्य के विषय में नहीं।

टैगोर : क्यों नहीं ? सत्य का अनुभव मनुष्य के द्वारा ही हो सकता है।

आइंस्टाइन : मेरी मान्यता सच्ची है ऐसा मैं सिद्ध नहीं कर सकता पर वह मेरा धर्म है।

टैगोर : समष्टि के स्वरूप में जो पूर्ण एकता है उसका आदर्श सौंदर्य है। समष्टि चैतन्य का पूर्ण ज्ञान सत्य है। हम व्यक्ति के रूप में अपनी गलतियों के द्वारा, अपने संचित अनुभव के द्वारा और अपने प्रबुद्ध चैतन्य के द्वारा उस सत्य तक पहुँचते हैं। अन्य किस प्रकार हम उस सत्य को जान सकते हैं ?

आइंस्टाइन : मैं इसे वैज्ञानिक ढंग से सिद्ध नहीं कर सकता लेकिन जो सत्य मनुष्य की कल्पना से अतीत है उसको ही सत्य मानना चाहिए और उसे मैं दृढ़तापूर्वक मानता हूँ। मैं मानता हूँ कि भूमिति में जो पयथागोरास का प्रमेय बताता है वह करीब-करीब सत्य है जो मनुष्य के अस्तित्व से स्वतन्त्र है। यदि मनुष्य से कोई सत्ता स्वतंत्र हो तो उस सत्ता से संबंधित एक सत्य भी हम से स्वतंत्र होना चाहिए और मनुष्य से कोई स्वतंत्र वस्तु न हो तो सत्य भी मनुष्य से स्वतंत्र नहीं होना चाहिए।

टैगोर : जो सत्य समष्टि स्वरूप के साथ एकता प्राप्त किया हुआ है वह वास्तव में

मानवीय होना चाहिए। वैसा न हो तो हम व्यक्तियों को जिस सत्य का साक्षात्कार होता है उसे सत्य नहीं कह सकते। कम से कम जिस सत्य को वैज्ञानिक बताया जाता है और जिसे सिर्फ तर्क की प्रक्रिया के द्वारा याने विचार के करण (साधन) के द्वारा प्राप्त कर सकते है जो मानवीय है। हिन्द के तत्त्वज्ञान में जिसे ब्रह्म अथवा निरपेक्ष सत्य कहते हैं वहाँ तक मनुष्य का मन पहुँच नहीं सकता अथवा शब्दों से उसका वर्णन नहीं हो सकता, परंतु जीव का उसकी अनंतता में पूर्ण रूप से लय करने से ही उसका साक्षात्कार हो सकता है। परंतु ऐसा सत्य सायन्स से नहीं मिल सकता। हम जिस सत्य की बात करते हैं वह प्रातिभासिक है, अर्थात् मनुष्य के मन को जो सत्य लगता है और इस वजह से वह मानवीय है, वह माया है अथवा मिथ्या है।

आइंस्टाइन : तुम्हारे मत के अनुसार (और वह हिन्द के तत्त्वज्ञान की मान्यता हो तो) वह व्यक्ति की माया नहीं है, अपितु सम्पूर्ण मानव जाति की भ्रांति (माया) है।

टैगोर : सायन्स में हम अपने विशिष्ट मन की व्यक्तिगत सीमित क्षमताओं को दूर करते- करते उस सत्य का ज्ञान प्राप्त करते है जो परमात्मा के मन में है।

आइंस्टाइन : हम मूल प्रश्न पर बात करेंगे।

हमारा मूल प्रश्न यह है कि सत्य मनुष्य के ज्ञान से अतीत और स्वतंत्र वस्तु है कि नहीं ?

टैगोर : हम जिसको सत्य कहते हैं, उसमें दृष्टा और दृश्य का अभेद होता है। इन दोनों का सच्चा स्वरूप मनुष्य के व्यक्तित्व से अतीत है।

आइंस्टाइन : हमारे साधारण व्यवहार में भी हम ये मानने को विवश है कि जिन वस्तुओं का उपयोग करते हैं उनका सच्चा तत्त्व मनुष्य के विचार से अतीत है। हम ये हमारी इन्द्रियों के अनुभवों को तर्कसंगत ढंग से जोड़कर करते है। दृष्टांत के रूप में जब घर में कोई नहीं होता तब भी मेज वहाँ रहता है जहाँ है।

टैगोर : हाँ, वह मनुष्य के मन से बाहर है पर समष्टि के मन से बाहर नहीं है। जो टेबल मुझे दिखता है वह मेरा जैसा ज्ञान है वैसे ही ज्ञान से दिख सकता है।

आइंस्टाइन : हमारा स्वाभाविक जो दृष्टिकोण है कि मानवता से अतीत जो सत्य है वह तर्क से समझाया या सिद्ध किया नहीं जा सकता। उस मत का कोई अस्वीकार नहीं कर सकता-आदिवासी भी इसका अस्वीकार नहीं कर सकते। सत्य मनुष्य के ज्ञान से अतीत हो ऐसी कोई वस्तु है जो हमारे अस्तित्व से, हमारे अनुभव से और हमारे मन से अतीत है, हालांकि हम ये नहीं कह सकते कि इसका अर्थ क्या है।

टैगोर : सायन्स ने सिद्ध किया है कि हमारे सामने जो टेबल एक घन वस्तु के रूप में दिखता है वह सिर्फ दिखावा है। इसलिए मनुष्य का ज्ञान जिस टेबल को जानता है वह टेबल मनुष्य का ज्ञान न हो तो रहेगा नहीं। साथ में यह भी स्वीकार करना चाहिए कि टेबल के भौतिक अस्तित्व का अंतिम स्वरूप सिर्फ अनेक भिन्न भिन्न परिक्रमा करते हुए विद्युत शक्तियों के केन्द्र है और कुछ नहीं है, और वह भी मनुष्य के मन की कल्पना है।

सत्य को जानने के लिए समष्टि के मन और व्यक्ति के मन के बीच सतत संघर्ष रहा करता है। सायन्स में, तत्त्वज्ञान में और समाज की नीति में उस संघर्ष को मिटाने के प्रयास सतत हुआ करते हैं। किसी भी प्रकार से यदि ऐसा कोई सत्य है जिसका मनुष्य के साथ कोई संबंध नहीं हो तो उस सत्य का हमारे लिए कोई अस्तित्व नहीं है।

ऐसे एक मन की कल्पना करना कठिन नहीं है जिसमें वस्तुओं का क्रम देश में नहीं होता लेकिन सिर्फ काल में होता है जैसा संगीत के सुरों का क्रम होता है। ऐसे मन की दृष्टि में सत्य एक प्रकार के संगीत जैसा है जिसमें पायथागोरास की भूमिति के लिए कोई स्थान नहीं है। इस पास में पड़े हुए कागज में अमुक सत्य है और उसमें जो लिखा है उसमें भी अमुक सत्य है। दोनों सत्य में अंतर है। दीमक के मन की दृष्टि में कागज कोई खाने की वस्तु है, उसकी दृष्टि में उसपर लिखे हुए लेख का कोई अस्तित्व नहीं है, फिर भी मनुष्य के मन की दृष्टि में कागज की अपेक्षा लिखे हुए लेख में अधिक सत्य है। उसी प्रकार ऐसा कोई सत्य हो कि जिसका मनुष्य की इन्द्रियों एवम् मन के साथ ऐन्द्रियक या बौद्धिक संबंध नहीं हो, तो जब तक हम मनुष्य रहते हैं तब तक वह सत्य शून्य जैसा रहेगा।

आइंस्टाइन : इस दृष्टि से देखें तो आप की अपेक्षा मैं अधिक धार्मिक हूँ।

टैगोर : मेरा धर्म यह है कि समष्टि स्वरूप का, सर्व व्यापक मानव आत्मा का मेरे अपने स्वरूप में अभेदभाव से अनुभव करना। मेरे हिब्बर्ट लेक्चर का यही विषय है जिसे मैं "मनुष्य का धर्म" कहता हूँ।

लेखकीय : उपरोक्त संवाद में ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रोफ़ेसर आइंस्टाइन व्यतिरेक भाव से सत्य प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। जैसे कि आत्मा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था के अनुभव से परे है, क्योंकि ये अवस्थाएं व्यभिचारी हैं। जो धर्म किसी वस्तु में कभी कभी प्रतीत हो वह उस वस्तु का धर्म नहीं है। कवि रविन्द्रनाथ

टैगोर अन्वय भाव से सत्य समझने का प्रयास करते हैं, यानी उन तीनों अवस्थाओं में भी आत्मा का अस्तित्व है। हमारे शास्त्रों ने उन दोनों रीत का उपयोग करने की अनुमति दी है। साधारण अज्ञानी मनुष्य की दृष्टि में जगत अपने से एक अलग वस्तु के रूप में दिखने में आता है। और वह सत्य नहीं है, लेकिन वैसा जगत ही ज्ञानी मनुष्य की दृष्टि से जब अभिन्न वस्तु के रूप में (यानी ब्रह्मरूप में) देखने में आये तब वह सत्य है। जब अभिन्न दृष्टि हो तब कवि रविन्द्रनाथ टैगोर के मतानुसार संगीत के सुर की नाईं देश का भेद दूर हो पर काल के अनुसार परिणाम मानने से भी ब्रह्म में विकार होने की संभावना रहती है। अतः प्रथम व्यतिरेक भाव से नाम और रूप के विकार का बाध करके शेष जो निर्विकारी सत्- चित- आनंद का तत्त्व सर्वत्र सदा विद्यमान है उसका अन्वय भाव से अनुभव लेना चाहिए। ज्ञानी पुरुषों को जगत प्रातिभासिक लगता है और प्रातिभासिक वस्तु में वे स्वगत भेद का निषेध करते हैं। लेकिन भक्त स्वगत- भेद को स्वगत- अभेद कहते हैं। कवि टैगोर भी उसको स्वगत- अभेद कहते हैं। फिर भी संगीत में जैसे काल की जरुरत पड़ती है वैसे ब्रह्म में काल की जरुरत पड़े तो ब्रह्म में परिणाम आये और इसलिए ब्रह्म का परिणाम हो तो भी ब्रह्म निर्विकारी नहीं रहेगा। और काल कोई सच्चा तत्त्व नहीं होने से और यह बात इस पुस्तक में अनेक बार प्रो.आइंस्टाइन के सापेक्षवाद से सिद्ध की हुई होने से, वेदांत का विवर्तवाद सिद्ध हो सकता है। अर्थात् दृष्टिकाल में अज्ञान दशा में जगत की प्रतीति है और ज्ञानकाल में प्रातिभासिक जगत का त्रैकालिक निषेध है। जिसको काल का तत्त्व ठीक से समझ में आयेगा उसको यह बात सरलता से समझ में आयेगी। कवि टैगोर के मत में ब्रह्मदशा साध्य है यानी प्राप्त करने की है, इसलिए काल की जरुरत रहती है। वेदांत में ब्रह्म को सिद्ध माना हुआ है और इसलिए सिर्फ अज्ञान दूर करना है। अतः जिस काल में अज्ञान गया उसी काल में प्राप्त की प्राप्ति की नाईं ब्रह्म का अनुभव होता है। झूठी वृत्ति से अज्ञान उत्पन्न होता है और सच्ची वृत्ति से अज्ञान दूर होता है। इस बात पर अधिक स्पष्टता इसके बाद के परिशिष्ट में की गई है।

ॐ ॐ

परिशिष्ट : २

साधू निश्चलदासजी कृत प्रमाण-निरूपण

हर एक मनुष्य के ज्ञान के साथ अथवा हर एक जीव के ज्ञान के साथ उसकी वृत्ति रहती है। अंतःकरण के परिणाम को वृत्ति कहते हैं। यह साधारण जीव का प्रमाण है। उस प्रमाण से जो जीव जगत का अनुभव लेता है वह प्रमाण सच्चा है कि नहीं यह जानना हो तो वृत्ति का स्वरूप जानना चाहिए। वृत्ति का स्वरूप जानने के लिए विख्यात वेदांती साधू श्री निश्चलदास- जी ने 'वृत्ति प्रभाकर' नामक ग्रन्थ हिंदी भाषा में लिखा है। उसका गुजराती अनुवाद बहुत वर्ष पहले स्व.प्रो.मणिलाल नभुभाई ने किया है। वह ग्रन्थ अत्यंत जटिल होने से उसका सार इस परिशिष्ट में दिया गया है।

आत्मा स्वयंप्रकाश होने से प्रकट रहना उसका धर्म है और स्वयं अपना स्वरूप जैसा है वैसा बना सकता है। उसका अनुभव नहीं हो तो उसका कारण एक प्रकार का आवरण है। जैसी वस्तु हो वैसी वृत्ति उत्पन्न हो तो आवरण भंग होता है और वस्तु का प्रकाश होता है। सब ब्रह्मस्वरूप होने से, वह वृत्ति जैसी वस्तु है वैसी नहीं होती इसलिए आवरण रह जाता है। अतः वेदांत के जिज्ञासु को वृत्ति का स्वरूप ठीक से जानने की जरुरत है।

साधारणतया अंतःकरण के परिणाम को वृत्ति कहते हैं लेकिन सुषुप्ति में अंतःकरण नहीं है फिर भी आवरण जैसा क्यों लगता है। इसलिए सुषुप्ति में अज्ञान माना हुआ है। अतः अज्ञान के परिणाम को भी वृत्ति कहते हैं।

वृत्ति स्वयं जड़ है परंतु चेतन के साथ तादात्म्यभाव पाकर पदार्थ का प्रकाश करती है।

प्रकाशक परिणाम को ही वृत्ति कहते हैं। जो पदार्थ अज्ञात हो उसको समझाने वाली वृत्ति में ही (अज्ञान का नाश कर्तारूप) प्रकाशपना है। जो पदार्थ अज्ञात नहीं है अथवा आवृत नहीं है उसका प्रकाश वृत्ति से नहीं होता। जिस चेतन में आवरण नहीं है वह अपना और दूसरे का प्रकाश कर सकता है अतः वहाँ प्रकाश के लिए वृत्ति की जरुरत नहीं है। अतः वृत्तिमें आवरण भंग के अलावा दूसरा प्रकाश करने की शक्ति नहीं होने से व्यवहार के हेतु रूप अज्ञान को अथवा अंतःकरण के परिणाम को वृत्ति कहते हैं।

वृत्ति की व्याख्या

वृत्ति दो प्रकार की हैं :

१. प्रमारूप (यानी जैसा विषय हो वैसा बतानेवाली) वृत्ति

२. अप्रमारूप (यानी जैसा विषय हो वैसा नहीं बतानेवाली) वृत्ति।

प्रमावृत्ति :

प्रमारूप वृत्ति के निम्नलिखित ४ प्रकार बनते हैं :

१. प्रमाणजन्य यथार्थ ज्ञान को प्रमा कहते हैं।

२. अबाधित अर्थ के विषय के ज्ञान को प्रमा कहते हैं।

३. अबाधित अर्थ हो लेकिन स्मृति से भिन्न ज्ञान हो उसे भी प्रमा कहते हैं।

४. यथार्थ अनुभव को भी प्रमा कहते हैं।

दृष्टांत के रूप में सीपी में रूपा का ज्ञान अबाधित अर्थ को विषय नहीं करता इसलिए वह ज्ञान प्रमा नहीं है। वैसे ही ब्रह्म में जगत का ज्ञान भी प्रमा नहीं है। सच्चा ज्ञान (प्रमा) सच्चे प्रमाण के अधीन है। अबाधित अर्थ को विषय करनेवाला स्मृतिज्ञान भी है। फिर भी स्मृतिज्ञान में प्रमा का व्यवहार नहीं होता। स्मृति यथार्थ होती है लेकिन अनुभवरूप नहीं होती। अनुभव तो भ्रांतिज्ञान से भी होता है किन्तु वह यथार्थ नहीं है, अतः यथार्थ अनुभव प्रमा है, उससे भिन्न अप्रमा है।

प्रमाज्ञान निम्नलिखित ८ प्रकार का है : १. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. उपमान, ४. शब्द ५. अर्थापत्ति ६. अनुपलब्धि ७. इच्छाज्ञान ८. सुख आदि का ज्ञान।

उसमें प्रथम ६ और ८ वी जीव आश्रित प्रमा है और भूत, भविष्य, वर्तमान सर्व पदार्थ गोचर माया की वृत्तिरूप ज्ञान ईश्वर आश्रित प्रमा कहा जाता है। उसका अधिक खुलासा निम्नलिखित है :

१ : प्रत्यक्ष प्रमा

प्रमा (यथार्थ ज्ञान) के असाधारण कारण को प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमा के असाधारण कारण नेत्र, कर्ण, जिह्वा, चर्म और नाक हैं।

इन्द्रियों को अपने अपने विषय में संबंध नहीं हो तो प्रत्यक्ष प्रमा बनेगी नहीं। संबंधरूप व्यापारवाले प्रत्यक्ष प्रमा का असाधारण कारण इन्द्रियाँ है, अतः इन्द्रियों के ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमा कहा जाता है।

कोई समय यथार्थ ज्ञान होने में यथार्थ शब्द की जरुरत पड़ती है। जैसे कि दस मनुष्य नदी पार करके गये उसके बाद कोई डूब गया कि नहीं उसकी जाँच करने के

लिए सभी गिनने लगे। हर एक अपने को छोड़कर दूसरे नौ को गिनता है इसलिए सभी ने निश्चय किया कि एक डूब गया। उतने में किसीने आकर कहा कि दसवाँ है। इतने वाक्य से दसवे का ज्ञान नहीं होता, ऐसे ही कोई कहे कि 'ईश्वर है। ' इतने वाक्य से ईश्वर का ज्ञान नहीं होता। वहाँ आत्मबोधक शब्द का अभाव है। 'दसवाँ तू है' ऐसा कहे तभी दसवें का बोध होता है। वैसे ही यधपि आत्मा में ब्रह्मरूपता सदा है तथापि 'तू ब्रह्म है (तत्वमसि) ' ऐसे बोधक शब्द हो अर्थात् महावाक्य हो तो ही यथार्थ वृत्ति उत्पन्न होती है और उससे आवरण भंग होता है। महावाक्य बहुत लोग सुनते हैं फिर भी ब्रह्मज्ञान क्यों नहीं होता ? उसका समाधान यह है कि साधनचतुष्टय से संपन्न होकर इस वाक्य को सुनना चाहिए।

ब्रह्मविद्यारूप अपरोक्षज्ञान के साधन शब्द हैं। यह शब्द प्रमाणजन्य हैं। आत्माकार वृत्ति का उपादान कारण अंतःकरण है और अंतःकरण उपहित चेतन के साथ वह वृत्ति उत्पन्न हुई, दोनों उपाधि एक देशमें होने से वृत्ति चेतन और विषयचेतन का अभेद होता है। बाहर के पदार्थों का वृत्ति के द्वारा प्रमाता के साथ संबंध है और सुखदुःख की वृत्ति का प्रमाता के साथ साक्षात् संबंध है जो सुख दुःख हो गये उनका प्रमाता से वर्तमान संबंध नहीं है। उसका ज्ञान स्मृतिरूप है, प्रत्यक्ष नहीं है।

प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण

स्व-व्यवहार के अनुकूल चैतन्य के साथ अनावृत्त विषय का अभेद अपरोक्ष अथवा प्रत्यक्ष विषय का लक्षण है। संसार दशा में आवृत्त ब्रह्म का स्व-व्यवहारानुकूल चेतन से अभेद है। अनावृत्त ब्रह्म और विषय का अभेद संसार दशा में नहीं होने से ब्रह्म का अपरोक्षत्व उस दशा में नहीं होता। अपरोक्षत्व धर्म चेतन का है, वृत्ति का नहीं है। अतः वृत्ति में चेतन का आरोप करके वृत्तिज्ञान अनुभव देता है। वृत्तिज्ञान लक्ष्य नहीं है, अपितु चेतनज्ञान लक्ष्य है। जहाँ सच्चे प्रमाण से विषय का ज्ञान के साथ तादात्म्य - संबंध होता है वहाँ ज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होती है।

कोई कहता है कि महावाक्य से ब्रह्म का प्रत्यक्षज्ञान होता है, महावाक्य से परोक्षज्ञान नहीं होता। कोई ऐसा भी कहते हैं कि विचाररहित महावाक्य से अपरोक्ष ज्ञान होता है। विचाररहित केवल वाक्य से परोक्ष ज्ञान होता है। सभी के मत में 'अहम् ब्रह्मास्मि'-यह ज्ञान शुद्धात्म गोचर है यानी ब्रह्म गोचर है। और अद्वैत पक्षवाले सभी ऐसा मानते हैं कि चेतन में संसारी धर्म नहीं रहते और जीव ईश्वर का परस्पर भेद नहीं

है। जिस पक्ष में असंग ब्रह्म- आत्मा का बोध है वैसा पक्ष आदर करने योग्य है।

२ : अनुमान प्रमा

अनुमान प्रमा के करण को अनुमान प्रमाण कहते हैं। लिंग ज्ञानजन्य ज्ञान को अनुमान कहते हैं। जैसे पर्वत में धुंआँ देखकर, उस प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा अग्नि का अनुमानज्ञान होता है। अनुमान ज्ञान का विषय साध्य है। व्याप्य ज्ञान से व्यापक का ज्ञान होता है। अविनाभावरूप संबंध को व्याप्ति कहते हैं। बिना अग्नि का धूम नहीं हो सकता। अतः अग्नि का अविनाभावरूप संबंध धूम में है, अग्नि में वैसा संबंध नहीं है। क्योंकि तपे हुए लोहे में धूम बिना का अग्नि भी होता है। इस दृष्टांत के अनुसार अब सिद्धांत की जाँच करेंगे :

वेदांत में जीव और ब्रह्म का अभेद माना हुआ है। उसका अनुमान निम्नलिखित हो सकता है :

(१) जीव ब्रह्म से अभिन्न है, क्योंकि दोनों चेतन हैं। जहाँ जहाँ चेतन है वहाँ वहाँ ब्रह्म से अभेद है।

(२) व्यावहारिक प्रपंच मिथ्या है, क्योंकि वह प्रपंच आत्मज्ञान से निवृत्त होता है। यह दृष्टांत है।

यदि प्रपंच ज्ञान-निवर्त्य मानने के बाद उसका मिथ्यात्व मानने नही आये तो सत् के ज्ञान से उसकी निवृत्ति होगी नहीं, और ज्ञान से सकल प्रपंच की निवृत्ति प्रतिपादक जो श्रुति स्मृति है उसका विरोध होगा। अतः प्रपंच का मिथ्यात्व है ऐसा अनुमान करना चाहिए। वेदांत वाक्य में अद्वैत ब्रह्म का ही निश्चय है उसका मनन के द्वारा संभावनामात्र के हेतु को अनुमान प्रमाण कहते हैं।

३. उपमान प्रमा

उपमिति प्रमा के करण (असाधारण कारण) को उपमान प्रमाण कहते हैं। दृष्टांत में जैसे जंगल में किसी गाय जैसे पशु को देखकर कोई कहता है कि यह गाय के जैसा है। फिर कहता है कि मेरी गाय इसके जैसी है। उसको उपमान अथवा उपमाप्रमाण कहते हैं।

सिद्धांत में : असंग आदि धर्म की आकाश और आत्मा में समानता है फिर भी आकाश आदि संपूर्ण प्रपंच गंधर्वनगर की नाईं दृष्ट-नष्ट स्वभाववाला है और आत्मा उससे विलक्षण है। आकाश आदि में आत्मा का पूर्ण सादृश्य नहीं है, इसलिए उत्तम जिज्ञासु को सिद्धांत में उपमान का दृष्टांत अनुकूल नहीं पड़ता। ब्रह्म को कोई उपमा

ठीक से लागू नहीं हो सकती।

४ : शब्द प्रमा

शब्द प्रमाण दो तरह का है इसलिए शब्द प्रमा भी दो प्रकार की है :

१. व्यावहारिक २. पारमार्थिक

व्यावहारिक प्रमा दो प्रकार की है। : १. लौकिक वाक्यजन्य और २. वैदिक वाक्यजन्य।

शब्द और लक्षण के भेद से वृत्ति दो प्रकार की होती है। जिस अर्थ में पद की शक्ति हो उस पद का शक्यार्थ है। सिर्फ शक्तिवृत्ति से ब्रह्म का ज्ञान शब्द से नहीं होता किन्तु लक्षणा वृत्ति से ब्रह्मगोचर ज्ञान होता है। अतः शक्तिवृत्ति से शब्दकी ब्रह्मज्ञान की करणता का निषेध है।

लक्षणावृत्ति के द्वारा शब्द से ब्रह्मज्ञान होता है। लक्षणावृत्तिजन्य ज्ञान में भी चिदाभासरूप फल का विषय ब्रह्म नहीं है, किन्तु आवरणभंगरूप वृत्ति मात्र से विषयता ब्रह्म विषयक है। शब्दज्ञान की विषयता का सर्वथा निषेध नहीं है, परंतु शम, दम आदि संस्काररहित विक्षिप्ति मनका ब्रह्मज्ञान में हेतु नहीं है।

शक्य संबंध को लक्षण कहते हैं। उस संबंध का शक्तिवृत्ति से संबंध होने से शक्तिवृत्ति का कथन निष्फल नहीं है। वह परंपरा से वाक्यार्थ ज्ञान में उपयोगी है।

लक्षणा में जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा और भागत्याग लक्षणा ऐसे तीन प्रकार हैं। ये वेदांत के ग्रंथों में भलीभाँति से समझायी हुई है। इसलिए यहाँ उसका विचार नहीं किया। संक्षेप में -

तत् पदार्थ में परोक्षता के भ्रम की निवृत्ति के लिए तत् पदार्थ के उद्देश्य से त्वं पदार्थ का विधान है और त्वं पदार्थ में परिछिन्न भ्रांति की निवृत्ति के लिए त्वं पदार्थ के उद्देश्य से तत् पदार्थ विधेय है और उन दोनों की एकता में उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति का विचार सहायभूत है। इस प्रकार शब्द प्रमा फलरूप है।

५. अर्थापत्ति

अर्थापत्ति प्रमा के करण को अर्थापत्ति प्रमाण कहते हैं। अर्थापत्ति शब्द भी प्रमाण और प्रमा दोनों शब्दों को बताता है।

देवदत्त दिन में भोजन नहीं करता। उसका दूसरा अर्थ ऐसा भी हो सकता है कि वह रात्रि में भोजन करता होना चाहिए, क्योंकि वह शरीर से मोटा और तगड़ा दिखता

है। रात्रि को भोजन नहीं लेता हो तो मोटा होगा नहीं अतः रात्रि का भोजन उपपादक है। उपपादक की कल्पना का हेतु ही उपपाद्य की अनुपपत्ति का ज्ञान है, उसे अर्थापपत्ति प्रमा कहते हैं। अर्थात् यदि भोजन नहीं ले तो मोटापा होगा नहीं। अतः जिससे अर्थ की कल्पना हो वह उपपाद्य की अनुपपत्ति के ज्ञान से उपपादक की कल्पना करना उसे अर्थापत्ति प्रमा कहते हैं। उपपादक वस्तु, उसकी आपत्ति यानी कल्पना अर्थात् अर्थ अर्थापत्ति शब्द प्रमा का बोधक है। सिद्धांत में **'तरति शोकमात्मवित्'** अर्थात् आत्मज्ञान से शोक की निवृत्ति होती है ऐसा श्रुति कहती है। उसमें यदि शोक का मिथ्यात्व नहीं हो तो शोक जायेगा नहीं, अतः ज्ञान से शोक की निवृत्ति होती है ऐसा कहने में 'बंध मिथ्या है' ऐसी अर्थापत्ति प्रमा उत्पन्न हो सकती है। वहाँ बंध का मिथ्यात्व उपपाद्य है और आत्मज्ञान उपपादक है।

और महावाक्य में जहाँ जीव ब्रह्म का अभेद श्रवण होता है, वहाँ औपाधिक भेद हो तो ही ज्ञान से अभेद का संभव होता है। स्वरूप से भेद होगा तो संभव नहीं। इसलिए जीव ब्रह्म के अभेद की अनुपपत्ति में भेद का औपाधिकत्व ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाणजन्य है। यहाँ जीव और ब्रह्म का अभेद उपपाद्य है। भेद में उपाधिपना उपपादक है। सभी उपपाद्य ज्ञान प्रमा है और उपपादक ज्ञान प्रमाण है।

और जैसे सीपी में रूपा का निषेध होता है, वह रूपा के मिथ्यापने के बिना नहीं हो सकता, निषेध की उपपत्ति में रूपा के मिथ्यात्व की कल्पना हो सकती है, यह भी अर्थापत्ति प्रमाण का दृष्टांत है। रूपा का निषेध उपपाद्य है और मिथ्यात्व उपपादक है। वैसे ही मन के विलय से सकल द्वैत का अभाव होता है। अतः सकल द्वैत मनोमात्र है। उसमें भी अर्थापत्ति प्रमाण लागू होता है।

६ : अनुपलब्धि प्रमाण

अनुपलब्धि अर्थात् अभाव। अभाव की प्रमा का असाधारण कारण जो होता है उसे अनुपलब्धि प्रमाण कहते हैं।

अभाव दो प्रकार के हैं :

१. अन्योन्य अभाव २. संसर्गाभाव

अभेद के निषेधक अभाव को अन्योन्याभाव कहते हैं। जैसे जो घट है वह पट नहीं है, ऐसा कहने में घट में पट का अभेद निषेध होता है इसलिए घट में पट के अभेद निषेधक घट में पट का और पट में घट का अन्योन्याभाव है। सिद्धांत में अज्ञान और उसके कार्य की निवृत्ति को मोक्ष कहते हैं। निवृत्ति का नाम ध्वंस है ऐसा कोई समझते

हैं इससे मोक्ष भी अभावरूप हो जाय ऐसी किसीको शंका हो सकती है, किन्तु वास्तवमें कल्पित की निवृत्ति अधिष्ठान रूप होती है। अज्ञान और उसका कार्य कल्पित है इससे उसकी निवृत्ति ब्रह्मरूप है। अतः मोक्ष अभावरूप नहीं है परंतु अधिष्ठान भावरूप होने से मोक्ष भावरूप है, और रूप, रस, गंध, स्पर्श आत्मा में कदापि नहीं है अतः उसका आत्मा में अत्यंत अभाव है। अतः अद्वैतवाद में सब अभाव विनाशी हैं। कोई अभाव नित्य नहीं है। जैसे घट जैसे भाव पदार्थ माया का कार्य है वैसे अभाव भी माया का कार्य है।

'नेह नानास्ति किंचन' यह श्रुति प्रपंच का तीनों काल में अभाव बताती है। अनुभवसिद्ध प्रपंच का तीनों काल में अभाव नहीं बनेगा इसलिए प्रपंच का स्वरूप से निषेध नहीं किया गया, किन्तु प्रपंच पारमार्थिक नहीं है, इसलिए पारमार्थिक विशिष्ट प्रपंच का त्रैकालिक अभाव श्रुति में कहा है। यह बात अनुपलब्धि प्रमाण से सिद्ध होती है। यदि पारमार्थिक विशिष्ट प्रपंच हो तो जैसे व्यवहारिक प्रपंच की उपलब्धि मिलती है वैसे पारमार्थिक प्रपंच की उपलब्धि मिलनी चाहिए, यानी कि सभी वस्तु और सभी मनुष्य नित्य रहने चाहिए, लेकिन वैसी उपलब्धि नहीं मिलती। इसलिए प्रपंच के अभाव का ज्ञान अनुपलब्धि प्रमाण से होता है।। उपरोक्त ६ प्रमाण जब आत्मसाक्षात्कार में उपयोगी होते हैं तभी प्रमा जैसा काम करते हैं। जब वे अनात्मा में चेष्टा करते हैं तभी अप्रमा का रूप लेते हैं। अप्रमा की अधिक स्पष्टता नीचे दी गयी है।

अप्रमावृत्ति (झूठी वृत्ति)

अप्रमावृत्ति दो प्रकार की है :

(१) संशयज्ञान

(२) मिथ्याज्ञान

ये दोनों अनर्थ के हेतुरूप हैं इसलिए उसकी निवृत्ति करनी चाहिए। एक धर्मी में विरुद्ध अनेक धर्म का ज्ञान हो उसे संशय कहते हैं। ऐसे संशय दो प्रकार के हैं :

१. प्रमाण संशय २. प्रमेयसंशय

वेदांतवाक्य अद्वितीय ब्रह्म में प्रमाण है कि नहीं ऐसे संशय को प्रमाण संशय कहते हैं। अथवा वह आनंदमय है कि नहीं ऐसे संशय को प्रमेय संशय कहते हैं। ये दोनों साथ मिलकर संशयज्ञान होता है। संशयज्ञान और मिथ्याज्ञान मिलकर अथवा एक से भी गलती होती है। उस गलती को शास्त्रों में भ्रम अथवा अध्यास कहा है। अध्यास दो प्रकार के हैं :

१. अर्थाध्यास २. ज्ञानाध्यास

सभी अध्यास का अधिष्ठान चेतन है। रज्जु में सर्प की प्रतीति हो वहाँ इदम् वृत्ति से अवच्छिन्न चेतन सर्प का अधिष्ठान है। रज्जु सर्प का अधिष्ठान नहीं है। क्योंकि चेतन की परमार्थ सत्ता है और उसकी उपाधि रज्जु व्यावहारिक होने से रज्जु अवच्छिन्न चेतन की व्यवहारिक सत्ता है। * (*यह बात आज के वर्तमान सायन्स की दृष्टि से समझने का प्रयास करें तो, तो जहाँ जहाँ इदमवृत्ति से चेतन अवच्छिन्न होता है वहाँ कल्पित देशकाल उत्पन्न होते हैं। अतः दृष्टा और दृश्य के बीच की जगह दृष्टिकाल में अज्ञान से उत्पन्न होती है और उसमें जगत का आरोप होता है। वस्तुतः इदंता भ्रांति है। यह बात सायन्स से भी सिद्ध हुई है।) दोनों प्रकार से सर्प और उसके ज्ञान की प्रातिभासिक सत्ता होने से, अधिष्ठान की सत्ता से विषमसत्तायुक्त दिखनेवाला सर्प और उसका ज्ञान ये दोनों अध्यस्त है। वैसे ही ब्रह्म में जगत और जगत का ज्ञान दोनों अध्यस्त हैं।

अर्थाध्यास दो प्रकार का है :

(१) स्वरूप अध्यास (२) संसर्गाध्यास

जिस पदार्थ का स्वरूप अनिर्वचनीय उपजे उसे स्वरूप अध्यास कहते हैं। जैसे सीपी में रूपा का स्वरूप अध्यास है। आत्मा में अनात्मा का स्वरूपअध्यास है। ज्ञान से जिसका बाध हो सके वैसी वस्तु अधिष्ठान में स्वरूप से अध्यस्त होती है। अधिष्ठान में स्वरूप से अध्यस्त होनेवाली वस्तु का अध्यास हो उसे स्वरूप का अध्यास कहते हैं। धर्मी का अध्यास होने के बाद धर्म का अध्यास होता है।

जो पदार्थ स्वरूप से व्यवहारिक हो अथवा पारमर्थिक प्रथम सिद्ध हो और उसका संबंध अनिर्वचनीय उपजे उसे संसर्गाध्यास कहते हैं। जैसे मुख और दर्पण का कोई संबंध नहीं है, दोनों व्यावहारिक हैं, फिर भी दर्पण में मुख का संबंध दिखता है वह अनिर्वचनीय है। वैसे ही चेतन में अहंकार नहीं है। चेतन पारमार्थिक है। उसका संबंध अहंकार में अध्यस्त है। आत्मता चेतन में है लेकिन अहंकार में दिखती है। अतः आत्मचैतन्य का तादात्म्यसंबंध अहंकार में 'अनिर्वचनीय' है। ब्रह्म के सिवाय सभी पदार्थ सिद्धांत में कल्पित हैं। अतः उसका ज्ञान भी कल्पित है, उसका अभाव पारमार्थिक है, वह ब्रह्मरूप है।

काल की भूल

सीपी में इदंता और प्राक् सिद्धत्व धर्म है। उसमें जब रूपा दिखता है तभी इदंता

और प्राक् सिद्धत्व दोनों का अध्यास रूपा में होता है। इसलिये अभी मैंने रूपा देखा ऐसी प्रतीति नहीं होती, लेकिन यह रूपा पहले से ही यहाँ है-सामने है ऐसा ज्ञान होता है, इस प्रतीति का विषय प्राक् जातत्व है। वह रूपा में नहीं है अतः सीपी में जो प्राक् सिद्धत्व धर्म है उसका अनिर्वचनीय संबंध रूपा में उपजता है।

ऐसे ही सिद्धांत में ब्रह्म में प्राक् सिद्धत्व धर्म है। जब जगत दिखता है तभी अभी जगत उत्पन्न हुआ उसका ज्ञान नहीं होता, किन्तु यह जो कुछ भी दिखता है वह पहले से ही जगत है ऐसा ब्रह्म का प्राक् सिद्धत्व धर्म जगत में अनिर्वचनीय उपजता है।

सीपी में प्राक् सिद्धत्व धर्म है। उसके संबंध से रूपा में प्रतीति होने से रूपा की उत्पत्ति की प्रतीति नहीं है, उलटा उसकी प्रतीति का प्रतिबंध होता है। प्राक् सिद्धता और उत्पत्ति परस्पर विरोधी है। जहाँ प्राक् सिद्धता हो वहाँ अतीत वस्तुत्व होता है। जहाँ वर्तमान उत्पत्ति मालूम पड़े वहाँ प्राक् सिद्धता नहीं होती अतः रूपा की उत्पत्ति भ्रांति से मालूम होती है, फिर भी उस बात का पता नहीं चलता, यही अज्ञान है। ऐसे ही जगत की उत्पत्ति नहीं है, लेकिन जगत का ज्ञान भ्रांति है, फिर भी वह भ्रांति भ्रांति है ऐसा नहीं लगता।

किसीके मनमें ऐसा प्रश्न हो कि सीपी के ज्ञान से रूपा का नाश होता है फिर भी उस नाश का पता क्यों नहीं चलता ? उसका समाधान निम्नलिखित है :

अधिष्ठान के ज्ञान से अर्थात् सीपी के ज्ञान से रूपा का नाश होता है। तभी रूपा का बाध-निश्चय होता है। सीपी में रूपा तीनों काल में नहीं है, ऐसे निश्चय को बाध निश्चय कहते हैं। ऐसा निश्चय रूपा के नाश की प्रतीति का विरोधी है। नाश में प्रतियोगी कारण चाहिए। बाध में प्रतियोगी का सर्वदा अभाव है। जिसको सर्वदा अभाव की बुद्धि हो उसे नाश की बुद्धि नहीं होती। जैसे घट आदि का दंड से नाश किया जाता है वैसे कल्पित का नाश नहीं होता, परंतु अधिष्ठान के ज्ञान से अज्ञानरूप उपादान सहित कल्पित की निवृत्ति होती है। इसलिए जगत का नाश ब्रह्मज्ञान से नहीं दिखता। ब्रह्मज्ञान से जगत की निवृत्ति होती है, क्योंकि जगत है ही नहीं। अधिष्ठान मात्र से अवशेष ही अज्ञान सहित कल्पित की निवृत्ति है। दृष्टांत में जैसे सीपी अधिष्ठान है। उसके अवशेषरूप रूपा का बाध अनुभव सिद्ध है, अतः रूपा के नाश की अलग प्रतीति नहीं होती। वैसे ही ब्रह्म के अवशेषरूप जगत का बाध समझना है। अतः जगत के नाश की अलग प्रतीति नहीं होगी।

जहाँ भ्रांति है वहाँ सभी अनिर्वचनीय पदार्थ की उत्पत्ति जैसा लगेगा, ऐसी

उत्पत्ति भ्रांतिरूप है। हम किसी वस्तु को पहली बार देखते हैं तभी वह हमारे सामने हमारी दृष्टि से पहले पड़ी थी ऐसी मान्यता बन जाने का सच्चा कारण यह है कि हमारे शरीर के जन्म से पहले सामने का जगत था ऐसा जन्म के बाद तुरंत लगता है और ऐसी भ्रांति दूसरे सभी पदार्थों में चली आती है। सिर्फ बड़ी उम्र में जब आत्मज्ञान होता है तभी ही ऐसा लगता है कि हम जो कुछ भी सामने देखते हैं वैसी वस्तुयें पहले से वहाँ नहीं है। वे दृष्टि काल में ही प्रतीत होती हैं। रज्जु में दिखनेवाला सर्प पहले से वहाँ था ऐसी भ्रांति होती है। वैसा ही जगत के विषय में समझना है। अगले प्रकरणों में सापेक्षवाद में अनेक दृष्टांत दिए हैं उनसे इस बात की स्पष्टता हो सकती है।

इसप्रकार पदार्थ की उत्पत्ति भ्रांतिरुप है। रूपा जब सीपी में भासता है तभी सीपी की प्रतीति नहीं होती। सीपी में रूपा का तादात्म्य संबंध भासने लगता है इससे यह रूपा है ऐसी प्रतीति होने लगती है। यह रूपा उत्पन्न होता है ऐसी प्रतीति नहीं होती। मक्खी सीपी पर बैठी हो तो उसको रूपा नहीं लगता अतः यह मनुष्य के अज्ञान का संबंध है। अतः सीपी की वृत्ति का प्राकसिद्धत्व धर्म का रूपा में अध्यास है, वहाँ सीपी की वृत्ति का इदंतारूप धर्म भी रूपा में अध्यस्त है इसलिए यह रूपा है ऐसी प्रतीति होती है। ऐसी वृत्ति में ही देशकाल उत्पन्न होते हैं और वृत्ति ब्रह्माकार होनेपर वह देशकाल नहीं रहते। ब्रह्म में जगत का प्राक् सिद्धत्व धर्म भी भ्रांति से मालूम पड़ता है और ज्ञानकाल में उसका बाध होता है।

आरोपित वस्तु का अधिष्ठान में स्वरूप से अध्यास होता है और सत्य वस्तु के धर्म और संबंध आरोपित में अध्यस्त होते हैं ऐसे दो प्रकार के अध्यास से संसार चलता है। अंतःकरण का आत्मा में स्वरूप से अध्यास है, किन्तु अंतःकरण में आत्मा का स्वरूप से अध्यास नहीं है अपितु आत्मा के धर्म का और उसके संबंध का अध्यास होता है इसलिए उसको संसर्गाध्यास कहते हैं। ज्ञानस्वरूप आत्मा है, अंतःकरण नहीं। ज्ञान का संबंध अंतःकरण में प्रतीत होता है, इसलिये आत्मा के संबंध का अंतःकरण में अध्यास होता है और वह अनिर्वचनीय है, क्योंकि वह संबंध कल्पित है और ज्ञानकाल में बाधित होता है।

उदाहरण के तौर पर कोई कहे की मैं एक आँख से अंध हूँ। अंधत्व इन्द्रिय का धर्म है लेकिन आत्मा में प्रतीत होता है। मैं नेत्र हूँ ऐसा कोई नहीं कहता।

वेदांत का सिद्धांत समझने में वृत्ति का स्वरूप समझना अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि

१. जीव को तीन अवस्था का संबंध वृत्ति से होता है, जाग्रतमें और स्वप्न में अंतःकरण से वृत्ति है।

२. पुरुषार्थ भी वृत्ति से होता है।

३. संसारप्राप्ति का हेतु वृत्ति है।

४. मोक्षप्राप्ति का हेतु भी वृत्ति है।

वृत्ति के ७ प्रयोजन निम्नलिखित है :

१. जीव चैतन्यवृत्तिपर आरोहण करके विषय को प्रकाशता है । अर्थात् विषय प्रकाश की सहायता वृत्ति का एक प्रयोजन है।

२. विषयदेश में सर्वदा सन्निहित विषयाभासक जीवचैतन्य विषय तादात्म्यापन्न ब्रह्मचैतन्य की अभेद-

अभिव्यक्ति करना वृत्ति का मुख्य कार्य है।

३. जीव परिच्छिन्न है। वह वृत्ति के द्वारा विषय की सन्निधि में जाता है। अर्थात् वृत्ति ही उस परिच्छिन्न जीव को विषय के पास ले

जाती है, उसके बाद विषयाधिष्ठान ब्रह्मचैतन्य के साथ उस परिच्छिन्न जीव की अभेद अभिव्यक्ति कराता है।

४. आवरणभंग वृत्ति का मुख्य प्रयोजन है। प्रकाश तो आत्मा का स्वरूप है। इसलिए वह स्वतः होता है, यानी प्रकाश के लिये वृत्ति का अंगीकार नहीं है।

५. जब तक वृत्ति उत्पन्न हुई नहीं हो तभी तक विषय-चैतन्य का और जीवचैतन्य का विषय-विषयी भावसंबंध नहीं बनता । वृत्ति की उत्पत्ति के बाद यह संबंध उत्पन्न होता है, फिर ज्ञान होता है यानी विषय-विषयी भावना संबंध की उत्पत्ति ही वृत्ति का प्रयोजन है । अप्रमा वृत्ति आवरण करती है और प्रमावृत्ति आवरणभंग करती है।

६. वृत्ति प्रथम विषय सन्निहित जीवचैतन्य के साथ तादात्म्यभाव को प्राप्त होती है। फिर उस वृत्ति का विषय के साथ संयोग होता है। फिर विषय सन्निहित जीव चैतन्य का वृत्ति के द्वारा और विषय संयोग के द्वारा विषय संयुक्त वृत्ति तादात्म्यरूप परंपरा संबंध प्राप्त होता है। यही संबंध वृत्ति का प्रयोजन है।

७. रेडियो में जैसी वेव-लेंथ रखते है वैसा गायन अथवा वैसी बातें तुरंत सुनाने में आती हैं, वैसे जैसी वृत्ति हो वैसी वस्तु देखने में आती है।

संक्षेप में जाग्रत के सर्व पदार्थ और उसका ज्ञान (भ्रांति हो तभी) एकसाथ प्रतीत

होते हैं और आत्मज्ञान होनेपर एकसाथ बाधित होता है । इस सिद्धांत को दृष्टिसृष्टिवाद कहते हैं। यह सिद्धांत 'माण्डूक्य उपनिषद में, भागवत के एकादश स्कंध में, योगवशिष्टमें और सापेक्षवाद में अधिक विस्तार से दिया हुआ है। '

सापेक्षवाद के जो दृष्टांत अगले प्रकरणों में दिए हुए हैं उससे इतना समझमें आएगा कि जब भ्रांति हो अथवा अप्रमा वृत्ति हो तभी सर्व पदार्थ, उसका ज्ञान और उसका ज्ञाता एकसाथ ही मिथ्या प्रतीत होते हैं और जब आत्मज्ञान होता है और प्रमावृत्ति उत्पन्न हो, तभी उन तीनों का लय होता है, यह बात निम्नलिखित प्रकार से क्रम से जान सकते हैं।

१. अप्रमावृत्ति हो तभी जैसी सृष्टि वैसी दृष्टि होती है।

२. थोड़ा ज्ञान हो तभी जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि होती है।

३. अधिकज्ञान हो तभी दृष्टि के समय सृष्टि हो ऐसा प्रतीत होता है।

४. पूर्णज्ञान हो तभी सृष्टि है ही नहीं, ब्रह्म ही है ऐसा प्रतीत होता है उसको प्रमा कहते हैं।

ॐ ॐ

परिशिष्ट : ३

स्वामी चिदघनानंदजी कृत प्रमाणनिरूपण

घट और पट आदिरूप विषय के द्वारा अवच्छिन्न चैतन्य का नाम विषय चैतन्य है। इस विषय चैतन्य के अभिव्यंजक अंतःकरण के अथवा अज्ञान के परिणाम विशेष को वृत्तिज्ञान कहते हैं। यधपि क्रोध, इच्छा, सुख, दुःख आदि अंतःकरण के परिणाम है, और आकाश आदि भी अज्ञान के ही परिणाम हैं, तथापि क्रोध आदि में विषय चैतन्य का 'अभिव्यंजकपना नहीं है। '

'अभिव्यंजकपना यानी अपरोक्ष व्यवहारजनकत्त्व। यह घट है, यह पट है ऐसा जो अपरोक्ष व्यवहार है उस अपरोक्ष व्यवहार का उत्पन्न होनापन वृत्तियों में विषयचैतन्य के अभिव्यंजक के रूप से है। दूसरा अर्थ यह भी है कि वृत्तियों में जो आवरण को मिटाने का कार्य है वही विषयचैतन्य का अभिव्यंजकपना है।'

'और वृत्ति अंतःकरण अज्ञानरूप उपादान कारण की अपेक्षा से परिणाम रूप में है और अधिष्ठानचैतन्य की अपेक्षा से विवर्तरूप से है।'

जैसे वास्तविक रूप से दाहकता से रहित लोहे के टुकड़े में अग्नि के तादात्म्य संबंध से लोहे का टुकड़ा दाह करता है, वैसे ही अंतःकरण और आत्मा दोनों तादात्म्य अध्यास के द्वारा 'मैं जानता हूँ, मैं चाहता हूँ' आदि अनुभवरूप से होता है। 'मैं' ऐसी प्रतीति से आत्मा में अंतःकरण का अध्यारोप होता है। 'मैं चेतन' ऐसी प्रतीति से अंतःकरण में आत्मा के तादात्म्य का अध्यारोप होता है। एवम् आत्मा में इच्छा आदि धर्म का और अंतःकरण में आत्मा के सत्य आदि धर्म का अध्यारोप होता है। इससे जीव 'मैं जानता हूँ' इस प्रकार अपने में ज्ञातापने का अनुभव करता है। इस तरह ज्ञान आत्मा का स्वरूप है और जानने की क्रिया का अंश अंतःकरण के साथ हुए अध्यास से उत्पन्न होता है।

अहं ब्रह्मास्मि आदि महावाक्य से उत्पन्न हुई ब्रह्म और आत्मा की एकता को विषय करनेवाली अन्तःकरण की वृत्ति में प्रतिबिंबवाली चैतन्यरूप प्रमा में प्रमापना बनता है, क्योंकि ब्रह्म और आत्मा का एकत्व अनधिगत है और अबाधित भी है।

प्रपंच के विषय में प्रपंच का यद्यपि एक ब्रह्मज्ञान से बाध होता है तथापि ब्रह्मज्ञान होने से पहले संसारदशा में प्रपंच का बाध नहीं होता। इसलिए प्रपंच भी संसारदशा में अबाधित है। अतः घटपट आदि प्रपंचविषयक प्रमा में प्रमाणपना बन सकता है।

सीपी में रूपा आदि भ्रांतिकाल में अबाधित है फिर भी अनधिगत नहीं है। अर्थात् अज्ञातसत्ता वाले नहीं है अपितु ज्ञातसत्ता वाले हैं। अतः भ्रांतिज्ञान प्रमा नहीं है। यहाँ ज्ञान के पूर्वकाल में विषय की सत्ता का नहीं होना उसका नाम ज्ञातसत्ता समझना चाहिए।

प्रमा के करण को प्रमाण कहते हैं। जैसे, कि यह घट है, ऐसी प्रत्यक्ष प्रमा का चक्षु इंद्रिय करण है। अतः चक्षु इन्द्रिय प्रमाण हुआ। इस प्रकार अनुमान आदि प्रमाण में भी लक्षण जान लेना चाहिये। जिस कारण के प्रवृत्त होनेपर कार्य की उत्पत्ति में विलंब न हो उस कारण को करण कहते हैं।

परोक्षता का लक्षण

अज्ञानकृत आवरण से रहित जो साक्षी चैतन्य है उसका नाम अनावृत संवित् है। ऐसी अनावृत संवित् के साथ प्रत्यक्ष प्रमाण के योग्य विषय के तादात्म्य का जो अभाव है वही विषय में परोक्षपना है। जैसे स्वर्गादि रूप विषय का अनावृत साक्षी चैतन्य के साथ तादात्म्य नहीं होता। इसलिए स्वर्गादि परोक्ष कहलाते हैं। और जिस समय घट और पट आदि विषयाकार अंतःकरण की वृत्ति उत्पन्न नहीं होती उस समय घट और पट आदि रूप योग्य विषय का अनावृत साक्षी चैतन्य के साथ तादात्म्य नहीं है। इसलिए उस समय घट पट आदि परोक्ष कहलाते हैं। यहाँ परोक्षता के लक्षण में 'विषय के योग्य' ऐसा विशेषण न देते तो धर्म और अधर्म में परोक्षता लक्षण की अव्याप्ति होती। इसलिए धर्म और अधर्म रूप अनावृत साक्षी चैतन्य के साथ तादात्म्य है लेकिन वह धर्माधर्म प्रत्यक्ष के योग्य नहीं है अपितु अयोग्य है। अतः योग्य पद के कहने से धर्माधर्म में परोक्षता बनती है। ऐसे परोक्ष अर्थ को विषय करनेवाले का जो प्रमाज्ञान है उसको परोक्ष कहते हैं। अपरोक्ष अर्थ का प्रतिपादक जो वाक्य होता है वह अपरोक्ष प्रमा को उत्पन्न करनेवाला होता है। जैसे कि तत्त्वमसि। यह वैदिक वाक्य ब्रह्मात्मरूप अपरोक्ष अर्थ का प्रतिपादक होने से अहं ब्रह्मास्मि ऐसी रीत से अपरोक्ष प्रमा को उत्पन्न करनेवाला होता है। और 'दसवाँ तू है' ऐसा लौकिक वाक्य दसवें पुरुषरूप अपरोक्ष अर्थ का प्रतिपादक होने से 'मैं दसवाँ हूँ' इस रीत से अपरोक्ष प्रमा को उत्पन्न करनेवाला होता है।

अपरोक्षता का लक्षण

प्रत्यक्ष प्रमाण के योग्य विषय का अनावृत साक्षी चैतन्य के साथ जो तादात्म्य है वही उसमें अपरोक्षपना है। जैसे घट और पट आदि का अनावृत साक्षी चैतन्य के साथ

तादाम्य ही घट और पट आदि में अपरोक्षता है। और धर्माधर्म का तादात्म्य यद्यपि अनावृत साक्षी चैतन्य के साथ है तथापि धर्माधर्म प्रत्यक्ष प्रमाण के योग्य नहीं है। इसलिए इस लक्षण में विषय के योग्य विशेषण कहने से धर्माधर्म में अपरोक्षपने के लक्षण की अतिव्याप्ति नहीं होती। यधपि सिद्धांत के अनुसार नित्य अपरोक्षरूप चैतन्य एक ही है और उस एक चैतन्य में साक्षी चैतन्य अनावृत है और विषय चैतन्य आवृत है। इस प्रकार का भेद कहना नहीं बनता, फिर भी विषय, अंतःकरण आदि उपाधि के भेद के कारण चैतन्य के भेद का निरूपण हो सकता है। और घट आदि में लोक का संशय, अनवभास और विपर्यय देखने में आते हैं। लेकिन अंतःकरण उपहित साक्षी चैतन्य में किसी को भी संशय आदि नहीं होता। अतः कार्य के चलते घट आदि अवच्छिन्न चैतन्य आवृत कहलाते हैं और साक्षी अनावृत कहलाता है।

तादात्म्य का लक्षण

जिस पदार्थ से जो वस्तु भिन्न रूप से प्रतीत होती है और जिस पदार्थ की सत्ता से जिस वस्तु की सत्ता भिन्न नहीं होती, उस पदार्थ से उस वस्तु का जो संबंध है उसका नाम तादात्म्य है। जैसे कि घट और पट आदि कार्य का तादात्म्य मिट्टी एवम् तंतु आदि उपादान कारण में है। जैसे घट और पट आदि अपने मीट्टी और तंतु आदि उपादान कारण से भिन्न होकर भासते हैं। और उपादान कारण की सत्ता से घट और पट आदि कार्य की सत्ता भिन्न नहीं है। अतः घट और पट आदि कार्य का तादात्म्य मिट्टी और तंतु आदि उपादान कारण में बनता है। इस प्रकार कल्पित रूपा और सर्प आदि का भी अपने अधिष्ठान से तादात्म्य होता है। जिस समय अंतःकरण की वृत्ति चक्षु आदि इन्द्रिय के द्वारा बाहर निकलकर घट आदि आकार के रूप में नहीं होती, उस समय घट आदि विषय, स्वावच्छिन्न चैतन्य में रहे हुए होते हैं। लेकिन जब वह वृत्ति बाहर निकलकर घट आदि आकाररूप होती है, तब वह वृत्ति विषयरूप उपाधि की एकता तत् उपहित चैतन्य के साथ एक देश में स्थिति करके रहती है। अर्थात् घट आदि अवच्छिन्न चैतन्य, वृत्ति अवच्छिन्न चैतन्य, अंतःकरण विशिष्ट प्रमाता चैतन्य एवम् अंतःकरण उपहित साक्षी चैतन्य, इन सब की उस समय एकता होती है। उस समय घट आदि साक्षीचैतन्य में अध्यस्त रूप से होते हैं। और अध्यस्त वस्तु की सत्ता अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती। जैसे कि कल्पित रूपा एवम् सर्प आदि की सत्ता सीपी एवम् रज्जु आदि अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती। इस प्रकार घट आदि में साक्षी चैतन्य की सत्ता से अभिन्न सत्तापना है। वही घट आदि का साक्षी चैतन्य के साथ

तादात्म्य है। और साक्षी के साथ जो तादात्म्य है वही घट आदि में अपरोक्षता है। ऐसे अपरोक्ष अर्थ का प्रतिपादन करनेवाले वचन अपरोक्ष प्रमा को ही उत्पन्न करनेवाले होते हैं। जैसे कि 'दसवाँ तू है' इस वचन में दसवाँ पुरुष त्वम् पदार्थ से अभिन्न होने से अपरोक्ष रूप से है, अतः अपरोक्ष अर्थ का प्रतिपादन करने से 'दसवाँ तू' यह वचन से सुनने वाले पुरुष को 'मैं दसवाँ हूँ' इस तरह अपरोक्ष प्रमा उत्पन्न होती है।

निमित्त कारण और उपादान कारण

असंगरूप और निर्विकार शुद्ध ब्रह्म जगत के कारण रूप में नहीं है, अपितु अनिर्वचनीय माया उपहित ब्रह्म ही जगत के उपादान कारण रूपसे एवम् निमित्त कारण रूप से है। आवरण शक्ति विशिष्ट मायारूप उपाधि की प्रधानता के कारण ब्रह्म जगत के उपादान कारण के रूप में है। एवम् ज्ञानशक्ति विशिष्ट माया उपहित अपने स्वरूप की प्रधानता से ब्रह्म जगत के निमित्त कारण के रूप में है। श्रुति में कहा है कि **'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय।'** अर्थात् माया उपहित ब्रह्म सृष्टि से पूर्व भावी प्रपंच के विषयरूप ज्ञानरूपी ईक्षण करने लगे कि मैं अनेक रूप से होकर उत्पन्न होऊं। इस श्रुति में **'तदैक्षत'** इस वचन से ब्रह्म में ईक्षण का कर्तापना जगत की उत्पत्ति से पूर्व का कहा है। इससे ब्रह्म जगत के निमित्त कारण के रूप में सिद्ध होता है। जैसे कि घट की उत्पत्ति के पूर्व घट की उत्पत्ति के अनुकूल ज्ञानवाला कुम्हार आदि घट के निमित्त कारण रूप होते हैं। और **'बहु स्यां प्रजायेय'** इस वचन से ब्रह्म का अनेक रूप से निरूपण किया है। इसलिए ब्रह्म में जगत का उपादान कारणपना सिद्ध होता है। जैसे कि घट, सकोरा आदि रूप से होनेवाली मिट्टी, घट, सकोरा आदि कार्य के उपादान कारण के रूप में प्रसिद्ध है। यदि ब्रह्म को जगत के उपादान कारण के रूप में मानें तो ही एक ब्रह्म के ज्ञान से सर्व का ज्ञान होगा ऐसी जो प्रतिज्ञा है उस प्रतिज्ञा और दृष्टांत का संभव है। उपादान कारण के ज्ञान से ही कार्य का ज्ञान होता है। अतः ब्रह्म में जगत का अभिन्न- निमित्त- उपादान कारणपना सिद्ध होता है।

श्रुति की प्रमाणता

अधिकारी पुरुष को जो अर्थ इष्टफल के हेतु रूप होता है तथा प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से अज्ञात होता है उस अर्थमें ही श्रुति का तात्पर्य है। यहाँ अद्वैत ब्रह्म प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से अज्ञात है। और अद्वैत ब्रह्मज्ञान से अधिकारी मनुष्य को **'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति, तरति शोकमात्मवित्'** आदि श्रुति में मोक्षरूप निरतिशय पुरुषार्थ की प्राप्ति का निरूपण किया है। अतः श्रुति के तात्पर्य का अद्वैत में ही संभव है। अन्य

किसी अर्थ में तात्पर्य का संभव नहीं है। और द्वैतरूप भेद तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से ज्ञात है और भेद के ज्ञान से किसी इष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती। परंतु जो भेद करता है उसको भय और मृत्यु प्राप्त होते हैं। ऐसी श्रुति भी है। इसलिए भेददर्शन वाले पुरुष को अनर्थ की प्राप्ति होती है। और जो मनुष्य अपने इष्टदेव की उपासना भेद बुद्धि से करता है वह पशु है यह भी कहा हुआ होने से भेद में श्रुति का तात्पर्य संभव नहीं। यदि कभी श्रुति भेद का ही निरूपण करेगी तो प्रत्यक्ष भेद की अनुवादकता से श्रुति में अप्रमाणता प्राप्त होगी। इससे सिद्ध होता है कि फलयुक्त अज्ञात अर्थ की बोधक अद्वैत श्रुति प्रबल है। एवम् फलशून्य ज्ञातरूप अर्थ की बोधक भेदश्रुति दुर्बल है। लोकप्रथा के अनुसार भी प्रबल से दुर्बल का बाध होता है। लेकिन दुर्बल से प्रबल का बाध नहीं होता। अतः भेदबुद्धि के विरोध से अद्वैत श्रुति में अन्यपरता नहीं बनती, अपितु अद्वैतश्रुति के विरोध से भेदश्रुति में अन्यपरता बनती है। अतः अद्वैतश्रुति के विरोध से प्रपंच में सत्यता की संभावना नहीं है।

साक्षीचैतन्य की स्वप्रकाशता

इन्द्रियजन्य वृत्ति में प्रतिबिंबित चैतन्य का नाम फलचैतन्य है। इस फल चैतन्य का अविषयपना ही साक्षीचैतन्य में स्वप्रकाशता है। अथवा फलचैतन्य के अविषयरूप होकर अपरोक्ष व्यवहार की जो योग्यता है वह साक्षी चैतन्य में स्वप्रकाशता है। यहाँ अपरोक्ष व्यवहार से प्रमाणजन्य वृत्ति ग्रहण करना।

ज्ञानीपुरुष का प्रारब्ध

ज्ञानवान पुरुष में राग आदि नहीं होने चाहिए यह कहा है, उसमें दृढ़ अध्यासपूर्वक राग आदि का निषेध समझना है। जैसे अज्ञानी में आत्मा और अहंकार आदि के दृढ़ अध्यासपूर्वक राग आदि होते हैं वैसे ज्ञानवान में दृढ़ अध्यासपूर्वक राग आदि नहीं होते।

और ज्ञानवान मनुष्य यथेष्ट आचरण नहीं करता लेकिन प्रारब्धकर्म के भोग में ही अनुकूल जो आभासमात्र रागद्वेष आदि हैं उसकी अनुवृत्ति ज्ञानवान में रहती है। ऐसी आभासमात्र रागद्वेष की अनुवृत्ति आत्मज्ञान की विरोधी नहीं होती। यदि कभी आभासमात्र रूप रागद्वेष आदि की अनुवृत्ति भी आत्मज्ञान की विरोधी रूप से होती हो तो कोई भी पुरुष को आत्मज्ञान नहीं होना चाहिए। चित्त में कदाचित उत्पन्न हुए जो लेशमात्र राग है, उस राग की निवृत्ति करने में असमर्थ जो पुरुष ब्रह्मनिष्ठा से द्वेष करता है उसको किसी काल में भी आत्मा का निश्चय नहीं होता। अतः प्रारब्धकर्म की समाप्ति

पर्यन्त ज्ञानवान में देहाभिमान और रागद्वेष आदि बाधितानुवृत्ति से सिद्ध होते हैं।

सीपी में रूपा का जो भ्रम है वह निरूपाधिक भ्रम है। इससे सीपी के ज्ञान से रूपा के भ्रम की निवृत्ति करने में कोई प्रतिबंध नहीं है। अतः सीपी के ज्ञान से निवृत्त हुए रूपा के भ्रम की पुनः आवृत्ति नहीं होती। और देहाभिमान आदि तो सोपाधिक भ्रम रूपमें हैं। सिर्फ प्रारब्धकर्म ही उपाधि के रूप में हैं। अतः आत्मज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होनेपर भी प्रारब्धकर्म रूप उपाधि की स्थिति पर्यंत ज्ञानवान में बाधितानुवृत्ति के द्वारा देहाभिमान आदि की स्थिति का संभव होता है। आत्मज्ञान से आवरणशक्ति की और तादात्म्य रूप अध्यास की निवृत्ति हो जाती है। और विक्षेपशक्ति वाला अज्ञान आत्मज्ञान के बाद रहता है। इस विक्षेपशक्ति वाले अज्ञान को लेशाविद्या कहते हैं। जैसे आवरण शक्ति का विरोध आत्मज्ञान के साथ है वैसे ही विक्षेपशक्ति का विरोध आत्मज्ञान से नहीं है। अतः विक्षेपशक्ति वाले अज्ञान की अनुवृत्ति से ज्ञानवान को प्रारब्ध कर्म का भोग बनता है।

और ज्ञानवान को जन्मान्तर की प्राप्ति का कोई निमित्त नहीं है। अज्ञान अपने स्वरूप से जन्म का हेतु रूप नहीं है। लेकिन धर्म और अधर्म- ये दोनों ही मनुष्य के जन्म के हेतु रूप होते हैं। ये धर्म अधर्म भी संचित रूप से ही जन्म के हेतु रूप होते हैं। इस संचित धर्म और अधर्म की स्थिति का हेतु आवरणशक्तिवाला अज्ञान है। इस अज्ञान की आत्मज्ञान से निवृत्ति होने से संचित कर्म का भी नाश हो जाता है। और आत्मज्ञान होने के बाद आगामी कर्म का लेप ज्ञानवान को नहीं होता, लेकिन प्रारब्धकर्म का नाश भोग से होता है। इस प्रकार शरीर के आरंभरूप कारण के अभाव से ज्ञानवान को जन्मान्तर की प्राप्ति नहीं होती। अग्नि से भूना हुआ बीज यद्यपि तृप्ति का हेतुरूप होता है तथापि वह बीज अंकुर का हेतुरूप नहीं बनता। वैसे ही विक्षेप वाला अज्ञान, ज्ञानवान मनुष्य के प्रारब्ध कर्म के फल के भोग में उपयोगी विषयदर्शन के हेतुरूप होता है। लेकिन जन्मांतर के हेतुरूप नहीं है। और आत्मज्ञान से आवरणशक्तिवाले अज्ञान की निवृत्ति के समय जो प्रारब्धकर्म अपने फलको भोग देने के लिए विक्षेपशक्तिवाले अज्ञान के लेश की रक्षा कर रहा था वह प्रारब्ध कर्मरूप प्रतिबंधक की निवृत्ति होने के बाद अज्ञान के लेश का रक्षण करता था। उस प्रारब्धकर्म रूप प्रतिबंधक की निवृत्ति होने के बाद अज्ञान का लेश भी अपने आप निवृत्त हो जाता है। उस अज्ञान के लेश की निवृत्ति के लिए पुनः आत्मज्ञान की अपेक्षा नहीं होती। अज्ञान के लेश की स्थिति के प्रयोजक रूप आवरण शक्तिवाला जो

अज्ञान था वह तो पहले ही आत्मज्ञान से निवृत्त हो गया है। अतः आत्मज्ञान से अज्ञान निवृत्त होनेपर भी विक्षेपशक्तिवाले अज्ञान के लेश की अनुवृत्ति से ज्ञानवान को प्रारब्ध कर्म का भोग बनता है। तत्त्वमसि महावाक्य का बोध होने के बाद भविष्य नहीं रहता, इसलिए कुछ विद्वान लेशाविद्या का सिद्धांत नहीं मानते।

आत्मा के आवरण और अहंकार आदि के साथ आत्मा का तादात्म्य अध्यास- ये दोनों अज्ञान से होते हैं। अतः जब आत्मज्ञान होता है तब उस अध्यास का नाश हो जाता है। ये दोनों निरुपाधिक भ्रम रूप है। इसलिए आत्मा के साक्षात्कार से इन दोनों की निवृत्ति होती है। और विक्षेप भी कर्मसहित अविद्या से हुआ है इसलिए ब्रह्मविद्या से अविद्या की निवृत्ति होनेपर प्रारब्ध कर्म के नाश पर्यंत विक्षेप का नाश नहीं होता, क्योंकि विक्षेप सोपाधिक भ्रम रूप से है एवम् कर्म सहित विक्षेप वाला अज्ञान उपाधि रूप से है। जिस समय फल के भोग से प्रारब्ध भोग कर्म का नाश होता है उस समय विक्षेप शक्ति वाले अज्ञान का नाश स्वतः होता है लेकिन उसकी निवृत्ति हेतु ज्ञान की अथवा योग की अपेक्षा नहीं रहती। जैसे तेल खत्म हो जानेपर दीपक अपने आप बुझ जाता है वैसे आत्मज्ञान से आवरणशक्तिवाला अज्ञान पहले निवृत्त हो जाता है। उससे संचित और आगामी कर्म निवृत्त होते हैं एवम् फल के भोग से प्रारब्धकर्म निवृत्त होता है। इन सबका उपरोक्त प्रकार से नाश होने के बाद विक्षेपशक्ति वाला अज्ञान अपने आप निवृत्त हो जाता है। आत्मज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होने के बाद प्रारब्धकर्म से प्राप्त हुए अन्नपान आदि विषय का अनुभव करनेवाला ज्ञानवान मनुष्य अखंड, एकरसरूप एवम् सच्चिदानंदरूप ब्रह्मरूप से रहता है। यही उक्त आत्मज्ञान का फल है।

संशय और विपरीत भावना से रहित ज्ञानवान मनुष्य जब 'मैं ब्रह्मरूप से हूँ' इस प्रकार की वृत्ति के प्रवाह रूप ध्यान करता है तब उसे बाह्य विक्षेप की निवृत्ति से ब्रह्मानंदरूप दृष्ट सुख विशेष होता है। ऐसे दृष्ट सुख के लिए ही ज्ञानवान पुरुष ध्यान करते हैं। लेकिन अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता इसलिए संशय और विपरीत भावनारूप प्रतिबंध की निवृत्ति एवम् आत्मसाक्षात्कार दोनों विद्वान को पहले से ही मिले होते हैं।

ऐसे पुरुष का योगक्षेम भगवान चलाते हैं, उसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञानवान के लिए कोई अप्राप्त अंश नहीं है। ब्रह्मानंद उसे नित्यप्राप्त है अतः योगक्षेम का अर्थ यह जानना कि देह आदि सर्व अनात्मपदार्थ में आत्मबुद्धि का त्याग करके ज्ञानवान की

ब्रह्मानंदरूप जो स्थिति है उसका नाम योग है। और प्रबल प्रारब्ध के योग से ब्रह्मनिष्ठा से अच्युति का नाम क्षेम है। इस प्रकार का योगक्षेम ज्ञानवान में होता है। इसलिए ध्यान निष्ठावान पुरुष को निरंतर दृष्ट सुख प्राप्त होता है।

और ज्ञानवान पुरुष भ्रांतिजन्य देह के अभिमान से रहित है इसलिए यथेष्ट आचरण में प्रवृत्त नहीं होता। देहाभिमान वाला पुरुष ही यथेष्ट आचरण में प्रवृत्त होता है। देह और इन्द्रिय आदि के अभिमान से रहित जो ज्ञानवान पुरुष है उसमें प्रमातृत्व नहीं बनता। प्रमाता के बिना प्रमाण की प्रवृत्ति नहीं होती। अतः ज्ञानवान को कुछ कर्तव्य नहीं है।

जिसे बोध पूर्ण है लेकिन किसी प्रारब्ध के कारण वैराग्य और उपरति संपूर्ण नहीं होते अर्थात् प्रतिबंध रूप से होते हैं उसका मोक्ष तो अवश्य होता है। लेकिन दृष्ट दुःख निवृत्त नहीं होता।

जैसे तत्त्वज्ञान से प्रारब्धकर्म प्रबल होते हैं वैसे प्रारब्धकर्म से योगाभ्यास प्रबल है। योगाभ्यास के द्वारा यधपि प्रारब्ध भोग के अनुकूल कर्तव्य आदि बंध प्रतीति की आत्यंतिक निवृत्ति नहीं होती तथापि योगाभ्यास के द्वारा कर्तुत्वादि बंध प्रतीति का अभिभव (पराजय) अवश्य होता है, इससे जीवनमुक्ति का लक्षण बनता है। यदि प्रारब्ध कर्म करते हुए योगाभ्यास को प्रबल नहीं मानेंगे तो पुरुष प्रयत्न व्यर्थ होगा। पुरुष प्रयत्न व्यर्थ होने से चिकित्सा शास्त्र से लेकर मोक्ष पर्यन्त सर्व शास्त्र का आरंभ निष्फल होगा।

ज्ञानवान दो प्रकार के होते हैं : एक कृतोपास्तिक रूप है और दूसरा अकृतोपास्तिक रूप है। जिस पुरुष ने आत्मसाक्षात्कार से पहले सगुण ब्रह्म के साक्षात्कार पर्यन्त उपासना की है, वैसा ज्ञानवान कृतोपस्तिक कहलाता है। जिसने ऐसी उपासना नहीं की वैसा ज्ञानवान अकृतोपास्ति है। और कृतोपास्ति ज्ञानवान को ज्ञान के बाद जीवनमुक्ति के लिए भी कुछ कर्तव्य नहीं होता। कृतोपास्ति ज्ञानवान को मनोनाश और वासनाक्षय पूर्वसिद्ध है इसलिए आत्मज्ञान की प्राप्तिकाल में कृतोपास्ति पुरुष को कर्तव्यता का निषेध करनेवाले श्रुति और स्मृति के वचन कहे हुए हैं। वे वचन भी कृतोपास्ति ज्ञानवान पुरुष को सर्व कर्तव्यता का निषेध करते हैं। और लौकिक एवम् वैदिक व्यापार से चित्त की विश्रांतिरहित जो अकृतोपास्ति ज्ञानवान है उसको ज्ञान के बाद जीवनमुक्ति के लिए मनोनाश और वासना क्षय की कर्तव्यता शेष होने से निरंकुश रीत से कृतकृत्यता नहीं है। इसलिए अकृतोपास्ति ज्ञानवान को जीवनमुक्ति

के लिए मनोनाश और वासनाक्षय अवश्य कर्तव्य है।

ज्ञान प्रमाण और वस्तु दोनों के अधीन होता है। इसलिए वह सर्व को साधारण है। जैसे घट आदि वस्तु के साथ चक्षु आदि प्रमाण का संबंध होता है तब सर्व मनुष्यों को यह घड़ा है ऐसा समान ज्ञान होता है। वैसे तत्त्वमसि आदि महावाक्य के श्रवण से मैं ब्रह्मरूप हूँ, ऐसा ज्ञान कृतोपास्ति नामक और अकृतोपास्ति नामक सर्व अधिकारी को समान है। यदि कभी ऐसा न माने तो याज्ञवल्क्य, कहोल, जनक, अजातशत्रु आदि गृहस्थ को आत्मज्ञान नहीं होना चाहिए। अतः यह सिद्ध होता है कि श्रवण आदि से उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मसाक्षात्कार वाला और चित्त की विश्रांति की इच्छावाला विद्वान संन्यासी जीवनमुक्ति का अधिकारी है।

ब्रह्मवेत्ता पुरुष इन्द्रियों का लय होनेपर भी जगता है अर्थात् जाग्रत अवस्था का अनुभव करता है, और जाग्रत अवस्था में भी चक्षु आदि इन्द्रिय के द्वारा रूप आदि विषय को ग्रहण नहीं करता। ब्रह्मवेत्ता पुरुष का प्रमाण बदल जाता है। वह जाग्रत अवस्था में होते हुए भी सुषुप्ति में कहा जाता है। इंद्रिय के द्वारा अर्थ के ज्ञानरूप जाग्रत ज्ञानवान को नहीं रहती। जिस ब्रह्मवेत्ता का अपना अखंड एकरस रूप आनंद का अनुभव शुभ और अशुभ वासनाओं से रहित है, वह ब्रह्मवेत्ता जीवन्मुक्त कहलाता है। जीवन्मुक्त पुरुष स्थितप्रज्ञ कहलाता है। उसको कोई गुणातीत कहते है अथवा अति-वर्णाश्रमी भी कहते हैं।

निम्नलिखित जीवनमुक्ति के पाँच प्रयोजन है :

१. ज्ञानरक्षा २. तप ३. विसंवाद का अभाव

४. दु:खनिवृत्ति ५. सुख का आविर्भाव

ॐ ॐ

परिशिष्ट : ४

स्वामी विद्यारण्य कृत, बृहदारण्यक वार्तिकसार में संबंध वार्तिक में प्रमाण-परीक्षा

हिन्दू धर्म में सब प्रमाणों में सर्वश्रेष्ठ प्रमाण वेदांत का प्रमाण है। उसमें भी कुछ लोगों को शंका है कि :

१. वेदांत में सुख प्राप्ति और दुःख निवृत्ति के साधन का उपदेश नहीं है।

२. उसमें बोधकत्व नहीं है।

३. उसके प्रमेय का पता नहीं चलता।

तीसरे प्रश्न का उत्तर तुरंत दे सकते हैं कि सब व्यवहार का जो साक्षी चिदात्मा है, वह वेदांत वाक्य का प्रमेय है। और प्रमाता और उसकी वृत्तियाँ सदा ज्ञात ही रहती हैं। यदि चैतन्य की सदा व्याप्ति न रहे तो वृत्तियाँ भी घट आदि की नाईं अज्ञात सत्तावाली रहेगी लेकिन वैसा नहीं है। घट आदि का वृत्ति के द्वारा अनावृत चिदात्मा के साथ संबंध होता है। अतः उस दशा में सदा व्याप्ति नहीं है। इसलिए घट आदि का भान किसी समय ही होता है। अर्थात् वृत्ति हो तब होता है, सर्वकाल में नहीं होता। लेकिन प्रमाता और उसकी वृत्ति में चिदात्मा की सदा व्याप्ति है। और बुद्धि और उसकी वृत्तियों की सत्ता और दोनों के अभाव की सत्ता जिस चिदात्मा के द्वारा मालूम पड़ती है वह चिदात्मा स्वयं सदा ज्ञेय है। और प्रमाणान्तर के व्यापार के बिना भासने से स्वयंप्रकाश है।

यदि आत्मा को स्वयंप्रकाश नहीं माने और बुद्धि को उसकी प्रकाशक माने तो बुद्धि के अभाव का साक्षी (सुषुप्ति में) कोई रहेगा ? क्योंकि बुद्धि की अभावदशा में तो बुद्धि है ही नहीं। उसके सब विषय साक्षी चैतन्य के विषय हैं। इसलिए आत्मप्रकाश सहेतुक नहीं है। वह सदा बोधरूप है।

ऐसी स्थिति है, तो फिर वेदांत की क्या जरुरत है ?

समाधान : यधपि आत्मा स्वयं प्रकाश है, तथापि वेदांत के विचार से पहले 'मैं अज्ञानी हूँ, मैं अपने को नहीं जानता।' ऐसी प्रतीति लोगों को अनुभवसिद्ध है, इसलिए संसारदशा में आत्मा अज्ञात है। और वेदांत वाक्यों के द्वारा श्रवण, मनन आदि से (आवरण भंग के द्वारा) उसका अपरोक्ष ज्ञान होता है। इसलिए अज्ञातज्ञापकत्व

लक्षणवाला वेदांत का प्रमाण होने से युक्तियुक्त है। यदि घट, पट आदि विषय देखने में चक्षु आदि चिदात्मा में प्रमाण होते हैं, तो तत्त्वमसि आदि श्रुतिवाक्य कि जो सिर्फ चिदात्मा के बोधनमात्र में प्रयुक्त है, वह प्रमाण कैसे नहीं होगा ?

संपूर्ण सुख की प्राप्ति और सब दुःखों की निवृत्ति रूप मोक्ष परम पुरुषार्थ है। जहाँ सब आत्ममय लगे वहाँ कौन किसको देखेगा ? ऐसी श्रुति से आत्मा से अलग वस्तु का अभाव होने से ऐसी किसी वस्तु से दुःख नहीं हो सकता और आत्म स्वरूप निरतिशय आनंदरूप होने से मोक्ष में सर्व सुख की प्राप्ति है। यदि सकल सुख की प्राप्ति और सकल दुःख की निवृत्ति आत्मस्वरूप से अतिरिक्त मानी जाय तो आत्मा का अद्वैतपना सिद्ध नहीं होगा। इसलिये अशेष सुख स्वरूप आत्मा है और निःशेष दुःख निवृत्ति भी आत्मस्वरूप है।

ज्ञान की आवश्यकता आवरण की निवृत्ति के लिए है, लेकिन यदि आत्मा आनंदस्वरूप हो तो वेदांत वाक्य की क्या जरुरत है ? उसके उत्तर में कहते हैं कि शब्द का शक्तिग्रह कार्यार्थ में होना चाहिए ऐसा नियम नहीं है। किसी मनुष्य के पास दूसरा मनुष्य आकर कहे कि 'तेरे घर पुत्र का जन्म हुआ' तो उसका वाक्य सुनते ही हर्ष होता है। इससे हर्ष उपजने में सिर्फ क्रिया ही पुरुषार्थ रूप है ऐसा नहीं है, ज्ञान भी पुरुषार्थ होता है।

जिस आत्मज्ञानी की वासना क्षीण हो गयी हो उसमें भी जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्था देखी जाती है, पर ज्ञानी अपने आत्मा से अतिरिक्त कुछ नहीं जानते। अज्ञानी उन अवस्थाओं की कल्पना करता है। जैसे मृगजल की कल्पना से जमीन में गीलापन नहीं आता। वैसे तत्त्वज्ञानी में पुरुषांतर से कल्पित जाग्रत आदि अवस्थाओं में संस्कार नहीं पड़ते। अतः ज्ञानी को दूसरा जन्म नहीं होता। ज्ञानी को तो सब प्रपंच आत्म स्वरूप ही दिखता है। अपने से अतिरिक्त नहीं दिखता। अतः सब ब्रह्म स्वरूप है ऐसी श्रुति प्रमाणरूप होती है। जाग्रत आदि अवस्था शरीर का धर्म है। शरीर की प्रतीति होती है तब अवस्था की प्रतीति होती है। ज्ञानी को शरीर की प्रतीति नहीं होती तो अवस्थाओं की प्रतीति कैसे होगी ? ज्ञानी को शरीर की प्रतीति नहीं होती उसमें श्रीमद् भागवत के ११वें स्कंध के १३वें अध्याय का ३६वाँ श्लोक प्रमाण है। जैसे किसीने शराब पी हो तो वस्त्र का भान नहीं रहता वैसे जीवन्मुक्त पुरुष, शरीर बैठे तो ऐसा नहीं मानता कि मैं बैठा, शरीर उठे तो नहीं मानता कि मैं उठा। इसलिए आत्मा की उपासना के द्वारा संपूर्ण वेदांत वासना के निरोध में और मनोनाश में पुरुषों

का विनियोग करता है। सुषुप्ति अवस्था में मन का लय होने से दुःख नहीं होता। उसी तरह जाग्रत अवस्था में भी मन का लय हो जायेगा तो दुःख नहीं होगा। लेकिन आत्मा के आनंद में प्रमुख उपाय तत्त्वज्ञान है। क्योंकि अविद्या के नाश से मोक्ष माना गया है। असंग आत्मा में अविद्या के बिना वासना का योग और अनर्थ संग की शंका नहीं होती। क्योंकि किसीका वास्तविक संबंध कूटस्थ नित्य आत्मा में नहीं टिकता लेकिन मृगजल में जल की प्रतीति की नाईं आत्मा में अनर्थ की प्रतीति अविद्या से ही होती है।

अविद्या का विद्या से विरोध है। फिर भी किसीको ऐसी शंका होती है कि दुःख और अज्ञान की भावना लंबे समय की है और ज्ञान के अभ्यास की भावना थोड़े समय की है। तो वह अज्ञान को कैसे दूर करेगी ? उसका समाधान यह है कि थोड़े समय का उत्पन्न हुआ तत्त्वज्ञान भी अनादि अज्ञान का निवर्तक होता है। बुद्धि का तत्त्व में पक्षपात होता है। अतः तत्त्ववाला आत्मज्ञान अज्ञान से प्रबल होता है। और उत्पन्न हुई सच्ची भावना मृत्यु पर्यंत स्वभावतः अनुवृत्त रहेगी इसलिए वैसा अंतिम प्रत्यय होने के लिए पुनः आत्मभावना की अपेक्षा नहीं है। प्रमा ज्ञान का अप्रमा ज्ञान से बाध नहीं होता। यदि प्रमा ज्ञान उत्पन्न हो गया तो बीच में कोई बाधक न होने से स्वभाव से सदा वह अनुवृत्त रहेगा। वासना एवम् अन्त्य बुद्धि निरोधविधि के अधीन नहीं है।

संक्षेपमें सार यह है कि आत्मज्ञानी पुरुष आत्मा से अलग किसी अनात्म पदार्थ को नहीं देखता। इसलिए शरीर के अदर्शन में आत्मबोध हेतु है, निरोध हेतु नहीं है। सब अनात्म पदार्थ रज्जुसर्प की नाईं कल्पित हैं। ऐसी परिस्थिति में जैसे रज्जु के साक्षात्कार से सर्प की निवृत्ति होनेपर सर्प प्रतीत नहीं होता, इसी तरह आत्मसाक्षात्कार से शरीर आदि अनात्म पदार्थों की निवृत्ति होने से आत्मज्ञानी को शरीर आदि का भान नहीं होता। वास्तविक द्वैत तो है ही नहीं, पर अज्ञान से द्वैत का भान होता है। इसलिए एकदूसरे को देखते हैं। स्वप्न में चोर नहीं है फिरभी अज्ञान से कल्पित चोर मालूम पड़ता है। जगने के बाद स्वप्न के अज्ञान की निवृत्ति के साथ कल्पित चोर की निवृत्ति भी हो जाती है। जगने के बाद चोर के अदर्शन में जाग्रत बोध ही कारण है। अन्य कोई कारण नहीं है। उसी तरह अज्ञानकल्पित शरीर आदि के अदर्शन में आत्मबोध ही कारण है, वृत्ति का निरोध कारण नहीं है।

ब्रह्मज्ञान होने के बाद तत्त्वज्ञानी विद्वान के लिए संपूर्ण जगत आत्मस्वरूप हो जाता है। अर्थात् सर्वत्र एक ही आत्मतत्त्व दिखता है। फिर उसको शोक या मोह कैसे

रहेंगे ? इष्ट के वियोग से शोक होता है। आत्मा से भिन्न कुछ इष्ट हो तो वह विनाशी है। अतः उसके वियोग से अनात्मज्ञ को शोक होता है। तत्त्वज्ञानी को आत्मा ही इष्ट है, वह अविनाशी है। और नित्य प्राप्त होने से वियोगवाला शोक उसको नहीं होता। मोह भी अज्ञान के निमित्तवाला है। आत्मज्ञानी को मूलभूत अज्ञान है ही नहीं तो मोह भी नहीं होता। मोह का आश्रय भी द्वैत है। जैसे सीपी में रूपा का मोह होता है। ज्ञानी को आत्मा से अतिरिक्त पदार्थ का भान नहीं है इसलिए मोह भी नहीं होता।

किसी भी अनात्म पदार्थ में चित्त को एकाग्र करना सीख लेने से मुक्ति नहीं होती। एकाग्रता तो उस विषयवाले ज्ञान में निपुणता देती है। निरोध विषयक यत्न शिथिल होनेपर पुनः दुःख आदि अनात्म पदार्थ का भान अवश्य होगा। अतः आत्मदर्शन ही मुक्ति का कारण है। निरोध कारण नहीं है।

आत्मज्ञान से सिद्ध हुए प्रपंच की पूर्व संस्कार से प्रतीति होनेपर भी वह जन्मांतर के आरंभरूप अनर्थ का कारण होगा नहीं क्योंकि भुना हुआ बीज जैसे उगता नहीं है वैसे बाधित प्रपंच की अनुवृत्ति भी जन्मांतर के अनर्थ का आरंभ नहीं करेगी। ऐसा सब मोक्षशास्त्रों का सिद्धांत है।

फिर भी जो लोग अनर्थवाले प्रपंच की अनुवृत्ति सहन नहीं कर सकते वे मन का निरोध अथवा वासना के निरोध में अपनी इच्छा से बरते तो उनको निरोध में लगने की अपेक्षा ऐसा ज्ञान रखना चाहिए कि दोनों का आत्मा से कोई संबंध नहीं है। ऐसा निर्णय होने से हर्ष या शोक नहीं होगा। सुख के संबंध से हर्ष होता है और दुःख के संबंध से उद्वेग होता है। लेकिन आत्मा में सुखदुःख का संबंध ही नहीं तो फिर उसके फलरूप हर्ष और उद्वेग कैसे होंगे !

अतः वेदांत का प्रमाण निरोधविधि पर नहीं है, अपितु अद्वितीय आत्मा पर है। जो ज्ञानरूपी अमृत से तृप्त और कृतकृत्य हो गये हैं उनके लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता कि जिसके लिए विधि की अपेक्षा हो। यदि ज्ञानमें योग्यता की सिद्धि के लिए तत्त्वज्ञानी को ज्ञानशेष निरोधविधि की आवश्यकता हो तो वह तत्त्वज्ञानी ही नहीं है। क्योंकि तत्त्वज्ञानी को कोई कर्तव्य नहीं रहता। और कर्तव्य रहे तो वह तत्त्वज्ञानी नहीं है। इसलिए ज्ञानी के लिए विधि नहीं है। ज्ञान में अधिकार के लिए उपासना तथा मन और वासना के निरोध के लिए विधि मानी हुई है।

जैसे घट आदि वस्तु को जानने में प्रत्यक्ष प्रमाण है वैसे आगम (वेदांत) भी आत्मस्वरूप में प्रमाण है। अद्वितीय आत्मा प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। निर्धर्मक होने से

अनुमान का विषय भी नहीं है। अतः चिदात्मा में आगम ही प्रमाण है, अन्य कोई प्रमाण नहीं है।

यद्यपि आत्मा स्वयंप्रकाश होने से स्वतः स्फुरणरूप है, पर जब तक अनात्माकार वृत्ति का आवरण है यानी अज्ञान है तबतक वह अज्ञान का साधक होता है। वेदांत प्रमाणजन्य वृत्त्यात्मक अद्वितीय आत्मज्ञान से अविद्या की निवृत्ति होती है। अद्वितीय आत्मा में वृत्तिज्ञान के सिवाय वैसा शब्दज्ञान नहीं होता। इसलिए ऐसे अर्थ में उसी प्रकार के शब्द की जरुरत है। उससे आवरण भंग होता है। आत्मा अपनी सिद्धि के लिए दूसरे की अपेक्षा नहीं करता।

प्रमाण का मूल अनुभूति है और सुखरूप अनुभूति ही पुरुषार्थ है। सुख का संबंध अनुभव करनेवाले के साथ है। जैसे वृत्तिज्ञान वस्तुतः अंतःकरणनिष्ठ है। फिर भी मैं जानता हूँ, ऐसी प्रतीति से ज्ञान आत्मा में प्रतीत होता है, ऐसे ही यह घट है ऐसा ज्ञान भी ब्रह्मस्वरूप है। मनोवृत्ति स्वरूप नहीं है, क्योंकि वृत्ति जड़ है, वह प्रकाशक नहीं है। प्रमाणजन्य घटाकार वृत्ति हो तब उस वृत्ति से अभिव्यक्त घटावच्छिन्न चैतन्यात्मक ब्रह्म ही घटज्ञान है। वृत्तिमात्र प्रमाण का कार्य करती है। अतः ऐसे ज्ञान में भी प्रमाणपना मानकर फल का उपदेश हो सकता है। अतः ब्रह्मस्वरूप ज्ञान से अतिरिक्त घट आदि का ज्ञान नहीं है। घट आदि की प्रतीति मनोवृत्तिरूप नहीं है। अपितु वृत्ति में अभिव्यक्त घटावच्छिन्न चैतन्यरूप है। प्रमाण का फल प्रमाता में और क्रिया का फल भोक्ता में उत्पन्न होता है। प्रमाता और भोक्ता आत्मा ही है। अतः अनुभव और फल ये दोनों उपहित आत्मा में ही होते हैं।

प्रमाता, प्रमाण, क्रिया, प्रमेय और फल ये कोई व्यवहार दशामें प्रधान नहीं हो सकते। क्योंकि उनमें से कोई भी भोक्ता नहीं है। अतः भोक्ता के लिये यह सब है। भोक्ता दूसरे के लिए नहीं है। अतः अनन्य श्रेष्ठ भोक्ता ही प्रधान है।

क्रिया से उपहित आत्मा कर्ता है। और प्रमाण से उपहित आत्मा प्रमाता है। क्रिया कर्ता की उपाधि है, और प्रमाण प्रमाता की उपाधि है। क्रिया और प्रमाण दोनों कल्पित हैं। *(*वर्तमान सायन्स वाले भी कहते हैं कि गति और प्रमाण दोनों सापेक्ष हैं।) कर्ता, प्रमाता और भोक्ता में आत्मा अनुगत है। अतः शुद्ध आत्मा ही विशेषण-उपाधि के द्वारा कर्ता, भोक्ता आदि कहलाता है। **'नेह नानास्ति किंचन' 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'** आदि श्रुति कल्पित उपाधि के निषेध के द्वारा शुद्ध आत्मा में प्रमाण होती हैं।

अनुभवरूप आत्मा से भिन्न कोई विषय है नहीं कि जो अज्ञात हो। अतः प्रत्यक्ष आदि प्रमाण भी आत्मा में प्रमाण हो सकते हैं। अतः सब प्रमाणों का प्रमेय ब्रह्म ही वेदांत का भी प्रमेय है। अंतःकरण आदि उपाधि-विशिष्ट चैतन्य प्रत्यक्ष आदि प्रमाण का लक्ष्य होनेपर भी शुद्ध चैतन्य अन्य प्रमाण का विषय नहीं है पर सिर्फ आगम से मालूम पड़ता है।

और आत्मैकत्व नित्य होने से वह पुरुष की क्रिया के अधीन नहीं है। जहाँ ऐसा कहा हुआ है कि आत्मा दर्शन करने जैसा है (**आत्मा दृष्टव्य**:) वहाँ बहिर्मुख प्रवृत्ति को रोकने के लिए और अन्तर्मुख वृत्ति करने के लिए विधि की छाया के जैसा आदेश है, वस्तुतः यह विधि नहीं है।

वेदांत का स्ववेद्य ब्रह्मज्ञान से अतिरिक्त दूसरा फल नहीं है। मोक्ष ब्रह्मस्वरूप ही है। तत्त्वज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होनेपर मुक्ति आत्मस्वरूप होने से सिद्ध है। साध्य नहीं है। आत्मा चेतन स्वयं प्रकाश है। इसलिए उसमें अन्य प्रमाण के प्रवेश के बिना भी शब्द का प्रयोग हो सकता है। वेदांतवाक्य अज्ञानज्ञापक होने से और अबाधित अर्थ को बतानेवाले होने से और प्रयोजनवाला लक्षण होने से प्रमाण है।

एक आत्मा ही यथार्थ वस्तु है। अन्य सब अविद्याकल्पित होने से गन्धर्वनगर की नाईं अयथार्थ है। श्रुति कहती है कि जब द्वैत जैसा होता है तब एक दूसरे को देखता है। इससे स्पष्ट होता है कि वस्तुतः द्वैत है ही नहीं लेकिन वह प्रतीत होता है। जैसे बाध होने के बाद सीपी रूपा के जैसी दिखती है। वस्तुतः वहाँ रूपा था ही नहीं ऐसा मालूम पड़ता है। ऐसे ही आत्मतत्त्व का यथार्थ ज्ञान होने के बाद भी आत्मा ही द्वैत के जैसा प्रतीत होता है। वस्तुतः द्वैत था ही नहीं। वास्तविक आत्मा एक ही तत्त्व है, लेकिन सांख्य आदि द्वैतवादियों के मत की नाईं अनेक नहीं है अपितु एक ही है।

मानसवृत्तिरूप साक्षात्कार विषयाधीन एवम् प्रमाणाधीन है, पुरुषाधीन नहीं है। विधेय वही हो सकता है कि जो पुरुष के अधीन हो। ब्रह्मरूप साक्षात्कार तो ब्रह्म से अभिन्न होने से नित्य है। साध्य नहीं है। इसलिए उसके विधान का संभव नहीं है।

ध्यान दो प्रकार से होता है : एक भ्रांतिवाला और दूसरा प्रमाणवाला। प्रथम प्रकार के ध्यान के निरंतर अभ्यास से वस्तु का निश्चयात्मक साक्षात्कार नहीं होता। जैसे ठूंठ होगा कि पुरुष होगा ऐसे संशयवाले ज्ञान के निरंतर अभ्यास से स्थाणु का एवम् पुरुष का प्रमात्मक साक्षात्कार नहीं होता। इसलिए भ्रांतिवाले ज्ञान की आवृत्तिरूप ध्यान अद्वैत ब्रह्म के दर्शन का उपाय नहीं है। अर्थात् प्रमात्मक ध्यान के

अभ्यास के संग्रह के लिए 'मनन' विशेषण दिया हुआ है। मनन से श्रवण किये हुए ज्ञान में संशय आदि निकल जाते हैं। अतः मननपूर्वक ध्यान अद्वैतात्मविषयक साक्षात्कार के उपायरूप वेदांत में माना हुआ है। ऐसे ध्यान से जो अद्वैत साक्षात्कार होता है, वह मानस वृत्तिरूप होनेपर भी उससे मोक्षप्रतिबंधक अज्ञान की निवृत्ति होती है।

व्यवहारमें अहंकार प्रमाता है, विषयाकार बुद्धिवृत्ति प्रमाण है और घट आदि प्रमेय हैं। ये तीनों जड़ होने से उनके भान के लिए प्रकाशक आत्मा की जरुरत है। देह आदि परोक्ष हैं। लेकिन अपरोक्ष आत्मा के प्रकाश के संबंध से अपरोक्ष प्रतीति के गोचर होते हैं। अर्थात् आत्मा के जैसे दिखते हैं। अपरोक्ष आत्मा में शरीर आदि का अध्यास होता है। अतः शरीर में अपरोक्षत्त्व आध्यासिक है। अतः जबतक अंतर बनानेवाले अज्ञान की निवृत्ति वृत्तिज्ञान से होगी नहीं, तबतक विषय का अपरोक्ष ज्ञान होगा नहीं। वृत्ति के साथ चैतन्य भी चाहिए।

असाक्षिक अभाव वेदांत में माना हुआ नहीं है। और आत्मा का ठीक से विचार करनेपर उसके सिवाय अन्य कुछ नहीं है। अतः आत्मज्ञान से द्वैतज्ञान का उपमर्दन होने के बाद द्वैतज्ञाननिबंधन साध्यसाधन विभाग का लोप होनेपर भावना आदि की अपेक्षा नहीं रहती। साध्य हमेशा कार्य होता है। एक ही वाक्य सिद्ध और साध्य दोनों पर लागू नहीं हो सकता। यदि प्रमेय परोक्ष हो तो उसका शब्द ज्ञान भी परोक्ष होता है। जब विषय अपरोक्ष हो तब उसका शब्द ज्ञान भी अपरोक्ष होता है। परोक्षत्व और अपरोक्षत्व प्रमेय अनुसार होता है, शब्द के अनुसार नहीं होता। **'यत्साक्षादपरोक्षाद् ब्रह्म।'** इस श्रुतिवाक्य से ब्रह्म अपरोक्ष है यह सिद्ध होता है। साक्षात् शब्द से ब्रह्म में मुख्य अपरोक्षत्व है। एकात्म वस्तु में देश, काल और वस्तु से थोड़ा भी अंतर नहीं है तो ऐसे ब्रह्म में परोक्षबुद्धि कैसे उत्पन्न हो सकती है ? अतः परोक्ष ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता, ब्रह्मज्ञान अपरोक्ष ही होता है। विवर्तवाद में प्रपंच की प्रतीति अज्ञान से है और प्रपंच की निवृत्ति ज्ञान से है।

जहाँ प्रथम ज्ञान से ऐसा मालूम पड़ा कि सामने कोई वस्तु है, दूसरे ज्ञान से मालूम पड़ा कि वह मनुष्य है, तीसरे ज्ञान से लगा कि वह पुरुष है, चौथे ज्ञान से लगा कि वह काला है और पाँचवे ज्ञान से लगा कि वह मद्रासी है, वहाँ एक विषयवाले प्रमाण की आवृत्ति नहीं है लेकिन भिन्न भिन्न विषयक अनेक प्रमाण हैं। प्रमेय भी उस उस ज्ञान के भेद से भिन्न ही है। ऐसा माया में होता है। लेकिन ब्रह्म के साक्षात्कार से संपूर्ण द्वैत कल्पित होने से निवृत्त हो जाता है। फिर उसमें युक्ति या नियोग की अपेक्षा

नहीं है। दूसरी वस्तु हो तो अपेक्षा और अनपेक्षा का विचार होगा। यदि प्रमात्मक ज्ञान के लिए दूसरे किसीकी अपेक्षा रहे तो शास्त्र में स्वतःप्रामाण्यता का भंग हो जायेगा। जैसे लोहे का ज्ञान होनेपर लोहे के सब कार्यों का ज्ञान हो जाता है। वैसे ब्रह्म का कार्य जगत ब्रह्म से अभिन्न होने से ब्रह्म का ज्ञान होनेपर संपूर्ण जगत ज्ञात हो जाता है। ब्रह्म से अतिरिक्त जगत है नहीं।

युक्ति का प्रमाण सिर्फ पुरुष की बुद्धि में रही हुई असंभावना, विपरीतभावना आदि दोष दूर करके अभेदबोध की संभावना उत्पन्न करता है। अप्रतिबद्ध अपरोक्षज्ञान के लिए युक्तिरूप विचार सफल है। अतः वेदार्थ की अनुकूल युक्ति का भी आधार लेना चाहिए। जहाँ संशय हो वहाँ संशय की निवृत्ति के लिए प्रमाण तर्क की अपेक्षा करता है। अर्थ की सिद्धि के लिए नहीं।

तत्त्वमसि आदि महावाक्य के बोध के पहले तत् और त्वम् पदार्थ की शुद्धि के लिए ब्रह्मसूत्रकार ने ज्ञान की आवृत्ति मानी हुई है। कबतक आवृत्ति करना, उसके उत्तर में कहते हैं कि जबतक तत् और त्वम् पदार्थ की शुद्धि नहीं हो तबतक। उसके बाद एकबार भी तत्त्वमसि आदि वाक्य का बोध मोक्ष का हेतुरूप आत्मज्ञान उत्पन्न करता है। फिर आवृत्ति की जरुरत नहीं। कोई राजपुत्र किसी मछुआरे के घर पर बड़ा हुआ हो तो वह अपने आपको मछुआरा मानने लगता है। कोई पुण्योदय के कारण कोई महात्मा उस राजपुत्र को देखकर विचार करे कि यह मछुआरे का बालक वास्तव में मछुआरा नहीं है, क्योंकि उसकी आकृति मछुआरे से भिन्न प्रकार की है। वह राजपुत्र के जैसी लगती है, पर किसी प्रारब्धयोग से मछुआरे के घर बड़ा हुआ है और अज्ञान से अपने को मछुआरा समझता है। उसमें राजवी संस्कार हैं, लेकिन मछुआरे के संस्कार से राजपुत्र के संस्कार दब गये हैं। और उसे ठीक से समझायें तो राजपुत्र के संस्कार जाग्रत हो जाय। फिर वह अपने को राजा समझकर अपना उद्धार कर पायेगा। ऐसा मानकर कोई महात्मा उसे सच्ची हकीकत बताये तो उस पुत्र को निश्चय हो जाने के बाद पुनः उपदेश की अपेक्षा नहीं रहती। ऐसे ही जीव मनुष्य के साथ रहकर अपने को मनुष्य मानने लग गया है। तत्त्वमसि वाक्य से गुरु उसको समझाते हैं कि तू ब्रह्म ही है, और वह ठीक से समझ ले तो फिर आवृत्ति की जरुरत नहीं है। तत्त्वमसि आदि वाक्य से उत्पन्न हुए आत्मज्ञान के रहते भी प्रारब्ध कर्म के वश होकर शरीर और इन्द्रियाँ रहते हैं। इसलिए कभी कभी पहले के संस्कार से पुनः अनात्म बाह्य पदार्थ विषयक चित्तवृत्ति न हो जाय उसके लिये जीवन्मुक्त दशा में **'विज्ञाय प्रज्ञां**

कुर्वीत' इन शब्दों से ध्यान की विधि मानी हुई है। यदि अन्तर्मुख चित्तवृत्ति रहेगी नहीं तो बाहर के शब्द आदि विषय का ध्यान समय समय पर हो जायेगा, इससे इंद्रियग्लानि-इन्द्रिय आदि के दुःख भी होंगे, उसकी निवृत्ति के लिए ध्यान की विधि है। चित्त में स्थिरता आना संपूर्ण पुण्यों का फल है। जो चित्त की एकाग्रता प्राप्त किये बिना तत्त्वज्ञानी हुए हैं उनके लिए चित्त की एकाग्रता विधि है।

यहाँ ध्यान यानी मानसी क्रिया -ऐसा नहीं समझना चाहिए। पर ब्रह्मज्ञान में सावधानता रखनामात्र यही अभिप्राय है। यदि मानस क्रिया ध्यान होता तो ऊपर प्रज्ञा शब्द का प्रयोग नहीं किया होता। निदिध्यासन का अर्थ भी यह है कि ब्रह्म के सिवाय दूसरे प्रत्यय का अंतर बनने दिये बिना निरंतर निश्चयात्मक आत्मभावना रखना। ध्यान दो प्रकार से होता है : साधनरूप और फलरूप। प्रज्ञा शब्द से फलरूप सावधानता को ध्यान मान सकते हैं।

तत्त्वमसि वाक्य में तत् पद आत्मा में अज्ञान से आरोपित अब्रह्मत्त्व की निवृत्ति के लिए है। और त्वंपद ब्रह्म में अज्ञान से आरोपित अनात्मत्त्व की व्यावृत्ति के लिए है। इसलिए दोनों पद सार्थक है। भेद और अभेद का समुच्चय भी नहीं बन सकता। घट मुझसे भिन्न है और घट मुझसे अभिन्न है ऐसा कहना नहीं बनता।

भेद पुरुषार्थ नहीं है और पुरुषार्थ का साधन भी नहीं है। लेकिन दुःख का साधन है। **'द्वितीयाद् वै भयं भवति।'** (दूसरे दिखनेपर भय होता है) यह श्रुति भी कहती है कि भेद पुरुषार्थ नहीं है। 'हरा पत्ता' इस वाक्य में भेद और अभेद दोनों साथ में हैं। वैसा संबंध प्राणात्मा का और ब्रह्म का नहीं है, लेकिन भेद-असहिष्णु वाला अभेद आत्मा और ब्रह्म का है।

कईयों को ऐसी शंका भी होती है कि ब्रह्म के सिवाय सब मिथ्या है तो वेद भी मिथ्या है। इससे मिथ्यावस्तु से कर्म कैसे हो सकते हैं ? उसके उत्तर में कहते हैं कि जैसे मिथ्या रूपा मिथ्यात्त्व की अज्ञान दशा में प्रवृत्ति कराता है वैसे वेद भी अज्ञान की निवृत्तिरूप कार्य करवा सकते हैं।

माया से कल्पित भेद रहते हैं, इससे वेद भी रहते हैं। वास्तविक भेद नहीं बनता। **'नेह नानास्ति किंचन।'** इस श्रुति से वास्तविक भेद बाध्य है, कल्पित भेद बाध्य नहीं है।

किसी दूसरे काल में देखे हुए अथवा किसी दूसरे देश में देखे हुए सर्प की भ्रांति रस्सी में नहीं होती, लेकिन अविद्या ही स्वयं सर्प के आकार से परिणाम को प्राप्त होती

है। और उस आकार में परिणाम को प्राप्त हुई माया की वृत्ति से उसका भान होता है। आरोपित सर्प इन्द्रियों का प्रत्यक्ष विषय नहीं है। उसका प्रतितिमात्र शरीर होने से वह सर्प मिथ्या ज्ञान से पहले नहीं होता। वह इन्द्रिय भास्य नहीं है। क्योंकि इन्द्रिय का विषय नहीं है, पर साक्षी भास्य है। जब ज्ञान होता है तब यह सर्प नहीं है, लेकिन रस्सी है ऐसे अधिष्ठान ज्ञान से कार्यसर्प के साथ उसके उपादानरूप अज्ञान की निवृत्ति होती है। पहले सच्ची देखी हुई वस्तु का आरोप होता है ऐसा नियम नहीं है, लेकिन ज्ञात का आरोप होता है, अज्ञात का नहीं। यह ज्ञान भ्रांति वाला हो अथवा प्रमावाला भी हो उसमें आग्रह नहीं है। पहले देखे हुए भेद में मिथ्यात्त्व का अनुभव नहीं हुआ फिर भी वस्तुतः मिथ्यात्त्व विशिष्ट ज्ञान तो अवश्य हुआ है। तात्पर्य यह है कि जैसे पहले देखे हुए सत्य सर्प के सजातीय सर्प का ज्ञान रस्सी में होता है। वैसे पहले मिथ्या भेद के सजातीय भेद में सत्यत्व का ज्ञान भ्रांति वाला होता है। भ्रमप्रमा साधारण पूर्वज्ञान भ्रम में अपेक्षित है। भ्रमोत्तर भ्रम की नाईं भ्रमोत्तर भ्रम भी होता है। अर्थात् जैसे रस्सी में सर्प देखने के बाद दंड होगा कि पानी कि धारा होगी कि माला होगी ऐसी भ्रांति हुआ करती है। वैसे ही ब्रह्म में जगत देखने के बाद बारबार अलग अलग प्रकार का जगत दिखता रहता है। पूर्वज्ञान मात्र आरोप में कारण है, प्रमा कारण नहीं है।

श्रुति पारमार्थिक भेद का निषेध करती है। मायिक भेद का निषेध नहीं करती। मायिक भेद तो स्वार्थबोध के लिए अनुकूल होने से आदरणीय है। भेद में जो मायिकत्त्वज्ञान है वह अद्वैत ब्रह्मज्ञान का अंग है। भेद में मायिकत्व है ऐसा ज्ञान हुए बिना अद्वैत ब्रह्म को जान नहीं सकते। क्योंकि विशेष ज्ञानपूर्वक ही विशिष्ट बुद्धि होती है, अन्यथा नहीं होती।

रस्सी में सर्प का आरोप करके उस आरोपित सर्प में सत्यता का संबंध माया करती है। अतः भ्रांतिकाल में रज्जुसर्प सत्य प्रतीत होता है। वास्तविक सर्प तो है ही नहीं। अन्यथा यह रस्सी है ऐसे ज्ञान से उसकी निवृत्ति नहीं होती। वैसे ही माया (अर्थात् माप अथवा मेझर) द्वैत की प्रतीति कराती है। और द्वैत में रज्जुसर्प के सत्यत्त्व की नाईं सत्यत्त्व का आरोप करके मूढ़ मनुष्य द्वैत को सच्चा मानता है।

श्रुति ब्रह्म द्वैत का निषेध करती है। उसमें सत्यत्त्व का निषेध किये बिना उसके मायामयत्व का प्रतिपादन नहीं हो सकता। इसलिए द्वैत के निषेध की भी जरुरत है।

फिर भी व्यवहारकाल में अबाध्यरूप व्यावहारिक भेद ही प्रत्यक्ष प्रमाण का

कारण है, पारमार्थिक भेद प्रत्यक्ष प्रमाण का कारण नहीं है। पुत्र का शरीर देखकर पिता को पिताकी बुद्धि हो और पिता का शरीर देखकर पुत्र को अपने शरीर में पुत्र बुद्धि हो ऐसा धर्म वस्तुतः कल्पित है। व्यवहार दशामें यद्यपि वह धर्म बाधित नहीं है, तथापि परमार्थ दशामें शरीरात्म भ्रम जैसे बाधित है वैसे उपरोक्त संबंध भी बाधित है। जिसके मत में परमार्थ दशामें विश्वमात्र का बाध होता है उसके मत में पुत्रत्व आदि के बाध में शंका ही नहीं रहती।

यह घट है, यह पट है, ऐसे ज्ञान में जो भेद प्रतीत होता है वह ज्ञान का वास्तविक भेद नहीं है। लेकिन अपने विषय घटपट आदि उपाधियों के भेद से स्वतः अभिन्न ज्ञान में भेद प्रतीत होता है। घटाकाश, मठाकाश आदि स्थानों में भेदज्ञान होता है, लेकिन घटाकाश, मठाकाश में स्वतःभेद नहीं बनता। और घट-मठ रूप उपाधि में जो भेद है, वह उपहित आकाश में आरोपित प्रतीत होता है। घट आदि उपाधि का नाश होनेपर वस्तुतः आकाश में भेद नहीं होता।

वृत्तिज्ञान का भेद भी वास्तव में सच्चा नहीं है। अंतःकरण स्वयं कल्पित होने से वृत्तिज्ञान भी कल्पित होता है। सिर्फ चैतन्यात्मक ज्ञान सच्चा होता है। कर्तृत्वपना अंतःकरण में है। उसमें चेतन की छाया पड़ती है, इसलिए चेतन जैसा प्रतीत होता है। घट आदि विषयों का पुरुष के साथ साक्षात् संबंध नहीं होता। पर इन्द्रियाँ आदि के द्वारा ही विषय का वह संबंध माना हुआ है। साक्षत् संबंध मानने से यह देखा यह नहीं देखा ऐसा व्यवहार हो नहीं सकता, इसलिए मायिक संबंध बनता है।

वस्तुतः प्रत्यक् आत्मा सद्वितीय नहीं है, लेकिन द्वैतमात्र उसमें कल्पित है। कल्पित धर्म ऐक्य में बाधक नहीं होता। ऐक्य के समय कल्पित धर्म की निःशेष निवृत्ति हो जाती है। यदि कल्पित धर्म है ही नहीं तो बाधक कैसे होगा ? **'अद्वितीयस्वमहिमप्रतिष्ठित'** कूठस्थ नित्य सच्चिदानंद उदासीन चैतन्य मात्र आत्मा है। उसमें भावात्मक प्रमाता आदि, कर्ता आदि और भोक्ता आदि संपूर्ण प्रपंच विवर्तरूप से प्रतीत होता है। उस प्रमाता के साथ साक्षी का ऐक्य वेदांतवाक्य से जानने में आता है।

साक्ष्य के संबंध से साक्षित्व है। साक्ष्य अविद्या से कल्पित है। इसलिए साक्षित्व भी कल्पित है। कल्पित धर्म वास्तविक अविशेषत्व का विरोधी नहीं होता, क्योंकि कल्पित सर्प वास्तविक रस्सी का घात नहीं करता। यद्यपि अज्ञान अनादि है और अनुभव में आता है तथापि वह आत्मा के समान अविनाशी नहीं है। आत्मा भावरूप है

और अज्ञान भाव से विलक्षण है।

अतः विरक्त संन्यासियों को विद्या के उपायभूत श्रवण आदि में प्रयास करना चाहिए। उससे समाधि प्राप्त होती है। ऐसे मुमुक्षुओं का स्वमहिम प्रतिष्ठित कूटस्थ प्रत्यक् तत्त्वसाक्षात्कार में अधिकार है। बहिर्मुख पुरुषों का अधिकार नहीं है। द्वैत का अभाव होता है तब साध्य-साधनभाव ही नहीं रहता, तो कर्म कैसे रह सकेंगे ? वृत्तिरूपी प्रमाण भी आवरण भंग के लिए आवश्यक है। वह प्रमाण प्रत्यागात्मा में नहीं जा सकता, लेकिन ब्रह्मात्मैक्य वाली वृत्ति में अभिव्यक्त ज्ञानस्वरूप आत्मा कार्यसहित अविद्या का नाश करके स्वस्थ हो जाता है।

आत्मज्ञान होने से पहले विषय का बाध नहीं है। इसलिए व्यवहार दशा में सब प्रमाणों की प्रमाणता है। आत्मज्ञान होने के बाद अनात्म पदार्थों की निवृत्ति हो जाने से विधि आदि में प्रमाण नहीं रह सकता। ज्ञानी पुरुष भी शरीर रहे तबतक प्रमाणों से व्यवहार करते हैं। लेकिन प्रत्यक्ष आदि प्रमाण सच्चे हैं ऐसा मानकर व्यवहार नहीं करते। अज्ञानी का चित्त कर्म में अधिक लग जाता है। इतना किया, इतना करना शेष है अतः कर्मसंन्यास पूर्वक श्रवण आदि हो तो ज्ञान ठीक होता है।

कर्म का अनुष्ठान करनेवाले क्रियासंबंध से शून्य आत्मा की भावना नहीं कर सकते, अन्यथा कर्म का अनुष्ठान ही नहीं हो सकेगा। अतः कर्म का त्याग ही मोक्ष का हेतु (ज्ञानसाधन) है। श्रुति भी कहती है कि शम, दम, उपरति आदि साधनसंपन्न हो वह आत्मज्ञान में अधिकारी हो सकता है। योग प्रवृत्ति लक्षणवाला है और ज्ञान निवृत्ति लक्षणवाला है।

लेकिन ब्रह्म में अविद्या आई कहाँ से ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि अविद्या कल्पित है। स्वयंप्रकाश ब्रह्म स्वरूप में कल्पित अविद्या की स्थिति विरुद्ध नहीं है। जैसे सूर्य वास्तविक प्रकाश स्वरूप होनेपर भी उसमें उल्लू का कल्पित अन्धकार रह सकता है, वैसा ब्रह्म में अविद्या का रहना है। और अविद्या का विरोध प्रमाणजन्य ज्ञान के साथ है। साक्षीज्ञान प्रमाणजन्य नहीं है। अविचार से अविद्या का भान होता है। इसलिए अविद्या के निरूपण में विद्वान और अविद्वान दोनों असमर्थ है। ब्रह्मज्ञान हुए बिना ब्रह्म में अविद्या और उसका संबंध कैसे जान सकते हैं ? और ज्ञान होने के बाद संपूर्ण द्वैत की निवृत्ति हो जाती है। मात्र चिदात्मा शेष रहता है, अतः विद्वान भी अविद्या का निरूपण नहीं कर सकते। प्रगाढ़ निद्रा वाला मनुष्य और स्वप्न में से जगा हुआ मनुष्य स्वप्न का साक्षात्कार नहीं कर सकता, वैसे ही ज्ञानी की दृष्टि में अविद्या

अथवा जगत नहीं है। यद्यपि अविद्या की दशा में अविद्या का त्रैकालिक निषेध हो नहीं सकता, क्योंकि उसकी अपरोक्ष प्रतीति होती रहती है तथापि पारमार्थिक ज्ञान से अविद्या का त्रैकालिक निषेध हो सकता है।

अविद्या अवस्तु होने से उसमें कोई प्रमाण नहीं है। जैसे सीपी में दिखनेवाला रूपा अवस्तु है और उसमें कोई प्रमाण नहीं है वैसे अविद्या में कोई प्रमाण नहीं है। प्रमाण को सहन नहीं करना यह अवस्तु का धर्म है।

व्यवहार में सब प्रमाण अपने अपने विषय में व्यवस्थित हैं। अतः व्यवहार में प्रमाण के साथ आगम का विरोध नहीं है। प्रमाण प्रमेय के अनुसार ज्ञान उत्पन्न करता है। अन्यथा वह अप्रमाण हो जायेगा। अतः यदि विषय परोक्ष होगा तो ज्ञान परोक्ष होगा और विषय अपरोक्ष होगा तो ज्ञान भी अपरोक्ष होगा।

जिसके चित्त में राग आदि दोष हैं वह तत्त्वज्ञानी नहीं हो सकता और जो राग आदि को आत्मधर्म मानते हैं, उनमें तो तत्त्वज्ञान का संभव भी नहीं है। जिसको शरीर, इन्द्रिय आदि में आत्मा का तादात्म्याध्यास है उसको शरीर, इन्द्रियों की उत्पत्ति ही आत्मा की उत्पत्ति है ऐसा लगेगा। जो अतात्त्विक वस्तु है वह वस्तु का अतिक्रमण नहीं करती। जैसे रज्जु सर्प, यहाँ रज्जु तात्त्विक है। इसलिए रज्जुसर्प रज्जु का अतिक्रमण नहीं करता। वैसे ही प्रपंच अतात्त्विक होने से ब्रह्म का अतिक्रमण नहीं करता, अर्थात् जैसे रज्जुसर्प रज्जु के ऊपर नहीं जा सकता वैसे प्रपंच ब्रह्म के ऊपर नहीं जा सकता।

काल जड़ होने से स्वयं सिद्ध नहीं है, लेकिन नित्य चैतन्य के अनुभव द्वारा ही सिद्ध होता है। विकारी काल आदि से पूर्व अविकारी स्वभाव का जो अनुभव है वह बाद में विकारी होता है ऐसा कहना युक्त नहीं है। क्योंकि अविकारी स्वभाव का लोप नहीं हो सकता।

जैसे अज्ञात पदार्थ की सिद्धि के लिए अज्ञान की जरुरत है, वैसे ही ज्ञातव्य के लिए वैसे प्रमाण की जरुरत है। प्रमाण और अज्ञान से शून्य कोई काल नहीं है। जब प्रमाण रहता है तब ज्ञातरुपी घट का भान होता है। और जब प्रमाण रहता नहीं तब अज्ञात स्वरूप से घट का भान होता है। प्रमाण और उसके अभाव से शून्य कोई काल नहीं है। प्रमाता आदि सब अनुभव से उत्पन्न होते हैं, अनुभव में रहते हैं और उसमें लीन होते हैं। अनुभव से अतिरिक्त सत्ता प्रमाता आदि की नहीं है, फिर भी कल्पित भेद मानकर आधार आधेय भाव की उत्पत्ति मान सकते हैं।

जो अनिर्वचनीय है उसका प्रतीतिमात्र शरीर होता है। जबतक प्रतीति होती है तबतक भान होता है। अधिष्ठान के ज्ञान के बाद उसका त्रैकालिक निषेध होता है। जैसे सीपी में रूपा के ज्ञान से पहले रूपा की सत्ता मानी नहीं जाती वैसे घट आदि समस्त प्रपंच की सत्ता भी उसकी प्रतीति के पहले मानी नहीं जाती। नेत्र आदि झूठे प्रमाण से उत्पन्न हुई ज्ञान भ्रांति है। फिर भी पुरुष सीपी में रूपा के ज्ञान को प्रमाण मानता है। बाध ज्ञान होने के बाद उसको गलती का पता चलता है, वैसे ही प्रपंच भी वैसी सामग्री से उत्पन्न हुआ होने से प्रमाण नहीं है। फिर भी जबतक आत्मज्ञान नहीं हुआ तबतक प्रमाण माना जाता है। द्वैत का भान अज्ञान से ही उत्पन्न होता है।

सीपी में रूपा की कल्पना से पहले कल्पित रूपा नहीं है। अतः उसमें ज्ञातत्व अथवा अज्ञातत्व कोई धर्म नहीं रहता। जहाँ धर्मी नहीं है वहाँ धर्म की स्थिति की संभावना कैसे रहेगी ? वैसे ही घट भी वस्तुतः ज्ञात नहीं है वैसे अज्ञात भी नहीं है। लेकिन दोनों धर्मों से रहित कल्पित समझना चाहिए। वैसा ही प्रपंच के विषय में समझना चाहिए।

यद्यपि बुद्धि अज्ञान की निवृत्ति के लिए प्रवृत्त होती है, तथापि उसको प्रतिकूल नेत्र आदि सामग्री उस बुद्धि में रूप आदि विषयों का नितांत आरोप कर देती है। इसलिए अविद्या स्वयं कार्य विषयक हो जाती है। अतः ऐसी बुद्धि बंधन के हेतुरूप हो जाती है। यदि अभ्यास और वैराग्य से बुद्धि निर्मल हो तो रूप आदि का आरोप नहीं होने से मोक्ष के अनुकूल हो जाती है। ऐसी स्थिति होने से जब बुद्धि इन्द्रिय आदि का प्रमाण सच्चा मानती है तब अप्रमात्मक हो जाती है, फिर भी व्यवहार दशा में व्यावहारिक प्रमाण से व्यवहार हो सकता है।

अनुभवरूप आत्मा में अध्यास मानने के बाद अधिष्ठानगत सत्ता की नाईं उसमें रहे हुए अज्ञान का भी अध्यस्त प्रपंच में भान हो जाता है। ऐसे अज्ञान का निवर्तक प्रमाणजन्यवृत्ति-प्रकाश है। उसमें स्वरूपभूत प्रकाश की जरुरत नहीं है क्योंकि वह प्रमाण का फल नहीं है।

आत्मज्ञानी के लिए द्वैत का सत्यरूपी दर्शन निषिद्ध है। संस्कारानुवृत्तिवश जीवन्मुक्त दशामें कल्पित द्वैत दर्शन के विषय में अनुमति है। उसके बिना जीवन्मुक्त की शरीरयात्रा ही सिद्ध नहीं होती। कल्पित द्वैतदर्शन मोक्ष में बाधक नहीं है। अविरोधी कल्पित द्वैत का श्रुति भी समर्थन करती है। उसके सिवाय तत्त्व का उपदेश ही नहीं हो सकता। यदि विवेक नहीं हो तो मन के धर्म से आत्मा की हानि होगी।

विवेक होने के बाद मनकी कल्पना से आत्मा की कुछ हानि नहीं है। फिर भी निष्ठा बनाने के लिए मनोनाश उपयोगी है। अधिष्ठान अकल्पित है और आरोप्य अवस्तु है। उपाधि के भ्रम की निवृत्ति से उपाधि की निवृत्ति होती है, जगत का अभाव उसका कारण ब्रह्मरूप ही है, उससे अतिरिक्त नहीं है।

अद्वैत ब्रह्म का ज्ञान अद्वैत ज्ञान के बिना नहीं हो सकेगा। अद्वैत ज्ञान में घटपट आदि द्वैत में सत्यत्त्व का ग्रहण करानेवाला प्रत्यक्ष व्यावहारिक ज्ञान बाधक है। सिर्फ ब्रह्मस्वरूप विषयक निर्विकल्प ज्ञान के लिए द्वैतनिषेध ज्ञान उपयोगी है। लेकिन वह निषेध ज्ञान उपादेय नहीं है। वह ज्ञान मिथ्या होने से त्याज्य है। उपादेय सिर्फ ब्रह्मात्मैक्य मात्र है। मिथ्याज्ञान कल्पित वस्तु विषय का होता है, उसका विषय पारमार्थिक नहीं होता। उसके अनुसार जगत का भान भ्रमात्मक है। वह जगत की सत्ता का साधन नहीं बन सकता। अतः सिर्फ अनात्मज्ञ को ही संसार की अनुवृत्ति उत्तरोत्तर होती है। आत्मज्ञ को नहीं होती। आत्मज्ञानी को परमार्थतः प्रपंच भासता है ऐसा कहना साहस मात्र है। अपरोक्ष भ्रांति अपरोक्ष प्रमा से निवृत्त होती है, परोक्ष प्रमा से नहीं। अतः श्रुति के द्वारा संसारियों को परोक्ष प्रमा होनेपर भी संसार का अपरोक्ष भ्रम निवृत्त नहीं होता। श्रवण मनन आदि के द्वारा आत्मयाथात्म्य का ज्ञान होनेपर पूर्ववत् संसार की अनुवृत्ति नहीं होती। कदाचित बलवान संस्कार के वश होकर प्रतीत हो तो भी मिथ्यारूप से प्रतीत होगी, सत्यरूप से कदापि प्रतीत नहीं होगी। वस्तुतः संसार अविद्या से कल्पित है, वास्तविक नहीं है। और कल्पित पदार्थ अवयव वाला नहीं होता। अतः उसमें अमुक अंश ग्राह्य है और अमुक अंश त्याज्य है ऐसा नहीं बनता। कल्पित सर्प का कौनसा अंश ग्राह्य है और कौनसा त्याज्य है ? जैसे भ्रांत पुरुष को सीपी का रूपा उपादेय है और अभ्रांत विवेकी पुरुष को अनुपादेय है वैसे ज्ञानी और अज्ञानी पुरुषों के भेद से संसार हेय और उपादेय है, अंश भेद से नहीं।

वस्तुतः कल्पित में कोई अंश पारमार्थिक सत्य नहीं बनता। उसका अधिष्ठान ही पारमार्थिक रहता है। अतः सब कल्पित वस्तुयें रज्जुसर्प के समान इष्ट साधन भी नहीं होती। जब इन्द्रियाँ पूर्व संस्कार के कारण कल्पित विषयमें बहती हैं तब निषेधज्ञान ऐसा समझाता है कि वहाँ विषय तो है नहीं तो कहाँ ले जाओगे ? ऐसे बारबार प्रबोधन की जरुरत पड़ती है। आत्मा का निषेध नहीं होता, क्योंकि असाक्षिक निषेध का संभव नहीं है। अनेक आत्मा नहीं है कि जिससे एक आत्मा के निषेध का साक्षी अन्य आत्मा हो सके।

यदि आत्मा के सिवाय कुछ नहीं है तो दुःख क्यों होता है ? अंगारों में रहनेवाली अग्नि के ताप से उसके समीपस्थ घट के अंदर के जल आदि में जैसे ताप के आभास की अर्थात् आरोपित उष्णता की प्रतीति होती है वैसे सुखदुःख आदि से विशिष्ट बुद्धि के संबंध से उसमें रहा हुआ चिदाभास भी सुखदुःख आदि से युक्त प्रतीत होता है। यदि चिदाभास में वास्तविक सुखदुःख नहीं है तो साक्षी में उसकी वास्तविक सत्ता की संभावना कैसे हो सकती है ?

संक्षेपमें आत्मतत्त्व की अज्ञान दशा में जो जो प्रतीति होती है, वह वस्तु तत्त्व की भासक नहीं होती। निद्रा काल में जो स्वप्न देखने में आता है वह यथार्थ वस्तु विषयक नहीं होता, अपितु कल्पित वस्तुविषयक होता है। ऐसे ही जाग्रत काल में जो घटपट आदि विषयों का अवगाहन करने वाले प्रत्यय होते हैं, वे भी स्वप्न प्रत्यय के समान परमार्थ विषयक नहीं होते।

स्वप्नज्ञान का विषय बाघ मिथ्या है फिर भी भय क्यों होता है ? सिर्फ ज्ञान भय का कारण नहीं है, अपितु बाघ से अनुरंजित ज्ञान भय का कारण है। अतः असत् ज्ञान भी असत् बाघ के समान कारण बनता है। ऐसे ही सिर्फ ज्ञान मोह का कारण नहीं है, लेकिन स्त्री सुख विषयक ज्ञान मोह का कारण है। बालक स्त्री की गोद में खेलता है फिर भी उसमें वैसा ज्ञान नहीं है इसलिए उसको मोह भी नहीं है।

बृहदारण्यक उपनिषद में आरंभ में कहा है कि प्रजापति बीजरूप से जल में प्रवेश कर अंड रूप से गर्भगत होकर संवत्सर रूप हुए। यानी संवत्सर काल के निर्माता प्रजापति संवत्सर हुए। संवत्सरकाल के निर्माता प्रजापति से पूर्व काल नहीं था। प्रजापति ही आदित्यात्मक है। प्रजापति से पूर्व आदित्य नहीं था। आदित्य से संवत्सर बनता है। बारह राशियों में सूर्य का परिभ्रमण होने से संवत्सर बनता है। यदि प्रजापति नहीं होता तो आदित्य भी नहीं होता। ऐसी अवस्था में संवत्सर यानी काल नहीं है। *(*आज के सायन्सवाले भी कहते है कि दृष्टा (observer) आये तो वह कालरूप हो और काल की प्रतीति उसकी माया के अनुसार होती है)

काल की प्रतीति माया के साथ होने के कारण माया से अतिरिक्त काल नहीं है। दक्षिणामूर्ति स्तोत्र में भी श्री शंकराचार्य ने **'माया कल्पितदेशकालकलना'** यह कहा है।

और अज्ञान अथवा प्रमाण से माया जान सके तो वह प्रमाण से निवृत्त होगी नहीं। अज्ञान अथवा माया को प्रमाण से जान नहीं सकते। अतः अज्ञान अथवा माया

की सिद्धि नहीं होती। माया अपने को सिद्ध करने न दे यह माया का भूषण है। यदि माया सिद्ध हो तो एक ब्रह्म और दूसरी माया ऐसा द्वैत हो और सच्चे द्वैत की निवृत्ति नहीं होगी।

यदि चेतन में अविद्या नहीं है तो अविद्या का कार्य संसार कहाँ से हुआ ? यह प्रश्न अज्ञानी का है, तत्त्वज्ञानी का नहीं है। तत्त्वज्ञान देने का प्रयोजन भी अज्ञानी के लिए है, उसकी दृष्टि में आत्मा की स्वयं प्रकाशता असिद्ध है यानी अज्ञान से आवृत्त है। गीता में भी भगवान ने कहा है कि अज्ञानी की दृष्टि में आत्मा रात्रि जैसा है और ज्ञानी की दृष्टि में संसार रात्रि समान है।

आत्मा की सिद्धि के लिए दूसरे की जरुरत नहीं है। जिस वस्तु की सिद्धि के लिए दूसरे पदार्थ के सद्भाव की जरुरत रहती है वह पदार्थ मिथ्या ही होता है। जैसे कि रज्जुसर्प, द्विचंद्र आदि मिथ्या ही है। प्रमाता आदि भी संपूर्ण जगत प्रत्यागात्मा की अपेक्षा से सिद्ध होता है। अतः वह स्वप्न की नाईं मिथ्या है। अर्थात् आत्मा की स्वतः सिद्धि है और अनात्मा की सिद्धि भ्रांति से है। जैसे ठंड की निवृत्ति के लिए अग्नि को अन्य किसी साधन की जरुरत नहीं है। वैसे विद्या को अज्ञान के नाश के लिए अन्य किसी साधन की जरुरत नहीं है। जैसे देहात्म चिंता (मैं देह हूँ ऐसा भाव) मूर्ख को नित्य प्राप्त है वैसे विद्वानों को ब्रह्म चिंता (मैं ब्रह्म हूँ ये अनुभव) नित्य प्राप्त है। ब्रह्मज्ञानी को ब्रह्म स्मृति छोड़कर अन्य स्मृति करने का मन नहीं होता। जैसे सर्प का सच्चा तत्त्व रज्जु है वैसे अनात्मा का सच्चा तत्त्व आत्मा ही है, अतः आत्मा को जानने के बाद अनात्मा नहीं रहता। आत्मा के अज्ञान से कल्पित अनात्मा की (आत्मा का ज्ञान होने के बाद) आत्मा में एकता हो जाती है।

अहंबुद्धि का विषय प्रमाता है, साक्षी नहीं है। साक्षी को वेदांत में ब्रह्म कहते हैं, अतः वेदांत अज्ञानज्ञापक होने से प्रमाण है। ब्रह्मविद्या का कार्य सर्वात्मभाव की प्राप्ति है। जो सच्ची वस्तु का विचार करते हैं ऐसे ज्ञानियों की दृष्टि में अविद्या जैसी कोई वस्तु नहीं है और यही अविद्या अविचारी मूर्ख की दृष्टि में वज्र से भी कठोर प्रतीत होती है। स्वभाव से ब्रह्म सर्वात्मक है। भ्रांति से असर्व प्रतीत होता है। अतः वेदांत का मुख्य कार्य भ्रांति की निवृत्ति करना है। तत्त्व विद्या वस्तु के अधीन है, पुरुष के अधीन नहीं है।

बोध होने के बाद राग आदि चले जाये तो अच्छा ही है। यदि प्रारब्ध से उत्पन्न हो तो भोग की सिद्धि के लिए वे भी ठीक हैं। भ्रांति का मुख्य कारण अधिष्ठान का

सामान्यरूप से ज्ञान, विशेषरूप से अज्ञान और आरोप्य के ज्ञान के संस्कार हैं। चिदात्मरूप सामान्यरूप है। ब्रह्म विशेषरूप है और अनादि द्वैतवासना आरोप्य के संस्कार हैं।

ये संस्कार किस प्रकार के हैं और उनको कैसे दूर करना उसमें यह पुस्तक उपयोगी हो सकता है। विषयों की कामना से जिसका चित्त व्याकुल हो गया हो उसको अपने स्वरूप में ब्रह्मानंद होने पर भी तिरोहित हो जाता है। ऐसी कामना का कारण अज्ञान है और अज्ञान के लिए कोई प्रमाण नहीं है। प्रमाण से अज्ञान की निवृत्ति होती है। अतः प्रमाण का सच्चा स्वरूप बताने का प्रयास इस पुस्तक में किया हुआ है। इस पुस्तक में अपने अनुभव के अलावा उत्तम से उत्तम पुस्तकों का सार आ जाता है।

ॐ ॐ

“देश और काल” को समझने में उपयोगी वीडियो की सूचि

इस ग्रन्थ की प्रस्तावना के अंत में स्वामी माधवतीर्थ ने लिखा है कि इस विषय पर एक अच्छा सिनेमा भी बना सकते है। उनके आश्रम के द्वारा १०० स्लाइड तैयार की गई थी।

इस समय ऐसी अनेक वीडियो फ़िल्में बन चुकी है जिनके द्वारा सापेक्ष वाद (Theory of relativity) और (Quantum theory) को समझने में सहायता मिलती है। आप U-tube से download कर सकते हो। उनकी सूचि नीचे दी गई है।

1. “Quantum mechanics explained” by Eugene Khutoryansky
https://www.youtube.com/watch ?v=rkgLzo6qhQg
Short URL: http://goo.gl/DnlLqD

2.Dr. Quantum double slit experiment explained by Dr. Quantum
https://www.youtube.com/watch ?v=iTIvN8Y33ho
Short URL: http://goo.gl/DBjZ25

3. Holographic universe, the secret beyond matter
https://www.youtube.com/watch ?v=UDnakYnA7VA
Short URL: http://goo.gl/2BK0By

4. Atom: the illusion of reality – BBC Documentary
https://www.youtube.com/watch ?v=765lakXrAuw
Short URL: http://goo.gl/vTzzz6

5. “Albert Einstein’s theory of relativity” by Eugene Khutoryansky
https://www.youtube.com/watch ?v=ev9zrt__lec
Short URL: http://goo.gl/wGKYSr

6. Robert Lanza - What are space and time
https://www.youtube.com/watch ?v=bc44f_3QfwE
Short URL: http://goo.gl/oHhCNZ

7. The Illusion of Time
https://www.youtube.com/watch ?v=vyz9TWzifE8
Short URL: http://goo.gl/lNK4ml

8. Relativity theory space, time
https://www.youtube.com/watch ?v=LOpPK6sZL5s
Short URL: http://goo.gl/QIpTkY
9. Does time really exist?
https://www.youtube.com/watch ?v=_vrwsXFcREY
Short URL: http://goo.gl/b3qfrT
10. The Illusion of distance of distance and free particles : Quantum Entanglement
https://www.youtube.com/watch ?v=ZNedBrG9E90
Short URL: http://goo.gl/D5qIBz
11. “Primacy of consciousness” by Peter Russell
https://www.youtube.com/watch ?v=-d4ugppcRUE
Short URL: http://goo.gl/3ScXC3
12. Consciousness science kept hidden
https://www.youtube.com/watch ?v=LFSRTsLOiv0
Short URL: http://goo.gl/z63mR8
13. The reality of consciousness, Peter Russell
https://www.youtube.com/watch ?v=g04RHQ1ysb4
Short URL: http://goo.gl/kmnN8l
14. Robert Lanza on theory of Biocentrism
https://www.youtube.com/watch ?v=zI_F4nOKDSM
Short URL: http://goo.gl/qDgbnX
15. Robert Lanza on theory of Biocentrism Part 2
https://www.youtube.com/watch ?v=Yw55BsToVZM
Short URL: http://goo.gl/pf9aYd
16. Robert Lanza discusses his ‘biocentric’ view of universe
https://www.youtube.com/watch ?v=4tGUfXOe9Jg
Short URL: http://goo.gl/HqBOfA
17. Biocentrism: Our consciousness creates the universe
https://www.youtube.com/watch ?v=fYy2p9N5eqQ
Short URL: http://goo.gl/46WbYh